1 ११ ०५ १९६७ सांय वसुन्धरा की याचना ब्रह्माण्ड में प्रत्येक तत्व तप के लिए

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ नित्यप्रति कुछ मनोहर पठन पाठन का कर्म, प्रायः परम्परागतों से आधरित उच्चारण अथवा मनोहर पद्धति में उसका प्रसारण होता रहता है, जिससे हम यह जान सकतें हैं, कि हमारा जीवन परम्परा से सुगठित रहता है। हमारे जीवन में यदि परम्परा नहीं होगी, तो हमारे जीवन का अपना कोई अस्तित्व नहीं रह सकेगा। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या कह रहा था, आज के हमारे इस मनोहर वेद पाठ में, कहीं शकुन्तका, कहीं धेनु और कहीं वसुन्धरा का वर्णन आता चला जा रहा था, हे माँ वसुन्धरा! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है, हे कल्याणमयी माँ! हम तेरे समीप आयें हैं, तू हमारे कल्याण को हमारा कल्याण करने वाली है। हम अपने जीवन को उन्नत चाहते हैं। माँ! हम तेरे गर्भ में बसते है, इसीलिए आपको वसुन्धरा कहते हैं। वसुन्धरा का अभिप्राय है, कि हम उसमें बसते हैं, बसने के नाते, उसको वसुन्धरा कहते हैं।

वसुन्धरा

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! हम उस महामना, मातेश्वरी वसुन्धरा की याचना करते चले जाएं, जो हमारा लालन पालन करने वाली है, हमें महान जीवन प्रदान करने वाली है, जीवन को उगलने वाली है, हम उस माता वसुन्धरा को बारम्बार नमस्कार कर रहे हैं। इसीलिए वेद ने नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्दों का विवेचन करते हुए कहा है, वसुन्धरा के नाना पर्यायवाची हैं, जैसे वसुन्धरा पृथ्वी को कहते हैं, जो नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थों को प्रदान करने वाली है, वह वसुन्धरा, जिसके गर्भ में हम नाना प्रकार की वनस्पतियों के द्वारा पनपते रहते

हैं। तो आज हम उस माता को वसुन्धरा कहा करते हैं।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब हम यह विचारने लगते हैं, कि वसु ब्रह्मे मानो जो नाना प्रकार के खनिज को उत्पन्न करने वाली है, और मानव जीवन से उनका कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, जब हम यह विचारने लगते हैं, तो हमारा हृदय विशालता को प्राप्त होने लगता है। हम अपने मन में, यह अनुभव करते हैं, अपने स्वयं हृदय में यह अनुभव करते हैं, कि वह तो वास्तव में महामना है, वह तो महामना है। हमारा कल्याण करने वाली है। तो मुनिवरों! आज हम उस माता के जब, उस वसुन्धरा के आङ्गन में आएं हैं, इसीलिए उसको बारम्बार हम नमस्कार कर रहे हैं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था, हमारा वेद का पाठ यह उच्चारण करता चला जा रहा था। हमारे यहाँ, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का जहाँ गुणगान गाया जाता है, वह वास्तव में जब उसको तत्त्व तत्व से विचारने लगते हैं। तो हमें यह प्रतीत होने लगता है, कि वास्तव में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड वसुन्धरा का स्वरूप माना गया है, क्योंकि वसुन्धरा महामना प्रभु को भी कहते हैं, जिसके गर्भस्थल में बेटा! यह सर्वत्र जगत विराजामन हो रहा है। जिसकी प्रक्रियाओं से यह बेटा! पृथ्वी क्रियामान हो रही है, सर्वत्र ब्रह्माण्ड उसी के आश्रित भ्रमण कर रहा है। आज हम उस परमपिता परमात्मा को भी वसुन्धरा के रूपों में परणित किया करते हैं, और उसका गुणगान गाते हैं, गुणों का गुणवाद करते हुए कहा कहते हैं कि वह जो प्रभु है, जो संसार का रचयिता है, जो क्रियात्मक देने वाला है, परन्तु वही जगत में व्याप रहा है, उसी की महान ज्योति से हम सर्वत्र ब्रह्माण्ड, सर्वत्र प्राणी, प्राणी मात्र, बेटा! उसी की ज्योति से व्याप रहा है। उसी के आङ्गन में रमण कर रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब उसी की ज्योति में हम सब व्याप रहे हैं। वह हमें व्यापक बनाता चला जा रहा है, प्रकाशमयी बनाता चला जा रहा है। तो हम उस प्रभु के गुणगान गाने में सदैव तत्पर रहते हैं। उसी के गर्भ में यह सर्वत्र लोक लोकान्तर विराजमान है, इसका निर्वस्त्रम

जिसकी महिमा बेटा! आदि ऋषियों ने बेटा! बड़े सुन्दर रूपों से वर्णन की है। आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उच्चारण करते चले जाएं, कि वह जो देव की जो अनुपम देन है, वह जो अनुपम प्रकाश है, उसमें नाना प्रकार का ज्ञान और विज्ञान आता है, और नाना प्रकार की प्रतिभा उसमें विराजमान होती हमें प्रतीत होती है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस महान, वेद वेदवाणी में ही प्रभु की आनन्दमयी जो देन है, उसका अनुवाद करते हुए वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है, हे महा! हे महा प्रभु! अकृते, तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाला है। जीवन को उद्बुद्ध करने वाला है। तेरी ही महती अनुपम कृपा से यह जीवन हमारा उद्बुद्ध हो रहा है, अहा! तेरी ही रचना हमें व्याप रही है। तेरी महानता में हम सदैव रमण करने वाले हो, हमें नाना प्रकार का जो अज्ञान आता है। वह आपको दूरी कर देते हैं अपने हृदय से, तो उस समय हमें अज्ञानता की प्रतीति होने लगती है। तो प्रभु! हम चाहते हैं, कि हम सदैव प्रकाश में रमण करते रहें, आनन्द में ही रमण करते रहे, कि हमारा जीवन, सदैव आनन्द के लिए उत्पन्न होता है। जीवन की प्रतिभा को जानने के लिए उत्पन्न होता है। हमें कोई ऐसा महान सामर्थ्य प्रदान करो, जिससे भगवन! हम आपकी अनुमप कृपा के द्वारा, आपकी महिमा को जान करके अपने मनस्तव को जानते चलें जाएं। हे प्रभु! यह आपकी महती, यह आपकी अनुपम देन हैं, जब हम यह विचारते हैं कि आप इस जगत में ओत प्रोत हो रहे है। और ये जगत आपसे व्याप्त हो रहा है, तो प्रभु! हम कहां जाए? किस आङ्गन में रमण करें? परन्तु यहाँ मैं केवल उसकी महिमा का गुणगान गाने ही नहीं आए हैं, बेटा! वाक यह उच्चारण करते चले जाएं, कि आज का मानव जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे कई काल में वर्णन कराते हुए कहा है। इन्होंने उच्चारण करते हुए कहा है, कि हम सदैव इस संसार को उन्नत बनाना चाहते हैं, परन्तु संसार उन्नत उस काल में बनता है, जब प्रत्येक मानव अपने अपने कर्तव्यवाद का पालन करता चला जाता है। जैसा मैंने

काल में बेटा! वर्णन करते हुए कहा है, कर्तव्यवाद को ही कहीं कहीं धर्मज्ञ कहा है, धर्म कहा है।

अमृतमयी ज्योति

तो मुनिवरों! जहाँ कर्तव्यवाद होता है, वहाँ मानव की प्रतिभा होती है, मानव का जीवन उन्नत होता प्रतीत होता है। मैंने कई काल में वर्णन करते हुए कहा है, गुरु शिष्यों के सम्बन्ध में, क्या गुरु शिष्य उस परमात्मा के मध्य में विराजमान करके जब शिक्षार्थी, शिक्षा को अध्ययन करता है। उसकी बुद्धि तत्परता आती चली जाती है, और आचार्य के हृदय में विशालता आती चली जाती है, परन्तु जब दोनों ही आचार्य और शिक्षार्थी दोनों में स्वार्थवाद की अनुपमता आ जाती है, स्वार्थवाद आ जाता है, उस समय बेटा! न तो शिष्य ही ऊँचा बनता है, और न गुरु ही तपता है। क्योंकि संसार यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड तपस्या में ओत प्रोत है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब गुरु अपने कुल में तपता है, परन्तु ब्रह्मचारी गुरु के कुल में तपता है, सूर्य बेटा! देखो, अपने आङ्गन में तपता है, समुद्र अपनी परिधि में तपा करता है, पृथ्वी अपने आङ्गन में तपती है, चन्द्रमा अपने रसों में तपता है, इसी प्रकार बेटा! यह जो सर्व जगत है, यह तप से ऊँचा बना है। और तप से ही इसका मुख्य विवेक भी रहता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह संसार तपा करता है, तभी यहाँ ऊंचे ऊंचे वनस्पति, यह पृथ्वी तपा करती है, तो बेटा! सुन्दर सुन्दर वनस्पतियों का जन्म होता है। मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी जब तपा करती हैं, बेटा! तपने के पश्चात वह सुन्दर बालक को जन्म देती है, कणाद और गौतम जैसे ऋषियों का जन्म होता है, राम और कृष्ण जैसों का जन्म होता है, बेटा! जब यह सूर्य तपा करता है, तपता है, तो समुद्रों से जलों का उत्थान होता है। जल से मेघ बनते हैं, और मेघों से सुन्दर धीमी धीमी वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है, उससे नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होने लगता है। इसी प्रकार बेटा! जब यह चन्द्रमा मुनिवरों! ग्रीष्म ऋतु में देखो, जब यह तपता है, अपनी अमृतमयी ज्योति प्रदान करता है, तो कृषक करने की, कृषक की जो भूमि होती

है, उसमें अमृत प्रदान करता है, परन्तु वह जो अमृत मेरी भूमि है, अन्न है, उसको अमृत प्रदान करके बेटा! वह सर्व अन्न अमृतमय हो जाता है। यहाँ तक नहीं है, यहाँ तक है कि माता के गर्भस्थल में जो जरायुज होता है, वहाँ तक अमृत प्रदान करता चला जाता है। तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है, बेटा! जब यह संसार तपता है, क्योंकि तप में ही सर्वश जगत विराजमान रहता है। आचार्य के कुल में बेटा! ब्रह्मचारी तपता है, हे ब्रह्मचारी! तू वास्तव में तपस्या में है, क्योंकि तेरा जीवन ही तप है, हे आचार्य! जब तू अपने कुल में तपता है, मानो जब तू विद्या से तपायमान हो जाता है, तेरा तप क्या है, जब तू ज्ञानमयी अग्नि को ग्रहण कर लेता है। ज्ञानमयी ज्योति को ग्रहण कर लेता है, तो तेरा जो तप है, वह महान बन जाता है।

ऋत का स्वरूप

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है, तप की वार्त्ता, तप क्या है? मुनिवरों! देखो, तप मानव का विचार है, मानव का आहार और व्यवहार है, क्योंकि जब आचार्य तपता है, तो देखो, आहार और व्यवहार से तपा करता है, परन्तु हमारे यहाँ परम्परा यह कहती है, हमारे यहाँ गुरु और शिष्य का संवाद यह कहता है, आचार्य जनों के उदगारों में आता है, कि यहाँ तप करने के लिए कहा है। बेटा! एक समय मुझे स्मरण है, जब महर्षि पिप्लाद मुनि के आश्रम में देखो, यह रेवक इत्यादि जब छह जिज्ञासु आचार्य के गृह में पंहुचे, मुनिवरों! देखो, उस समय जिज्ञासुओं ने कहा प्रभु! आपकी शरण में आए हैं, उन्होंने कहा क्या शरण, क्या चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु! हम ऋत को जानना चाहते हैं, ऋत किसे कहते हैं, उस समय बेटा! महर्षि पिप्पलाद जी ने कहा कि अच्छा, आप सब देखो, यह हमारे आश्रम का नियम है, यह चार सौ गऊ है, इनका एक वर्ष तक इनका लालन पालन करो। उसके पश्चात, तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दिया जा सकेगा, उस काल में जब कि मैं जानता हूँगा तो। मुनिवरों! देखो, वह जिज्ञासुओं ने, ब्रह्मजिज्ञासुओं ने एक वर्ष तक बेटा! नियम

धारण किया, कि हम गऊओं का पालन करेंगे। बेटा! गऊओं का लालन पालन करते थे, जब पालन करते रहे, एक वर्ष हो गया लालन पालन करते हुए, एक वर्ष के पश्चात पिप्पलाद मुनि के चरणों में ओत प्रोत हो गएं, और चरणों में ओत प्रोत हो करके, उन्होंने कहा कि भगवन! अब हम यह जानना चाहते हैं कि ऋत किसे कहते हैं, ऋत को जानने के लिए, आपकी शरण में आएं हैं। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, क्या तुम यही जानना चाहते हो, उन्होंने कहा कि हाँ, महाराज! क्या जिस स्थिति से तुमने, एक वर्ष तक गऊंओं का पालन किया, उसी को हमारे यहाँ ऋत कहते हैं।

सत्य के तीन प्रकार

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! कितना संक्षिप्त उत्तर है ऋषि का, ऋषि ने कहा जिस प्रतिभा से, जिस श्रद्धा से, जिस आस्था से, जिस तरंगों से तुमने गऊंओ का पालन किया है, संयम से रहे हो, उसी को ऋत कहा जाता है। आज हम ऋत को जानना चाहते हैं, बेटा! ऋत नाम है, तपस्या का, क्योंकि तपस्या एक रूपों में ऋत का स्वरूप धारण कर लेती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर जब हम ऋत का वर्णन करते हैं। कि इससे यह संसार क्रियात्मक हो रहा है, उसी को ऋत कहा जाता है, और ऋत और सत मानो देखो, द्वितीय शब्द सत्यता में परणित होता है, बेटा! देखो, सत्य में भी देखो, तीन प्रकार के सत्य का विवेचन देखो, हमारे यहाँ आता है, देखो, एक तो अभाव में सत्य है, एक सत्य सत है, एक ब्रह्म सत है, मानो देखो, एक तो वह, जो प्रकृति हमें प्रतीत हो रही है, सत है। परन्तु इसका अभाव भी होता है, परन्तु इतना नहीं होता, यह सदैव सत रहती है। परन्तु एक अभाव में सत है, एक मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे दृष्टिपात आ रहे हैं, परन्तु कुछ समय के पश्चात जब यह परमाणु रूप हो जाता है। अहा! देखो, इसी स्वरूप का, इसी सत का अभाव हो जाता है। एक माता का पुत्र हमें प्रतीत होता है, परन्तु माता प्रतीत हो रही है, शिष्य गुरु को प्रतीत हो रहा है, परन्तु शिष्य के नेत्रों के समीप गुरु जन है, परन्तु गुरु जनों का अभाव है,

क्यों अभाव है? क्योंकि उसका जो स्थूल शरीर है, वह नहीं रहेगा, परमाणुवाद बन जाएगा, इसीलिए देखो, वह जो स्वरूप हमें प्रतीत हो रहा था, वह सत था। परन्तु सत के आङ्गन में सत नही अभाव प्रतीत होता है, एक ब्रह्म सदैव सत्य रहता है मानो देखो, जो ब्रह्म सत है, अहा! ब्रह्म सत है वो सदैव उसका किसी काल में भी अभाव नहीं होता।

शरीर सुगठन के परमाणु

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं, जिसका किसी काल में भी अभाव नहीं होता, मानो उसका अभाव होता ही नही, इसीलिए आज हम मानवतव के सम्बन्ध में जब यह उच्चारण करने लगते हैं, कि वास्तव में मानव का जीवन क्या है? विचार विनिमय आता है, कि मानव का जीवन क्या है? तो बेटा! उसमें एक महानता प्रतीत होने लगती है, जब यहाँ मैं अपनी प्यारी माता से एक मेरी प्यारी माता अपने पुत्र के लिए व्याकुल हो रही है, परन्तु जब मैं यह प्रश्न करता हूँ, हे माता! यह जो तेरा पुत्र, जिसके लिए तू व्याकुल हो रही है, यह पुत्र तेरा कहाँ था, इस पुत्र का यह पुत्र कहां चला गया, तो माता से कोई उत्तर प्राप्त नहीं होता। क्योंकि वह मोह में परिपक्व है, मोह में लिप्त भी हो चुकी है, क्या वह अपनेपन को समाप्त कर चुकी है, परन्तु जब ज्ञान और विवेक के गर्भ में जाते हैं। ज्ञान और विवेक की प्रतिभा में जाते हैं, तो यह प्रतीत होने लगता है, क्या वह जो पुत्र था, परन्तु हे माता! तेरा जो पुत्र था, वह कहां चला गया, परन्तु उत्तर मिलता है, उसका मुझे प्रतीत नही, हे माता! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि तेरे पुत्र का जो निर्माण है, वह निर्माण किस वस्तु से हुआ है, तो उत्तर मिलता है, कि माता के गर्भस्थल में सूक्ष्म से बिन्दु से इसका निर्माण होता है। अहा! मुनिवरों! देखो, वह कहां चला गया, वह किस स्थान में चला गया, जैसा पिप्पलाद ऋषि से, उनकी पत्नी ने कहा था, हे प्रभु! हमारा जो यह मानव शरीर है, इसका निर्माणवेत्ता, किस वस्तु से इनका निर्माण होता है? तो उत्तर मिलता है ऋषि से, क्या इस मानव जीवन का जो निर्माण है, वह सूक्ष्म से बिन्दु से

होता है, अहा! उन्होंने कहा कि यह जब विकृत हो गया, यह परमाणु जब मानो हमारा यह शरीर इस रूप में नहीं था, तो इससे पूर्व यह शरीर, किस रूप में विराजमान था? उन्होंने कहा कि यह जब इस रूप में नहीं थे, तो माता के गर्भस्थल में विराजमान थे। माता के गर्भस्थल में पनप रहे थे, उसी के आङ्गन में रमण कर रहे थे। ऋषि देवी ने कहा प्रभु! जब यह हमारा मानव शरीर मानो जब यह माता के गर्भस्थल में नही था। उससे पूर्व यह परमाणु कहाँ रहते थे? उन्होंने कहा, इससे पूर्व ये परमाणु देखो, माता पिता के रज वीर्य के रूप में विराजमान थे, उन्होंने कहा हे भगवन! मैं यह जानना चाहती हूँ, जब माता पिता के शरीरों में रज वीर्य भी नहीं था, उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा, यह परमाणु कुछ अन्न में थे, और कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में थे, उन्होंने कहा हे भगवन! मैं यह जानना चाहती हूँ, क्या जब यह वनस्पतियां और अन्न भी नही था, उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा ये परमाणु मानो यही परमाणु देखो, कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे, कृषक की भूमि में विराजमान थे, उन्होंने कहा कि हे भगवन! जब यह कृषक की भूमि भी नहीं थी, उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहां, यही परमाणु मानो देखो, पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु थे, यह पृथ्वी में बिखरे हुए थे, परमाणु रूप में थे, उन्होंने कहा क्या भगवन! ये पृथ्वी के ही परमाणु हैं। उन्होंने कहा कदापि नही, कुछ मानो अन्तरिक्ष के परमाणु हैं, कुछ जल के परमाणु है, कुछ वायु के परमाणु हैं, और कुछ अग्नि के परमाणु और कुछ पृथ्वी के परमाणु ये पञ्च महाभूतों का पिण्ड माना गया है। उन्होंने कहा अरे, परमाणुओं को सुगठित करने वाला, इस मानव शरीर में जीवात्मा रहता है, जीवात्मा उन परमाणुओं को सुगठित करने वाला है। जब इस शरीर से यह जीवात्मा चला जाता है, उस समय यह परमाणुओं का पिण्ड रह जाता है। परन्तु क्रिया से शून्य हो जाता है, यह क्रिया शून्य हो जाता है, इसी को अग्नि के मुखारबिन्द में अर्पित कर दिया जाता है। अग्नि के परमाणु अग्नि में चले जाते हैं,

जल के परमाणु जल में चले जाते हैं। वायु के परमाणु वायु में चले गएं, अन्तरिक्ष के परमाणु अन्तरिक्ष में चले गएं, और पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में रमण कर गएं, अहा! देखो, संसार में नष्ट कोई वस्तु होती ही नही। परन्तु देखो, स्थूल का जो दृष्टिपात आ रहा था, उसका अभाव हो गया है।

ऋत व सत

तो तीन प्रकार के सत्यों में मानो देखो, एक सत यह भी मानो शरीर भी सत है, परन्तु इसकी सतता में भी अभाव रहता है, इसका परमाणु रूप हो जाता है, तो अभाव है, परन्तु स्थूलता में प्रतीत होता है, इसका अभाव कभी नही होता। इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है, आचार्य जनों ने कहा है, क्या प्रकृति है, यह भी सत है, परन्तु इसका रूपान्तर होता रहता है। आज यह स्थूल रूप में है, परन्तु प्रलय काल आता है, तो यह सूक्ष्म रूप में परणित हो जाती है, यह ब्रह्म के गर्भ में चली जाती है, एक सदैव ब्रह्म है, जो सदैव चैतन्य क्रियाशील ज्ञान स्वरूप रहता है। मानो देखो, उस ब्रह्म का किसी काल में भी बेटा! अभाव नहीं होता। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं वाक उच्चारण करते करते बेटा! कितना दूरी चला गया हूँ। वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह चल रहा था, कि हम देखो, ऋत की व्याख्या करने जा रहे थे, ऋत नाम ब्रह्म को कहा गया है, ऋत नाम चैतन्य शक्ति को कहा गया है, क्योंकि उसी के आश्रित में हम सभी जकड़े हुए रहते हैं, उसी में कटिबद्ध रहते है। इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा है, कि हम सदैव मानो देखो, उस ब्रह्म के आङ्गन में सत और ऋत के आङ्गन में रमण करते रहते हैं, ऋत क्या है, आज हमें ऋत को जानना है। शिष्य और गुरु जब दोनों विराजमान होते हैं। तो ऋत और सत का विवेचन करते रहते हैं, मानो वह अपने जीवन की प्रतिभा को जानते रहते हैं, दोनों तपे हुए होते हैं, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ, परम्परागतों में ये माना गया है, क्या प्रथम हमारे यहाँ देखो, गुरु और शिष्य को, दोनो को तपस्वी बनाने के लिए आज्ञा दी जा रही है। अहा! हे गुरुओं! तुम्हे

वास्तव में मनो वैज्ञानिक बनना है, तुम्हे ऐसा मनों का विज्ञान तुम्हें अपने समीप लाना है, जिससे तुम ब्रह्मचारी को अच्छा चुन सको, क्योंकि ब्रह्मचारी को चुनना ही होता है, अधिकार अनाधिकार को देखो, विचार विनिमय करना होता है। वह मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने एक समय कहा था, कि संसार में जब से अधिकार चेष्टा चली गई है, तभी से संसार में देखो, यहाँ बुद्धिमानो का अभाव होता चला जा रहा है, क्यों होता चला जा रहा है?, अधिकार को अनधिकर को नहीं विचारा जाता। उस पर विवेचन नहीं किया जाता। यदि विवेचन किया जाता, तो यह संसार इतना गढ़ेले में नहीं जाता। परन्तु इसमें विवेचना होती, सुन्दरवाद होता।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है, हे गुरुजनों! तुम्हें उत्तम बनना है तपना है, और तपने के पश्चात ब्रह्मचारी को तपाना है, और उस शिक्षण को, उस संस्कृति को अपनाना है, जिस संस्कृति में ऋषितव होना चाहिए। जिसमें विडम्बना नही, विवेक होना चाहिए। परन्तु देखो, उसमें अशुद्धवाद नहीं होना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, जब अपभ्रंश शब्द हो जाते हैं, तो बुद्धिमानो का कर्तव्य है, क्या उन शब्दों का शोधन कर लेना चाहिए, राष्ट्र की अनुमति ले करके, उनका संशोधन करना, यह हमारा सभी प्राणियों का, बुद्धिमानो का कर्तव्यवाद कहलाता है। क्योंकि शिक्षार्थी और गुरुजन वहीं होते हैं, जिनका दोनों में परस्पर प्रीति और स्नेह और देखो, एक दूसरे में एक दूसरे के कर्तव्य का पालन उनमें, विशेषकर होता है, तपे हुए होते हैं, तो मुनिवरों! देखो, उनके विचारों में जब तप और विवेक, तप का विवेचन होता है। तप की भावना होती है, तो बेटा! देखो, शिक्षालयों में, एक महानता की ज्योति प्रदीप्त हो जाती है। चरित्रवाद की प्रतिभा होती है, परन्तु द्वेष की मात्रा नही होती, वहाँ सदैव आस्था की प्रतिभा, आस्था वाली जो ऋत है। उसका ओत प्रोत होता रहता है।

तप से उत्पादन

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक

क्या कहता चला जा रहा है, मैं कोई अधिक वाक उच्चारण करने नहीं आया हूँ, केवल यह वाक उच्चारण करने के लिए आ पंहुचे हैं कि हमारा जीवन वास्तव में तपना चाहिए बेटा! जब यह संसार तपता है, तपने के पश्चात ही संसार में कोई वस्तु आती है, बेटा! जब पृथ्वी माता ग्रीष्म ऋतु में तपा करती है, जब यह तपती है, तो मुनिवरों! देखो, तपने के पश्चात ग्रीष्म ऋतु में सूर्य के प्रकाश में तपा करती है, तपने से बेटा! इसमें जीवन की प्रक्रिया आती है, जीवन प्राप्त होता है अरे, जीवन जब वर्षा ऋतु आती है, मेघों से वृष्टि होती है, उस समय बेटा! नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है बेटा! जब आचार्य तपता है तो बेटा! देखो, ब्रह्मचारी को उत्तम बनाता है, और जब पृथ्वी तपा करती है, तो नाना प्रकार की वनस्पतियां यहीं तक नहीं बेटा! यह खनिज पदार्थ भी इसी तपने से प्राप्त होता है। जहाँ यह पृथ्वी अधिक तप जाती है, अधिक तपमय हो जाती है, वहाँ बेटा! सूर्य से उन किरणों का, उन किरणों की प्रतिभा इसमें आनी प्रारम्भ हो जाती है। जिससे नाना प्रकार की धातुओं का जन्म होता है बेटा! मेरे प्यारे! ऋषिवर! पृथ्वी में नाना प्रकार का स्वादन होता है इस पृथ्वी में कितनी विभाजन क्रिया प्रतीत हो रही है, एक सूक्ष्म से स्थान में, नाना प्रकार की वनस्पतियां होती है। उनके नाना प्रकार के रस्वादन होते हैं, बेटा! उसमें विभाजन क्रिया है, इसमें मनस्तव है, मनस्त्व जो पृथ्वी में विराजमान है, परन्तु उसी से देखो, वह विभाजनता में रसों का विभाजन होता रहता है, प्राण की सत्ता से, प्राण के विवेग्रनों से बेटा! नाना प्रकार की वनस्पतियों का भिन्न भिन्न प्रकार का रस्वादन होता है। पृथ्वी के परमाणुओं में, पृथ्वी के कणों में नाना प्रकार का उत्पादन होता है, जिस पृथ्वी में बेटा! कैषला, कैषले में कड़वाहट होता है, कड़वाहट में मधु होता है, वहाँ जानो, बेटा! स्वर्ण जैसी धातु का जन्म होगा मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि हमें यह जानना है, यह विचारना है कि यह पृथ्वी जो तपा करती है। तो बेटा! नाना प्रकार के खाद्य और खनिज पदार्थों का इसी से जन्म होता है, और

इसी से हमारा जीवन महान बना करता है, जिससे हमें विचारना है, आज हमें विज्ञान के क्षेत्रों में जा करके विचारना है, तप के क्षेत्रों में विचारना है, बेटा! यह जो प्रभु का मनस्तव है, इसको विचारते हुए इसके ऋत को जानते हुए, बेटा! इस सब ऋत का ही वर्णन है, इनमें सबमें ऋत रमण करती रहती है बेटा!।

ब्रह्मचारी का तप

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! सूर्य की नाना किरणें तपा करती हैं, समुद्र को तपाती हैं, बेटा! समुद्र से जब जलों का उत्थान होता है, जल से मेघ बनते हैं, मेघ बेटा! देखो, उससे जलों की उत्तम वर्षा होती है, वृष्टि होती है उससे बेटा! देखो, समुद्रों में एक महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है, बेटा! उसी से जीवन उन्नत बना करता है, उसी से मानो जीवन में रस आता है। आनन्दतव आता है, तो हमें विचारना है, कि यह सर्वत्र वस्तु तपा करती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव का जीवन भी तपमय होना चाहिए। मेरी प्यारी माता, जब विचारों में तपती है, विचारों में तपा करती है, तो बेटा! यहाँ कणाद और गौतम को जन्म देती है, मुझे स्मरण है बेटा! जब महर्षि अगस्त मुनि का जन्म हुआ, माता स्नेहलता के गर्भ में जब बेटा! महर्षि अगस्त मुनि जी थे, उस समय माता तपती थी, विचारों में तपती थी, मानो विवेक में तपा करती थी, उस माता के गर्भ से बेटा! देखो, अगस्त जैसा महान विभूति का जन्म हुआ। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में प्रत्येक वस्तु तप चाहती है, इसीलिए तपना चाहिए। ब्रह्मचारी कुल में बेटा! जब शिक्षालय में ब्रह्मचारी तपते हैं बेटा! अपने ब्रह्मचर्य से तपा करते हैं, तपने का अभिप्राय क्या है, ब्रह्मचारी कौन होता है? जो बेटा! ब्रह्मविद्या में चरता है, ब्रह्मविद्या को चरी करने वाला जैसे पशु मानो पशु पृथ्वी में से नाना प्रकार की वनस्पतियों को चरता है, देखो, चरता है इसी प्रकार जब ब्रह्मचारी ब्रह्म को चरता है, ब्रह्म किसे कहते हैं, विद्या को चरता है बेटा! उसको चरने के पश्चात वह ब्रह्मचारी उसी काल में चरता है, जब ब्रह्मचर्यतव उसके समीप होता, उसका जीवन उस महानता में तपा हुआ

होता है बेटा! तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कहा रहा है, कि तपना चाहिए। तप उसे कहते हैं, जहाँ मान अपमान नहीं होता, जहाँ गुरु की शरण में रहा जाता है और गुरु कैसा तपा हुआ, क्या, गुरु उसे अपने गर्भ में धारण कर लेता है बेटा! कहा है, क्या गुरु जब उसे अपने आङ्गन में धारण कर लेता है, अहा! उसको शिक्षार्थी बना देता है, उज्ज्वल बना देता है, और कहता है चक्षुम्मे शुन्धामि, प्राणम्मे शुन्धमि, श्रोत्रम्मे शुन्धामि हे बालक! हे ब्रह्मचारी! तू अपनी इन्द्रियों को मुझे अर्पित कर मानो उन्हें में चक्षुम्मे शुन्धामि, मैं तेरे चक्षुओं को सुन्दर बना रहा हूँ। इनका शोधन कर रहा हूँ, देखो, आचार्य सबसे प्रथम जो कह देता है, ब्रह्मचारी! अब तू अपने गुरु के आङ्गन में आ गया। तू तप, तू अपनी इन्द्रियों को तपा, इन्द्रियों को तपाना है ज्ञान से, विवेक से, मानो उनमें विडम्बना नहीं आनी चाहिए। इनमें तप होना चाहिए।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कह रहा है कि संसार में तप होना चाहिए हमारे यहाँ तप नही होगा, तो जीवन में कोई सार्थिकता नहीं होगी, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आओ, हम सर्वश इन्द्रियों का शोधन, गुरु की शरण में करना चाहते हैं। परन्तु गुरु इतना बुद्धिमान होना चाहिए, अहा! उसका जीवन स्वयं तपा हुआ होना चाहिए, यदि गुरु का जीवन तपा हुआ नहीं होगा, तो बेटा! वह ब्रह्मचारी को भी नहीं तपा सकेगा। तपा वही सकता है, जिसका स्वयं का जीवन तपा हुआ होगा, विचारों में तपा हुआ, ब्रह्मज्ञान में तपा हुआ, मानो संसारिक व्यापार में तपा हुआ, राष्ट्र विधान में तपा हुआ, वही बेटा! ब्रह्मचारी को तपा सकता है, और उज्ज्वल बना सकता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक यह क्या कहा रहा है, हमें वास्तव में अपने जीवन को उन्नत बनाना है, पवित्र बनाना है, हमारे यहाँ आचार्यों के यहाँ, बेटा! देखो, यहाँ अधिक विद्या की आवश्यकता नही है, संसार में जो ज्ञान है, विवेक है, वह बहुत सूक्ष्म सा है। परन्तु वह नाना प्रकार की पोथियों में नही है, वह मानव के विचारों में विराजमान रहता है। मानव की प्रतिभा में

विराजमान रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमें यह विचारना है, कि हमें अपनी प्रतिभा को ऊँचा बनाना है, महानता की ज्योति को ऊँचा बनाना है, जिससे हम प्रभु की उस महानता को, उस विचारमयी जीवन को विचार सके, जिस महानता से प्रभु ने इस जगत और ब्रह्माण्ड की रचना की है, यह जो जगत हमें प्रतीत हो रहा है, इसकी रचना में क्या क्या तत्त्व है, इन सबको विचारना हमारा कर्तव्यवाद कहलाया गया है, और उस कर्तव्यवाद में बेटा! धर्म परणित रहता है। इसी में धर्म की प्रतिभा होती है। ऋषि ने कहा था, जब जिज्ञासुओं ने कहा कि प्रभु! क्या ऋत इसी को कहते हैं, उन्होंने कहा कि जन्तं ब्रह्मे प्रव्हा कृति मानो देखो, जिस शक्ति से तुम क्रिया करते हो, तपते हो, इस तपने का नाम ही मानो देखो, ऋत कहलाया जाता है। ब्रह्मज्ञान में जो तप लेता है, ब्रह्मचर्य में जो तप लेता है, ब्रह्म में विचरण कर लेता है, बेटा! उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि रसों की रक्षा करना ही ब्रह्मचर्य नहीं कहलाया जाता है, ब्रह्मचारी वह होता है, जो ब्रह्म का चिन्तन करता है, ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय करता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक यह क्या कहता चला जा रहा, कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए, उस माता वसुन्धरा की याचना करते हुए, जो संसार को अपने में बसाती चली जा रही है, बेटा! उसको वसुन्धरा कहते है। हमारे यहाँ वह जो सत्यम् जो ब्रह्म है, उस ब्रह्म को भी वसुन्धरा कहते हैं, क्योंकि सर्वत्र जगत उस महान देखो, माता वसुन्धरा के गर्भ में ओत प्रोत हो रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कहा रहा है, मुझे कोई अधिक वाक उच्चारण नहीं करने हैं, केवल वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि हम माता वसुन्धरा के गर्भ में जाना चाहते हैं, माता के लिए हम सदैव अपने जीवन को उसमें रमण कराना चाहते हैं, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हम उस मातेश्वरी की याचना करते चले जाएं, वह वसुन्धरा है, वसु हमें अपने में बसा, अपने में बसाती चली जा रही है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह वाक अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, आज के

इन वाक्यों का अभिप्राय ये, कल बेटा! मुझे समय मिलेगा, तो मैं अधिकार और अनाधिकर के ऊपर कुछ विचार विनिमय कर सकूंगा। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम ब्रह्म की याचना करते हुए कि हम सदैव अपने मानवतव को जानते हुए, ब्रह्म में विचरण कराते हुए और अपने मानवतव को जानते हुए कि हमारा मानवतव है क्या, मेरी प्यारी माता कितनी व्याकुल हो रही है, एक पुत्र के बिछड़ जाने के पश्चात। परन्तु हे माता! यह तेरा पुत्र है क्या? मानो इसमें कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, तो तू अज्ञान में क्यों व्याकुल हो रही है, मानो यह सब अज्ञान है, इसीलिए कहा है कि तपना चाहिए। हे माता! तू अपने विचारों को तपा, हे मानव! तू अपने विचारों को तपा, व्याकुल न हो क्योंकि संसार में किसी वस्तु का अभाव नहीं होता। वह सदैव, परन्तु उसका रूपान्तर होता रहता है, उस रूपान्तर में अभाव स्वीकार कर लेते हैं। मानो देखो, यदि गम्भीरता से विवेक से विचार विनिमय किया जाता है, तो मृत्यु जो शब्द है, अज्ञानता का प्रतीक माना गया है। तो यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट कर सकूंगा, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय ये, कि हम प्रभु की याचना करते हुए, उस महादेव की याचना करते हुए, अपने मानवतव को उन्नत बनाते चले जाएं। प्रभु के जगत में आएं है। माता वसुन्धरा के गर्भ में हैं, हम वास्तव में उस माता की याचना करते हुए, उसको बारम्बार नमस्कार कर रहें हैं और नमस्कार करके अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहे है।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो!

पूज्यपाद गुरुदेवः तो मुनिवरों! आज का यह वाक समाप्त होने जा रहा है, आज के वाक्यों का अभिप्राय कल मुझे समय मिलेगा तो अधिकार अनिधकार के ऊपर विचार विनिमय किया जाएगा यह मैंने इससे पूर्व काल में भी अपने विचार दिए है, आज भी मुझे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। तो यह है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा, शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे, आज का वाक यह समाप्त

होने जा रहा है।

पूज्य महानन्द जीः गुरूदेव! वाक तो बहुत सुन्दर परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य.... चलो, बेटा! कल समय मिलेगा तो अधिक चर्चाएं कल प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन।

पूज्यपाद गुरुदेवः वेदपाठ, ओ३म् ब्रह्म भूषणाः आभ्यां ॠषि वाचा रयीणां गायन्ताहाम्। ओ३म् तनु ब्रह्मा व्यापाञ्चरी इदं आ भा गृही वन्धनाः मानं भगाः। ओ३म् देवं सर्वत्र तु रथा आभ्यां ॠषि वाचन्नम वन्धना प्रागताम्। ओ३म् धेनुं गता रयि शन्ना आत्मा भद्राणि गयानि चमा रेवं आ भाहाम्। ओ३म् उदुग्रीवाः चरी इदं मां धेनु गया आ भा मनो प्राची रथा अमृता मानं देवं भा गाहाम्। ओ३म् देवं मया सर्वं भद्रा ब्रह्मणाम्। पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन्!

2 १२ ०३ १९६९ चतुर्भुजी विष्णु का स्वरूप

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों के अधारित, कुछ मनोहर, वेदमन्त्रों का प्रसारण होता रहता है। परन्तु वेदमन्त्रों के उच्चारण करने के नाना प्रकार होने के नाते, उसके नाना प्रकार की धाराएं बन जाती हैं। जिससे हम यह जान लेते हैं, कि हमारी जो अमूल्य धाराएं हैं। अथवा वेद का जो उच्चारण करने का जो प्रकार है, वह नाना रूपों में प्रायः परणित होता रहता है। तो आज हम उस परमपिता परमात्मा देव की महिमा का, गुणगान गाते हुए चले जा रहे थे। जो परमपिता परमात्मा हमारा विष्णु है। वास्तव में कल्याण करने वाला है। प्रत्येक मानव को जीवन अथवा महानता को परणित करने वाला है। जब हम विष्णु के ऊपर, अपना विचार अपना विचार, अपनी अमूल्य धाराओं को जब परणित करतें हैं। तो हमें ऐसा प्रतीत होने लगता, जैसे हम परमपिता परमात्मा के ही आङ्गन में ही विराजमान हों।

क्योंकि वह परमपिता परमात्मा सर्व संसार का पालन करने वाला होने के नाते, क्योंकि परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने का प्रायः हमें समय प्राप्त होता रहता है। और जब उसकी महिमा का गुणगान गाते हुए, हम सदैव तत्पर रहतें हैं। तो हमारे द्वारा अभिमान की मात्रा उत्पन्न नही होती, जैसा हमने कल के वाक्यों मे वर्णन करते हुए कहा था, कि वह जो विष्णु का स्मरण करने वाला प्राणी होता है। उस मानव के हृदय में नम्रता सदैव विराजमान रहती है, परन्तु जब नम्रता के विशेष अङ्कुर होते है। नम्रता ही जीवन है, ऐसा पूर्व काल में प्रकट करते हुए कहा है, परन्तु आज का हमारा वेद पाठ क्या कहता चला जा रहा है, आज के हमारे वेदमन्त्रों का कुछ वाक्, उनकी प्रतिभा आज हमें उच्चारण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

विष्णु

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज तुम्हें विष्णु बनाने की एक कल्पना करने के लिए तत्पर होते चले जा रहें हैं। वास्तव में मानव को विष्णु बनना ही चाहिए। क्योंकि जब प्रत्येक मानव, जब विष्णु की कल्पना करता है। अथवा विष्णु का चिन्तन करना है, तो यह भी विचार विनिमय करना है, कि विष्णु है क्या? हम यहाँ वेदो के नाना प्रकार के शब्दार्थो में, उनकी उच्चारण करने की नाना परम्पराओं में, ऐसा स्वीकार किया गया है कि विष्णु नाम परमात्मा को कहा जाता है। जो संसार का रक्षक है, शुद्ध, बुद्ध है। परन्तु देखो, जो नियन्ता है जो नियन्त्रण में करने वाला सर्व विश्व को है उसी को विष्णु कहा जाता है, परन्तु यहाँ जब वेद के और भी नाना शब्दार्थों को विचार विनिमय किया जाता है, तो विचार आता है, क्या विष्णु नाम आत्मा को भी कहा गया है क्योंकि यह जो आत्मा है, जब तक मानव के शरीर में यह आत्मा प्रकाशमान रहता है, स्थिर रहता है, तभी तक मानव का जीवन तत्पर रहता है, जैसा हमनें कल के वाक्यो में, इससे पूर्व वाक्यों में प्रकट कराते हुए कहा था, कि मानव का जो वास्तविक प्रकाश है, मानव जो क्रियाशील हो रहा है, नाना इन्द्रियों से कार्य कर रहा है, वह सब आत्मा की देन है। मुनिवरों! देखो, देवता

इन्द्रियों का कोई भी बन सकता है। परन्तु वास्तव में मूल धारा से, जब हम यह विचार विनिमय करतें हैं कि यह जो हमारा शरीर रूपी जो एक राष्ट्र है, शरीर की जो प्रतिभा है, परन्तु इसका नियन्ता कौन है। तो विचार आता है, कि इसका नियन्ता आत्मा है, जैसा महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने कहा है, परन्तु राजा जनक सम्राट ने भी इसकी बड़ी, महान गम्भीरता से विचार विनिमय किया है, विचार विनिमय करते हुए देखो, सम्राट जनक ने कहा है, कि रुतीहि प्रव्हा स्वस्ति यागां ब्रह्मे आत्मा मानो यह जो आत्मा है, ये वास्तव में ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। क्योंकि इसी के आश्रित हमारा मानव जीवन क्रीड़ा कर रहा है। इसी के आश्रित है, महाराजा जनक ने, जब याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से नाना प्रकार के प्रश्न किए, तो उन्होंने यही उत्तर दिया, कि आत्मा विष्णु है जैसे विष्णु परमात्मा को कहते है, परन्तु वह नियन्ता है इसी प्रकार हमारे मानव शरीर में जो एक राष्ट्र है, मानो, देखो, यहाँ मन्त्रियां है उप मन्त्रियां है नाना प्रकार की जब हम कल्पना करते है, तो उससे हमें यही प्रतीत होता है।

व्यान प्राण

मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब मेरे प्यारे! प्रभु ने, इस मानव शरीर की रचना की, तो मानव के शरीर में, भिन्न भिन्न प्रकार के विभाग बनाएं, उसमें मुनिवरों! कहीं प्रसारण करने का विभाग है, कहीं आकुञ्चन एकत्रित करने का भाग है, कहीं मुनिवरों! उसको अच्छी प्रकार मन्थन करने के, नाना प्रकार के विभाग स्वीकार किए गएं हैं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! महर्षि कपिल जी के आदेशों पर जाते हैं। तो महर्षि कपिल जी ने कहा है कि हमारा जो यह मानव शरीर है, यह एक प्रकार का सूक्ष्म सा राष्ट्र है, क्योंकि इसमें जैसे मानो पांच प्राण है। पांचो प्राण अपना संचारु रूप से कार्य करते हैं। पांचो प्राण मुनिवरों! देखो, किसी में सूचना केन्द्र हैं। किसी में आज्ञा चक्र है, नाना प्रकार के मुनिवरों! देखो, इसमें कहीं निगलने की शक्ति है, कहीं प्रसारण करने की शक्ति है, इस मानव शरीर को हमारे यहाँ बेटा! यन्त्रालय कहा है, इसको हमारे यहाँ

यन्त्रालय कहा है। क्योंकि सूक्ष्म सूक्ष्म तरंगो को यह मानव शरीर में, ऐसे ऐसे सुन्दर यत्रों का निर्धारित किए हैं उस देव ने, क्या उन तरंगों को आकर्षित और ग्रहण करते रहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज एक मानव वैज्ञानिक क्षेत्र में चला जाता है। परन्तु विज्ञान में, जब जाता है, वह यह विचारता है, कि सूर्य की किरणों में कितनी तरंगे होती हैं। मानो यह भी विचारता है, कि चन्द्रमा की कान्ति में कितनी तरंगे होती हैं, उन तरंगो का अनुभव करता है। परन्तु वह कहां से अनुभव करता है?

तो विचार आता है, कि हमारे कंठ में बैठा हुआ, मुनिवरों! जिसको व्यान प्राण कहते है, व्यान प्राण मे यह शक्ति होती है, कि हमारे मस्तिष्क में जो नाना प्रकार के यत्र है। जिसको स्वाधिष्ट नाम का, जिसको हमारे यहाँ नाना प्रकार के मस्तिष्को के से भी सम्बोधित किया गया है, जैसा कपिल जी ने कहा है, कि मानव के शरीर में एक मस्तिष्क होता है, द्वितीय लघु मस्तिष्क होता है, परन्तु लघु मस्तिष्क के पिछले विभाग में, सामुग्री नाम का मस्तिष्क होता है, जिसको हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र भी कहा जाता है। परन्तु उसमें नाना प्रकार की जो नस नाड़ियाँ हैं। उन नस नाड़ियों में बेटा! वह तरंगे, मानो ब्रह्मरन्ध्र में एक यत्र होता है, जिस यत्र को हमारे यहाँ स्वाधागृतिक नाम का यत्र कहा जाता है, परन्तु उस यत्र में ये विशेषता होती है, कि वायुमण्डल में चन्द्रमा की कान्ति रमण कर रही है, और यहाँ और भी नाना शब्द रमण कर रहे है, मानो उस शब्द को ग्रहण करने की शक्ति होती है, उस यत्र में स्वाभाविकत्व मानो नाना प्रकार की वायुमण्डल में वाणी भ्रमण करती रहती है, उस वाणी को यत्र स्वतः ही ग्रहण करता रहता है, परन्तु देखो, वाणी के द्वारा, उसका प्रसारण भी हो जाता है, तो, यह कितना कार्य व्यान प्राण का है, व्यान हमारे यहाँ बेटा! देखो, जो सूचना केन्द्र है, जो सूचना आती है अथवा चन्द्रमा से आओ, सूर्य से आओ, उसका ज्ञान हो जाओ, परन्तु बृहस्पति से आओ, और आरुणि मण्डल से आओ, बृहस्पति और जेठाय नक्षत्र से आओ, परन्तु वह जो तरंगे है, अथवा बुध से भी आएं अथवा

मङ्गल से भी आ सकती है, परन्तु उनको जो सम्बोधित करने वाला है, उनका जितना चरण है, क्योंकि केवल आज हम यह स्वीकार करें, कि व्यान प्राण में ही ज्ञान होता है। व्यान प्राण, ज्ञान प्राण ज्ञान का सूचक नही होता, क्योंकि व्यान प्राण की जितनी गति होती है, उसके पिछले विभाग में, जो मनीराम विराजमान है, वह मन से उसका ज्ञान होता है। और आज्ञा देने वाला, निर्णय देने वाला मुनिवरों! प्रसारण शक्ति के द्वारा वह जो व्यान प्राण है, वह प्रसारण करने वाला है, तो हमारे इस मानव शरीर में बेटा! यह जो व्यान प्राण है, यह इतना शक्तिशाली है, जिसके ऊपर मानव बहुत कुछ विचार विनिमय कर सकता है।

बुद्धि के चार प्रकार

परन्तु मैं इस वाक को गम्भीर नही बनाने जाऊंगा वाक्यों का अभिप्राय यह है, क्या जितना भी विज्ञानवाद है, बेटा! जैसे बुद्धि, मेधा, मेघावी का केन्द्र, मुनिवरों! देखो, इस व्यान प्राण के साथ हो जाता है। हमारे यहाँ बुद्धि की भी नाना प्रकार की धाराएं स्वीकार की गई है। जैसे बुद्धि है, मेधा है, ऋतम्भरा है और प्रज्ञावी ये चार प्रकार की बुद्धियों का विवरण, हमारे यहाँ दर्शनकारों ने कहा है, परन्तु मैं अधिक दर्शनो में नही जाना चाहता हूँ, वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि आज हम इस मस्तिष्क को, लघु मस्तिष्क को और आगे चल करके, जो ब्रह्मरन्ध्र हैं। ब्रह्मरन्ध्र में जो यन्त्र हैं, उन यन्त्रों को जानना, यह महान वैज्ञानिको का प्रायः कर्तव्य होता है। यह उनके जान लेने के पश्चात बेटा! वायुमण्डल में जो तरंगे रमण करती रहती है, मानो उन तरंगो मे जो शब्द होते है। उन तरंगो में जिस प्रकार के परमाणु होते है, उन परमाणुओ को एकत्रित करने की बेटा! उनमें बेटा! क्षमता हो जाती है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कहता चला जा रहा था। वाक्यों का अभिप्राय यह कि हमारा यह जो मानव शरीर है, यह प्रभु ने ऐसा यन्त्रालय बनाया है। क्या इसमें नाना प्रकार के यन्त्र है, इसके निचरले विभाग में बेटा! जैसे व्यान है, उसके

निचरले विभाग में उदान प्राण रहता है।

उदान प्राण

मुनिवरों! देखो, यह जो उदान है, यह उदान क्या कार्य करता है बेटा! एकत्रित कर लेता है, जितना द्रव्य आता है, उस सब को एकत्रित करता है और एकत्रित करके बेटा! उसको अग्नि के साथ सम्मिलित होता हुआ, मानो देखो, उस उदान देखो, जो भी हम कुछ अन्न इत्यादि पान करते है व्यान से लेते है उन सबका रस बना देता है, रस बना करके, उस रस को एकत्रित कर देता है, परन्तु वह दूसरा जो मन्त्री, मानव के शरीर में विराजमान है, जिसे हमारे यहा बेटा! देखो, सामान्य प्राण कहा जाता है। वह सामान्य प्राण को अर्पित कर दिया जाता है। वह सामान्य जब उसे अर्पित कर देता है। तो बेटा! मानव के शरीर में बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार दौ सौ नाड़ी कहलाती है। बेटा! उन सब नाड़ियों में वह सब रस ओत प्रोत होता चला जाता है, अपने द्वारा उसे संग्रह करने की प्रवृत्ति नही होती।

अपान प्राण

मेरे प्यारे! ऋषिवर! भगवान मनु ने कहा है, भगवान मनु ने भी नहीं, परन्तु महर्षि पिप्पलाद जी ने यह कहा और कपिल जी ने भी कहा है कि जब मानव के शरीर में कोई भी प्राण, यदि उसे एकत्रित करने की प्रवृत्ति हो जाएगी, तो जानो कि शरीर रूग्ण होता चला जाएगा। शरीर में नाना प्रकार के दोषारोपण होने लगेंगे। इसी प्रकार आगे चल करके बेटा! अपान होता है, परन्तु अपान क्या कार्य करता है, जो भी रस प्रदान किया जाता है, परन्तु वह जो रस है, उस रस में से भी गन्दगी उत्पन्न होती है, परन्तु त्याग का कार्य करता है, वह उसको अप्रेत कार्य करता है, परन्तु उसको त्यागने का, ये त्याग प्रवृत्ति उसमें आ जाती है, अपान का सम्बन्ध पृथ्वी से होता है, पृथ्वी के नाना प्रकार के परमाणुओं को ग्रहण करना, और गन्ध दुर्गन्ध को त्यागना बेटा! यह सब कार्य अपान का हो जाता है, तो यह मन्त्री हमारे इस मानव शरीर में निर्धारित किया

है।

प्राण

आगे चल करके बेटा! प्राण रह जाता है, जिसकी सर्वोप्रथम व्याख्या हमारे आती है, मुनिवरों! देखो, यह जो प्राण है, यह नाभि केन्द्र से ले करके और घ्राण तक बेटा! इसका साम्राज्य रहता है। मानो उसका राज रहता है मानो जब यह भ्रमण करता है। मानो नाभि केन्द्र से चलता है, नाभि केन्द्र में एक यन्त्र होता है, जिसको गृहीताम प्रतिक नाम का यन्त्र कहते है। बेटा! यह जो यन्त्र है, उसमें यह है, क्या वह परमाणु लाता है, प्राण को अर्पित कर देता है। बेटा! अरबों खरबों परमाणु आते हैं, श्वांस के द्वारा, एक एक श्वांस के द्वारा, प्रसारण हो जाते है, वायुमण्डल में मिश्रित हो जाते हैं और इसी प्रकार वह अरबों खरबों परमाणु जाते है, वह शरीर में जाते है प्राण के द्वारा, ये इसी प्रकार का आवागमन है। मुनिवरों! देखो, यह भिन्न भिन्न प्रकार यह साम्राज्य अपने अपने विभाग में सब तत्पर रहते है। परन्तु देखो, इनको सुगठित करने वाला कौन है? वेद कहता है कपिल जी ने कहा, जब कपिल जी अति प्रश्न होने लगे, तो कपिल जी ने कहा कि इन सब प्राणों को सुगठित करने वाले प्राण होते है। जिनको उप प्राण कहते है, जैसे नाग है, देवदत्त है, धनञ्जय है, कुरू है, कृकल है, इनको उप प्राण कहा जाता है, उप मन्त्रालय कहा जाता है। परन्तु आगे चल करके कपिल जी से कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते है, महर्षि कृतकृति ने कहा था कि महाराज! हम यह जानना चाहते है, कि यह जब यह उप प्राण बन गएं, इनको नियन्त्रण में करने वाला कौन है? तो वेद के आचार्यों ने कहा है, कि इन सबको नियन्त्रण में करने वाला मुनिवरों! एक पवित्र आत्मा कहलाया जाता है।

आत्मा का बल

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें आत्मा के लिए बहुत ही बल देना है, क्योंकि आत्मा को जानने वाला प्राणी, बेटा! संसार में निराशा को प्राप्त नही होता, आत्मवेत्ता यदि राजा के राष्ट्र में बेटा! ब्राह्मण जितने आत्म

तत्ववेत्ता होते है, उतना राष्ट्र पवित्र होता है। राजा स्वयं आत्मवेत्ता होता है, ब्रह्मज्ञानी होता है। बेटा! वह प्रजा के वैभव को संग्रह करने की प्रवृत्ति, उसमें कदापि नही आती। ऐसा वेद का वचन कहता है, भगवान मनु जी ने कहा है, परन्तु मैं महर्षि कपिल जी के शब्दार्थो का कुछ विवरण करता चला जा रहा था। महर्षि कपिल जी को हमारे यहाँ नास्तिकवादों में माना जाता हैं। कपिल जी ने तो एक समय यह कहा है, क्या मैं प्राण और मन के, दो ही प्रक्रिया संसार में स्वीकार करता हूँ। परन्तु मैं, ईश्वर को स्वीकार नही करता, जब मुनिवरों! देखो, आचार्यों ने ऋषि मुनियों ने यह कहा कि महाराज! आप यह क्या उच्चारण कर रहें हैं, इनके गुरु ने कहा, क्या तुम तपस्या करो, परन्तु तपस्या करने के पश्चात, मानव में आस्तिकवाद की प्रवृत्ति आया करती हैं। प्रायः संसार में ऐसा ही होता है। महर्षि कपिल जी ने भिन्न भिन्न प्रकार की तपस्या करने के पश्चात, उनके जीवन की धारा, अमृत में जाने के पश्चात, बेटा! तब उन्होंने नेति नेति का शब्द उच्चारण किया।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इस वाक में नहीं जाना चाहता था। वाक्यों का अभिप्राय क्या है, आज मैं विष्णु के आदेशो पर जा रहा था। हमारे यहाँ आत्मा को विष्णु कहा जाता है, जैसे परमपिता परमात्मा को विष्णु कहते है, इसी प्रकार आत्मा का नाम भी विष्णु है। हे आत्मा! तू पवित्रता में रमण करने वाला है, भग्रम् ब्रह्मणे माम भवति सुप्रजा मुनिवरों! जैसे वेद के आचार्यों ने कहा है, जैसे आत्मा विष्णु है, इसी प्रकार परमपिता परमात्मा है, और जैसे परमात्मा है, विष्णु नाम पर्यायवाची शब्दों मे बेटा! राजा को भी विष्णु कहा जाता है। परन्तु साधारण शब्दों में ऐसा कहा जाता है, कि राजा को विष्णु कहते है, जिस राजा के राष्ट्र में पवित्रता होती हैं, साधन होते है, मानवता का सदैव प्रसारण होता रहता है।

भगवान राम की इच्छा

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है, त्रेता के काल का समय, त्रेता के काल में बेटा! जब

भगवान राम मुनिवरों! बाल्यकाल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा, शिक्षा अध्ययन करते थे। उस समय एक समय भगवान राम मध्यम रात्रि में वशिष्ठ मुनि के द्वारा जा पंहुचे, परन्तु उनके चरणो को स्पर्श करके बोले कि प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि मेरे पिता तो ऐश्वर्यवादी बन गए हैं। परन्तु मैं यह चाहता हूँ, मेरे हृदय की वेदना है, क्या, मैं अपने राष्ट्र को पवित्र बनाना चाहता हूँ, महान बनाना चाहता हूँ, मुनिवरों! उन्होंने महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा, बहुत सुन्दर। मुझे बड़ी प्रसन्नता है, परन्तु तुम्हारी इच्छा क्या है? उन्होंने कहा कि मैं अपने राष्ट्र को राम राज्य बनाना चाहता हूँ। यहाँ प्रत्येक मानव में महान धार्मिकता, सदाचार की पवित्रता होनी चाहिए। उस समय भगवान राम के आदेशो को पान करने वाले, महर्षि वशिष्ठ मुनि ने कहा था हे पुत्र! हे राम! आज तुम अपने राष्ट्र में ऊँची कल्पना चाहते हो, तो मेरी इच्छा यह है, क्या तुम विष्णु की कल्पना करो, तुम्हें स्वयं विष्णु बनना होगा, यदि तुम विष्णु नही बनोगे, तो तुम्हारा राष्ट्र किसी काल में उन्नत नही हो सकेगा।

विष्णु राष्ट्र में चतुर्भुज

उन्होंने कहा भगवन! मैं उसकी मीमांसा चाहता हूँ, तो ऋषि ने उसकी मीमांसा करते हुए कहा है, क्या हे राजन! हे राम! तुम्हारे राष्ट्र में देखो, तुम्हारे मानो देखो, चार भुज होने चाहिए। सबसे प्रथम, क्योंकि विष्णु के भुजों में, विष्णु के चार भुज होते है, प्रथम भुज मे मानो देखो, पदम होता है, द्वितीय भुज में गदा होती है, तृतीय भुज में चक्र होता है और चतुर्थ में शङ्ख कहलाया जाता है। आज तुम अपने चार भुज बनाओ उसके पश्चात तुम अपने को राम राज की स्थापना कर सकते हो समाज में, भगवान राम ने कहा भगवन! मैं आज इस पदम की मींमासा चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि पदम की मीमांसा यह है कि पदम नाम है, सदाचार का और शिष्टाचार का, जिस राजा के राष्ट्र में सदाचार, शिष्टाचार होता है, उस राजा का राष्ट्र वास्तव में पवित्र होता है। क्योंकि सदाचार ही, शिष्टाचार ही, जहाँ सदाचार की परम्पराओं से सुगठित

जहाँ मानवता होता है, और शिष्टाचार जहाँ वाणी उच्चारण करने में, सत्यवाद होता है, मानवीयता उसमें छल कपट नही होता, मानो देखो, उस राजा का राष्ट्र पवित्र हुआ करता है। हे राम! तुम्हारे यहाँ तुम्हें सबसे प्रथम देखो, इस पदम को अपनाना होगा, क्योंकि पदम को अपनाने से ही आज कोई भी राजा, यदि महान बनना चाहता है, बिना पदम को अपनाए, कोई राजा महान नहीं बनता है। राम! इसीलिए मैं तुम्हे आज्ञा देता हूँ, क्या तुम पदम को अपनाओ, पदम नाम है, सदाचार, शिष्टाचार, मानवता का क्योंकि जहाँ मानवता में पवित्रवाद होता है, गुरु शिष्य में प्रीति होती है, केवल देखो, जहाँ छात्र बल पवित्र होता है। आचार्य जन पवित्र होते है मुनिवरों! देखो, उस राजा के राष्ट्र में वास्तव में सदाचार की पवित्रता ओत प्रोत हो जाती है।

इसके पश्चात वशिष्ठ जी ने कहा हे राम! द्वितीय भुज में, तुम्हारे में गदा होनी चाहिए, गदा नाम है, राजा के राष्ट्र में किसी प्रकार का अपराधी नही रहना चाहिए। आज जो तुम्हारी मानवता को, तुम्हारे राष्ट्र में किसी प्रकार की हानि पंहुचाता है, परन्तु गदा से उसको प्रहार कर दो। उसे नष्ट कर दो, यहाँ भगवान मनु जी कहते है, कि राजा के राष्ट्र का जब निर्माण होता है। तो निर्माण इसीलिए होता है, जहाँ सदाचारियों की रक्षा होती है, और दुराचारी को दण्डित किया जाता है। उस राजा के राष्ट्र में पवित्रवाद हुआ करता है, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! भगवान राम से महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा था, कि हे राम! आज तुम अपने को राम राजवेत्ता बनाना चाहते हो, तो मेरी तो यह कल्पना है, यह इच्छा है क्या तुम स्वयं राष्ट्रवेत्ता बनो, परन्तु बनोगे कैसे, जब तक विष्णु नहीं बनोगे। राजा के राष्ट्र में क्षत्रिय पवित्र होने चाहिए और देखो, दण्डे सहित होने चाहिए, गदा होनी चाहिए, गदा नाम है नाना प्रकार के अस्त्रो शस्त्रो का, जिससे हर प्रकार से दुराचारी मानव को दण्डित कर सको, ऐसे तुम्हारे यहाँ यन्त्र होने चाहिए।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! भगवान राम ने उस वाक को स्वीकार कर लिया, स्वीकार करते हुए कहा प्रभु!

वास्तव में यह वाक तो मुझे बहुत ही प्यारा प्रतीत हो रहा है, क्या वास्तव में, मैं प्रयत्न करूंगा जीवन भर यदि मैं राजा बना, क्या मेरे राष्ट्र में क्षत्रिय पवित्र होने चाहिए।

राजा के राष्ट्र में शत्रु कौन होता है। मुनिवरों! देखो, राजा के राष्ट्र में वह शत्रु होता है, जो राष्ट्र को दुराचार से कलंकित करना चाहता है, वह राजा के राष्ट्र में सबसे प्रथम दोषी होता है, तो मुनिवरों! भगवान राम को वशिष्ठ ने कहा है कि हे राम! तुम्हारे राष्ट्र में क्षत्रिय होने चाहिए, बलिष्ठ और बलवान, ब्रह्मचारी होने चाहिए। जिससे तुम्हारा राष्ट्र सदाचार की पवित्र वेदी पर भ्रमण कर सकें। मानो प्रक्रियाएं मानव के मस्तिष्क में सुन्दर हो, यहाँ मेघावी पुरुष होने चाहिए, क्योंकि विज्ञान पराकाष्ठा पर होना चाहिए, ज्ञान और विज्ञान की जहाँ मात्रा होती है, आत्मिकवेत्ता पुरूष होते हैं। उस राजा के राष्ट्र में सदाचार और वहाँ दुराचार नहीं होता, क्योंकि राष्ट्र का निर्माण जब भी होता है, किसी भी काल में होता है, वह इसलिए हुआ करता है, कि सज्जनों की सेवा, सज्जनों की रक्षा और दुराचारियों को दण्डित करने के लिए।

चक्र

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! महर्षि वशिष्ठ ने कहा है कि देखो, आज तुम्हारा दो चरण है, राजा के दो चरण हो चुके है, क्योंकि चारों चरणों वाला राजा कहलाया जाता है। और तृतीय चरण तुम्हारा है चक्र का, चक्र नाम है, मानो देखो, राजा के राष्ट्र में संस्कृति का, क्योंकि संस्कृति से राजा का राष्ट्र सुगठित होता है। पवित्र होता है, राजा के राष्ट्र में मानवता का प्रसार होता है, और स्नेह होता है, एक दूसरे प्राणी में जब स्नेह होता है, राजा के राष्ट्र में तो संस्कृति से हुआ करता है, राजा के राष्ट्र में चक्र होना चाहिए। मानो चक्र नाम है, ऐसा राष्ट्र का विधान होना चाहिए। ऐसा राष्ट्र का सुन्दर निर्माण हो, जिससे उस राजा के निर्माण को द्वितीय राजा भी सार्वभौम उसका एक नियम एक तुल्य होना चाहिए। हे राम! आज तुम्हे चक्र को अपनाना होगा। चक्र नाम है संस्कृति का, अपनी संस्कृति में मानवता और मानवता में स्नेह पवित्रवाद होना चाहिए। संस्कृति के गर्भ

में, जब मानवता होती है, पवित्रता होती है, उसको प्रायः संसार अपना ही लेता है। उसको संसार ठुकराता नहीं है, किसी भी काल में नहीं ठुकराता। इसीलिए तुम्हे विचार विनिमय करना है। हे राम! तुम संसार में प्रसार करो। राष्ट्र हो या न हो, परन्तु तुम अपने चक्र को ले करके प्रसार करो, सबसे प्रथम बेटा! मुझे भगवान राम का जीवन स्मरण आता रहता है, उन्होंने अपने जीवन में सर्वत्र जीवन में बेटा! यही प्रसार किया, मुनिवरों! देखो, संसार को चेताया और विश्व को बेटा! अपनी संस्कृति, अपने सदाचार की महानता ओत प्रोत कराते हुए, उन्होंने बड़े बड़े साम्राज्य को नष्ट किया। परन्तु उनकी प्रतिभा अपनाने की प्रवृत्ति भगवान राम में नही थी। क्योंकि त्याग प्रवृत्ति का सबसे प्रथम आदेश उन्होंने प्रदान किया था। उसके पश्चात बेटा! जब उनका चक्र चला, चक्र चलने के पश्चात, अयोध्या के राजा बनने लगे, उस समय वशिष्ठ जी से कहा था कि महाराज! मैं यह जानना चाहता हूँ, कि शङ्ख किसे कहते है?

शङ्ख

उन्होंने कहा शङ्ख नाम है, वेद की ध्वनि का, जिस राजा के राष्ट्र में मानो देखो, वह ध्वनि होती है, जहाँ देखो, भिन्न भिन्न स्थानों पर यज्ञन होते है, पवित्रवाद होता है, ब्राह्मण उत्तम होते है मानो वेद के अनुकूल जिसका नियम होता है। राष्ट्र का निर्माण होता है, उस राजा के राष्ट्र में अशुद्धि नहीं आया करती है। हे राम! आज तुम्हे उत्तम बनना है, तो शङ्ख ध्वनि होनी चाहिए, मेरे प्यारे! ऋषिवर! शङ्ख ध्वनि नाम है, मुनिवरों! देखो, उस ध्वनि का जिसमें महानता हो, जिसमें मानव के उद्गम विचार हों और उत्तम से उत्तम ब्राह्मण हो, त्यागी और तपस्वी मानव हो, जिससे बेटा! देखो, वह जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, नाना प्रकार का मानो देखो, पठन पाठन कराते हुए, अपने राष्ट्र को उत्तम बनाते हुए चले जाएं। ऐसा मुनिवरों! देखो, भगवान राम से महर्षि वशिष्ठ जी ने कहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जहाँ परमात्मा का नाम

विष्णु है, जहाँ आत्मा का नाम विष्णु है, वहाँ राजा का नाम भी विष्णु ही माना है। हमारे यहाँ दर्शनाचार्यो ने कहा है, कि विष्णु नाम राजा को कहते है, और उस राजा को कहते है, जिस राजा के राष्ट्र में चार भुज होते है। सदाचार और शिष्टाचार और मुनिवरों! जहाँ सदाचार शिष्टाचार होता है, वहाँ क्षत्रिय गदा सहित हों, गदा हो और चक्र हो और पदम हो मानो देखो, यह चारो चरण उसके राष्ट्र में होने अनिवार्य है। जहाँ पदम, चक्र, गदा और शङ्ख होता है, उस राजा के राष्ट्र में बेटा! सदैव सदाचार की पवित्रता ओत प्रोत होती रहती है।

अक्षय क्षीरसागर में विष्णु

यह है मुनिवरों! आज का हमारा आज का वाक मैं कोई विशेष चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ, जैसा मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें आदेश दिया था, कि कल हम वैज्ञानिक कुछ राष्ट्रीय चर्चा प्रगट करेंगे। आज का हमारा वह विषय अब पूर्ण होने जा रहा है। परन्तु जहाँ विष्णु नाम, राजा को कहा है, वहाँ आत्मा को, योगी को विष्णु बनने के लिए आदेश दिया है, उन्होंने कहा है कि हे योगी! हे त्यागी तपस्वी! तू विष्णु बन मुनिवरों! कौन विष्णु होता है? हमारे यहो योगी को विष्णु कहते है, कौन से योगी को विष्णु कहते है, जो आत्मवेत्ता होते है। एक तो आत्मा को जानना प्राणों के द्वारा होता है। एक आत्मा को जानना बेटा! ज्ञान के द्वारा होता है, हमारे यहाँ कुछ ऐसा कहा है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे एक समय वर्णन कराते हुए कहा है, क्या विष्णु महाराज तो अक्षय क्षीरसागर में रहते है, लक्ष्मी चरणो में ओत प्रोत है, नारद अपनी वीणा सहित ध्वनि कर रहें हैं और गन्धर्व गुणगान गा रहे है, प्रभु यह क्या है, तो मुनिवरों! मुझे इनकी वार्ता जब स्मरण आती है, तो मेरा हृदय प्रसन्न हो जाता है। ऐसा इन्होने इनके वाक्यो की जो मीमांसा है, मुनिवरों! वह इस प्रकार मानी गई है, मुनिवरों! विष्णु नाम आत्मा को माना है, विष्णु नाम आत्मा का है, अक्षयक्षीर सागर नाम ज्ञान को कहते हैं, और मुनिवरों! देखो, यह शेष नाग की शैय्या पर, शेष नाग किसे कहते है? शेष नाग कहते है, जिसके पांच फण होते है, मानो

पांच मुख होते है, बेटा! इसी मानव के शरीर में काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह आदि ये पांच फणो वाला शेष नाग है बेटा! जो मानव को प्रत्येक स्थान पर मृत्यु के लिए तत्पर रहता है। आज मानव को अति काम की वासना आती है, तो मृत्यु को कार्य होता है, अभिमान होता है, वहाँ भी मृत्यु है, परन्तु इन विषयों मे से कोई सा विषय आ जाओ, वही मृत्यु में ले जाने वाला है। जब यह आत्मा अक्षयक्षीर सागर में होता है, मानो यह ज्ञान के सागर में होता है, ज्ञान और विवेक से इन काम क्रोध, मद, लोभ, आदि को नीचे दबा कर लिया जाता है। जब यह नीचे दबा हो जाते है, इसके ऊपर ज्ञान में यही पवित्र आत्मा बेटा! ओत प्रोत हो जाता है, और यह जो लक्ष्मी है, यह चरणो में ओत प्रोत हो जाती है। आज इस लक्ष्मी के द्वारा मानव बेटा! ठगा जाता है, इसी लक्ष्मी के ऊपर मानव में नाना प्रकार की प्रवृत्तियां बन जाती है। वह प्रवृत्तियां शान्त होने के पश्चात, वह लक्ष्मी उनके चरणो में ओत प्रोत हो जाती है। क्योंकि आत्मवेत्ता पुरुष के चरणो में प्रायः लक्ष्मी हुआ करती है, इसी प्रकार आगे कहा कि नारद नाम हमारे यहाँ मन को कहा गया है, यह मन अपनी चञ्चल रूपी वीणा को ले करके, उस ज्ञानमयी आत्मा से कहा करता है, मैं भी आप के संग आ गया हूँ। मुझे मेरे ऊपर अनुपम कृपा करो।

मानवता के अङ्कुर

मुनिवरों! देखो, गन्धर्व नाम बुद्धि का है, यह बुद्धि जो नाना प्रकार से उद्गम विचार देती थी, उद्गम धाराएं ग्रहण करती थी, यह भी अपनी नाना प्रकार की धाराओं को एकत्रित करके ज्ञान रूपी आत्मा के समीप आ जाती है, और कहती है कि प्रभु! मैं भी आप के समीप आ गई हूँ। तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय ये, क्या योगी के लिए आदेश दिया है, जहाँ राजा को कहा है, मुनिवरों! वहाँ मानव को भी कहा है कि हे मानव! तू स्वयं भी विष्णु बन सकता है। परन्तु उस काल में जब तेरे द्वारा ज्ञान होगा, विवेक होगा मानो विवेक और ज्ञान के द्वारा ही मानव विष्णु की उपाधि को देखो, प्राप्त कर सकता है।

उसको प्राप्त करने के पश्चात मानवता के विशेष अङ्कुर मानव के हृदय मे ओत प्रोत हो जाते है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम विचार विनिमय करते चले जाएं। विष्णु नाम परमात्मा का है, विष्णु नाम आत्मा का है, विष्णु नाम राजा का है, और विष्णु आत्मवेत्ता योगी को भी, विष्णु ही कहा जाता है,

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह हमारा वाक क्या कहता चला जा रहा था, आज हम ज्ञान और विज्ञान के उस क्षेत्र में जाना चाहते है, जहां नाना प्रकार के परमाणुओं को जानने के पश्चात, हम नाना प्रकार के यन्त्रालयों में पंहुचते चले जाएं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऋषि मुनियो ने कहा है, कपिल जी ने कहा है, विशेषकर, कि मानव को अपने मानव तथ्य को जान लेना चाहिए। मानो इसमें जो नाना प्रकार के यन्त्र हैं, उन यन्त्रो को जानने के पश्चात, संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं रह जाती, जिसको वह नहीं जान सकता। मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे बारम्बार संकेत देते रहते है, राष्ट्रीयता के ऊपर उच्चारण करने का, आज मैने कुछ संक्षिप्त परिचय दिया है। परन्तु उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है, हमारे वाक्यों के परिचय देने का अभिप्राय यह है कि मानव को राष्ट्रीयता, मानवता को अपनाने के पश्चात बेटा! मानवता की पवित्र धारा उन तरंगों में ओत प्रोत हो जाती है, और यदि मानव में नाना प्रकार का विवाद रहता है, घृणा रहती है, मुनिवरों! देखो, जैसे प्रायः किसी गृह में मानो घृणा की धाराएं चल लेतीं है, और वह घृणा वाला जो गृह है, वह अच्छे पुरुषों के लिए बेटा! वह श्मशान भूमि के तुल्य हो जाता है। इसी प्रकार जब राजा के राष्ट्र में, जब मानव में, समाज में, बेटा! देखो, जब घृणा की दृष्टि आ जाती है। घृणा आ जाती है। उस समय वायुमण्डल भी उसी प्रकार का बन जाता है। और जैसा वायुमण्डल होता है, वैसे ही प्रकृति के परमाणु बन जाते है, परन्तु उन परमाणुओ से इस प्रजा की सदैव हानियां होती रहती हैं।

गंगा स्नान को प्रजा का कथानक

मुझे एक वाक स्मरण आता चला गया, एक समय

बेटा! देवर्षि नारद मुनि इस संसार में विचरण करने के लिए आ पंहुचे। तो विचार विनिमय उन्होंने क्या दृष्टिपात किया, सब प्रजा गंगा स्नान को चली जा रही थी, अब मुनिवरों! नारद मुनि ने प्रजा से कहा हे प्रजाओ! तुम कहां जा रही हो? उन्होंने कहा कि महाराज! हम तो गंगा स्नान जा रहे हैं, क्योंकि हमारे जो पाप है, वह गंगा में त्यागने के लिए जा रहें है, नारद मुनि ने विचारा, कि गंगा तो बड़ी पापनि है, वह सब प्रजा के पाप गंगा में चले जाते है। अब गंगा के द्वारा देवर्षि नारद मुनि जा पंहुचे। नारद मुनि ने गंगा से कहा हे गंगे! तुम इन प्रजा के सब पापों को अपने में धारण कर लेती हो। तुम तो बड़ी पापनि हो, मुनिवरों! गंगा ने कहा हे नारद मुनि आप क्या उच्चारण करने लगे, मैं इन पापों को अपने द्वारा क्यों एकत्रित करती, प्रजा जैसे देती, है ज्यों के त्यों मैं समुद्रों को अर्पित कर देती हूँ। अब नारद मुनि बेटा! समुद्रों के द्वारा जा पंहुचे, समुद्रों से बोले हे समुद्रों! तुम तो बड़े पापी हो, समुद्रों ने कहा कि महाराज! हम पापी क्यों होते, क्या महाराज! प्रजा के पाप गंगा ले लेती है, गंगा आप को अर्पित कर देती है, इसीलिए आप पापी है। नारद मुनि से समुद्रों ने कहा अरे, नारद! यह पाप हमारे द्वारा नही रहते, ये पाप मैं तो इन पापो को जैसे गंगा से आते है, वैसा ही मैं मेघ मण्डलो को अर्पित कर देता हूँ। अब बेटा! मेघ मण्डलों के द्वारा देवर्षि नारद मुनि जा पंहुचे। नारद मुनि ने मेघों से कहा कि हे मेघों! यह तुम क्या कर रहे हो। मानो जैसे प्रजा गंगा को पाप अर्पित करती है, गंगा समुद्रों को देती है, समुद्र तुम्हे दे देते है। उस समय मेघों ने कहा हे नारद! तुम बड़े भोले हो यह पाप मेरे द्वारा भी नही होते, जैसा समुद्र मुझे अर्पित करते हैं वैसे प्रजा के पाप, प्रजा के द्वारा मैं वृष्टि रूप मे प्रसारण कर देता हूँ।

तो मुनिवरों! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि मानव के जितने अशुद्ध विचार होंगे, उतना ही वायुमण्डल अशुद्ध होगा, और जितना वायुमण्डल अशुद्ध होगा, उतना देखो, प्रकृति में, इस पृथ्वी पर मानव के पाप, मानव के द्वारा आ जाते हैं। कही अति वृष्टि हो जाती

है, कहीं अनावृष्टि है, कहीं अति वृष्टि है, उसी प्रकार यह प्रकृति का चक्र चलता रहता है। इसीलिए वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि जब मानव को इस प्रकृति में कल्पना करनी है, विचारना है, तो ऊँचे से ऊँचा विचारो, जिससे तुम्हारी मानवता ऊँची बने, राष्ट्र ऊँचा बने, पवित्रता आए, जिससे मुनिवरों! देखो, यह संसार प्रत्येक मानव संसार का प्रत्येक प्राणी पवित्रता को प्राप्त होता रहे। यह है बेटा! आज का हमारा वाक आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हमारे यहाँ, हमारा जो जीवन है वह बड़ा महान है, परमपिता परमात्मा ने इस मानव शरीर को रचा है, यह एक प्रकार का यन्त्रालय है, इसको विचारना, इसी में अनुसन्धान करना, नाना प्रकार के यन्त्रो को जानना, मुनिवरों! देखो, हम भौतिक विज्ञानवेत्ता बनें, आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता बनें, दोनो प्रकार के विज्ञान को जानना, हमारा कर्तव्य है। क्योंकि हमें मैं इसका विरोधी नही हूँ, कि संसार में भौतिकवाद नही होना चाहिए, होना चाहिए, परन्तु भौतिकवाद के साथ में मुनिवरों! आध्यात्मिकवाद होना चाहिए, अन्यथा भौतिकवाद जितना होगा, उतना अभिमान होगा और जितना आध्यात्मिकवाद होगा उतनी नम्रता होगी उतना उज्ज्वल पना होगा, और जितना उज्ज्वलपना होगा, और नम्रता होगी, उतना ही हमारा सदाचार, शिष्टाचार, मानववाद पवित्र बनता रहेगा बेटा! यह आज का हमारा वाक अब समाप्त होने जा रहा है। आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम विष्णु की आज्ञा में चले, जैसा विष्णु हमें आदेश देते है, हम विष्णु की कल्पना करते रहें, हमें विष्णु बनना है, विचारशील बनना है, यह है बेटा! हमारा आज का वाक अब वेदो का वाठ होगा इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त होती चली जाएगी।

पूज्य महान्नद जी : धन्य हो! गुरुदेव तो बहुत सुन्दर परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म। '

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य चलो, बेटा! कल समय मिलेगा तो कल अधिक चर्चाएं प्रगट करेंगे, अब वेदो का

पाठ होगा।

ओ३म् ब्रह्म भविता मानं भगा गृहवन्धना मानं देवाः। ओ३म् सर्वाणि गता रयीष्णा मानं भागाः। ओ३म् देवं सग्गृहिवन्धना सविता रयी भद्रा मानं भागाः। ओ३म् ब्रह्मणा ब्रह्म वर्चोसि दयगृतं देवं मया। १२ ०३ १९६९।

3 १३ ०३ १९६९ ज्ञान, कर्म, और उपासना की मीमांसा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का, गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, आज का वायुमण्डल, आधुनिक प्रवाह उसका उल्लास, आत्मा को प्रेरित करता चला जा रहा है, जब मानव वेदमन्त्रों का प्रसारण करता है, तो हृदय में ऐसा प्रतीत होता है, जैसे परमपिता परमात्मा, आज हमें कोई अमूल्य वस्तु प्रदान करते चले जा रहे थें। क्योंकि वेद ज्ञान की जो प्रतिभा है, इसका वास्तव में सम्बन्ध, प्रायः आत्मा से होता है। परन्तु जब आत्मा का ज्ञान, आत्मा की पुनीत तरंगे, मन के द्वारा और वेदमन्त्रों का जो ज्ञान है, परन्तु जब दोनो का तारतम्य एक हो जाता है, तो वेद ज्ञान और आत्मा में कोई अन्तर्द्वन्द्व नही होता। यह जो आत्मा का अन्तर और आत्मा के और वेद ज्ञान के मध्य मे जो अन्तर्द्वन्द्व होता है, परन्तु वह सीमा समाप्त हो जाती है। क्योंकि मानव का हृदय विभोर हो जाता है। मानव के हृदय में विशालता प्रविष्ट हो जाती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का वेद पाठ, हमारे अन्तःकरण को पवित्र बनाता चला जा रहा था।

आत्मा का भोजन

आज हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे हम बहुत आनन्द में ही जीवन को पान करते चले जा रहे है, क्योंकि वेद से मानव को अनुपम देन प्राप्त होती है और वह देन क्या है, जैसे माता रात्रि, माता अहिल्या की गोद में जाने से मानव को, जीवन प्रदान होता है, जीवन प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो मानव आत्मा को भोजन देने वाले होते हैं, आत्मा को भोजन नित्यप्रति देते है, बेटा! उनका वेद ज्ञान

से, उनका अन्तरात्मा किसी काल में भी तृप्त नहीं होता, क्योंकि वह सदैव पिपासा में रहता है, क्योंकि ज्ञान अनुपम है, ज्ञान अनन्त है, अनन्त ज्ञान होने के नाते, परन्तु आत्मा में भी ज्ञान अनन्त है। परन्तु हमारे यहाँ वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना है। इसीलिए वेदों का ज्ञान, इतना अनन्त है, आत्मा का ज्ञान, मुनिवरों! अन्त में नेति नेति उच्चारण कर देता है। क्योंकि परमात्मा का ज्ञान अनन्त है। जैसे उसकी रचना अनन्त है, इसी प्रकार उसका ज्ञान भी अनन्त है।

आत्मा की तृप्ति

तो आज हम विचार विनिमय करते चले जाए, कि मानव को वास्तव में वेद की गोद में चला जाना चाहिए। क्योंकि आत्मा हमारा ही, आत्मा ही मानव को ऊँचा बनाता है। आत्मा को भोजन देना हमारा सबका कर्तव्य हो जाता है। क्योंकि आत्मा को भोजन न देने वाला प्राणी बेटा! संसार में अपने कार्यों से शून्य रहता है वास्तव में प्रातः काल से मानव अपनी शैय्या को त्यागता है, सांयकाल तक कार्य ही करता रहता है, उदर की पूर्ति करने का, क्या वह जो अन्तरात्मा विराजमान है शरीर में, क्या बेटा! उसको तो भोजन प्राप्त नहीं होता, वह तो केवल शरीर की रक्षा करने के लिए होता है, शरीर की प्रायः रक्षा होती है, परन्तु यदि यह कहो, कि आत्मा इससे तृप्त हो गया, इससे आत्मा तृप्त नही होता, आत्मा तृप्त उस काल में होता है, जब आत्मा को भोजन दिया जाता है। जैसे शरीर को भोजन देने से शरीर तृप्त होता है, इसी प्रकार आत्मा को, वेद ज्ञान का भोजन देने से, आत्मा सदैव प्रसन्न होता है।

वेदों में त्रिवाद

आज हमें इस आत्मा के ऊपर बहुत चिन्तन करना है, प्रातःकाल की अमृतबेला में बेटा! ये पुनः समय प्राप्त हो रहा है। कि वेद ज्ञान को ही उच्चारण करने का हमारा, यह कितना ऊँचा, महान सौभाग्य है, परमात्मा की कितनी अनुपम देन है, कि हम प्रातःकाल की अमृत बेला में, आज हम देखो, आत्मा सूक्तों का पठन पाठन करते चले जा रहे थे। जहाँ मानव आत्मा के, शरीर के भोजन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता है, नाना प्रकार के साधन एकत्रित करता

है, उसी प्रकार आत्मा को भी भोजन देने का भी प्रयास, मानव को इससे कई गुणा करना चाहिए। कि मानव इस संसार में आ करके बेटा! अपने अन्तर्द्वन्द्व में न जाएं। केवल वे सदैव प्रकाश में रमण करता रहे, जैसे हमारा आज का प्रथम वेदमन्त्र कहता चला जा रहा था। अग्ने आत्मा ब्रह्मे अस्ति मानो यह जो अग्ने है, यह आत्मा है, वह अग्ने ही ब्रह्म है। क्योंकि बेटा! जिसके प्रकाश में हम सदैव रमण करते रहते है, उसी की क्रिया से, हमारा जीवन सदैव क्रियाशील रहता है, हमें उस परमपिता परमात्मा की आराधना, उपासना प्रातःकाल में करनी चाहिए। हमारे यहाँ बेटा! कुछ ऐसा माना है, परम्परा के आचार्यों के कथनानुसार कि हमारे यहाँ चार वेद मुख्य माने गएं हैं, चारो वेदों के रचयिता हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना जाता है, वायु, आदित्य, अङ्गिरा , अग्नि यह चार ऋषि हुए, परन्तु किन्ही किन्ही ऋषियों का ऐसा विचार है, क्या इन चारो वेदों के जो रचयिता है, वह आदि ब्रह्मा हैं, ऐसा भी कहा जाता है। परन्तु मैं उन वाक्यों पर इतना गम्भीरता में प्रातःकाल की पुनीत बेला में नहीं जाना चाहता हूँ। केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि वेद हमारे यहाँ तृतीय कहा जाता है। हमारे यहाँ वास्तव में वेद तीन ही माने गएं हैं। क्योंकि तृतीय का अभिप्राय यह है कि संसार में तीन प्रकार की विद्या, संसार में चतुर्थ विद्या नहीं है। केवल चतुर्थ विद्या होने का कारण है, जिसको हमारे यहाँ विज्ञान काण्ड भी कहते है। परन्तु उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि त्रिविद्या, हमारे दर्शनों में आता है, वेदों में भी भिन्न भिन्न प्रकार के मन्त्र आते है, त्रिवर्धा, त्रिवर्धन्त्री त्रिकलाप्रमस्ति सुप्रजा त्रिवर्धा त्रिवंधम आकान्ति त्रिमंथना वेद का आचार्य तो यह कहता है, कि त्रि का ही मन्थन करना चाहिए, क्योंकि संसार यह त्रि वाद में रमण कर रहा है, क्योंकि मानव का जो शरीर है यह भी त्रि वाद में है यह जो प्रकृति का जो रचना हमें प्रतीत हो रही है। इसमें भी हमें त्रिवाद प्रतीत हो रहा है और वेदों में भी त्रिवाद ही प्रतीत होता है और राष्ट्रवाद में भी त्रिवाद ही प्रतीत होता है। परन्तु उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि त्रिवाद

में यह संसार रमण कर रहा है, गुण भी संसार में तीन ही है, प्रतिभा भी संसार में तीन ही प्रकार की है। सत्य भी तीन ही प्रकार का है। मुनिवरों! देखो, इसको सब विचार विनिमय करने की आवश्यकता है, ये सब आत्मा का भोजन है, इसको संग्रह किया जाएं।

ब्रह्म का स्वरूप

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं आज इस पुनीत बेला में उच्चारण करने क्या आया हूँ, कि ब्रह्म की याचना और ब्रह्म किसे कहते है? ब्रह्म नाम पुनीत पवित्र विद्या को कहते हैं। ..... किसी वस्तु को जानना और उसको जानकर यथाशक्ति और उसको जानने के पश्चात उसके ऊपर मन्थन करना, यह उसका ज्ञान कहलाया जाता है, जैसे आज हम तारामण्डल अथवा सूर्य को दृष्टिपात कर रहे है, हमें दृष्टिपात तो हो रहा है कि सूर्य है और नेत्रों का प्रकाशक है, मानो उसकी नाना प्रकार की किरणें भी संसार में ओत प्रोत हो रही है, ये भी हमें प्रतीत है। परन्तु विचार विनिमय यह करना है, कि सूर्य की कौन कौन सी किरणें है, जो मानव को लाभप्रद होती है, मानव को उज्ज्वल बना देती है, अभिप्राय उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि हमारे यहाँ सूर्य को सूर्य ही नहीं कहते, सूर्य को आदित्य भी कहते है, इन्द्र भी कहते है, और भी नाना इसके पर्यायवाची शब्द है, विष्णु, ब्रह्मा इत्यादि नामों से भी इसका वर्णन किया गया है। परन्तु वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि जैसे हमें ये दृष्टिपात आ रहा है, कि यह सूर्य हमारा ज्ञान हो गया। परन्तु इसके ऊपर हम मन्थन करेंगे, विचार विनिमय करेंगे, और उसी के ऊपर हमारा अध्ययन होगा, हम नाना प्रकार की किरणों के ऊपर हमारा अध्ययन होगा। परन्तु जैसे हम विचारते रहते है, हमारा अध्ययन भी चलता रहता है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! भी इसमें नाना प्रकार की वार्ता इसमें प्रकट किया करते है।

अहिल्या गौतम का अभिप्राय

उन्होंने एक समय मुझे प्रकट कराते हुए कहा था, कि सूर्य को तो इन्द्र कहते है, मानो मुझे इनके आदेश,

महर्षि बाल्मीकि शब्दार्थो में बहुत सुन्दर युक्ति है। बहुत सुन्दर उनका स्पष्टीकरण है, कि हमारे यहाँ महर्षि बाल्मीकि ने एक बड़ा सुन्दर अपनी लेखनी बद्ध करते हुए उन्होंने कहा था, कि हमारे यहाँ यह विज्ञान एकाम ब्रह्मे अस्ति सुप्रजा आज हमें यह जानना हो, कि हम जानना ..... आता है। मेरे प्यारे! ऋषियों ने कहा, महर्षि बाल्मीकि ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए ऐसा कहा है, कि अहिल्या नाम हमारे यहाँ पृथ्वी को कहा है, जैसा आज के वेद पाठ में भी अहिल्या शब्दों का प्रतिपादन किया जा रहा था, अहिल्या नाम पृथ्वी का है, गौतम नाम चन्द्रमा का है, और इन्द्र नाम सूर्य को कहा गया है। परन्तु हमारे यहाँ मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे उस समय प्रकट कराते हुए कहा था कि इन्द्र ने गौतम की पत्नी को छल लिया, परन्तु उसका हनन कर लिया, परन्तु गौतम ने उसको अपने जल से, स्नेह वस्त्र को अवरेह चन्द्रमा को अर्पित किया, परन्तु वास्तव में यह इस प्रकार नहीं है। यह केवल शब्दार्थ जो होता है, यह वाममार्गी शब्द है। क्योंकि वाममार्ग उसको कहते है, जो सीधा मार्ग न अपना करके, केवल उसके विपरीत मार्ग को अपना लेता है, उसकी वास्तविकता को जो गम्भीरता से उसके ऊपर चिन्तन नहीं होता। केवल यह उनका एक शब्द है बेटा! इसमें मुझे कोई दोष नहीं है, परन्तु जो वास्तविक शब्द है, उसको उच्चारण करने में मुझे किसी प्रकार का संकोच नहीं है।

आज मैं प्रातःकाल की पुनीत बेला में, वर्णन करने आ पंहुचा था क्या, अहिल्या नाम रात्रि को कहा गया है। क्योंकि यहाँ रात्रि वाचक शब्द आता है, रात्रि जो है, यह मानव को जीवन प्रदान करने वाली है, परन्तु रात्रि जो अहिल्या और इसके गर्भ प्रमाणी और गौतम नाम चन्द्रमा को कहा गया है। क्योंकि जब पूर्णिमा का चन्द्रमा होता है, किसी का भी तिथि का चन्द्रमा हो, परन्तु वह चन्द्रमा जब आता है, रात्रि का जो अन्धकार है, अन्धकार रूपी जो रात्रि का श्रृङ्गार है, वह चन्द्रमा की प्रतिभा में उसकी किरणों में उसकी कान्ति में उसका रात्रि का जो अपना स्वयं श्रृङ्गार है, उसमें रमण हो जाता है। मुनिवरों! देखो,

जैसे पतिव्रता देवकन्या अपने श्रृङ्गार को पति को अर्पित कर देती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ रात्रि को अहिल्या कहा जाता है। अहिल्या अपने अन्धकार रूपी श्रृङ्गार को अपने पति चन्द्रमा को अर्पित कर देती है। चन्द्रमा को अर्पित करने के पश्चात, मुनिवरों! देखो, प्रातःकाल आता है, देवताजन बड़े दुःखित होते है, मानो देखो, अन्धकार ही नहीं जाता, मानो यह आश्वासन नही जाता, तो उस समय जब ऐसा देवताओं की पुकार होती है, तो कहते है, कि इन्द्र आते है और इन्द्र ने आ करके यह विचारा की, अहिल्या तो बड़ी सुन्दर, इसे छलना चाहिए। मुनिवरों! देखो, इन्द्र की जो नाना प्रतिभा आती है, इन्द्र उसको अपने में अर्पित कर लेता है, और चन्द्रमा उस समय चिह्नवादी बन जाता है, परिणाम वह, जब वह नाना प्रकार का उसमें चिह्न अपृत हो जाता है, उसका परिणाम यह है, कि चन्द्रमा मानो सूर्य के प्रकाश के आगे, बहुत सूक्ष्म हो जाता है, उसकी कान्ति न होने के तुल्य हो जाती है, और वह जो रात्रि अहिल्या है, वह सूर्य के गर्भ में, सूर्य की किरणों में रमण हो जाती है। रमण हो जाने के नाते, परन्तु देखो, इसीलिए हमारे यहाँ अहिल्या गौतम का बड़ा सुन्दर संवाद आता है, मैं इसका विरोधी नही, क्योंकि हमारे यहाँ महर्षि गौतम हुए हैं, उनकी पत्नी का नाम भी अहिल्या है, परन्तु अहिल्या उनका नाम होने के नाते, इसका अभिप्राय यह नही कि हमारी आलंकारिक वार्ता समाप्त हो जाती है। इसका यह अभिप्राय नहीं है, अभिप्राय केवल यह है कि आज हमें वास्तविक स्वरूप को जानना, किसी भी वस्तु का हमारे यहाँ गौतम के नाना पर्यायवाची शब्द हैं, जैसे गौतम नाम चन्द्रमा का है, इसी प्रकार गौतम नाम सूर्य का है, क्योंकि गो नाम प्रकाश का है, देखो, गो नाम प्रकाश का और तम नाम अन्धकार का है, इसीलिए परमात्मा जो संसार को प्रकाश में लाने वाला है, इसीलए परमात्मा को गौतम कहा जाता है। मानो जब यह संसार की सुन्दर रचना होती है, क्योंकि अहिल्या के भी पर्यायवाची शब्द है, अहिल्या नाम प्रकृति का है, अहिल्या नाम माता को भी कहते है, अहिल्या नाम रात्रि का, अहिल्या नाम पृथ्वी

का, अहिल्या नाम सूर्य की कान्ति को, सूर्य की किरणों को भी कहते है। हमारे यहाँ नाना प्रकार के पर्यायवाची शब्द हैं, परन्तु वाक केवल इतना उच्चारण करना है, कि अहिल्या नाम प्रकृति का है, जब यह प्रकृति अपने स्वरूप में होती है। संसार की रचना प्रायः होनी ही है, उस समय देखो, गौतम इस प्रकृति को इस अहिल्या को अन्धकार में न ला करके, केवल क्रिया और प्रकाश में ला करके इसलिए परमात्मा भी अहिल्या का पति ही माना गया है। क्योंकि परमात्मा को यहाँ गौतम कहा गया है। क्योंकि वह अन्धकार से प्रकाश में लाने वाला है, तो केवल अभिप्राय यह है, कि जो अन्धकार से प्रकाश में लाता हो, उसी का नाम गौतम कहा गया है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं दूरी चला गया हूँ। वाक यह उच्चारण यह किया जा रहा था, कि वेदों में तीन प्रकार की विद्या आती है। ज्ञान, कर्म, उपासना, मानो ज्ञान मैने अभी अभी उच्चारण किया, कि ज्ञान होना चाहिए, हमें वास्तविक स्वरूप का, जिस मार्ग को हमें अपनाना है, उसका हमें वास्तविक ज्ञान होना चाहिए। आज हम अलंकारो को अपनाते है, आज हम यथार्थ मार्ग को अपनाते है, तो उसका मार्ग वास्तविक दशा को जानना यह हमारा सभी का कर्तव्यवाद होता है।

कर्मों के प्रकार

इसीलिए बेटा! आचार्यों ने कहा कि ज्ञान, कर्म, अब कर्म की मीमांसा आती है। मुनिवरों! देखो, जितना भी मानव कर्म करता है, प्रातः काल से सांय काल तक, उस कर्म में भी विचार होता है, और कर्म भी तीन प्रकार के होते है, कुछ तमोगुणी होते है, कुछ रजोगुणी होते है, कुछ सतोगुणी होते है, और इन कर्मों में भी, कुछ ऐसे कर्म होते है जो रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण से भी उपराम कर्म होते है। मुनिवरों! देखो, वह कर्म रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण से उपराम होते है। जिनका अन्तःकरण में न रजोगुणी, न सतोगुणी, न तमोगुणी किसी प्रकार का संस्कार अन्तःकरण में उद्धृत नहीं होता, तो उन कर्मों को हमारे यहाँ बेटा! इन तीनो गुणों से उपराम स्वीकार किया गया है। तो ऐसे ही

आज हमें, विचारना है, मानो देखो, तमोगुणी जो कर्म है, वह जो अपनी देखो, प्रतिभा, अपने अभिमान को ले करके जो कर्म करता है, अभिमानता इसमें रहती है, मानो वह जो कर्म है सदैव रजोगुणी कर्म होता है, परन्तु जो प्रमाद, पाखण्ड वाला जो कर्म होता है, वह सदैव तमोगुणी होता है, परन्तु जो मानव केवल अपने कर्तव्यवाद की प्रतिभा को ले करके चलता है, कि यह मेरा कर्तव्य है, परन्तु उस कर्तव्य की मीमांसा पर विचार विनिमय करता है, वह जो कर्म है, वह जो कर्तव्य है, वह उसका सदैव सतोगुणी माना गया है। परन्तु देखो, कुछ कर्म इस प्रकार के है, जो इन तीनों गुणों से उपराम है, जैसे मानव कर्तव्यवाद के ऊपर ले जाता हुआ, कर्तव्यवाद भी तीन प्रकार के होते है। एक कर्तव्यवाद तो मानव के मस्तिष्क में एक मीमांसा होती है, उसकी मीमांसा उसके मस्तिष्क में होती है, कि मेरा कर्तव्य है, परन्तु विचारना यह होता है, कि वह कर्तव्य भी किस प्रकार का हो, वह कर्तव्य विधिवत हो, अर्थात विधि से शून्य होना चाहिए। परन्तु यहाँ आचार्यों ने कहा कि वह विधि से शून्य नहीं होना चाहिए, परन्तु देखो, विधि भी, वास्तव में गुणों के साथ में रमण कर जाती है। परन्तु कुछ ऐसे कर्म है, जैसे मानव कर्म करता है, और जानता है कि प्रभु! मेरा जो न्याय है, वह तेरे ऊपर है, परन्तु वह जो न्याय की वार्ता है, और उसके अन्तःकरण में उसका संस्कार नही होता, संस्कार न होने के कारण वह जो वाक है उसका, वह जो उसकी प्रतिभा है, वह जो उसका शब्द है, वह जो उसकी रचना है, उसके मस्तिष्क की, आत्मा के द्वारा, जो आत्मिक शब्द आया है, परन्तु आत्मा की वेदना जब परमात्मा को प्राप्त होती है। तो वो अन्तःकरण में उसका संस्कार विराजमान नहीं होता, और अन्तःकरण में उसका संस्कार विराजमान नही होता, तो उसका फल भी नही होता, परन्तु जब फल नहीं होता तो बेटा! उसका आवागमन भी नहीं होता। तो इसीलिए हमें प्रत्येक वाक हमें बहुत ऊँचे स्तर पर ले जाना है, कि हमारा जो उद्देश्य है, हमारी जो वास्तविक मीमांसा है वह क्या है क्योंकि मानव के जीवन जो मीमांसा है, वह बड़ी अलौकिक और

बड़ी विचित्र मानी गई है। तो मैं आज अभी अभी यह वाक उच्चारण करने जा रहा था, कि हमें अपने जीवन को अपनी मानवीय प्रतिभा को उज्ज्वल बनाने के लिए, ज्ञान, कर्म और उपासना को अपनाना है, मानो ज्ञान, कर्म, उपासना इसका, आज हम कर्म के ऊपर कर्म की बहुत प्रकार की मीमांसा है, मैं उस कर्म की इतनी गम्भीरता में नही जाना चाहता हूँ केवल इतना उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि आज हम यह विचार विनिमय करने वाले बनें कि हम तीन प्रकार के ज्ञान को ले करके, तीन प्रकार की उपासना आदि बनें, कुछ कर्म इस प्रकार जो उपराम होते हैं।

उपासना

परन्तु इसके पश्चात उपासना आती है। उपासना किसे कहते है, उपासना वह होती है, जिस वस्तु को जैसा तुम स्वीकार करते हो, उस वस्तु का पूजन करना, मानो देखो, जैसे माता है, अब माता का पूजन हमें अब करना है, क्योंकि उसकी उपासना करनी है, उसने हमें जन्म दिया है। जननी है, उसने रक्षा की है, पालना की है, अब विचारना यह है, कि हमे उसके ऊपर हमारा भी कुछ ऋण है, हमें उसकी उपासना करनी है। परन्तु उपासना का अभिप्राय यह नही, कि उसके चरणों को स्पर्श किया जाएं, चरणों को भी स्पर्श करना चाहिए। परन्तु चरणों को स्पर्श करने से पूर्व, उस माता का जैसा ऋण है, वैसा उससे मुक्त हो जाने का नाम उपासना कही गई है। क्योंकि उपासना का अभिप्राय यह है, जैसे परमपिता परमात्मा है, आज हम परमात्मा को स्वीकार करते है, परन्तु परमात्मा की प्रतिभा को जानने का भी हम सदैव प्रयास करते रहते है, और यह विचारते रहते है, कि परमात्मा हमारा कल्याण भी करे, परमात्मा हमारे कल्याणमयी आनन्द को प्राप्त करता चला जाएं, यह भी हम सब स्वीकार करते है, इसके ऊपर हमारा कोई विरोध नही है, न इसमें हमारी कोई किसी प्रकार का कोई विरोध रहता है, परन्तु विचारना यह कि परमात्मा को कोई स्वीकार करो या न करो, इससे भी स्वीकार नही, परन्तु जो हमारी उपासना है, उसको

विचारना है, कि उपासना किसे कहते है? उपासना का अभिप्राय यह है, कि जिस उपासना से, जिस विभोर से हम तन्मय हो जाते है, उसका नाम उपासना है, एक उपासना तो यह होती है, अब रहा यह कि हमें जल की उपासना करनी है, परन्तु जल का अभिप्राय यह नहीं कि हम भुजों से उसकी उपासना करते रहे, उपासना का अभिप्राय यह है, कि उस जल को उसको वास्तविक रूप में लाने का नाम उसकी उपासना है। जैसे अब जल है, जल से नाना प्रकार के कार्य होते है।

महात्मा भागीरथ

हमारे यहाँ एक वाक आता है, कि महात्मा भागीरथ हुए है, रघु परम्परा में, रघु प्रणाली में ऐसा कहा जाता है कि यह जो महात्मा भागीरथ थे, यह राजा सगर के आठवे पड़ पौत्र कहलाते थे। यह रघु परम्परा में हुए है, परन्तु इनका अभिप्राय यह था कि मुझे गंगा को शुद्ध रूप से बहाना है, इसको उज्ज्वल बनाना है, तो महात्मा भागीरथ ने वही किया। परन्तु गंगा को पर्वतों में से लाने का प्रयास और मानसरोवर से लाने का, कैलाश की कन्दराओ से लाने का, इसको कैलाश के गर्भ में से लाने का अभिप्राय यह रहा, इसका सुचारू रूप से कार्य, वास्तव में वह अपना कार्य ही पूर्ण तो कर नहीं सकें, परन्तु जितना किया, कि इस जल से कृषि होनी चाहिए, अन्न उत्पन्न हो, उस अन्न से हमारा जीवन पनपेगा। तो उस जल की उपासना होती है, उस जल को सुन्दर रूप में लाना, उस जल का दुरूपयोग न करना, मानो जल को यथायोग्य उसको वरताओ वरतना, यह उसकी उपासना कहलाई जाती है। इसी प्रकार आज, हमें अग्नि की उपासना करनी है, परन्तु अग्नि की उपासना करने का अभिप्राययही कि आज हम अग्नि में यथाशक्ति अपना कार्य करें। हम उससे देखो, मेरी प्यारी माताएं अन्न तपाती है, उसको पान करती है, उसी प्रकार की अग्नि हमारे शरीर में भी ओत प्रोत रहती है। उस अग्नि का हमें यथार्थ रूप धारण करना, यह उसकी उपासना है। परन्तु देखो, उपासना का अभिप्राय यह है, कि हम आत्मा की उपासना करते है, अब आत्मा की

उपासना करने का अभिप्राय यह है, कि आत्मा से हमें वेदना आती है, आत्मा कहती है कि यह कार्य पाप है, तो आत्मा का, जो अन्तःकरण की आत्मा की जो वेदना होती है, उसको स्वीकार करना यह आत्मा की उपासना कही गई है, इसको ब्रह्म उपासना भी कहते है, क्योंकि ब्रह्म के और दोनो के सहकारिता के होने के नाते, एक वृक्ष पर दोनो होने के नाते, दोनो के गर्भ में से सुमति आती है, परन्तु इस सुमति को स्वीकार करना, इसको अपने चित्रण में लाना, बेटा! उसको हमारे यहाँ उपासना कहते है।

आत्मा की उपासना

आज हमें आत्मा की उपासना करना है, तो आत्मा से जो वाणी आती है, आत्मा से जो प्रसन्नता आती है, परन्तु उसको स्वीकार करना, उसको लाना, आत्मा का बेटा! सर्वश्रेष्ठ वही भोजन होता है। जिसको मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इस वाक को अधिक नही उच्चारण करूंगा, केवल संक्षिप्त परिचय देने जा रहा हूँ। तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि हम ज्ञान, कर्म, उपासना इन तीनों को जानते हुए चलें, क्योंकि यह तीनो ही हमारे जीवन के लिए सर्वस्व उपयोगी है, इनको जानना ही यह आत्मा के भोजन की सामग्री है, यदि यज्ञशाला में देखो, होताजन, यज्ञमान विराजमान जब होता है, तो यज्ञमान जब सुन्दर आहुति देता है, विचारों की देता है, और स्वाहा कह करके अग्निहोत्र करता है, उसकी जो विचारधारा है, वह सुगन्धि को ले करके वायुमण्डल में ओत प्रोत हो जाती है, इसी प्रकार जैसे वह ओत प्रोत हो जाती है, परन्तु इसी प्रकार हमारे हृदय की, जो वेदनाएं है, हमारा जो आत्मा का भोजन है, यह जो अग्नि का भोजन, नाना प्रकार की सामग्री है, विचारों का भोजन भी वही है, इसी प्रकार मुनिवरों! जैसे अग्नि में दिया हुआ साकल्य, सूक्ष्म बन करके, वह मेघों तक जाता है संसार में। वातावरण में सुन्दर बनाता है, इसी प्रकार हमारी आत्मा का जो भोजन है, आत्मा की जो सामग्री है, वह नाना प्रकार की वेद की ऋचाएं कहलाती है। बेटा! वह जो भोजन है, वह आत्मा में हूत किया जाता है, प्रहूत

किया जाता है।

हमारे यहाँ ऐसा कहा जाता है कि परमपिता परमात्मा ने जब यह जगत रचा था, तो सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया था बेटा! सबसे प्रथम देखो, हूत, प्रहूत और एक अन्न जो देखो, साझा अन्न है, सभी को पान करना, सबसे प्रथम, उस अन्न को उत्पन्न किया, जिसमें सभी का भाग रहता है। आज प्रायः मानव यह विचारने लगे, कि कृषक यह विचारता रहता है, कि अन्न को उत्पन्न करता हूं, मैं ही इसको पान करू। तो यह असम्भव है, क्योंकि वह जो पृथ्वी माता है, वह सबको भाग दे देती है, क्योंकि वह वसुन्धरा है, उसके गर्भ में सब बसने के नाते, जो जिसके गर्भ मे बसता है, वह माता जानती है, अपने प्यारे पुत्रों की करूणा को। उसके हृदय में एक करूणा होती है। एक महानता, स्वतः होती है। जैसे पृथ्वी माता है, उसमें जितने प्रकार के प्राणी विचरण करते हैं, यह वसुन्धरा, उसको उसी प्रकार का अन्न यह प्रदान करती चली जाती है। तो हे माँ! तू कितनी पवित्र है, हे वसुन्धरा! तू कितनी माँ है, जो तेरे गर्भ में बसता है, तू उसको उसे प्रदान करती है, तेरे नाना प्रकार के पुत्र हैं, हिंसक प्राणी को, तू मानो मांस स्थापित करा देती है, और अन्न को भक्षण कराने वाले प्राणी को, तू अन्न देती है जो वनस्पति पान करने वाले है नाना प्रकार का अन्न तेरे से उत्पन्न होता है, और तेरे गर्भ में यह जगत बस रहा है, उसी प्रकार का अन्न इस जगत को प्रदान करती चली जाती है।

विभिन्न मण्डलों के प्राणी

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! यहाँ वसुन्धरा नाम परमात्मा को कहा गया है, यहाँ वसुन्धरा नाम पृथ्वी को तो कहते है, परन्तु वसुन्धरा नाम प्रभु को, प्रकृति को भी तो कहा जाता है। क्योंकि उसी के गर्भ में, नाना प्रकार के लोक लोकान्तर नाना प्रकार के जगत वशीभूत रहते हैं। यह प्रभु की कैसी विचित्रता है, बेटा! इस पृथ्वी मण्डल पर, सब पार्थिव प्राणी रहते है, सूर्य मण्डल पर अग्नि तत्त्व प्राणी रहते है, चन्द्र मण्डल में मानो शीलतता को सहन करने वाले प्राणी रहते है, बेटा! बृहस्पति मण्डल में वायु तत्त्व

वाले प्राणी रहते है, यह प्रभु की कैसी विचित्रता है, बेटा! मैं तो इसको विचार नहीं पाता, मैं तो जब इस वन में चला जाता हूँ, मुझे तो ऐसा प्रतीत, हमें तो ऐसा प्रतीत होता है, क्या हम प्रभु के आंगन मे जाने के लिए तो उद्यत है, परन्तु यह ज्ञान भी होना चाहिए, इसीलिए वेद के ऋषियों ने कहा कि विचारो और उपासना करो, क्योंकि मानव को जितना ज्ञान है, वह उपासना से प्राप्त होता है। उपासना से यथार्थ ज्ञान की प्रतिभा, मानव को प्राप्त हो जाती है। इसीलिए आज मैं अधिक विलम्ब नही दूंगा, इन शब्दों में, केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह हमारा है कि हम विचार विनिमय में ही करते चले जाएं, कि वह जो माता वसुन्धरा है, वह हमें अपने बसा रही है, और उसको सात प्रकार के अन्न की चर्चा चल रही थी, क्या, एक सबसे प्रथम जो सबका साझा अन्न है। एक अन्न पशुओं को दिया है, और मुनिवरों! देखो, वह भी सबका साझा अन्न है, अहा! एक तो साझा अन्न है, हूत प्रहूत और तीन प्रकार के जो अन्न है, वे परमपिता परमात्मा ने अपने लिए रचे हैं। मुनिवरों! क्या देखो, जिसको हम मनम् प्रहा जिसको हम एक मनमयी में भोजन होता है, एक चक्षु में भोजन होता है और श्रोत्रों में भोजन होता है, मानो यह भी जो श्रोत्रों से भोजन किया जाता है वह और जो चक्षुओ से भोजन किया जाता है, और जो मन से किया जाता है। वह उस ब्रह्म ने अपने लिए रचे है। वह बेटा! जो भी हम इन तीनो से श्रोत्रों से शब्द स्मरण करे, वह प्रभु के लिए, आत्मा के लिए, बेटा! जो हम चक्षुओं से दृष्टिपात करें, वह भी आत्मा के लिए, जो मन से चिन्तन करें, वह भी ब्रह्म के लिए, इसीलिए इन तीनों अन्न को भगवान ने अपने लिए रचा है। ब्रह्म ने अपने लिए रचा है, और यह जो और अन्न है, हूत प्रहूत मानो हूत कहते है, आहुति देना, अग्नि में, यज्ञशाला में और प्रहूत जो ब्राह्मण जन हैं, उनकी सेवा करना, उनका आदर करना, उनकी शिक्षा ग्रहण करना। हूत प्रहूत और जो अन्न साझा अन्न है, यह जो साझा अन्न है, यह सबका अन्न साझा है। इसमें पक्षी भी पान करते है, मानव भी पान करते है, अग्नि में भी जाता है, राजा

को भी जाता है, यह सबका साझा अन्न होता है। एक अन्न होता है पशुओ के लिए क्योंकि जितना अन्नम् ब्रह्मे प्रभु की कैसी विचित्रता है, जैसा बेटा! जिसका उदर है उसी प्रकार बेटा! वैसा ही भोजन दे देता है। यह कैसी प्रभु की विचित्रता है, विचार विनिमय करते ही रहो, अनुसन्धान करते रहो, महर्षि कपिल जी ने तो यहाँ तक कहा, अनुसन्धानवेत्ताओं ने कि प्रभु! यदि तुझे अनुसन्धान कराना है, तो हमारी एक एक सहस्रों की अवस्था हमारी लाखो वर्षो की अवस्था हो, इसके पश्चात भी हम तेरे ज्ञान को अध्ययन अच्छी प्रकार नहीं कर सकेंगे। यही तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक यह कि प्रभु कैसा विचित्र है, कृषक से यह प्राप्त करो, कि हे कृषक! तेरा अन्न कितना है बेटा! वह कितना अन्न है, मानव का अन्न, बहुत सूक्ष्म सा और जो पशु का अन्न प्रबल है, इसी प्रकार उसका अन्न भी वही देखो, एक पौधे में, वहीं मनुष्य का आहार है। वहीं पक्षियों का आहार है, और वहीं पशु का आहार है, पशु का जैसा उदर है, वैसा प्रभु ने उसका भोजन प्रभु ने उत्पन्न किया है, तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि प्रभु! की प्रतिभा को जानना, यह हमारी ज्ञान, कर्म, उपासना में मानी गई है। तो आज हमें ज्ञान, कर्म, उपासना के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। क्योंकि इन तीनों का, क्योंकि इन तीनों का अन्न, प्रत्येक मानव जब यज्ञशाला में प्रदीप्त होता है। तो तीन प्रकार के आचमन करता है, और आचमन करके यह कहता कि प्रभु! मेरा यह जो अमृतमयी जीवन है, यह पवित्र हो, तो आगे चल करके हमारे यहाँ बेटा! मुझे एक वार्ता स्मरण आती रहती है। मैने पूर्व काल में भी उस वार्ता को प्रगट किया है।

महर्षि अगस्त्य मुनि

आज भी मुझे स्मरण आती चली आ रही है क्या हमारे यहाँ देखो, एक महात्मा अगस्त हुए हैं, बहुत परम्परा की वार्ता है, महर्षि अगस्त मुनि महाराज, जिनका जीवन सर्वोपरि और महान, जिनकी माता का नाम रेभकेतु था, रेभकेतु माता यह चाहती थी, कि मेरे गर्भ से जो बालक उत्पन्न हो, ऐसा हो और जो महान हो और तीन प्रकार का

आचमन भी करने वालो हो। तो माता की यह वेदना और जिज्ञासा जब गर्भ में जीवात्मा थी। जब ही से उसकी महान जिज्ञासा बन गई, तो वह एकान्त में विराजमान हो करके, वेदो का दर्शनों का अध्ययन करना, उसको वह पति जी ऋषिवर कहते है पानकेतु जी कहा करते थे, हे देवी! यह तुम क्या कर रही हो? परन्तु वह किसी की वार्ता स्वीकार नहीं करती थी। प्रभु के आगन में सदैव रमण करना, तो परिणाम यह हुआ, कि उनकी माता के गर्भस्थल से देखो, बालक का जन्म हुआ, जिसका नामकरण संस्कार हुआ। नामकरण संस्कार कराने के लिए देवर्षि नारद मुनि आ पंहुचे। तो देवर्षि नारद मुनि ने जब नामकरण संस्कार किया, तो उसका नाम वरुणकेतु नियुक्त किया। परन्तु जब वरुणकेतु नाम उस बालक का नियुक्त किया गया, तो वह अब उसके गुण, कर्म इसी प्रकार के बनने लगे, परन्तु जब आगे चल करके वह अध्ययनशील बन गया, तो ऋषि मुनियों ने उसकी तपस्या की प्रतिभा पान करके महर्षि प्राङ्गणी ऋषि महाराज ने उसको शिक्षा दी और उसी काल में देखो, उस बालक नाम अगस्त नियुक्त कर दिया। अगस्त कहते है अधाम् ब्रहे अस्ति जो अगम्य, जिसका ज्ञान हो। मानो जिसका ज्ञान अगम्य हो और तीन प्रकार के ज्ञान में जो पांरगत हो, तो ऋषि का हृदय, इसी प्रकार मग्न रहता था।

अगस्त्ृय, टटीरी कथानक

तो मुझे एक वार्ता उनके सम्बन्ध में, मेरे प्यारे! महानन्द जी! प्रगट कराया करते है, ये कहा करते है कि अगस्त मुनि महाराज ने सर्वत्र समुद्र का पान कर लिया था, तीन आचमनों में और तीन आचमनों में पान करके उसको खारी बना करके त्याग दिया, उपस्थ इन्द्रिय के द्वारा, ऐसा मुझे मेरे प्यारे! कहा करते है, कि टटीरी के दोनों अण्डों को समुद्र ने अपनी तरंगो में रमण कर लिया। तो इनका वाक वास्तव में बड़ा गम्भीर और प्रिय है, अब मैं इसकी मीमांसा करूं, तो बड़ी सुन्दर मुझे प्रतीत होती है।

हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है कि समुद्रां ब्रह्मे

अप्री सुप्रजा ऐसा आचार्य कहते है, ऐसा आता है कि जब यह टटीरी समुद्र के तट पर रहती थी। इसके दो पुत्र थे। दोनों पुत्र समुद्र ने अपनी तरंगों में जब रमण कर लिए, तो टटीरी को बड़ी वेदना हुई, तो मेरा परिवार नष्ट हो गया। मैं तो निर अगृत हो गई, मैं तो निःपुत्र हो गई, अब मुझे क्या करना चाहिए? उस समय उन्होंने अपने मन में यह सोचा, कि समुद्र को शान्त करना चाहिए, अब पृथ्वी के कणों को लाना और समुद्र को शान्त करना उन्होंने विचारा, विचारने के पश्चात जब यह वार्ता आई, तो कहते है कि अगस्त मुनि आ पंहुचे, अगस्त मुनि ने तीन आचमन किए, और सर्वत्र समुद्र को पान कर लिया और उसके पुत्रों की रक्षा हो गई।

संसार रूपी समुद्र

तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि कौन अगस्त है? ऐसा कहते है कि ऋषियों ने कहा है कि भई! टटीरी नाम आत्मा को कहा गया है। टटीरी नाम आत्मा का है, और टटीरी के, आत्मा के, दो पुत्र है मन और बुद्धि। मन और बुद्धि यह दोनों और समुद्र नाम इस संसार का है, जिसमें मान अपमान की तरंगे आती रहती है, मान अपमान की तरंगों यह मन और बुद्धि दोनो विचलित हो जाते है, दोनों इसमें रमण हो जाते है क्या मान और अपमान की तरंगों में कहीं दूरी चले जाते है, क्या तो कही समुद्र के तट पर आ जाते है, यह मानव के जीवन की, यह मान अपमान की यह दशा हो जाती है। परन्तु जब ही संसार में मानो अब्रेत यह दोनो पुत्र रमण करने लगे, तो अन्तरात्मा दुःखित होता है। तो अन्तरात्मा कहता है, कि मैं तो पितृवान थी, पुत्र बन गई हूँ, मुझे क्या करना चाहिए और आत्मा से वेदनाएं उत्पन्न होती है, तरंगे उत्पन्न होती है, जो ज्ञान है, वह आता है, परन्तु वह भी चला जाता है, क्योंकि जब मन, बुद्धि कार्य नही करते, तो कहते है कि जब अन्त में इसको विवेक उत्पन्न हो जाता है, अब जब इसको विवेक उत्पन्न हुआ, क्योंकि अगस्त नाम विवेक का है, अगस्त नाम ऋषि को तो कहते ही है, परन्तु यहाँ अगस्त की मीमांसा विवेक को कहा गया है। अगस्त नाम

विवेक का है, जब आत्मा से विवेक उत्पन्न होता है, ज्ञान की प्रतिभा आती है, उस समय मन और बुद्धि स्थिर हो जाते हैं। जब मन, बुद्धि स्थिर हो जाते है जो सर्वत्र समुद्र हैं मानो देखो, इसके तीन आचमन कर लिए जाते हैं। तीन आचमन क्या है? विचारना यह है कि जिस संसार सागर से पार हो सकते है, इस समुद्र से तर सकते है, ये तीन आचमन करने है। वे तीन आचमन क्या है? ज्ञान, कर्म और उपासना। ये तीन आचमन है। जो तीन प्रकार की विद्या को मानव निगल जाता है, पान कर जाता है, वह बेटा! ये जो संसार रूपी समुद्र है, इससे वह मानव पार हो जाता है।

महान पाखंडी

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम प्रातः काल की पुनीत बेला में आ पंहुचे है, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मानव को ज्ञान कर्म और उपासना करनी चाहिए। ज्ञान और कर्म उपासना की गोद में चला जाना चाहिए। मेरे प्यारे! ऋषिवर! कहते है कि अगस्त मुनि महाराज ने तीन आचमन किए, अगस्त नाम विवेक का है, यहाँ पर्यायवाची शब्दों में **अगस्त्य नाम सूर्य का भी है, क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में यह जल का पान कर लेता है। वर्षा ऋतु आती है, मानो जल को उगल लेता है** मानो उसको वमन कर देता है, वमन करके मम ब्रही अस्ति मानो, धीमी धीमी वृष्टि हो करके, वनस्पति उत्पन्न हो जाती है, अगस्त्य नाम परमपिता परमात्मा का है, क्योंकि तीनो गुण उसके गर्भ मे रहते है। तीन प्रकार की प्रतिभा उसके गर्भ मे रहती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ परमपिता परमात्मा को भी आत्मा को भी अगस्त कहते है। क्योंकि आत्मा भी ज्ञान कर्म और उपासना की तीनों की प्रतिभा रहती है, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमें इनको जानना है। इनके ऊपर अध्ययन करना है, और नाना प्रकार के दम्भ, छल और पाखण्ड को त्यागना है, और उसको दूरी भगाना अपने मन से, मानव यह कहता है कि आडम्बरी कौन होता हैं? पाखण्डी कौन होता है? वह होता है, जो ज्ञान, कर्म, उपासना को अच्छी प्रकार नही जानता। वेद

की प्रतिभा को जानता हुआ, केवल शाब्दिक जानता है, और वह दुराचार में लगा हुआ है, कहते है कि वह महान पाखण्डी होता है। तो वेद का वाक क्या क्या नही कहता, बेटा! एक एक शब्द ऐसा अमूल्य है, इसके ऊपर अध्ययन करते ही रहो बेटा! शब्द नहीं, परन्तु वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि आज हम प्रभु की उपासना करते हुए, चिन्तन करते हुए, अपने मानव जीवन को उन्नत बनाते हुए चले जाए। वेदो मे तीन प्रकार की विद्या आती है। ज्ञान, कर्म, उपासना और यह जो चतुर्थ काण्ड है, जिसको विज्ञान काण्ड कहते है। यह इसके चुने हुए मन्त्र है इनमें भी मानो हमें विज्ञान में भी पंहुचना चाहिए। मैं इसका विरोधी नही हूँ। परन्तु ज्ञान, कर्म, उपासना के जानने से ही विज्ञानवेत्ता बनोगे, वास्तविक विज्ञानवेत्ता भी नही बनोगे। अहा! आज का यह हमारा वाक समाप्त होने जा रहा है, वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम प्रभु की उपासना करते हुए, मन, कर्म, वचन से सुन्दर बनते चले जाएं। हम जिसके प्रति जो वाक उच्चारण करें, उसमें यथार्थवाद होना चाहिए, मन से होना चाहिए, और कर्म से और वचन से पवित्र होना ही चाहिए। क्योंकि जब तक मानव के मन, कर्म, वचन पवित्र नही होंगे, तब तक मानव इस संसार सागर में ये तरंगे भ्रमण कर रही है, समुद्र की जो तरंगे है, मान अपमान की तरंगे है, और ये जो तरंगे है, ये मानव को उस समय निगलती ही चली जाती है। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाए, वही वाक्यों की मीमांसा विस्तार से किसी काल में की जा सकती है। आज के वाक्यो का अभिप्राय यह कि हमें इस परमात्मा की गोद में प्रातःकाल में जाना चाहिए, जैसे सूर्य प्रकाशक है, ऐसे मानव को भी प्रकाश देना चाहिए, अपनी आत्मा के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। आत्मा जिस वाणी को, जो तरंगें आत्मा से आती उनको स्वीकार करना, यह आत्मा की, ब्रह्म की उपासना है, इसको करना हमारा कर्तव्य है, अध्ययन करना, चिन्तन करना, मनन करना, यह प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्याओ को करना चाहिए। आज का हमारा वाक समाप्त होने जा

रहा है अब वेद का पाठ होगा।

महानन्द जी : धन्य हो! गुरुदेव! वाक तो बहुत ही सुन्दर परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य..................बेटा! कल समय मिलेगा तो कल शेष चर्चाएं विस्तार से कर सकेंगे।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन्! अब आज्ञा।

पूज्यपाद गुरुदेवः आनन्द मङ्गलम भवतु।

4 ११ ०४ १९६९ सांय परमात्मा की कृति

........आज हम तुम्हारे समक्ष, पुनः की भान्ति कुछ वेदमन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हम पुनः से जिन वेदमन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे, जिन वेद मन्त्रों में उस परमपिता परमात्मा की कृति का वर्णन आता चला जा रहा था, वह परमात्मा कितना विद्यमान, व्यापक और उसकी कितनी ऊँची और मनोहर कृति हैं, उस कृति के सम्बन्ध में, मैं अपने कुछ विचार देने तो विशेष रूप से तो नही आया, क्योंकि मुझे आज महानन्द जी का कुछ संकेत ओर भी प्राप्त होता चला जा रहा हैं, परन्तु परमात्मा के कृति, हम जब परमात्मा के सम्मुख जाते हैं, उस परमात्मा की कृति की बेला में, हमें यह प्रतीत होता हैं, कि वास्तव में परमात्मा की कृति अनन्त हैं, आज मानव सूक्ष्म बुद्धि से, यह विचार करता चला जाएं कि मैं परमात्मा की सम्पन्न, कृति को जानना चाहता हूँ, तो मानव विचार विनिमय करता हुआ, उसको अनुभव में लाता हुआ, और उसको क्रियात्मक में लाता हुआ, चकित हो जाता है। अन्त में वह नेति नेति ही उच्चारण करके, वह शान्त हो जाता हैं। वह परमात्मा की कृति हैं, जहाँ वेद विद्या को नेति नेति उच्चारण करके मौन हो जाता है।

तपस्या से ईश्वर दर्शन

परन्तु मेरे पवित्र ऋषि मण्डल! हमें केवल जीवन में यही नही विचार विनिमय कर लेना चाहिए, कि नेति नेति उच्चारण करके ही शान्त हो जाओ। परन्तु उस पर अनुसन्धान करते रहो, उस पर विचार विनिमय करते रहो, और विचार विनिमय करते हुए, एक समय वह आता है,

कि तुम परमात्मा के आङ्गन में जाकर के परमात्मा की अनुपम कृति के वेत्ता बन जाते हो, कृति के वेत्ता बन जाते हो, परन्तु जहाँ साधारणतव, बुद्धि का प्रश्न है, जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ताओं का प्रश्न हैं, जैसा मुनिवरों! मानव की बिना यौगिक बुद्धि का प्रश्न है, उसमें परमात्मा की सम्पूर्ण कृति का ज्ञान, विशेषज्ञ नही होता, मानो, उसमें बहुत सी सूक्ष्मता रहती है या उसमें नास्तिकवाद की प्रबलता, अधिक प्रभावित हो जाती हैं, उसके ऊपर नास्तिकता का मानो देखो, अधिक प्रभाव हो जाता हैं, क्योंकि वह साधारणतव है। आज मानव नास्तिकता से दूरी होना चाहता हैं, नास्तिकता से दूरी होना चाहता हैं, तो उसे विचार विनिमय करना होगा, कि हम नम्र और तपस्वी बनें, बिना तपस्वी बने, हमारी नास्तिकता समाप्त नही होती, हममें आस्तिकता आती ही, उस काल में, जब हम यौगिक बनते हैं। जैसे मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने कहा है, कि जिस स्थान पर आपकी आकाशवाणी का, इस हमारी वाणी का प्रसारण हो रहा हैं, वहां सुन्दर यज्ञं प्रमाणं ग्रते यज्ञति तो महानन्द जी का एक कथन हैं, कि सुन्दर यज्ञ की पूर्णाहुति का अनुग्राहक किया जा रहा था। जिससे मेरे प्यारे! महानन्द जी! का कथन हैं, कि उस पूर्णाहुति के सम्बन्ध में अपना प्रकाश दीजिए। परन्तु मैं केवल त्याग और तपस्या के सम्बन्ध में, मैं एक तपस्वी बनाने के लिए कुछ अपने प्रकाश देता चला जा रहा था, एक मानव है, वह नास्तिवाद में कहता है, कि मैं प्रत्यक्षवाद को ही स्वीकार करता हूँ। परन्तु अप्रत्यक्षवाद को स्वीकार नही करता, परन्तु देखो, उसका हृदय, तो यह उच्चारण करता है कि मैं अप्रत्यक्षवाद को स्वीकार नही करता, परन्तु बहुत सी संसार में, ऐसी वस्तुए हैं, जिनको हम स्वीकार करते हैं, वह हमें प्रत्यक्ष दृष्टिपात नही होती। मानव वह अनुभव से प्रतीत होती हैं, आज हमें सभी वस्तुएं संसार में प्राप्त होती हैं, आज हम परमात्मा को अनुभव में लाना चाहते हैं। उस महान विज्ञान को, उस महान विज्ञानवेत्ता को अपने समीप लाना चाहते हैं। तो हमें तपस्वी बनना बहुत

अनिवार्य हो जाता हैं।

महर्षि कपिल मुनि

मेरे पूर्व आचार्यजन उसी से ही, मुझे महर्षि कपिल मुनि महाराज की चर्चा जब स्मरण आती हैं, महर्षि कपिल मुनि महाराज, जब अपनी कृति में पंहुचे, दो प्रकार की कृति होती हैं, एक मानव की स्वयं कृति होती है और एक कृति उस प्रभु की होती हैं। जब महर्षि कपिल मुनि महाराज ने अपने मन ही मन में यह विचारा कि मैं वास्तव में कृति का वेत्ता बनने जा रहा हूँ, तो कृति को जानने के लिए, वह अपनी कृति को जान करके, शान्त हो गया, मौन हो करके यह कहा कि प्रभु! मैं तो केवल इतनी ही कृति जानता हूँ। परन्तु जब कुछ समय के पश्चात, उसे नास्तिकवाद, उन्माद आया, तो उसके मन में कोई ऐसी धारणा उत्पन्न हुई, क्या उसने स्वीकार कर लिया, कि प्रभु! नही, केवल मैं हूँ और मेरी ही कृति है। ये संसार में जो प्रतीत हो रही है, सब मेरी कृति है। मानो देखो, कृति क्या और ये भी अन्त में कहा, कि मैं तो आत्मा ब्रहेदनानि कर्मणा यह संसार में कुछ नही मानो देखो, यह उच्चारण करके मौन हो गए, मौन हो जाने के पश्चात, महर्षि कपिल मुनि महाराज, जब शान्त थे, तो उस समय विचार विनिमय करते चले जा रहे थे, मुझे क्या करना है। मानो अब तो मैंने समूल कृति को जान लिया हैं, आज देखो, जहाँ पूर्ण कृति को जाना जाता हैं, वहां यही प्रश्न आता रहता है, मानव के हृदय में, क्या और भी कुछ है, यदि मैंने उस कृति को जाना, मेरे लिए कोई शेष जानना नही रह जाता, तो शेष जानना, जो शब्द हैं, वहां इसका अभिप्राय यह कि कोई शेष हैं, जब ही शेष का प्रश्न मानव के द्वारा आता हैं। मानव के सङ्कलन में शेष आता हैं, यदि शेष विचार करने को नही रहता, तो शेष वाक ही नही आता मनों में, मुनिवरों! देखो, जब ऋषि के मन में, यह धारणा आई, क्या जो शेष है, अहा! शेष मेरे मुखारविंदु से क्यों उच्चारण हुआ? मेरी आन्तरिक भावनाओं में, शेष का शब्द क्यों आया? उसी समय मुनिवरों! वह मौन हो गए और मौन हो करके, उन्होने देखो, महर्षि प्रभु गणेति ऋषि महाराज की

सहायता पाई, संचात ऋषि महाराज ने अहा आ करके कहा अरे, कपिल! यह क्या कर रहे हो? वह उनके गुरु थे, वह उनके पवित गुरु थे उन्होंने कहा क्या भगवन! मैं केवल नास्तिकवाद में पंहुच गया हूँ, मुझे प्रभु पर विश्वास नही रहा। उन्होंने कहा कि तपस्या की सूक्ष्मता हैं, तपस्वी बनों, और जो तुमने जाना है, उसको प्रत्यक्ष में लाने के लिए तपस्वी बनना होगा।

शान्ति के लिए तप

मुनिवरों! महर्षि कपिल मुनि महाराज, ऋषि के वचनों को पान करके, वह अशान्ति को शान्त करने के लिए, वह तपस्वी बन गए। तपस्या में परणित हो गए उस समय उन्होंने कहा गृणेते श्वंजना आप्याति मुनिवरों! देखो, जब उन्होंने ऐसी धारणा बनाई, क्या हे प्रभु! हे मेरे जीवन के पालक! आकर, अब हमें तपस्वी बना, हमें योगी बना, प्रभु! अब मुझे किसी ने संकेत कराया है, कि तू तपस्वी बन। तो मुनिवरों! देखो, कपिल मुनि महाराज तपस्वी बनने के लिए ओत प्रोत हो गए और प्रभु की याचना करने लगे। हे प्रभु! मेरे जीवन में, मेरे हृदय में जो नाना प्रकार की त्रुटियां हैं, उन त्रुटियों को मेरे से दूरी करो। मैं त्रुटिदायक नही बनना चाहता। प्रभु! मेरा जीवन, आपकी कृति में हो, मेरा जो मन हैं, मेरी जो सङ्कलन धारा हैं, वह आपकी कृति में होनी चाहिए। मुनिवरों! देखो, यही विचार विनिमय करता हुआ, अन्त में देखो, महर्षि कपिल मुनि महाराज को यह ज्ञान हो गया, कि वास्तव में तेरी जो कृति थी वह अस्वत हैं, और जो प्रभु की कृति हैं, वह तो प्रकृति के कण कण में मुझे अनुभव प्रतीत हो रही है, आज जो मानव तपस्वी होता है, वही तो संसार में अपने जीवन को सफल बना जाता है, अन्ततः तपस्या की नही होती, त्याग की भावना नहीं होती, जैसे यज्ञमान यज्ञवेदी पर विराजमान हो करके, इदन्नमः पाठ करता हुआ, वह जब आहुति देता है, वह जो सर्वत्र आहुति प्रदान कर देता हैं, तो वह त्यागी कहलाता हैं, परन्तु एक आसन से विराजमान होता हैं, मनों में विचारधाराओं को सुन्दर बनाता, उनकी तपस्या मानी जाती हैं। परन्तु जहाँ त्याग और तपस्या के वाक

आते हैं, वही मानव के जीवन में हमें विकास, हमें उनके जीवन में विस्तार प्रतीत होता है। परन्तु आज तक बेटा! जितने भी महापुरूष हुए, जितने भी राजा, महाराजा हुए, सभी के मन में एक ही धारणा आई, कि उनके विचारों में व्याकता, उनके विचारों में सूक्ष्मता होनी चाहिए, दार्शनिकता होनी चाहिए, परन्तु देखो, यहाँ यज्ञमान के सम्बन्ध में कहा जाता हैं, यज्ञमानश्चते कामाः हे यज्ञरूप! तू यज्ञमान की कामनाओं की पूर्ति कर, वास्तव में जब सृष्टि का प्रारम्भ होता है, सृष्टि के प्रारम्भ में ही, मुनिवरों! वह परब्रह्म परमात्मा हैं, उस ब्रह्मा ने इस संसार रूपी यज्ञवेदी को रचाया, जिस यज्ञवेदी पर, प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक प्राणी, अपने कर्तव्य और अपनी मानवीयता को पाता चला जाता है। सुन्दर सुन्दर वार्ता को वह अपने में शोषण करता है, मानो देखो, वह उस प्रभु की सुन्दर यज्ञवेदी हैं, इस परमपिता परमात्मा ने, परब्रह्म परमात्मा ने, ब्रह्मा बन करके अपने मुखारबिन्द से बेटा! वेदज्ञ ज्ञान देते हुए, वेद का ज्ञान देते हुए, आज उस परब्रह्म परमात्मा ने, सुन्दर यज्ञरूपी को रचाया हैं।

सर्प योनि

यह जो संसार हैं, यह जो पृथ्वी मण्डल है, यह सुन्दर सुन्दर वेदियां हैं, जितने भी लोक लोकान्तर हैं, वह सब प्रभु की सुन्दर वेदी हैं, क्योंकि उसमें नित्यप्रति प्रोहो की जो सर्वशक्ति होती है, सञ्चारण करने की यह नित्यप्रति ये जीवन प्रदान होता रहता हैं। जब नित्यप्रति जीवन प्राप्त होता रहता हैं, उसी जीवन पर आश्रित हो करके, बेटा! प्रत्येक प्राणी ही कर्मबद्ध होता हैं, वही कर्मबद्ध होता है, यदि परमपिता परमात्मा इस सुन्दर वेदी को नही रचाते, तो बेटा! देखो, ये जीवन में कर्मबद्धता, किसी भी काल में नही आ सकती थी। परन्तु मानव को विचारना है, परमात्मा ने कितने प्राणियों को जन्म दिया हैं, और प्रत्येक प्राणी ऐसा, उस प्रभु की सृष्टि का प्रतीक हैं, मानो प्रतीत हो जाता है, उस पर विचार विनिमय करता हैं, जैसे परमपिता परमात्मा ने समुद्र इत्यादियों ने मुनिवरों! देखो,

जैसे मछली इत्यादि को जन्म दिया हैं, परन्तु सर्प जैसे प्राणियों को जन्म दिया हैं। आज उस प्रभु ने, मृगराज जैसे, जो मानव का भक्षण कर जाते हैं, ऐसे प्राणियों को जन्म दिया हैं, परन्तु उस प्रभु की इसमें कितनी कृति हैं, कितनी कृतियां इसमें प्रतीत होती हैं, जब यह विचारते हैं कि समुद्र इत्यादियों में, मछली को जन्म क्यों दिया? मछली किस लाभ का प्रतीक हैं। परन्तु यहाँ वेद में एक वेदमन्त्र कहा हैं, पाणिगृति वस्त्वंचन्तानम शोधनं ब्रव्हे वध्यानि कृतिवन्न्चता वेतु परमात्मन कृति अधधानम मुनिवरों! देखो, यहाँ वेद कहता है, कि देखो, जल का जो शोधन करने का कार्य हैं, जल का जितना भी शोधन होता है, जल को जितना भी पवित्र बनाया जाता हैं, वह केवल मछलियों के द्वारा बनाया जाता हैं, आचार्यों ने कहा है, वास्तव में समुद्रों में यदि मछली न हो, यदि ऐसे भी प्राणी न हो, तो मुनिवरों! देखो, मानव एक क्षण भर भी जीवित नही रह सकता संसार में, क्यों नही रह सकता? क्योंकि जितना समुद्र होता हैं, देखो, पृथ्वी के अनन्य भाग में समुद्र होता हैं। वह प्रभु ने रचाया है, क्यों रचाया है? समुद्र को मुनिवरों! देखो, समुद्र को इसीलिए रचाया है, क्योंकि पृथ्वी में उष्णता न आ जाएं, जिससे अन्न उत्पन्न न हो, नाना प्रकार के पदार्थ न उत्पन्न न हो, करके मानव का विनाश हो जाएं, मानव विनाशता को, प्रत्येक प्राणी विनाशता को प्राप्त हो जाएं, इसीलिए मुनिवरों! मैं उस परमपिता परमात्मा ने मछली को जन्म दे करके, जल में जो दोष होते हैं, जल में जो विष होता है, मुनिवरों! देखो, विष को शोधन कर लेती हैं, कौन ?मछली विष को निगलती रहती हैं, उनके जल के दोषों को जो निगलने वाली हो, आज वह संसार में प्राणी को भी कितना लाभ, कितनी परोपकारिणी होती हैं। हमे प्रत्येक प्राणी से शिक्षा प्राप्त होती हैं, सर्प इत्यादि होते हैं, आज मुनिवरों! देखो, जितना भी हम विषैली वायु को त्यागते हैं, क्रोध के द्वारा, काम के द्वारा, मुनिवरों! देखो, अशुद्धियों के द्वारा, अशुद्ध कर्म के द्वारा मुनिवरों! देखो, जो भी वमन हम करते हैं। उसको जो भी विष वमन किया जाता हैं, मुनिवरों! देखो,

सर्प योनी होती है सर्प योनि देखो, विष को निगलती रहती हैं और सुगन्धि को देती रहती है संसार को, आज हमें कितना लाभ प्राप्त होता हैं। जिससे हमें यह प्रतीत होता है कि हम उस परमात्मा की कृति को जानने में असमर्थ रहते हैं। क्योंकि हमें परमात्मा की इस कृति का ज्ञान हो जाएं, कि प्रत्येक प्राणी जो प्रभु ने रचा है, वह बहुत ही लाभदायक है, उसकी लाभ हानि वही जानता है, जो सम्पूर्ण विज्ञानवेत्ता होता है, कैसा विज्ञानवेत्ता? जो परमात्मा की कृति को जानने वाला, प्रकृति की कृति को जानने वाला होता है, वही मुनिवरों! देखो, वह सम्पूर्णतव में विराजमान हो करके, अपनी मानवीयता की सुन्दर कृति को जान करके, परमात्मा को प्राप्त होता हैं।

द्रव्यपति का कर्तव्य

आओ, मेरे भद्र आचार्य जनों! भद्र पुरूषों! मैं यज्ञवेदी की चर्चा कर रहा था, तो बेटा! महानन्द जी मुझे संकेत प्रगट कर रहे हैं, कि यज्ञमान सपत्नी ब्रह्मणे मुनिवरों! जहाँ देखो, सुन्दर यज्ञ होते हों, जहां यज्ञों की सुन्दर सुन्दर देखो, वेदों के द्वारा, वेदों का प्रसारण होता हो, मानो देखो, जहाँ स्वाहा उच्चारण किए जाते हों। वह स्थान, वह गृह, कितना सौभाग्यशाली होता हैं, क्योंकि वह गृह सौभाग्यशाली होता हैं। आज एक मानव द्रव्यपति बन जाता हैं, द्रव्यपति बन करके, नाना प्रकार के अशुभ कार्यों में, अपने द्रव्यों को परणित कर देता हैं। कहीं उसके खान पान में विवेक नही होता, कहीं उसके रहन सहन में विवेक नही होता, परन्तु वह विवेक नही रहता, तो मानव की मानसिकता समाप्त हो जाती हैं। उस द्रव्य का क्या बनता है? द्रव्य का उसी काल में बनता हैं, एक द्रव्यपति प्राणी बनता है, परन्तु द्रव्यपति बन करके, यदि वह यज्ञ करता है। वह यज्ञ कैसा करता हैं देखो, जैसा महानन्द जी मुझे वर्णन कर रहे हैं, यह भी यज्ञ है। परन्तु एक यज्ञ वह होता हैं जो अतिथियों का सत्कार करने वाले, जो क्षुधा से पीड़ित प्राणी होते हैं, द्रव्यपति का कर्तव्य है, कि उनका यज्ञ करें, आज उनका यज्ञ करें जिनसे उनकी आत्माओं में शान्ति प्राप्त हो, वह शान्ति प्राप्त होती चली जाएं, जैसे हम

देवताओं को सुन्दर सुन्दर हवि प्रदान करते हैं, और स्वाहा कह करके उनको अर्पित कर देते हैं, अपने अवगुणों सबको इसी प्रकार हमे जो निर्धन व्यक्ति होते हैं, द्रव्यपति का कर्तव्य है, कि उनको यज्ञम ब्रह्मणे, वह सुन्दर यज्ञ कहलाया जाता हैं। वह एक सुन्दर हवि कहलाई जाती हैं। जिनके द्वारा हम सुन्दर यज्ञ करें। जिससे देखो, हमारे राष्ट्र, हमारे द्वारा से, हम जो देवताओं का ऋण ले करके आए हैं, उससे उऋण हो जाएंगें, पितरों का ऋण हमारे द्वारा हैं, हम उससे अवऋण होते चले जाएं।

यज्ञ का प्रभाव

हे मेरे भद्र आचार्य जनों! ऋषि मण्डल! अब हमें यह विचार विनिमय करना हैं, कि हम परमपिता परमात्मा की मनोहर कृति को जानने वाले बनें, जिससे हम परमात्मा के ऊँचे पद को प्राप्त करते रहे। हे यज्ञमान! तू सुन्दर वेदी पर विराजमान हैं, अपने मन सङ्कल्प को धारण कर, अपने मन में तू अपने जीवन को बनाने में तू कुशल बन। परन्तु कैसे बनेगा? जब आहार और व्यवहार तेरा दोनों पवित्र हो जाएंगें, आज यज्ञ कर्मों से लाभ यह होता हैं, कि वह आहार और व्यवहारों को पवित्र बनाएं, जिससे हमारा शरीर रूग्ण न हो, हमारे शरीर में किसी प्रकार की बाधाएं न हों, हम तेजस्वी और ओजस्वी बन करके, संसार में विचरण करने वाले बनें। आज मुनिवरों! देखो, हम उत्तम सन्तान को जन्म देने वाले बनें, ब्रह्मचारी सदाचारी कपिल जैसे बालक को जन्म देने वाले बनें, जिसके पिता ने और माँ ने ऊर्ध्वा में और देखो, महर्षि कपिल जैसे पुत्र को जन्म ले करके वह दर्शनों के रचयिता बनने वाले हो। महर्षि के मुनिवरों! वह माता पिता कितने सौभाग्यशाली होते हैं, वह यज्ञमान, यज्ञमान की पत्नी कितनी सौभाग्यशाली होते हैं, जो कपिल जैसे बालक को जन्म देने वाले, राम जैसे पुत्र को जन्म देने वाले हों, वह माता पिता कितने सौभाग्यशाली और वह माता पिता कितने सौभाग्यशाली होती हैं, जो भगवान राम जैसी महान विभूति को जन्म देने वाले हों। मुनिवरों! देखो, मैं इन आदेशों को अधिक प्रकाश नही देना चाहता हूँ, केवल मैं तो आज यज्ञमान

को, जैसा महानन्द जी का मुझे संकेत प्राप्त हो रहा हैं, ऐसे सुन्दर सुन्दर यज्ञन करने वाले हों, यज्ञ में जिनकी आस्था हो, मैं तो प्रभु से याचना किया करता हूँ प्रभु! सर्वं देखो, यज्ञमानं प्रहे गच्छानि अप्यातं सर्वणं ब्रहे वचते वाक्यानि सदनं आप्याति रचते वायु सुप्रजा मानाः मैं तो यह कहा करता हूँ हे प्रभु! जो ऐसे सुन्दर यज्ञमान हो, जो अपने गृह में किसी प्रकार की अशुद्धियां न लाने वाले हों, आज हम त्वचा के श्रृङ्गार से पूर्व, अपनी वाणी के श्रृङ्गार को जानें, देखो, जहाँ त्वचा का श्रृङ्गार मेरी पवित्र माताएं किया करती हैं, मुनिवरों! मेरे पवित्र ऋषि मण्डल प्रवाहाद किया करते हैं। परन्तु उस श्रृङ्गार से पूर्व, हमें त्वचा को सजातीय बनाने से पूर्व अपनी मानसिक प्रक्रिया को सजाएं, जिससे हम बलिष्ठ बनें, हम अपनी त्वचा को अधिक महत्व न दें, केवल देना है, तो हमें वाणी को महत्वता देना हैं, आत्मा को विचित्र बनाना हैं, जिससे हम, जिस कार्य के लिए संसार में आए हैं, परमात्मा की कृति को जानने के लिए, परन्तु जहाँ मानव, नाना प्रकार के आभूषणों को धारण करता हैं, वहां एक वाणी का आभूषण को धारण करो, वहाँ एक मानसिक प्रक्रिया के आभूषण को धारण करो, जिससे परमात्मा को, तुम्हारा जीवन प्राप्त होता चला जाएं। और देखो, जीवन में, किसी भी प्रकार का रूग्ण तुम्हारें में न हो सकेगा, परन्तु रूग्ण तो होता ही, जब हैं जब मानव अपनी कृति को अपने से दूरी कर देता हैं, परमात्मा की कृति को दूरी कर देता हैं।

त्याग पूर्वक भोग

मेरे आदि आचार्य जनों! जब हमें लोलुपता नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उसको त्याग सहित भोगना चाहिए, जब त्याग सहित द्रव्य को भोगा जाता हैं, वही द्रव्य मुनिवरों! मानव के लिए जीवन बन जाता हैं, और यदि उसको त्याग पूर्वक नही भोगा जाता, उसमें विडम्बना होती हैं, विलक्षणा होती हैं, मुनिवरों! देखो, वही द्रव्य, मानव के विनाश का मूल बन जाता हैं। इसीलिए विनाश के मूल में, न जाओ, हे यज्ञमान! तू अपनी महान कामनाओं की पूर्ति करने के लिए आज तू अपने जीवन को मानसिक

प्रक्रियाओं को ब्रह्मचर्यतव को ले करके चल संसार में, तेरा जीवन वास्तव में पवित्र बनता चला जाएगा। मैं तो यह कहा करता हूँ, अभी अभी वेद का पाठ, एक वेदमन्त्र को उच्चारण करके आ रहा था कि हे यज्ञमान! तू आज महान बनना चाहता हैं, अपनी आयु को पान करना चाहता हैं, तो तू महान पुरूषों की शरण में जा, और अपने जीवन के विषय में, नाना प्रश्न कर इतने प्रश्न कर क्या तू, पुरोहित बना करके, हमें प्रश्न कर जिससे तेरा आत्मा प्रसन्न हो जाएं। मन प्रसन्न हो। उत्तर देने में इतने कुशल हों, क्या उनका हृदय और मन प्रसन्न हो जाएं, जिससे उनके जीवन में, एक मानवीयता के अङ्कुर छाते चले जाएं, यह है बेटा! आज का हमारा आदेश, मैं केवल महानन्द जी संकेतानुकूल कुछ उच्चारण कर रहा हूँ, हे यज्ञमान! तुम आयुष्मान बनो। मैं तो प्रभु से यह कहा करता हूँ ऐसे सुन्दर यज्ञमानो की अवस्था सहस्त्रों वर्षों की हो, जिससे देखो, सहस्त्रों की नही, तो सौ वर्ष की अवस्था हो, जिससे देखो, उनका जीवन सम्पन्न पूर्णतव यज्ञमय कार्य करता रहे, परन्तु उनसे देखो, जीवन में सहस्त्रों वर्षों की अवस्था पान करते हुए, अपने जीवन को महान बनाते चले जाएं, यह है बेटा! आज का हमारा आदेश। हे यज्ञमान! तू आज वेद का ज्ञाता बन, जैसा पूर्वकाल में कहा है कि परमपिता परमात्मा ने संसार रूपी सुन्दर वेदी को बनाया है, सुन्दर यज्ञ रूपी यह संसार भी एक प्रकार का यज्ञ हैं, जिसमें कितने पदार्थ हैं, प्राण सञ्चार हो रहा है, जितनी वस्तुएं, इसमें अर्पित कर दोगे पृथ्वी में, तो उतना ही साधन आगे तुम्हें आता रहेगा, यह कितनी सुन्दर उस प्रभु की कृति हैं, कितनी सुन्दर कृति हैं, कौन इसमें रसस्वादन करता हैं? मानो प्राणों के द्वारा होता हैं, प्राणों में वह तत्त्व क्या मन के द्वारा, इस प्रकृति में वह तत्त्व है, मानो देखो, उन तत्त्वों से उनका स्वादन होता रहता है, क्रिया देने वाला, संचालन करने वाला, वह संचालन जो पवित्र क्रिया है, उसी को हमारे यहाँ कृति प्रभु की कहा करते हैं। वही प्रभु की उत्तम कृति हैं।

प्रार्थना

आओ, मेरे भद्र आचार्य जनों! मैं अभी अभी एक

सुन्दर से अपने विचार प्रगट करा रहा था, कि हम परमात्मा की सुन्दर यज्ञवेदी को जानें, परमात्मा ने कितनी सुन्दर यज्ञवेदी रचाई हैं, इस यज्ञवेदी पर हम आ पंहुचे हैं, आज जो भी हवन करता है, अन्न को पान करता है, परमात्मा की यज्ञवेदी और परमात्मा की दी हुई, सामग्री कहलाती हैं। उस परमपिता परमात्मा की सामग्री को, हम पान करते हैं, तेजस्वी बनते हैं, देखो, वीर्यधारी बनते हैं, संघात बनते हैं, परन्तु जिससे हमारे जीवन में एक जो महान कृति हैं, वह जाग्रत होती चली जाएं प्रभु! ऐसी अनुपम कृपा करो। हे देव! हे सखा! हे सचिदानन्द! हे सर्वाधार! हे सर्वशाक्तिमान! हे सर्वान्तर्यामी प्रभु! आप हमारा कल्याण कीजिए, हम कल्याण चाहते हैं, हे अग्ने! तू वास्तव में हमें प्रकाश देने वाली है, हमें प्रकाश दे, हमें वेद रूपी प्रकाश में ले चल, जहाँ हम यज्ञमान होता जन, बन करके हम और उससे भी आगे सूक्ष्म व्याहृतियों को जानते चले जाएं। परमपिता परमात्मा आदि सृष्टि में मुनिवरों! स्वयं ब्रह्मा बने, और आत्मा को स्वतः यज्ञमान बनाया और चन्द्र इत्यादियों को, इन पदार्थों को देखो, होता जन बना करके, मानो यह संसार रूपी यज्ञवेदी बनाई, इस प्रभु की कितनी सुन्दर यज्ञवेदी हैं, ज्ञान रूपी वेदीरचित्त वे वेदियाँ मुनिवरों! देखो, यह कितना सुन्दरतव है आज हम परन्तु परमात्मा की कृति को अब भी नही जानेंगें उसका धन्यवाद नही करेंगें, तो हम कितने अभागे हैं संसार में, हम बहुत अभागे कहलाते हैं, यदि उसके अनुकूल अपने विचारों को नही बनाएंगें, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादियों को त्यागते हुए, अपने जीवन को, उस महान पवित्र अग्नि में ले जाएं, जहाँ अग्नि को ले जाने के पश्चात, हमारा जीवन सर्वत्र पूज्यनीय होता है, जीवन की पवित्र क्रिया को जानने वाले बनते हैं।

यज्ञमान को आशीर्वाद

यह है बेटा! आज का हमारा आदेश, अब मैं अधिक आदेश नही प्रगट करने जा रहा हूँ, केवल मैं तो महानन्द जी के कथानुसार यज्ञमान को सुन्दर आशीर्वाद देने जा रहा हूँ, कि हे यज्ञमान! जो यज्ञ कर्म करने वाले, कर्म करने वाले जो देखो, निर्धनों को अपने द्रव्य में से कुछ द्रव्य का

विभाजन करने वाले होते हैं, और देव पूजा करते हैं, देव यज्ञ करते हैं, जिसकी सुगन्धि मुनिवरों! वायुमण्डल में, मेघ मण्डलों ओत प्रोत हो करके पुनः वृष्टि होती हैं। मानो देखो, देवताओं की पूजा होती है, आज ऐसे सुन्दर यज्ञ करते रहो, जिसको देव पूजा कहा जाता है, जिसमें देवताओं का आदर होता है, देवताओं के लिए, हम हवि प्रदान करते हैं। हे यज्ञमान! ऐसे यज्ञमान की अवस्था देखो, सौ वर्ष होनी तो, चाहिए सहस्रों वर्षों की, परन्तु सौ वर्षों की तो होनी ही चाहिए हे परमात्मन्! आप अधिक से अधिक अवस्था दीजिए, जिससे विधाता, इनका जीवन संसार में पवित्र बनता चला जाएं और वह अपने मानसिक अपनी इन्द्रियों को, कार्यों को सुन्दरतव करते चले जाएं, यह है बेटा! आज के तुम्हारे संकेतों का उत्तर, परन्तु देखो, मैं अधिक आदेश प्रगट नही करूंगा, परन्तु देखो, समय बहुत सूक्ष्म है, उसी समय के अनुकूल मैंने अपने आदेशों का प्रगट कराया है। आज हम परमात्मा की कृति को, हे यज्ञमान! तू परमात्मा की कृति को जान, परमात्मा का धन्यवाद प्रातः और सांयकाल करता चला जा, जिससे देखो, तेरे हृदय में मानसिक बल आता चला जाएं, जिस मानव के हृदय में, मानसिक बल होता हैं, मानो देखो, वह किसी भी काल में रूग्ण नही होता, उसको किसी प्रकार की प्रहात नही होता, परन्तु देखो, वह सदैव एक रस बना रहता हैं, निर्द्वन्द बना रहता हैं, ब्रह्मचर्यतव को वह ले करके चलता हैं, अग्नि को ले करके चलता है, जिससे आज प्रकाश हो और वह प्राणी हो जिसके पश्चात अन्धकार नष्ट होता चला जाएं। यह है बेटा! आज का आदेश, अब शेष वाक्य पूर्व उच्चारण करूंगा, बेटा! आज का यह आदेश अब हमारा समाप्त होने जा रहा हैं, आज के आदेशों का अभिप्राय यह कि हम परमात्मा की और अपनी कृति को जाने, हम कपिल मुनि के आदेश के अनुकूल चले और यज्ञमान इत्यादि जो पूर्व ऋषि परम्परा है, उसको लाने का प्रयत्न करें, और अपने गृह में, यज्ञ कर्म करना चाहिए, यज्ञकर्मवेत्ता बनें, जिससे बेटा! संसार में जो कुछ है यह यज्ञ ही हैं, जो प्रभु ने रचा है, जो कार्य

करते, वह भी यज्ञ हैं, परन्तु विचार से जो करते उसी का नाम यज्ञ, जिसमें परोपकार की भावना हो, दूसरों को देने में, भावना हो इसमें किसी प्रकार की कामना न हो, जो सुन्दर कर्म हो वे सब यज्ञ कहलाते हैं। इसीलिए उन यज्ञों को करते चले जाओ जिससे तुम्हारी ख्याति बनें। .... शेष अनुपलब्ध

5 १२ ०४ १९६९ देवताओं की मीमांसा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का, प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा वरणीय माने जाते हैं, प्रत्येक संसार का प्राणी मात्र, उसी परमपिता परमात्मा को अपना वरणीय स्वीकार करता रहा है, और करता रहता है, क्योंकि उसका वरण करने के पश्चात मानव को द्वितीय वरण की आवश्यकता नही होती। क्योंकि वह अखण्ड है, गति देने वाला है, इस संसार का वह संचालन कर रहा है, तो वह जो मेरा देव जो संचालन करने वाला है, आज हम उस अपने महामना प्रभु की प्रतिभा का वर्णन करते चले जाएं। मेरे प्यारे! प्रभु ने यह संसार मानो एक रचनामयी दृष्टिपात आता रहता है और उसी के कारण ये भिन्न भिन्न रूपों में ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आता है। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस क्षेत्र में बेटा! ऋषि मुनि अपना अध्ययन करते रहे हैं, और उनकी जो अध्ययन की जो शैली है, वह बड़ी विचित्र रही है, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, प्रत्येक वस्तु के ऊपर उनका चिन्तन होता रहा और चिन्तन मानो बाह्य जगत में, आन्तरिक जगत में, दोनों जगतों में बेटा! उनकी आभा निहित रही है, और उनका क्रियाकलाप महामना देव की आभा में उसके नियन्त्रण में कार्य होता रहा, उनके विचारों में किसी भी प्रकार की विकृतता नही होती, उनके विचारों में एक

स्थिरता रहती है और वही स्थिरता मानो समाज को, मानव को ऊँचा बना देती है।

अमूल्य साधना

तो आओ, मेरे प्यारे! क्योंकि प्रत्येक मानव साधना में जाना चाहता है, उत्कट इच्छा होती है, कि मैं साधना के क्षेत्र में रमण करना चाहता हूँ। साधना में प्रवेश होना चाहता हूँ, तो मुनिवरों! देखो, वह जो साधनामयी जीवन है, वह कैसे बनता है? मैंने बहुत पुरातन काल में, अपना वाक निर्णय देते हुए कहा था, कि मानव जब साधना में प्रवेश करता है, साधना के क्षेत्र में जाता है, तो साधना किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! जो मानव परमात्मा के विज्ञान में रमण करता हुआ, एक स्थान पर स्थिर हो जाता है, और स्थिर हो करके वह उसके ऊपर अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर देता है। तो बेटा! वह अमूल्य साधना कहलाती है। क्योंकि स्थिर हो जाने का नाम साधना है, चञ्चलता का नाम असाधना है, एक मानव नाना लोकों की उड़ान उड़ने के पश्चात चञ्चलता उसके द्वार पर है, वह स्थिर नही रहा है, तो मुनिवरों! देखो, उसका जो यातायात है, वह विकृत रहता है मानो उमसें कोई उज्ज्वलता हमें दृष्टिपात नही आती। तो विचार क्या कि मानव को अपनी स्थली पर स्थिर हो जाना चाहिए। स्थिर हो जाने का नाम ही साधना है, वही परमात्मा का चिन्तन माना गया है।

त्रि देवता

मैंने बहुत पुरातन काल में, ऋषि मुनियों के मध्य में विद्यमान हो करके, नाना प्रकार के यागों के सम्बन्ध में अपनी विचार धारा प्रगट की। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! कुछ नाना प्रेरणा दे रहे हैं, मानो देखो, मैंने इससे पूर्व काल में बेटा! हमने तुम्हें यज्ञ के तीन स्वरूप उच्चारण किये, सबसे प्रथम यज्ञ का जो स्वरूप है, वह देव पूजा कहलाती है, देवताओं की पूजा करना इस मानव का परम कर्तव्य कहलाया जाता है, अब देवताओं की मीमांसाकार ने, आचार्यों ने जो वेद की जो मानो देखो, देव याग की, देवपूजा की, जो मीमांसा की तो इसमें महर्षि प्रवाहण इत्यादि ऋषियों ने बहुत ऊँची अपनी उड़ान उड़ी, उन्होंने

कहा कि दो देवता एक ही स्वरूप में माने जाते हैं, सबसे प्रथम देवता का नाम मानो चैतन्य देवता है, चैतन्य देवता कौन होते हैं, जो हमें देते हैं, हमें क्या देते हैं? पदार्थ देते हैं, हमें क्या देते हैं, अन्धकार से प्रकाश को देते हैं। मेरे प्यारे! जब माता के गर्भस्थल में विद्यमान होते हैं, तो माता यदि सुयोग्य होती है, माता सुशील होती है, तो वह अपने बाल्य को गर्भस्थल में प्रकाश में ले जाती है, प्रकाश ही प्रकाश दे देती है, तो माता देवता कहलाती है, माता के गर्भ से पृथक होता है, वही मानव, मेरे प्यारे! वह पिता के संरक्षण में चला जाता है, तो पिता उसको ऊँची शिक्षा देता है, स्वयं उच्च शिक्षावादी बनता है और बाल्य को ऊँची शिक्षा देता है, तो मानो वह जो बालक है, वह महान है उस महान के लिए मानो वह जो पितर है, वह महान देवता है, उसकी पूजा करने का मानो देखो, उसे अधिकार है। वह उसकी पूजा करनी चाहिए उसके पश्चात पिता के गृह से पृथक हो करके, वही बाल्य मेरे प्यारे! आचार्य के कुल में प्रवेश करता है, आचार्य उसे अपने में धारण कर लेता है, आचार्य उसे नाना प्रकार की शिक्षा देता है, पाण्डितव है, तो पाण्डितव की शिक्षा प्रदान कर देता है और वैश्यतव है, तो वैश्य की शिक्षा प्रदान करता है यदि वह मानो क्षत्रिय है तो क्षत्रिय कुल में प्रवेश करा देता है।

तो मुनिवरों! देखो, आचार्य इतना सुसज्जित होना चाहिए। जिसका चरित्र तपस्या में होना चाहिए। जिसका मानवीय जीवन मननशील होना चाहिए। मानो जिस आचार्य के आङ्गन में बेटा! सदैव प्रकाश रहे और वह प्रकाश में रमण ही करता रहे, तो वह मानो देखो, ऐसा आचार्य देवता कहलाता है और वह देवता बन करके, वह देववत को प्राप्त करा देता है।

अयोध्या का विद्यालय

मेरे प्यारे! देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, मुझे स्मरण है बेटा! आचार्य कुल में भगवान राम जब विद्यमान थे, तो मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उनको शिक्षा देते रहते थे, मध्य रात्रि हो, प्रातःकालीन हो परन्तु जो ब्रह्मचारी के मनों में शङ्का उत्पन्न

होती, उसका वह निवारण करते रहते थे, उसको अनुसन्धानवेत्ता बना देते थे तो मुनिवरों! देखो, मुझे वह काल स्मरण है, प्रातःकालीन जब भोजनालय का समय होता, तो एक पंक्ति में विद्यमान है, राम भी एक पंक्ति में विद्यमान है। अयोध्या का जितना भी निवासी था, परन्तु वह किसी भी वर्ण का हो वह विद्यालय में एक पंक्ति में विद्यमान हो करके, भोजन पान हो रहा है मानो देखो, वह कैसा सुन्दर विद्यालय होता है, जहाँ आचार्य वशिष्ठ जैसे महापुरूष हों, राम जैसे एक पंक्ति में भोजन को पान करने वाले हों और उनको मुनिवरों! देखो, जैसा जिसका माध्यम, बुद्धि का होता उसी प्रकार उसको विद्या प्रदान की जाती।

मननशील से मानव

तो मुनिवरों! भगवान राम नाना प्रकार के प्रश्न करते रहते थे। एक समय वह ब्रह्म ज्ञान में चले गये, ब्रह्म ज्ञान में जा करके बोले कि प्रभु! यह मानव क्या है? महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि यह जो मानव है, यह मानो मननशील से मानव बना है, प्रत्येक मानव को मननशील बनना है, मन को ऊँची प्रक्रिया देनी है, जिससे मन पवित्र बन जाएं यह मनस्तव कहलाया जाता है। तो वह कहते हैं कि महाराज! यह मानो यह मनुष्य क्या है? उन्होंने कहा यह मनुष्य तप सब प्रभु व्रता मानो यह मनुष्य भी मन से ही इसका निर्वाचन होता है। क्योंकि मन ही मानव की ऊँची कल्पना करता है, वह इसकी गणना करता है। मानो ब्रह्माण्ड की तुलना करता है, ब्रह्माण्ड के सन्तुलन में मानव के सन्तुलन में किसी प्रकार की भिन्नता नही होती। तो वह जो भिन्नता नही होती उसके मूल में ही मनस्तव विद्यमान रहता है। तो मुनिवरों! देखो, इसी प्रकार आज का हमारा यह वाक क्या कहता है, कि यह देवपूजा है। राम प्रातःकालीन क्या, मध्य रात्रि क्या, उनके चरणों को स्पर्श करते रहते थे, उनकी वन्दना करते रहते थे तो मुनिवरों! देखो, वह ब्रह्मचारियों के लिए, आचार्यों देवता है और वह देवता कैसा देवता? वह महान देवता कहलाता है।

कीडे का कर्म

एक समय भगवान राम वशिष्ठ दोनों की कर्म के

ऊपर विचार विनिमय हो रहा था, जब कर्म के ऊपर विचार विनिमय होने लगा, तो राम कहते हैं हे प्रभु! जब यह संसार में कर्म का चक्र चल रहा है, तो प्रभु! मैं जानना चाहता हूँ कि जो यह क्रीड़ा कर रहा है आपके आश्रम में, हमारे आश्रम में इसमें इसने कौन सा कर्म किया? मेरे प्यारे! देखो, उस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि कहते हैं हे राम! यह जो क्रीड़ा है, यह क्रीड़ा करता हुआ तुम्हें दृष्टिपात होता है, परन्तु जब से सृष्टि का प्रारम्भ हुआ है, इसी कल्प में, यह क्रीड़ा एक सौ एक समय इन्द्र की उपाधि को प्राप्त कर चुका है। इन्द्र बन गया है। इन्द्र कौन होता है? जो एक सौ एक महा यज्ञ कर लेता है वह इन्द्र कहलाता है देवतओं का राजाओं का भी धिराज कहलाता है। परन्तु जो एक सौ एक याग करने वाला मानो एक सौ एक समय जो इन्द्र बन लिया है मानो देखो, वह उसके पश्चात भी कर्म की विचित्रता, ऐसी महानता है ऐसी गति है, कि आज भी यह कीड़ा का कीड़ा ही बना हुआ है।

तो मेरे प्यारे! विचार विनिमय करना चाहिए। कि कर्म का चक्र चलता रहता है विचित्रता में चलता रहता है, परन्तु देखो, विचार क्या, क्या प्रत्येक मानव को विचारना है, प्रत्येक देव कन्या को विचारना है, कि यह सब हमारे देवता कहलाते हैं, हमें देवता राजा भी देवता कहलाता है, यदि राजा सुसज्जित होता है, सदाचारी होता है, वह राजा देवता कहलाता है इसीलिए नाना देवता यह जड़वत माने जाते हैं। मानो एक स्थली में, हमारे यहां भिन्न भिन्न प्रकार के देवताओं की गणना आती रहती है, तो उनकी सेवा करने का नाम, उनका यथोचित्त स्वागत करने का नाम मानो देखो, देवता कहलाता है। देवता बनना बहुत अनिवार्य, देवताओं का पूजन करना बहुत अनिवार्य है। तो इसीलिए याग में, मानो देवताओं का पूजन होता है, बुद्धिमानो का पूजन होता है, जो ऊँचे मार्ग पर लगा देते हैं प्राणी को, वह उच्च कहलाते हैं, और वह देवता कहलाते हैं और वे देवता महान बन करके मेरे प्यारे! देखो, वह उनकी पूजा उनके यथोचित्त स्वागत, उनका किया जाता है। तो मानो माता पिता का भी स्वागत

किया जाता है। तो विचार मानो देखो, उनका यथोचित्त स्वागत करना, यथोचित्त उन्हें आभा देना, कर्तव्य का पान करना मानो देखो, यह सब देववत कहलाए जाते हैं।

पूजा

आओ, आज मैं तुम्हें नाना प्रकार के देवताओं की चर्चा विशेष रूप से नही करने आया हूँ, आओ, मैं इन जड़वत देवताओं में ले जाना चाहता हूँ आज प्रत्येक मानव देवता की पूजा चाहता है, मुनिवरों! देखो, सबसे प्रथम पृथ्वी देवता आता है पृथ्वी देवता किसे कहते हैं? जो नाना प्रकार खाद्य और खनिज पदार्थों को देती है, जिसके गर्भस्थल में नाना प्रकार की अग्नि का वास हो रहा है, उसी अग्नि में धातु परिपक्क बनते रहते हैं मानो देखो, खाद्य और खनिज पान करके मानव उससे लेता है और ले करके उसकी पूजा करता है, जैसे कृषक मुनिवरों! देखो, अन्न की उत्पति करता है, वह याग कर रहा है, वह उसका पूजन कर रहा है, क्योंकि उसका यथोचित्त स्वागत और पूजन करके उससे नाना प्रकार के अन्नाद को प्राप्त करता है, वह जो अन्नाद को लेता है, वही उसकी पूजा कहलाई जाती है। पूजा का अभिप्राय क्या है? मुनिवरों! देखो, पूजा का अभिप्राय है कि उसका सदुपयोग करना है। उसको अपने में धारण करना है, मानो देखो, उससे नाना प्रकार की वस्तुओं को पान कर सकते हैं उसकी पूजा कहलाती है। जैसे खनिजवेत्ता उसके गर्भ में प्रवेश करता है। यन्त्रों के द्वारा जाता है, नाना प्रकार के खनिज को प्राप्त करता है तो मुनिवरों! देखो, यह उसकी पूजा कहलाई जाती है, उससे राष्ट्र और समाज ऊँचा बनता है, मुनिवरों! देखो, उससे यह उसकी पूजा है तो इसीलिए हमें पृथ्वी देवी की पूजा करनी है, यह देवी कहलाती है मानो देखो, इसमें सुगन्ध देना हमारा कर्तव्य है, यह उसकी पूजा कहलाई जाती है।

जल

परन्तु देखो, पूजा का अभिप्राय क्या जैसे जल है, जितने रूपों में जल आता है, यह जल देवता है यह जल हमें अमृत देता है जल के बिना हमारा जीवन कदापि संचारित नही होता, यह जल ही हैं मुनिवरों! जितनी बहने

वाली वस्तु हैं उन सर्वत्र का नाम मानो जल ही माना जाता है वह जल भिन्न भिन्न प्रकार का है भिन्न भिन्न शक्तियों में रमण करता रहता है बेटा! एक माता के गर्भस्थल में बिन्दु जाता है, वह भी जल रूप कहलाता है बेटा! वह वनस्पतियों का रस बन करके जल कहलाता है, अन्तरिक्ष में, समुद्रों से जलों का उत्थान होता है मेघ बनते हैं वह भी जल है, मुनिवरों! वही धीमा धीमा मानो देखो, पृथ्वी पर आता है नाना खाद्य उत्पन्न होते हैं, वह भी जल है। मुनिवरों! देखो, वह भी जल है, जो हेमन्त ऋतु में मानो हिमपात हो करके, हिमालय के आङ्गन में परणित हो जाता है, वही जल उष्ण होने पर मुनिवरों! देखो, नद नदियों के रूप में आ करके वह कृषक के लिए लाभदायक होता है वह भी जल है मुनिवरों! देखो, वह जल है, जो मानव पान करता है मुनिवरों! देखो, जल है एक वस्तु को दूसरे से मिलान करा देता है उसको संगठन में लाता है मानो सब जल रूप माना गया है अहा! मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के वाहन गति करते हैं, वह भी जल है। तो भिन्न भिन्न प्रकार का जल है बेटा! इस जल को जानना और जान करके उसका यथायोग्य मानो उसको उपयोग में लाने का नाम मुनिवरों! देखो, यह उसकी पूजा कहलाई जाती है।

अग्नि

विचार विनिमय क्या, मुनिवरों! देखो, ये संसार सर्वत्र एक आभा में मानो देववत में रमण कर रहा है, जैसे हमारे यहां अग्नि आती है नाना प्रकार की अग्नि बेटा! हमारे आचार्यों ने स्वीकार की है, वे भी अग्नि है जो यज्ञशाला में तप रही है, वह भी अग्नि है जो भोजनालय में तप रही है वह भी अग्नि है जो मानव के विचारों में तप रही है, वाणी रूप बन करके तप रही है वह भी अग्नि है बेटा! जो मानव की बुद्धि बन करके मानो देखो, प्रकाश में प्राणी को लाती है, वह भी अग्नि है अखण्ड जो माता के गर्भस्थल में बालक को तपा रही है, वह भी अग्नि है मुनिवरों! देखो, जो अग्नि मानो देखो, जो द्यौ लोक में बन करके रहती है, वह भी अग्नि है। जो अणु रूप में बन करके रहती है, वह भी अग्नि है मुनिवरों! जो परमाणु रूप बन करके रहती है भिन्न भिन्न

प्रकार की अग्नियों का चयन हमारे आचार्यों ने बेटा! वर्णन किया है, आज मैं नाना अग्नियों के रूपों में विशेष जाना नही चाहता हूँ वह भी अग्नि है जो मानव के शरीर में क्रोध बन करके रहती है, वह भी अग्नि है जो नाग बन करके रहती है वह भी अग्नि है जो प्राण बन करके रहती है, वह भी अग्नि है मेरे प्यारे! जो अन्न को तपाती है वह भी अग्नि है जो अन्न को उपजाऊ बना देती है, वह भी अग्नि है मुनिवरों! देखो, जो एक दूसरा विचार विनिमय करता हुआ सन्मार्ग को प्राप्त कर रहा है, वह अग्नि अग्रणीय कहलाती है। तो यहां भिन्न भिन्न प्रकार की अग्नि है बेटा! अग्नियों के भिन्न भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गएं हैं। तो आज हमें मुनिवरों! देखो, उस अग्नि का सदुपयोग करना, अग्नि को जान करके, उस अग्नि को, उसी रूप में उपयोग करने का नाम बेटा! वह उसकी वह पूजा कहलाई जाती है।

वायु

तो पूजा का अभिप्राय यह कि उसका सदुपयोग करना, यह उसकी पूजा है। मेरे प्यारे! देखो, अग्नं ब्रह्म लोका वर्णं रथं प्रह्वि व्रताः वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है, ब्रह्म लोकां हिरण्यं रथाः व्याप्कं ब्रह्म लोकाः वेद का आचार्य कहता है, जैसे वायु है मेरे प्यारे! देखो, वायु वह भी वायु है जो नाभि से मानो गति करके प्राण के रूप में संचालन करती रहती है, मानव को वह भी वायु है, जो अपान बन करके ग्रीह्वा से चली जाती है, वह भी वायु है जो मानव को मुनिवरों! देखो, गति देती रहती है वह भी वायु है जो मुनिवरों! देखो, वाहनों में भ्रमण करती रहती है वह भी वायु है एक दूसरे से यह स्थान से दूसरे स्थान पर परणित कर देती है। वह भी वायु है मुनिवरों! जो मुनिवरों! देखो, वायु अग्नि को ले करके मानो वनस्पतियों को तपा देती है, वह भी वायु कहलाती है जो वाहन में विद्यमान हो करके, वाहन गति कर रहा है। वह भी वायु है मुनिवरों! जो संसार में देखो, इस संसार को मानो देखो, आभा दे करके जहाँ वायु रहती है वहाँ प्राण नही रहता, वहाँ जीवन नही रहता और जहां जीवन नही रहता वहाँ आत्मा नही रहता जहाँ आत्मा नही रहता है बेटा! वहाँ गति

नही रहती, इसीलिए हमें वायु को जान करके वायु का सदुपयोग करना, यह उसकी पूजा कहलाई जाती है।

अन्तरिक्ष

मेरे प्यारे! देखो, वह उसकी पूजा है हमें पूजा करना है तो पूजा के बहुत प्रकार है, बहुत प्रकार है परन्तु अब अन्तरिक्ष पर आ जाईए। मेरे प्यारे! शब्द को एक आंगन से ले जा कर वो, अन्तरिक्ष में स्थिर हो जाता है। उसको अवकाश कहते हैं, अवकाश कहा जाता है। मेरे प्यारे! देखो, इसमें भिन्न भिन्न प्रकार के शब्द विद्यमान होते हैं सर्वत्र बिन तत्वों के बेटा! अन्तरिक्ष में समाहित रहते हैं, परमाणु रूप से गति करते रहते हैं। मानो देखो, अवकाश है, जहाँ अवकाश है वहीं जीवन है। मुनिवरों! मानव के शरीर में उदर है, नाना प्रकार के पदार्थों का पान करते है। उन पदार्थों को जो पचाता है वह अवकाश है वह आकाश होता है। अन्तरिक्ष होता है, अन्तरिक्ष में ही गति करने की शक्ति होती है, वह गति करता है जहाँ अन्तरिक्ष नही होता वहाँ गति नही होती, इसीलिए मुनिवरों! जितनी भी गति हो रही है, वे सब अन्तरिक्ष के गर्भ में हो रही हैं। तो उन गतियों को जानना, अन्तरिक्ष के गुणों को जानना, उसमें शब्द विद्यमान रहते है। यथार्थ शब्दों का वहाँ पंहुचाना, अध्ययन करना मुनिवरों! यह सब अन्तरिक्ष की पूजा कहलाई जाती है।

अग्नि

तो मेरे पुत्रों! पूजा का अभिप्राय क्या है, हम नाना प्रकार के रूपों में पूजा करते रहे, जड़ देवता और चैतन्य देवताओं का पूजन करना है, यज्ञ का अभिप्राय केवल इतना ही है कि हम सबसे प्रथम देवपूजा करें, देव पूजा का अभिप्राय यह कि हम जिन देवताओं की सहायता से, हमारा जीवन संचालन हो रहा है, गति कर रहा है, हम उन देवताओं को जान करके देववत को प्राप्त होते रहें यह उसकी पूजा है। तो मुनिवरों! देखो, सुगन्ध से इनका क्या सम्बन्ध है, विचार आता है इनको जानना है, क्योंकि अग्नि में नाना प्रकार के पदार्थों को, हे यज्ञमान! तू मानो देखो, नाना प्रकार के साकल्य को प्रदान करता है, घृत देता है

गोघृत देता है व जब देता है तो मुनिवरों! उसमें से परमाणु उत्पन्न होते हैं वे परमाणु जिस देवता के हैं उस देवता को प्राप्त होते रहते हैं वह उसी से शोधित होता रहता है, उसी को वह प्राप्त होता रहता है, अन्तरिक्ष में जो शुद्ध बन करके, जब स्वाहा उच्चारण करता है हे ब्रह्माण! जब तू स्वाहा कहता है हे होताजनों! जब तुम स्वाहा कहते हो तो अपनी वाणी का शोधन कर रहे हो, और वाणी जो है यह देवता है। वाणी ही हमें देवता बना देती हैं, वाणी ही हमें दैत्य बना देती है वाणी ही अग्नि के काण्ड बना देती है अग्नि वाणी ही वृष्टि करा देती है। तो विचार विनिमय क्या यही वाणी है, जिस वाणी के ऊपर अनुसन्धान करने वाला प्राणी, बेटा! जल तत्वों को उसमें प्रदान कर देता है मानो देखो, जैसे सूर्य देवता कहलाता है, सूर्य की नाना प्रकार की किरणों को जानना उन किरणों को आभा में लाना, मेरे पुत्रों! यह उसकी पूजा में ही प्रतिष्ठित रहा है, वह पूजा में प्रतिष्ठित रहा है चन्द्रमा भी अपनी कान्ति को देता रहता है।

यज्ञ से देवलोक

तो विचार विनिमय यह मैं देवताओं के गुणों का कहाँ तक वर्णन करूंगा पुत्रों! केवल विचार विनिमय यह कि अनन्त गुणों वाला एक एक देवता कहलाया जाता है और वह जड़ देवता, चेतनता का उससे समन्वय रहता है। मानो यज्ञमान रथी बन करके मुनिवरों! देखो, वह अपने रथ को द्यौ लोकों में ले जाता है, स्वाहाः कह करके यज्ञशाला में वृत्तं देवाः पुष्पविमान बन करके मेरे प्यारे! वह द्यौ लोक को प्राप्त होता है अन्तरिक्ष लोकों को, ब्रह्म लोकों को प्राप्त होता रहता है। हे यज्ञमान! आज तेरी जो मनोनीत भावना है यह यज्ञं ब्रह्मे हे यज्ञमान! प्रतिभा में रमण करने वाला, मेरे प्यारे! महानन्द जी! आज मुझे प्रेरणा दे रहे हैं, यज्ञ के सम्बन्ध में, मैं अपने विचार देने के लिए आया हूँ, और वह विचार क्या हैं? यज्ञमान का विमान अन्तरिक्ष में जाना चाहिए परन्तु यज्ञमान होना चाहिए, यज्ञमान के हृदय में मानो उतेजना नही होनी चाहिए और

यज्ञमान के हृदय में नम्रता की प्रतिभा होनी चाहिए। यज्ञमानो के हृदयों में देववत होना चाहिए, यज्ञमानो के हृदय में मानो वृत्तियां चञ्चल नही रहनी चाहिए, इसी प्रकार मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने बहुत पुरातन काल में, मैंने यज्ञमानो के सम्बन्ध में, बहुत वाक कहे, राम! ने जब याग किया था, तो छः छः माह तक वह गायत्री का जपन करते रहे, मौन रहे वाणी को पवित्र बनाया अक्रोध में परणित हो गये, तो यज्ञ उनके लिए देवता बन करके देवलोक में ले जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! इन्होंने मुझे बहुत से यज्ञमान और यज्ञों के कर्मकाण्ड करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! कुछ यज्ञमान के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त करेंगें, आज मैं कोई विशेष चर्चा देने नही आया हूँ, केवल देवताओं की वार्ता प्रगट की हैं।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् तनुमां हृदयश्चं रथाः गतं गथौ यश्चं ब्रह्म लोकाः। आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, एक ऐसी व्याख्या में चले गये, जिन व्याख्यान में परणित होने के पश्चात, मानव को कोई मार्ग भी नही प्राप्त होता, ऐसा विशाल यह वन है, जिस वन में जा करके उन्होंने देवताओं की व्याख्याएं की, आज मैं देवताओं की व्याख्याएं तो नही करना चाहता हूँ, केवल यह उच्चारण करना चाहता हूँ, जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी अभी यज्ञमान के गुणों का वर्णन कर रहे थे, यदि आधुनिक जगत में इस वर्तमान के जगत में, ऐसे यज्ञमानो को, गुणवानों को हम यदि संसार में दृष्टिपात करते हैं तो सूक्ष्म प्राप्त होते हैं, कोई वाक नही, परन्तु न करने से करना बहुत प्रिय कहलाता है। मेरा तो एक ही मन्तव्य रहता है, वह समय पूज्यपाद बहुत दूरी चला गया, जब यज्ञमान को ब्राह्मण यह कहता है हे यज्ञमान! तू ब्रह्मचरिष्यामि, तू अपने महामना को ऊँचा बना, परन्तु वह उसी के अनुसार अपने जीवन को बनाता रहता है। आधुनिक काल का यज्ञमान, आधुनिक काल का मानव, ऐसा यदि त्रुटियों को यह कहे कि तुम यह त्रुटि कर रहे हो, तो उसके हृदय में अग्नि प्रचण्ड हो जाती है। तो मानो यह क्या हुआ, यह यज्ञ और याग नही कहलाता है।

मानो यह तो अपने अन्तःकरण में ऊँचे ऊँचे ऐसे ऐसे संस्कारों को जन्म देता है, जिससे पुनरूक्ति मरणं को प्राप्त और पुनरूक्ति जन्मं होता रहता है। इसीलिए मैं यह कहा करता हूँ, क्या वह समय पूज्यपाद बहुत दूरी चला गया, राजा दशरथ को यह कहा गया कि तुझे पुत्रेष्टि याग करना है। तुझे एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहना है, ब्रह्मचारी कौन कहलाता है? ब्रह्मचारी उसे नही कहते, केवल हम अपने शरीर की रक्षा करें, यह भी ब्रह्मचारी है परन्तु अपने एक एक श्वांस को ब्रह्म में पिरोने वाला है, उसको ब्रह्मचारी कहते हैं। ऐसा यज्ञमान, जब याग करता है, तो उस याग के करने से वृष्टि याग करता है, तो वृष्टि होती है, वह पुत्रेष्टि याग करता है, तो पुत्र उत्पन्न होते हैं। वह मानो जो संसार की सम्पदा चाहता है वह उसे प्राप्त हो जाती है, परन्तु एक वर्ष तक वह ब्रह्मचारी रहता है।

ब्रह्मचर्य का अभिप्राय

मैंने अभी वर्णन किया है जो एक एक श्वांस को ब्रह्म में परणित करने वाला हो, जैसे मनके को धागे में पिरो देते हैं एक वर्ष की उसकी माला होनी चाहिए ऐसा यज्ञमान भगवन! देखो, आधुनिक काल में आप प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह असम्भव है। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि न करने से कुछ करना बहुत प्रिय है मानो देखो, जो अपने बाल्य हिरण्यं ब्रह्म लोकाः वह बाल्य अनुशासनं हीनं प्रीति लोकाः वह गृह नही कहलाता मानो देखो, जिस गृह में बाल्य मानो देखो, अनुशासन में नही रह पाते, वह गृह और माता पिता के पुत्र पुत्रियाँ नही होते, परन्तु देखो, जिस यज्ञमान का मनोबल अनुशासन में नही हो वह कोई यज्ञमान नहीं कहलाता मानो देखो, मैं एक आभ्यां में बहु वचनों में इस वाक को प्रगट कर रहा हूँ। जितना भी गृह सन्तति, गृहपति वे सब यज्ञमान हैं वह सब किसी ने किसी रूपों में वह याग करते हैं। अहा! मैं इन वाक्यों को विशेष देना नही चाहता हूँ। आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा कि आज मैं यज्ञमानों को अपनी शुभकामना प्रगट करने आया हूँ, कि हे यज्ञमान! तुम्हारा आयु दीर्घ हो और तुम्हारे आयु में सतोगुण हो, रजोगुण की मात्रा

तमोगुण की मात्रा सूक्ष्म हो, और प्रभु से यह याचना होती रहे कि हे देव! सुमति प्रदान कर यज्ञमानो का हृदय पवित्र बने, गृह सुगन्धि से परणित हो जाएं, हे ब्राह्मण! तू उद्गान गाने वाला तेरी आयु दीर्घ होनी चाहिए जिससे धर्म और वेद का प्रसार होता रहे, ऐसा मेरा मन्तव्य है ऐसा मेरा वाक कहता रहता है। आज मानो हे यज्ञमान! तेरा आयु दीर्घ हो, महान हो, तुम जन्म जन्मान्तरों से यागों की झड़ियों में परणित रहे हो, ऐसा मेरा सदैव मन्तव्य रहता है परन्तु आज मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जैसे यज्ञमानो के लक्षणों का वर्णन किया, मैं इसके विपरीत वाक उच्चारण कर गया।

शुद्ध आहार

परन्तु विचार विनिमय क्या, आज का हमारा वाक क्या कह रहा है हे यज्ञमान! तेरा गृह महान हो सुन्दर बनें और तेरे गृह में परम्पराई जो भावना है, वह बनी रहे, यज्ञशाला में परणित हो करके, अपने मनोनीत विचारों को सुन्दर बना। आज का समाज तो पूज्यपाद एक विचित्र समाज है, मैं विचित्र समाज की चर्चा तो किसी और ही काल में करूंगा, आज मैं यह उच्चारण करने लगूं। हे मानव! तू अशुद्ध आहार को ग्रहण न कर मानो वह मानव कहता है, यह तो परम्परा की वार्ता है, यह नवीन वाक प्रगट करों, अब, यह नवीन जगत कहलाया जाता है। परन्तु मैं आज नवीन जगत में नही नवीनता संसार में सदैव नवीनता बनी रहती है, वृद्धपन होता ही नही क्योंकि सत्य सदैव सत्य रहता है। क्योंकि उसमें न वृद्धपन आता है, न वह नवीन वत में रहता है वह एक रस रहने वाला है इसीलिए हे मानव! जितना भी महान कर्म है वह एक रस है, एक उज्ज्वल है उसको धारण करते रहो यह आज का हमारा वाक है यज्ञमान! तुम्हारा आयु दीर्घ हो, विचार शक्ति पवित्र बने और मैं अब प्रभु से याचना कर रहा हूँ क्या सदैव उज्ज्वलता को प्राप्त रहें, यह आज का वाक समाप्त होने जा रहा है, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद गुरुदेवः मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने अभी

अभी, अपने कुछ दो शब्द ही उच्चारण किये, केवल यज्ञमान को अपनी शुभकामना प्रगट की, मैं भी इसी कामना को प्रगट कर रहा हूँ, आयु में दीर्घ हो सत्यमयी कर्मों में प्रेरणा प्रभु प्राप्त करते रहें, यह आज का वाक अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक उच्चारण करने का अभिप्राय क्या, क्या यज्ञ में तीन ही भाव होतें हैं सबसे प्रथम देव पूजा, उसके पश्चात संगतिकरण, एक दूसरे में प्रेम भरण करना और तृतीय मानो देखो, दान की, दान कैसा हो, यह मैं व्याख्या किसी काल में करूंगा, आज का वाक समाप्त अब वेदों का पठन पाठन होगा।

6 ०४ ०५ १९६९ अहिंसा परमोधर्म

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, हमारे यहां परम्परागतों से ही, उस मनोहर पवित्र वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महानता का वर्णन किया गया है, जिस वेदवाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महानता का वर्णन किया गया है। आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणागान गाते चले जा रहे थे, जो परमपिता परमात्मा सदैव हमारे जीवन का साथी बना हुआ है। हमे एक महान उज्ज्वल जीवन प्रदान करता चला जा रहा है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस महामना देव जो संसार का मनोहर रचयिता है, अहिंसा परमोधर्म का धर्मज्ञ है, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, क्योंकि मानव का जो सबसे प्रथम जो लक्ष्य है, वह आनन्द को प्राप्त करना है। वह कहां प्राप्त होता है, जहां उस आनन्दमयी उसे प्राप्त करने लगता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! इसीलिए हमारे यहां ऋषि मुनियों ने कहा है कि आनन्द का जो स्रोत है, आनन्द को जो प्रदान करने वाला है, उसी को हमारे यहां महा चैतन्य प्रभु कहा जाता है। जो महान चेतना को प्रदान करने वाला है और

पवित्रता को मानो परणित कर देता है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस महामना देव की महिमा का गुणगान गाते चलें। हे परमात्मन्! तू कितना उज्ज्वल है, और कितना महान है, तेरी महानता का जब हम गान गाते हैं, तेरी महानता का जब दिग्दर्शन करने लगते हैं, तो हमारे शब्दों में, हमारे कण्ठ में, भी कोई शब्द ऐसा नही रह जाता है, जो आपके लिए उच्चारण किया जा सके कि आप इतने उज्ज्वल हैं। इतने शक्ति शाली हैं, क्योंकि आप वाणी की वाणी हैं। श्रोत्रों के भी श्रोत्र हैं। तो हे प्रभु! आप के गर्भ में यह सर्वत्र जगत वशीभूत हो रहा है। तो आपकी महिमा आपकी उज्ज्वलता का हम कहां तक वर्णन कर सकते हैं, परन्तु रहा यह कि आज हमें क्या उच्चारण करना है, हमारा वेदपाठ कहता चला जा रहा है कि मानव को अहिंसा परमोधर्म का पालन करना चाहिए। आज का वेदपाठ हमारे उस विषय में कुछ अपने विचार, अपना ज्ञान मानव के समीप नियुक्त किया जा रहा था, हमारी वाणी से इसका प्रसारण होता चला जा रहा था, वास्तव में वेद अनन्त ज्ञान युक्त है, क्योंकि परमात्मा जैसे परमानन्द है, आनन्द में भी मानो पूर्ण आनन्द है, उसका ज्ञान भी अनन्त है, वह स्वयं भी अनन्त है, इसीलिए बेटा! हम उस परमपिता परमात्मा की महती आनन्दमयी जो ज्ञान युक्त रहती है। वह बेटा! अनन्तता में परिणत की गई है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस महामना, उस चैतन्य देव की महिमा का गुणगान गाते हुए, अपने मानवतव को अहिंसा परमोधर्म की पवित्र वेदी पर ले जाएं। हमारे यहां दो प्रकार का अहिंसा परमोधर्म होता है, एक तो वह अहिंसा परमोधर्म है, जो मानव अपने आत्मबल के साथ साथ अपने मन को उज्ज्वल बनाता चला जाता है। जैसा सांख्य वेदाचार्यों ने कहा है महर्षि कपिल जी ने, महर्षि गौतम जी ने, इसका विश्लेषण किया है, आज मैं उस सम्बन्ध में नही जाना चाहता हूँ। मुझे इन वाक्यों को अधिक विश्लेषण नही करना है, उच्चारण केवल यह करना है कि हमारा जो जीवन है, मानो वह

अहिंसा परमोधर्म में परणित रहता है। अहिंसा परमोधर्म दो प्रकार का होता है, एक वह अहिंसा परमोधर्म है, जो आत्मा से सम्बन्धित होता है, आत्मा के बल से ही सुगठितता होती है, एक वह है अहिंसा परमोधर्म है, जो राजा से सुगठित रहती है। राजा के विचारों में प्रतिभा बन करके ओत प्रोत रहती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा को तो वह मानो अहिंसा परमोधर्म में होता है, जिसके द्वारा बेटा! चरित्र बल ऊँचा होता है, और चरित्र बल ऊँचा होते हुए वह अपने राष्ट्र को ताड़ना से नही, वह अपनी हिंसा से व्यस्थित करता है। जिस राजा के राष्ट्र में बेटा! आततायियों को दण्ड दिया जाता है, उसका जो हिंसक विचार है, मानो उस राजा के अनुकूल जिस राजा के राष्ट्र में बेटा! दण्ड दिया जाता हो, वह राजा अहिंसा परमोधर्म का पालन कर सकता है। क्योंकि उसके द्वारा धर्म है धर्म से युक्त नीति है, उसको धारण करने का नाम ही बेटा! एक रूप में अहिंसा परमोधर्म की प्रणाली में बेटा! युक्त किया गया है। आज हमारे यहां यह विचार आता है कि राजा को भी क्या किसी कारणों से नष्ट कर देना चाहिए। तो मेरा वाक यह कह रहा है बेटा! वेद का ऋषि कहता है कि प्राणं ब्रह्मे कृति अस्तु सुप्रजा न ध्यानं प्रजा वेद का ऋषि कहता है आत्मा और प्राण किसी काल में हिंसा को प्राप्त नही होते। मानो उसके विचारों में मानो एक शब्द सभ्य विचार आ गएं हैं उन शब्द सभ्य विचारों से दण्डित करना है इसे मृत्यु कहते हैं वह शब्दार्थों में वह, वास्तव में वह मृत्यु नही आती, वह रूपान्तर होता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना है कि हमें दो प्रकार के अहिंसा परमोधर्म को विचार विनिमय करना होगा, आज जो राजा होता है, वह अपने चरित्र को नष्ट कर लेता है और नष्ट करके प्रजा को अपने आंगन में धारण नही कर सकता, धर्म के अनुकूल वह राजा हिंसक होता है। मानो उसके द्वारा अहिंसा परमोधर्म नही होता, बेटा! वह राजा अहिंसा परमोधर्मी होता है, जो राजा अपने राष्ट्र में बेटा! आततायियों को नष्ट करता है और राष्ट्र पर आक्रमण करने वाला द्वितीय जो आततायी है उसको वह

दण्डित करता है, शूरवीरों से उसको नष्ट कराता है। उसकी महती प्रजा को मानो सेना को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। वह राजा उस राजा की सदैव संसार में सदैव पूजा होती है, जो बेटा! चरित्र से रहता है, अपने क्षत्रिय बल से पवित्र होता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! उस राजा का संसार में पूजन होता है। उसका आदर रहता है और जो राष्ट्र केवल कायरता से रहता है, आप भी क्षत्रिय बल भी पवित्र नही है, चरित्र बल भी ऊँचा नही हैं। बेटा! वह राष्ट्र ऐसे है जैसे बेटा! नौका गंगा भंवर में पंहुची है वह भंवरों में जा करके बेटा! वह अधुरत हो जाती है, बेटा! उसका धैर्य नही रहता, अधैर्यवान बन जाती है इसी प्रकार वह राजा बेटा! अपने न्याय और धर्म को अहिंसा परमोधर्म को राष्ट्रीय विचारों में ही स्वीकार करता है, उस राजा का राष्ट्र न होने के तुल्य माना गया है। आज नही तो वह बेटा! कल नष्ट होने वाला है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेदपाठ क्या कह रहा है, वेद का आचार्य वेद का ऋषि कहता है कि वास्तव में हमें अहिंसा परमोधर्म को विचार विनिमय कर लेना चाहिए। जैसा भगवान राम ने कहा है भगवान राम ने कहा है कि हमें अपने वास्तविक विचारों को उज्ज्वल बनाना है बेटा! जब महाराजा राम संग्राम करने के लिए तत्पर हुए, उस समय रावण अपने नाना प्रकार के आभूषणों से वह युद्ध में जो श्रृङ्गार होता है। मानो सेनापति का, मानो वह उसको धारण करके, जब राम के सम्मुख आया मानो ऊँचे रथ को वह सवार हो करके वह राम से संग्राम करने के लिए आया तो वह विभिषण का आत्मिक बल शान्त होने लगा। जैसे बेटा! सांयकाल को रात्रि छा जाती है, इसी प्रकार अन्धकार बेटा! अज्ञानता छा गई, विभिषण जी ने कहा राम से कि हे भगवन! आप रावण से विजय नही पा सकोगे, क्योंकि रावण तो बहुत शक्तिशाली है। परन्तु जब ऐसा शब्द कहा मन ही मन में राम ने कहा कि अरे, यह कायरता कहां से आ गई, यह वाक दूरी करना चाहिए, त्याग करना चाहिए, इसको क्या वाक उच्चारण करूं। भगवान राम ने कहा कदापि नही

विभीषण, आज मेरे द्वारा जो अस्त्र शस्त्र है मुझे उनसे संग्राम करना है, यह जो आभूषण बना हुआ है, यह जो पिण्ड का रथ है। यह कुछ समय में देख लेना कि यह कहां चला जाएगा, क्योंकि जो युद्ध करने आया है, आत्मा का बल जब उसके सम्मुख नही हैं। उसका बल हीतना को प्राप्त हो जाएगा, क्योंकि चरित्र का बल उसके सम्मुख नही हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! उस महान शूरवीर के द्वारा चरित्र भी होता है, क्षत्रिय बल भी होता है, कर्तव्य की वेदना भी होती है, बेटा! वह संग्राम में विजय नही होता। भगवान राम के द्वारा सर्वश था इसीलिए भगवान राम ने कहा कि हमारा जीवन जो है वह धैर्य के आधार पर है धैर्य हमारा जीवन है हमे वास्तव में किसी वस्तु को अपनाने से पूर्व किसी विडम्बना नही होनी चाहिए, जिससे वह विडम्बना हमारे आत्मिक बल को सूक्ष्म करती चली जाएं, हमारा जो दैनिक कार्य है उसको हीनता को प्राप्त करती चली जाएं, ऐसा हम नही चाहते भगवान राम ने जो विभीषण को कहा तो विभीषण मौन हो गया, एक ही वाक उन्होंने बेटा! संसार के नाना वाक नही क्या जब भगवान कृष्ण और महाराजा अर्जुन बेटा! अपने अस्त्रों शस्त्रों को त्याग करके रथ के पिछले विभाग में विराजमान हो गया था, उस समय भगवान कृष्ण ने कहा था अरे, अर्जुन! तुम इस प्रकार क्यों विराजमान हो गएं हो? उन्होंने कहा कि महाराजा! आज मैं जिसे नष्ट करने चला हूँ वह तो सब मेरा कुटुम्ब है मेरा परिवार है आज मेरे परिवार को ऐसे कार्य में क्यों लगा रहे, जिससे मुझे जन्म जन्मान्तरों तक जिसे भोगना होगा, इस पर भगवान कृष्ण ने कहा था अरे, अर्जुन! यह क्या चर्चा प्रगट करने लगे हो? तुम्हें कर्तव्य का पालन नही करना है, मानो यही तुम्हारा कर्तव्य है, कि तुम्हें अपने अस्त्रों शस्त्रों से नष्ट करना है। आज तुम यह जानते हो क्या यह सब प्राणी मृत्यु के मुखारबिन्द में जाने हैं और जैसे मृत्यु के मुखारबिन्द में जा करके इन्हें यहीं आना है। यह तो तुम जानते हो, तो तुम किस कायरता में चले गएं हो। आज वह व्यक्ति बेटा! कायर होता है जो अपने क्षत्रिय दृष्टि को त्याग करके, क्षत्रिय वृत्ति

को त्याग करके और देखो, न्याय और अन्याय को नही विचारता, बेटा! वह क्षत्रिय, वह राजा मानो कायरता को प्राप्त हो करके नारकिक बना करता है। उसकी अपकीर्ति होती रहती है, मानो कीर्ति नही होती, अपकीर्ति का एक रूप बन जाता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक उनके मस्तिष्क में आया, विचार विनिमय होता रहा, परन्तु अन्त में अर्जुन ने यह कहा कि महाराज! मैं अपने कर्तव्य को करने के लिए तत्पर हूँ। तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय करने का अभिप्राय यह है कि मानव को वास्तव अहिंसा परमोधर्म को विचारना है अहिंसा परमोधर्म किसे कहा जाता है? अब तुम्हे वास्तविक तत्त्वों की चर्चा मैं प्रगट करूं तो वास्तव में ईश्वर का अहिंसा परमोधर्म है, मानो ऋषियों का अहिंसा परमोधर्म है बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय महर्षि दालभ्य जी ने महाराजा अश्वेति और देखो, सामकेतु आचार्यों से उन्होंने एक वाक कहा था, शौनक इत्यादि ऋषियों से कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते हैं कि प्रहा ऋत किसे कहा जाता है। उस समय महर्षि दालभ्य जी के वचनों को पान करने वाले मुनिवरों! देखो, महर्षि ने कहा कि महाराज! चलो आज महर्षि अत्रि मुनि के आश्रम में चलते हैं तो बेटा! महर्षि अत्रि मुनि के आश्रम में पहुचा अत्रि जी के आश्रम में जा करके अत्रि मुनि महाराज से उन्होंने एक प्रश्न किया कि महाराज! हम अहिंसा परमोधर्म के इसके गर्भ में जो मानो ऋत विराजमान है उसको जानना चाहते थे। उन्होंने यह कहा कि बहुत सुन्दर, आईए, परन्तु मैं तो इसको जानता नही, मैंने इसका अभ्यास नही किया है। आगे चलो महर्षि भृगु आश्रम, तुम्हें प्रतीत हो रहा है, भृगु आश्रम में यह तुम्हें सब जानकारी प्राप्त हो सकती है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह महर्षि भृगु आश्रम में पंहुचे, महर्षि भृगु आश्रम में जाते ही, भृगु जी ने उनका बड़ा सुन्दर आदर किया, और सत्कार करते हुए उनके, चरणों को छूते हुए महर्षि दालभ्य इत्यादि ऋषिवर विराजमान हो गएं, विराजमान हो जाने के पश्चात उन्होंने यह प्रश्न किया कि महाराज! हम अहिंसा

परमोधर्म को जानना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि बहुत सुन्दर, विराजो, तो ऋषि मण्डल विराजमान हो गया, और आनन्दवत पूर्वक उनको प्राप्त हो गया, उन्होंने कहा बेटा! महर्षि भृगु जी ने अपने शिष्य शौनक ऋषि महाराज को प्रश्न किया कि हे शौनक ऋषि! यह वेद का पाठ करो। जटा पाठ और घन पाठ में वेदों का पठन पाठन करो। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह वेदों का पाठ प्रारम्भ होने लगा, जब उन्होंने बेटा! जटा पाठ में वेदों का पाठ प्रारम्भ किया और ऐसे मधुर स्वरों से वेदों का पठन पाठन किया कि शान्त ऋषिवर विराजमान हो गएं, परन्तु जहां शान्त ऋषिवर विराजमान थे, वहां हिंसक प्राणी मानो देखो, मृगराज इत्यादि भयंकर वन में से भी आ गएं वह भी विराजान हो गएं और जैसे ऋषिगण विराजमान थे। ऐसे भी हिंसक प्राणी बेटा! मृगराज भी विराजमान हो गएं बेटा! हिंसक प्राणी बेटा! अपनी पंक्तियों में विराजमान हैं, विराजमान हो करके जब वेद का पठन पाठन प्रारम्भ होता रहा, तो उनके द्वारा आत्मा की पिपासा होती है, आत्मा की तृष्णा में बेटा! व्याकुल होने के पश्चात उन्होंने ब्रह्मे व्यापा वृत्तं धारम अश्वेत्ति रुद्रो ब्रहो, मेरे प्यारे! ऋषिवर! उन्होंने अहिंसा परमोधर्म का अध्ययन किया हुआ था। जो मुनिवरों! अहिंसा परमोधर्मी वही व्यक्ति होता है जो अपने आत्म तत्त्व को जान लेता है। वह मुनिवरों! देखो, एकेश्वर जिसके हृदय में समाहित हो जाता है। तो ऐकेश्वर विराजमान है, देखो, हिंसक प्राणियों में भी देखो, एक ईश्वर ही विराजमान हैं आज मानव अपनी वाणी से हिंसा को प्रारम्भ न करो, मानव की वाणी से सबसे प्रथम हिंसा प्रारम्भ हो जाती है, हिंसा क्यों प्रारम्भ होती है? मानव जब कटु शब्दों का प्रतिपादन करता बेटा! उसको हिंसा हो जाती है। मुझे एक वार्ता स्मरण आती चली आ रही है, इस सम्बन्ध में देखो, मुनिवरों! जब महाराजा युधिष्ठिर ने द्वापर काल में इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ किया था तो यज्ञ करने के पश्चात महाराजा दुर्योधन इत्यादि सभी उस यज्ञ में विराजमान हुए, परन्तु विराजमान हो जाने पश्चात, महाराज युधिष्ठिर ने कहा कि हे दुर्योधन! हमारे भवन को दृष्टिपात करते जाना, परन्तु वह सुन्दर

कलाकारों से सुगठित है जब वह गृह का निरीक्षण करने लगे तो महाराजा दुर्योधन वहां महान व्याकुल हो गएं जहां उन्हें यह प्रतीत होता था कि जहां जल है, वहां निर्जल था, वहां जल नही था, वहां निर्जल था, वहां जल नही रहता था, जहां जल नही, वहां जल की धारा प्रतीत होती थी, महाराज दुर्योधन से व्याकुल हो गएं, कहीं जल में प्रविष्ट हो जाते थे। कहीं जल से पृथक हो जाते थे। तो मुनिवरों! देखो, वहां महारानी द्रोपदी ने एक वाक कहा था कि अन्धों की सन्तान अन्धी ही होती है। एक ही शब्द ने बेटा! वह भंयकर अग्नि प्रदीप्त कर दी, तो महाराजा दुर्योधन ने एक वाक कहा था कि हे द्रोपदी! मैं जानता हूँ कि मैं मानो तुम्हे एक दिन तुम्हें जनाऊंगा क्या मैं अन्ध का अन्धा हूँ, या तुम अन्ध की अन्धी हो, यह वाक उन्हे ऐसा स्थान कर गया था जैसे मुनिवरों! ब्रह्मा अस्ति सुप्रजा देखो, मानो देखो, अकृतियों में मानव व्याकुल हो जाएं, और व्याकुलता को प्राप्त करा दिया जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! इसी शब्द का परिणाम महाभारत जैसा संग्राम हुआ बेटा! यह इसमें बड़े बड़े महान वैज्ञानिक नष्ट हो गएं थे। तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय कि मानव को वाणी से ही हिंसा प्रारम्भ होती है, वाणी से ही हिंसा प्रारम्भ नही करनी चाहिए। मानव को सबसे प्रथम यह विचारना है कि किस शब्द का उच्चारण करना है, इस शब्द का परिणाम क्या होगा बेटा! जो मानव यह विचार लेता है तो बेटा! इस वाणी से हिंसा नही होती है। परन्तु वाणी मानव को पवित्र बनाता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं अहिंसा परमोधर्म की विवेचना कर रहा था, भृगु ऋषि के आश्रम में आदि ऋषियों का बेटा! गान हो रहा था परन्तु हिंसक प्राणी आ पंहुचे। अहा! जब गान समाप्त होने लगा, समाप्त हुआ, तो ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होने लगा, महर्षि भृगु जी ने कहा कि हे दालभ्य जी! यह विचारों कि यह जो तुम्हें यह जो दृष्टिपात आ रहे हैं। यह मानव मृगराज सभा में विराज है क्यों? यह मानव का भक्षण कर जाते हैं, मानव को निगल जाते हैं, और यह हमारे आश्रम में ऐसे

विराजमान हैं, जैसे एक सुन्दर बालक विराजमान होता है। क्यों विराजमान है, क्योंकि जो हमारा जो अन्तःकरण है, हमारा जो हृदय है, वह इतना विशाल इतना निर्मल हो चुका है क्या उसे हिंसा का कोई विचार ही नही हैं क्योंकि भय नाम की कोई वस्तु नही रही और जब भयभीत होने वाला कोई अङ्कुर नही रहता, तो मानो देखो, अहिंसा परमोधर्म बेटा! परमात्मा सर्वज्ञ है, परमात्मा हिंसक प्राणियों में बेटा! विराजमान होता है। बेटा! देखो, वह हिंसक प्राणी शान्त मुद्रा में विराजमान है कारण यह है कि इनकी आत्मा पिपासा में विराजमान रहती है, आत्मा तो ब्रह्म ज्ञान के लिए विराजमान रहती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मानव को अहिंसा परमोधर्म को विचार विनिमय करना है, तो मानव को किसी भी इन्द्रिय से पाप कर्म नही करना है। आज हम वाणी से पाप कर्म करतें हैं, कहीं चक्षुओं से पाप कर्म करते हैं, कहीं घ्राण से, मानो कर्णों से अशुद्ध शब्द को ग्रहण करते हैं, कहीं कटु शब्दों को श्रवण करते हैं, इन्हीं नेत्रों से देखो, कहीं हम कहीं नाना प्रकार के देखो, नाना प्रकार की अशुद्धियों का प्रतिपादन करते रहते हैं। मानो वह सभी वह एक प्रकार का पाप का मूल बन जाता है। वह मानव के अन्तःकरण को दूषित बनाता हुआ हिंसक बना देता है, और वह अहिंसा परमोधर्म में बहुत शुद्धता की आवश्यकता रहती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है, ऋषि मुनियों ने कहा है, आचार्यजनों ने कहा है कि आज हम विचार विनिमय करने वालें बने। हमारा जो जीवन है, वह महानता के आनन्द पर विरामजान है, जहां मानव का सुन्दर निर्माण होता है, और अहिंसा परमोधर्म जहां विचारा जाता है, वहां जहां हम अहिंसा परमोधर्म को विचार नही पाते हैं, आज बेटा! जो तत्त्व वेत्ता होते हैं, वास्तव में तो अहिंसा परमोधर्म को तो वही जानते हैं। राष्ट्रीय विचारधारा में भी मानो अहिंसा परमोधर्म होता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! एक लौकिक होता है, एक पार लौकिक होता है, पार लौकिक वह अहिंसा परमोधर्म होता है। जिसका

आत्मा बलिष्ठ होता हुआ वह ब्रह्मवेत्ता को तत्त्व वेत्ता को यह ज्ञान होता है कि मानवता को जानता हुआ होता है। वह वास्तव में बेटा! अहिंसा परमोधर्म को प्राप्त हो जाता है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह वाक हमारा क्या कहता चला जा रहा है कि विचार विनिमय करना है कि वास्तव में ऋषियों का जो अहिंसा परमोधर्म जो मुक्ति के मार्ग में, मुक्ति के निकट जाने वाले हैं, वह बेटा! स्वप्नवत में भी मानो उनके सम्मुख देखो, किसी प्रकार का भी हिंसक विचार नही आता, हिंसक विचार तो बेटा! उनके द्वारा आता है, प्रायः जो बेटा! देखो, इन्द्रियों से पाप कर्म करते हैं, जो बेटा! पांच ज्ञानेन्द्रियों को, पांच कर्मेन्दियों को, अच्छी प्रकार जानते हैं, उनका विश्लेषण जानते हैं, उनका कर्म जानते हैं, उनकी वास्तविकता को जानते हैं, बेटा! वह मानव संसार में देखो, बेटा! किसी भी काल में पाप कर्म करने में तत्पर नही होते। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं अहिंसा परमोधर्म की पवित्र वेदी पर विराजमान होते हैं, मुझे बेटा! स्मरण आता रहता है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में बेटा! शिक्षा अध्ययन के लिए जाते थे, मेरे प्यारे! ऋषि मण्डल! मुझे आज भी स्मरण आता चला जा रहा है कि लाखों वर्षों का वाक है, लाखों वर्षों का साहित्य है मुझे उसे पुनरूक्ति करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। मुनिवरों! देखो, एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान हैं, द्वितीय पंक्ति में बेटा! मेरी प्यारी माताएं और तृतीय पंक्ति में बेटा! मृगराज ओत प्रोत हैं जब हम बेटा! सभा विसर्जन होती, तो हम पूज्यपाद गुरुदेव के चरणों को छूते, तो माताएं चरणों को छुआ करती, उसके पश्चात बेटा! मृगराज आ करके बारी बार चरणों को छू करके बेटा! अपने आसन पर जाते थे। मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन किया कि प्रभु! यह क्या कारण है कि जो हिंसक प्राणी मानव को निगल जाते हैं, आपके चरणों को छू रहे हैं, आपके चरणों में विराजमान है, बेटा! हे पुत्र! उन्होंने ब्रह्मे अयोध्या चरित्राणि ब्रह्म लोका उन्होंने कहा हे पुत्र! जैसे ही तुम उच्चारण कर रहे हो,

हमारा यह आश्रम है जिसमें हम विराजमान हैं यह सुन्दर विचारों से भरा है जिसमें तुम विराजमान हो। यह सुन्दर विचारों वाला है जैसे अहिंसा परमोधर्म में इतना परणित हो गया है इतना महानता में ओत प्रोत हो गया है कि यहां कोई हिंसक नाम का कोई परमाणु नही रहा है, हिंसक प्राणी आत्मा की पिपासा के लिए चलते है। तो अहिंसा परमोधर्म के जो सुन्दर विचार हैं वह आत्मा को छूते हैं परन्तु देखो, आत्मा को छूते ही, वह हिंसक प्राणी अपने हिंसक भाव को त्याग करके वह जो अहिंसा परमोधर्म का पालन करने लगते हैं मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह मुझे स्मरण है क्या जब उनके चरणों को छूते तो वह मग्न होते थे मेरे प्यारे! ऋषिवर! हिंसक प्राणी अपनी मानव आप्तो को जानते हैं परन्तु जो हिंसा परमोधर्म को जानता है वह केवल अपनी इन्द्रियों से भी पाप कर्म नही करता, वह अहिंसा परमोधर्म प्राणीतव को प्राप्त हो सकता है, वह अपनी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से स्वप्नवत में भी काम वासना उसके मन में न आये। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इस वाक को उच्चारण करता करता गम्भीरता में नही ले जाना चाहता हूं। केवल वाक्यों का अभिप्राय यह है कि आज हमें अपनी मानवता को जानना है अहिंसा परमोधर्म को जानना है, अहिंसा परमोधर्म है क्या बेटा! मुझे तो संसार को दृष्टिपात करते हुए बहुत समय हुआ, मुनिवरों! देखो, एक वाक मुझे स्मरण आता चला जा रहा है, अहिंसा परमोधर्म क्या होता है? बेटा! जब मानव के उद्गम् हृदय के विचार होते तो वह हिंसक प्राणी के अन्तःकरण को छू जाते हैं। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! जब माता सीता और भगवान राम लक्ष्मण बेटा! भंयकर वन में चले गएं और वह एक समय बेटा! वन में भ्रमण करते हुए रात्रि छा गई। रात्रि में जब विश्राम करने लगे देखो, जब लक्ष्मण और राम भी गाढ़ निद्रा में विराजमान थे, भगवान राम भी निद्रा में विराजमान थे, तो बेटा! माता सीता जागरूक थी, जागरूक होने के कारण बेटा! महान अपनी स्थली पर चिन्तन कर रही थी, चन्द्रमा बेटा! अपनी कलाओं से युक्त था, इतने में ही बेटा! देखो, चन्द्रमा अपने प्रकाश से युक्त

था मुनिवरों! देखो, चन्द्रमा के प्रकाश में दृष्टिपात किया कि एक मृगराज आ रहा है और मृगराज को दृष्टिपात करते ही माता सीता ने मन ही मन कहा यह क्या है, हो सकता है क्या यह हिंसक प्राणी मानो यह मृगराज आ रहा है, यह मेरे पतियों को अवश्य नष्ट करेगा। उन्हे अपना आहार बनायेगा। उस समय यह विचारा कि यदि मैंने इस समय लक्ष्मण को जागरूक किया तो मुझे शोभा नही देता, और यदि मैंने अपने पति को जागरूक किया तो वह भी शोभा नही देता, क्योंकि पत्नी का धर्म नही कहता है कि पति को जागरूक कर देना चाहिए क्योंकि जब मानव निंद्रा की अवस्था में होता है उस समय उसका अन्तःकरण परमात्मा से उसका मिलान होता है क्योंकि निंद्रा अवस्था में देखो, मन बुद्धि चित्त अहङ्कार यह चारों साम्यवास्था में होते हैं। अन्तःकरण में जा करके यह सुषुप्ति को प्राप्त हो जाते हैं, इसी को बेटा! साम्यवस्था कहते हैं। मानो **वह चित्त के द्वारा आत्मा से बल को प्राप्त करते हैं।** इसीलिए यह मन के विचारों से मानो इनके मिलान को नष्ट करना नही

चाहती हूँ। मैं क्या करूं, उस समय वह प्रार्थना करने लगी, गायत्री छन्दों का पठन पाठन करते हुए माता सीता ने कहा कि हे मृगराज! मैं यह जानती हूँ कि हम तेरे राष्ट्र में आए हैं यह जो इतना भयंकर वन है, यह सब तुम्हारा राष्ट्र है। परन्तु तुम्हारे राष्ट्र में वास्तव में आए हैं देखो, हम तुम्हारे राष्ट्र में हैं मानो हम निंद्रा में तल्लीन हैं, मैं ही केवल जागरूक हूँ हे मृगराज! क्या तू हमें अपना आहार बनाना चाहता है तो यह शोभा नही देता। मुनिवरों! देखो, वह जो हृदय अगम्य के जो विचार होते हैं माता सीता ने कहा हे मृगराज! तू इस मार्ग को त्याग करके, द्वितीय मार्ग को ग्रहण कर, तो कहा जाता है महर्षि बाल्मीकी ने कहा है क्या प्रजास्ति सुप्रजा अश्व अच्यते मानता ब्रहे प्राहस्ते...... महर्षि बाल्मीकी ने कहा है कि माता सीता के करूणामयी वाक्यों को, विचारों को पान करने वाले मृगराज ने बेटा! वह मार्ग ही त्याग दिया, द्वितीय मार्ग को ग्रहण कर गया। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक्यों को अभिप्राय यह कि जो मानव आत्मवेत्ता होते हैं, आत्मा में बलिष्ठ होते हैं, आत्मा जिसका

उन्नत होता है, तो मुनिवरों! देखो, वह मृगराज भी उनके आहार नही करते। इसीलिए मेरे प्यारे! ऋषिवर! इसीलिए ऋषि सब भयंकर वनों में तपस्या में संलग्न रहते थे। मुझे स्मरण आता रहता है कि महर्षि भृगु आश्रम में बेटा! मैं वाक उच्चारण कर रहा था कि महर्षि भृगु आश्रम में बेटा! जब ऋषि मुनियों का विचार विनिमय चल रहा था कि जब भृगु जी कहा था कि यही अहिंसा परमोधर्म है क्या जो स्वप्न में भी हिंसक प्राणी उनके वाक्यों को श्रवण करने के लिए आते हैं, हमारे मनों में वह विचार भी नही आ पाता मानो इसीलिए वह सब अपने अपने मार्ग में स्थिर रहते हैं अहिंसा परमोधर्म उसी को कहा जाता है और उसी को ऋत और सत कहा जाता है जिसमें ऋत में सत होता है उसी को चेतना कहते हैं, वही चेतना बेटा! ईश्वरीय चेतना होती है, और ईश्वरीय चेतना में कोई हिंसक किसी का भक्षक बेटा! कोई होता ही नहीं।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! इसीलिए तो वह चेतना को जानने के लिए तत्पर होना है क्योंकि आत्मा परमात्मा की चेतना एक रस रहती है इसमें परिवर्तन नही होता इसमें न्यूनता अधिकता नही होती इसीलिए परमात्मा की चेतना को जानने के लिए सदैव तत्पर रहता है। तो इसीलिए बेटा! मैं आज अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम सदैव अपने आत्म उन्नति के लिए सदैव तत्पर रहें। क्योंकि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या संसार में अपनी आत्मा का उत्थान करने के लिए आते हैं, यहां बेटा! संसार में पाप कर्म करने के लिए नही आते हैं। यहां विचारक बनने के लिए आते हैं, अपनी आत्मा को उन्नत करने के लिए आत्मा को सुदृढ बनाने के लिए आते हैं, तो यह बेटा! आज का हमारा वाक्, आज मैं अधिक चर्चा तो प्रगट करने नही आया हूँ, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम प्रभु का चिन्तन करते हुए आज बेटा! आज मानव जो अशुद्ध कर्म करता रहेगा, तो इसका अभिप्राय यह नही है कि मानव नही भोगेगा। मैं तो यह वाक बारम्बार कहा करता हूँ कि मानव की चेतना, मानव का जीवन सुन्दर और धर्मज्ञ होना

चाहिए, परन्तु जब मानव यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि जो हमारा हम कर्म कर रहे हैं वह हमें नही भोगना होगा, यह मानव की धृष्टता है यह मानव का केवल अशुद्ध विचार है बेटा! संसार में मानव को अहिंसा परमोधर्मी बन जाओ, हिंसक बन जाओ, परन्तु जो भी तुम कुछ बनोगे जैसा तुम विचार बना लोगे, वैसा ही सङ्कल्प और ऐसा ही देखो, यह संसार प्रभु का जो रचाया हुआ है यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है जैसी भी तुम्हारी कल्पना होगी वैसे ही तुम बनते चले जाओगे।

इसके सम्बन्ध में बेटा! एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली जा रही है एक समय देवर्षि नारद मुनि संसार में आ पंहुचे, देवर्षि नारद मुनि संसार में विचरते हुए बेटा! वह मृत मण्डल में आएं मृत मण्डल में जब भ्रमण करने लगे, महर्षि नारद मुनि ने यह विचार किया था कि आज मैं किसी प्राणी को स्वर्ग में ले जाना चाहूँगा, जो महा दुःखित हो बेटा! जब देवर्षि नारद मुनि मृत मण्डल में भ्रमण कर रहे थे, भ्रमण करते हुए उन्होंने दृष्टिपात किया प्रातःकाल का समय था, एक मानव बड़ा दुःखित था, उससे प्राप्त किया नारद जी ने कहा अरे, तुम क्यों कष्ट में हो प्रातःकाल का समय है, इस समय तो सभी प्रसन्न होते हैं, उन्होंने कहा प्रभु! मैं इसीलिए अप्रसन्न हूँ, कष्ट में हूँ, क्या मेरी पत्नी मुझे नित्यप्रति दण्डित करती है। और आज मेरी पत्नी ने मुझे दण्डित किया है, आज मैं कष्ट में हूँ इसीलिए प्रभु! मैं बड़ा दुःखित हो रहा हूँ। और मैं प्रभु से यह याचना कर रहा हूँ कि हे प्रभु! मेरा प्राणान्त हो जाएं। देवर्षि नारद मुनि ने कहा कि अरे, चलो आज मैं तुम्हें स्वर्ग में ले चलें। तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ। तो उसने कहा तो चलिए भगवन! देवर्षि नारद मुनि दोनों भ्रमण करते हुए बेटा! स्वर्ग के द्वार पर जा पंहुचे, स्वर्ग के द्वार पर जा करके, नारद मुनि ने कहा भई यह स्वर्ग का द्वार है और स्वर्ग के द्वार पर जो यह कल्पवृक्ष है, इसके नीचे विराजमान हो जाओ। और मैं भगवान विष्णु की आज्ञा ले आऊं, तुम स्वर्ग में जाने योग्य हो अथवा नही बेटा! नारद मुनि ने, स्वर्ग में जा करके और वह मानव उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गएं

और जब कल्पवृक्ष के नीचे बेटा! विराजमान थे, वहां मन्द सुगन्ध वायु चली नाना प्रकार के सुगन्ध, वायु ने जब उस मानव को अधिक प्रभावित किया, और आलस्य और प्रमाद में परणित कर दिया तो मनुष्य के मन में कल्पना जागी, अरे, यहां तो अरे, मेरे लिए सुन्दर आसन होना चाहिए था, अब बेटा! कल्पवृक्ष था कल्पना करते ही सुन्दर आसन हो गया सुन्दर आसन लग गया। कल्पना करते ही जब आसन लग गया तो मुनिवरों! देखो, वह उस आसन पर विराजमान हो गया। जब विराजमान हो गया तो बेटा! जब मन्द सुगन्ध वायु ने और अधिक प्रभावित किया उस मानव को तो उसको कल्पना जागी अरे, यहां तो एक विश्राम करने वाला आसन होना चाहिए था। अब बेटा! कल्पना की और सुन्दर आसन लग गया। उस आसन पर विराजमान हो गया विश्राम करने लगा जब विश्राम करने लगा, जब विश्राम करने लगा तो बेटा! उस समय कल्पना जागी, अरे, यहां तो नाना प्रकार की अप्सराएं होनी चाहिएं थी सेवा करने के लिए। अब बेटा! उस मनुष्य ने जब कल्पना की तो सुन्दर सुन्दर अप्सराएं आ गई। और उसकी सेवा करने लगी, जब वह सेवा होने लगी, उस मनुष्य के मन में कल्पना जागी, अरे, यदि वह मृत लोक वाली पत्नी होती तो तेरे पर डण्डा भी होता, अब बेटा! कल्पना करते ही यहां पत्नी जी भी आ पंहुची, जब पत्नी भी दण्डे युक्त हो करके दण्डे सहित बेटा! वह मानव के द्वार पर आ गई। और उस मानव ने दृष्टिपात किया, अरे, यह तो वही पत्नी हैं। बेटा! आसन को त्याग करके वह आगे और उसकी पत्नी पीछे पीछे है बेटा! दीर्घता से भ्रमण करते जा रहे हैं, इतने में देवर्षि नारद मुनि आ पंहुचे, नारद मुनि ने दृष्टिपात किया कि यह क्या रचना रची जा रही है। देखो, वही पत्नी है, वही मानव है बड़ा व्याकुल है, देवर्षि नारद ने अपनी दीर्घ वाणी से कहा अरे, कल्पना को त्याग उसने बेटा! उस मनुष्य ने बेटा! कल्पना को त्यागा, इतने में न पत्नी है, न आसन है और न अप्सराएं है देवर्षि नारद मुनि बोले कि अरे, महाधूर्त! अरे, तूने उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो करके नाना प्रकार भोग विलासों की कल्पना की, अरे,

यदि तूने स्वर्ग में जाने की कल्पना करता तो तुझे आज स्वर्ग प्राप्त हो जाता। आज तूने यह क्या कल्पना की हैं, महाधूर्त! मेरे प्यारे! गुरुओं ने यह कहा कि वाक प्रगट हुआ वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि बेटा! आज मानव को स्वतः अपनेतव को विचारना होगा यह जो संसार है, जो एक प्रकार का कल्पवृक्ष है, यहां मानव जैसी भी कल्पना करने लगता है वैसा ही बन जाता है उसी प्रकार देखो, उसको मानव त्रास दे जाते हैं। तो बेटा! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि यह संसार एक प्रकार का कल्पवृक्ष है, कल्पना करो, सुन्दर करो यथार्थ करो विचित्र करो, जिससे तुम महान बन जाओ। ऐसी कल्पना न करो जिससे तुम अधोगति को प्राप्त होते चले जाओ, और मिथ्यावाद में रमण करते चले जाओ, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्। आज के वाक्यों का अभिप्राय कि जो मानव अहिंसा परमोधर्म की कल्पना करता है, वही अहिंसा परमोधर्मी बन जाता है। बेटा! जो हिंसक कल्पना करता है, तो हिंसक बनता चला जाता है। तो इसीलिए वेद का ऋषि कहता है वक्रताम् असुतां आभा चरितं ब्रह्मे वेद का ऋषि कहता है कि मानव को तो कल्पना करनी ही है, परन्तु अशुद्ध कल्पना क्यों करते हो, शुद्ध कल्पना क्यों न करो। जिससे तुम्हारा कल्याण होता चले जाएं। यह है बेटा! आज का वाक्। आज का वाक अब समाप्त होने जा रहा है, बेटा! कल समय मिलेगा हम शेष चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगें। आज के वाक्यों का अभिप्राय केवल यह है कि हमें अपनी वाणी को तो ऊँचा बनाना है। पवित्र बनाना है। संसार में ऊँची से ऊँची से कल्पना करना है।

आओ, हम हिंसक प्राणियों को हम अहिंसा परमोधर्म में परिवर्तित करना है यह आज का वाक्। राष्ट्रवाद को अहिंसा परमोधर्म को विचारना है, जो आततायी प्राणी होते हैं, राजा का कर्तव्य है, उसका अहिंसा परमोधर्म उसी में है उनको यथाशक्ति दण्डित करना चाहिए, जिससे आततायी प्राणी मानो मेरी पुत्रियों के श्रृङ्गार को भ्रष्ट न कर जाए, क्योंकि यह राष्ट्र के लिए बड़ा एक महा कलंक हो जाते हैं यह है आज का वाक

अब हमारा समाप्त होने जा रहा है अब आज का वाक समाप्त अब समय मिलेगा तो बेटा! शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें। आज का वाक समाप्त होने जा रहा है। ओ३म् मधु माणां माणु ग्राहणं दधि आभाः इदं रेवं रथां माणां। ओ३म् देवं मया ग्रणा गृह वन्धना आभा मनु ग्राहण रधि आभ्यां गताः माणाः वन्धनाः प्राची सर्वा गतं मयाः। ओ३म् ब्रह्म मणाः व्यापं रयियां भद्र दधिमां सर्वा स्वरं ब्रह्मणा।

7 २१ ०६ १९६९ भारत भूमि का गौरव

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! अभी अभी हमारा पर्यन्त हमारा समाप्त हुआ, आज हम तुम्हारे समक्ष, पुनः की भान्ति, कुछ वेदमन्त्रों का गान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने जिन वेदमन्त्रों का पाठ किया और आज का जो हमारा वेदज्ञ मन्त्र, हमें सूक्ष्म रूप से जो प्रेरणा दे रहा था, वह बडी विचित्र है। वह मानो विचित्र है। जिसको जानने से हमारे हृदयों में, इस अन्तरिक्ष में, सर्वत्र लोक लोकान्तरों में, जिसकी ज्योति से, यह विश्व सब प्रकाशित है। हे परमात्मन! तू कितना अनुपम है। प्रभु! तेरी रचना कितनी अनुपम है। तेरा रचाया हुआ, यह मानव शरीर कितना अनुपम है। प्रभु! तेरी महानता का वर्णन किया जाता है। हम भी किया करते है, और भी नाना किया करते है। परन्तु मेरे देव, तेरी महिमा बड़ी अनुपम है, विचित्र है, आज हम तेरी महिमा को विचारते रहते है, प्रभु! हम नक्षत्रों पर जाते है, किसी काल में प्रवृत्ति चन्द्र मण्डल पर जाती है, किसी काल में प्रवृत्ति सूर्य लोकों में जाती है वही प्रवृत्ति भगवन्! और भी नाना प्रकार के लोकों में रमण करती है। परन्तु ये सब कुछ क्या है? ये केवल हम कल्पना करते है, किसी कार्य करने के लिए हम केवल कल्पना करते है। परन्तु वह कल्पना, एक विशाल स्वरूप को धारण कर लेती है, वह विशाल स्वरूप को धारण कर लेती है, उस विशालता में हमारा जीवन नष्ट भ्रष्ट हो जाता है, जिससे मुनिवरों! हमें प्रतीत होता है, हम उन्हीं वाक्यों को विचार विनिमय में लाते है कि वास्तव में हमें, वास्तव में कुछ चर्चा प्रतीत होती है। आज हमारी कल्पना तो मिथ्या ही नहीं होती, हमारी कल्पनाओं में

संसार का विज्ञान भी होता है। हमारी कल्पनाओं में मानो जीवन के लिए शान्ति का, एक संदेश भी होता है। परन्तु देखो, हमें तो बेटा! उस वर्तमान को विचारने का पूर्व प्रयत्न करना है।

वेद का आदेश

बेटा! आज मैं विशेष व्याख्या नहीं प्रगट करूंगा। अधिक समय नहीं लूंगा। आज का जो वेद कहता चला जा रहा था, मैं संक्षेप में चर्चा कर रहा हूँ। बेटा! वेद ने आज कितना सुन्दर वर्णन किया है, वेद तो स्तुति, शान्ति का एक प्रतीक है। वेद एक अमूल्य ज्योति है, जिसमें बेटा! वेद स्वयं वेद के प्रकाश का सूक्ष्म सा संकेत मिला है और वह क्या संकेत था? सूक्ष्म संगतं प्रमाणे वस्तुति विश्रमम् वह सूक्ष्म प्रेरणा है। मानव को परमात्मा के गर्भ में पहुंचाने की, मानव को, इस संसार में स्वच्छ और अहङ्कार वाले, बल से हीनम् बेटा! संसार में नहीं रहना चाहिए। जो मानव, बल से हीन रहता है, कर्म क्रियाओं से हीन रहता है, अपने जीवन का भी वह हीनं होता है, तो वेद ने कहा कि उस मानव का संसार में कोई जीवन नहीं, मानव द्रव्यपति हो, उसका शरीर अस्वस्थ रहने वाला हो, तो वह द्रव्य कोई महत्त्व वाला नहीं कहलाता। परन्तु द्रव्य न हो और मानव जीवन श्रेष्ठ हो उसके लिए मानव जीवन है। अरे, वह द्रव्य क्या पदार्थ है, उस प्राणी के लिए, मैं बेटा! माया का, श्री लक्ष्मी का, विरोधी नहीं हूँ क्योंकि इससे राष्ट्र चलता है, मानव जीवन का पालन पोषण होता है, हम इसके विरोधी नहीं, परन्तु विरोधी इसके हैं जो केवल सर्वस्व इसी का पुजारी बन जाता है। और सर्वस्व इसी को स्वीकार कर लेता है, इसके अन्तर्गत, इसके आंगन में आ करके नाना प्रकार के पाप अङ्कुर अपने अन्तःकरण में विराजमान कर लेता है। जो इसके हम विरोधी है। हम केवल श्री, लक्ष्मी के विरोधी नहीं है, जो अनादि काल से चली आ रही मुनिवरों! हम तो विरोधी है, तो केवल उस वस्तु के है, जिसमें कोई मानो मन्तव्य नहीं, उन कार्यो को करता चला जाता है, हम तो केवल उसके विरोधी है। वेद तो बेटा! संकेत देता चला जाता है, मैंने

इससे पूर्व काल में, कुछ संकेत दिए, अपने कुछ विचार भी प्रगट किए, कुछ सृष्टि के और इस संसार के परिवर्तन की चर्चा, मानव के विचारों में परिवर्तन आ जाना, मैंने सूक्ष्म सूक्ष्म चर्चाएं प्रगट की है। मुझे आज अधिक समय नहीं, आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! अधिक समय लेंगे, मैं तो केवल यह वाक प्रगट कराने जा रहा हूँ।

प्रलयकाल

कि हे मानव! तू उस प्रभु का, प्रभु की सृष्टि को विचार, मानव जीवन को विचारने वाला बन, और अपने जीवन को ऊँचे शिखर पर ले जा। मुझे ऋषि ने संकेत दिया, मुझे आदि सृष्टि का यह प्रकरण और प्रलय काल का समय, दृश्य स्मरण आता है तो हृदय में एक कम्पन्नता आती है। जिस समय मुनिवरों! देखो, प्रलयकाल आता है, निश्चित है, जो मानव धर्मज्ञ होता है, जिस मानव का अन्तःकरण पवित्र होता है, और वह भी शुद्ध होता है। मुनिवरों! वह प्रलयकाल में क्या, सृष्टि की रचना में, वही आत्मा आ करके यहाँ नियम बद्ध कर देती है संसार को, परन्तु देखो, जिस समय प्रलय काल होता है, प्रलयकाल में बेटा! देखो, क्या क्या होता है वह सब तुम्हें प्रतीत है। और वह यह होता है, नाना प्रकार के प्रकृति के आक्रमण आते है, मानव का जीवन नष्ट होने लगता है, जल के प्रहार, आक्रमण होने लगते है, अग्नि का आक्रमण होने लगता है, अपने अपने स्वरूप में जाने का प्रयत्न करते है। परन्तु बहुत से प्राणी, बहुत से दृढ सङ्कल्पवादी जैसे बालक नचिकेता, जैसे बालक प्रहलाद और भी आदि, बेटा! प्रकृति का आक्रमण हो रहा, मनुष्य नष्ट करने के लिए उद्यत हो रहे है। परन्तु वह अपनी मर्यादा भङ्ग नहीं करते, वह सदैव उसी स्थिति में रहते है जैसे महात्मा भृगु, प्रकृति का आक्रमण होता है, प्रकोप होता है, पित्त प्रधान हो जाता है, किसी काल में वायु प्रधान हो जाती है, किसी काल में दोनों का सम्पर्क हो जाता है। परन्तु यहाँ, जो धर्मज्ञ है, शुद्ध सङ्कल्पवादी है उसके हृदय से प्राप्त करो कि उसे क्या प्राप्त होता है, उसके हृदय में कितनी विचारधारा पवित्र है। वह मानव कितना आस्तिक और कितना उस

प्रभु का पुजारी है। बेटा! सर्पों के आक्रमण होते है, परन्तु उसे कुछ ज्ञान नहीं होता, सर्पों से दूरी, परन्तु देखो, सब कुछ कितनी विचित्र गति है, परन्तु देखो, वह प्राणी, कितना सौभाग्यशाली है बेटा! जिस मानव को मानो देखो, उन आपत्तियों से भी, किसी काल में अपने उद्देश्य को नहीं त्यागता, वह मानव कितना सौभाग्यशाली है बेटा! उस मानव के द्वारा, कितनी दृढ़ता है, प्राणी जब मानो जब अपने को जान लेता है। परन्तु मैं तो केवल यही अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहा हूँ। मुझे तो संक्षेप ही आदेश देना था, वह यह कि हमें वैदिक ज्योति को विचारना है, हमें अपने साहित्य को विचारना है, हमें अपने मानव जीवन की गाथाओं को विचारना है, मन पर संयम करना है, और दृढ़ सङ्कल्पवादी बनना, शरीर को नाशवान जान करके और मुनिवरों! देखो, बलिष्ठता, मानवता, उसकी कायरता समाप्त हो जाती है बेटा! अब मैं अपने वाक्यों को समाप्त करने जा रहा हूँ अब जैसा महानन्द जी ने कहा है, वह अपने विचारों को प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् रयिमां तपत्वा प्रपृधा युञ्चते वरुणो पदमस्ति व्रताः रेवं नमस्ते नस्मते नमस्ते। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र समाज! मेरी पूजनीय माता! मेरे आदि ऋषि मण्डल! मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने, आज यह कुछ समय के पश्चात यह एक अमूल्य समय दिया, मेरे पूज्यपाद का जो एक अनुपम एक अमृत धारा चलती है, उसका केवल एक ही मन्तव्य रहता है, सर्वश जितनी वार्ता की माला है, गाथा की माला है, उस गाथा का केवल एक ही मन्तव्य है और वह है दृढ़ सङ्कल्प, वह है दृढ़ता। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे यह पुनः कुछ समय के पश्चात यह समय दिया है। जिस समय में, मैं आज प्रत्येक वाक को व्यापक रूपों में प्रगट कराने जा रहा हूँ। आज के संसार को क्या बनना है, और क्या बनना था और क्या बन गया, यह विचारने का शब्द, मैं तो केवल, वह वाक स्पष्टीकरण कराने जा रहा हूँ, जो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे स्मरण कराए, मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव

से कहा, प्रभु! संसार में भौतिक विज्ञान प्रगतिशील है, यह भौतिक विज्ञान क्या करेगा? परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक ही उत्तर दिया और वह उत्तर यह दिया कि मानव में अभिमान आ जाएगा, मानव में नष्ट भ्रष्ट करने की आस्था, निराशा होती चली जाएगी। आज मैं उन वाक्यों को ले करके ही चल रहा हूँ जो गुरुदेव ने मुझे संक्षेप में वर्णन कराएं। मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से कहा प्रभु! भौतिक विज्ञान का किस काल में, विनाश हो जाता है और संग्राम जब होता है तो उसके क्या क्या लक्षण होते है राष्ट्र में? मैंने अपने पूज्य गुरुदेव से एक ही प्रश्न किया। उन्होंने सन्तुष्टि, उनकी वाक माला से, मानो मेरे हृदय की सन्तुष्टि नहीं हो पाई। परन्तु, आज मैं वह चर्चा उच्चारण करने आया हूँ जो शब्द व्यापक हो करके चलता है, सूक्ष्म हो करके चलता है और व्यापक हो करके चलता है। आज के संसार में, सबसे पूर्व तो यह माना, कि सृष्टि की रचना को, केवल सात लाख वर्ष के लगभग हुआ, कोई कहता है, कुछ किसी प्रकार से मानते है। परन्तु वैदिक साहित्य क्या कहता है यह विचारते नहीं।

वेद ईश्वरीय ज्ञान

यहाँ देखो, पश्चिमी संसार ने यह माना, कि वेद तो ऋषियों के बनाए हुए है, ऋषियों से ही आए। परन्तु यह हम भी मानते हैं, ये पश्चिमी बुद्धिमान ही नहीं मानते, इसको हम भी मानते है। और वह किस रूप में मानते है, हम किस रूप में माना करते है। उन्होंने कहा भई! यह जो वेद है, यह ऋषियों का ज्ञान है, हम यह कहा करते है कि ऋषियों का नहीं, परमात्मा का ज्ञान है। अब दोनों का हमें मिलान करना है किस प्रकार कर सकते है दोनों वाक्यों का। हम यह जानना चाहते है कि ऋषियों का ज्ञान किस प्रकार है और परमात्मा का ज्ञान किस प्रकार है? मुनिवरों! देखो, परमात्मा का ज्ञान तो इसीलिए है, जो हम निश्चय किया करते है कि परमात्मा का ज्ञान है इसमें किसी प्रकार की न्यूनता नहीं, कोई इसमें किसी प्रकार दोष नहीं आ सकता। और जिस ज्ञान में कोई किसी प्रकार का दोष नहीं आ सकता, वह ज्ञान भी परमात्मा की देन है। मनुष्य अपने

ज्ञान से कितना ही बुद्धिमान हो, ऋषि हो, प्रज्ञा चक्षुवादी हो, परन्तु जब वह किसी वाक को ले करके चलता है धार्मिकता को, और वह किसी काव्य को बनाता है, परन्तु उसमें कोई न कोई पक्षपात की धारा होती है। इसीलिए वह ईश्वरीय ज्ञान, क्योंकि इसमें किसी प्रकार का पक्षपात नहीं। ये सारे संसार के लिए, इसमें एकता है और यह पृथ्वी मण्डल के लिए नहीं, यह चन्द्र, सूर्य और बृहस्पति लोकों के लिए भी इसी भान्ति का है। आज इसमें व्यापकता हो। आज हम उसको कह सकते है कि यह परमात्मा का ज्ञान है। यह परमात्मा की अमूल्य निधि है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो, आत्मा, परमात्मा की चर्चा, नाना रूपों में वर्णन कराते है, परन्तु आज के संसार का ज्ञान नहीं।

राष्ट्र की निधि

आज जहाँ हमारे व्याख्यान की माला जा रही है, जहाँ मेरे पूज्य गुरुदेव का वह भौतिक पिण्ड है, परन्तु यह वह स्थान है जिस स्थान पर महाराजा कृष्ण, विराजमान और महाराजा कृष्ण, का सूक्ष्म सा गृह, उसमें वह विश्राम किया करते थे, पाण्डव को निर्णय देने के लिए। यह वह पवित्र स्थान है जहाँ युधिष्ठिर ने पवित्र यज्ञन किया, जहाँ ऋषि मुनि निमन्त्रण सहित, राजाओं को सन्तुष्ट नीति का पाठ पढ़ाने के लिए आए, परन्तु आज विचारने वाला जो शब्द है, वह क्या है मेरे गुरुदेव! वह केवल यही है, आज हमें विचार विनिमय कर लेना चाहिए, कि हम कहाँ है, कहाँ थे क्या बन गए? मैंने, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव वह समय दृष्टिपात किया है, जब यहाँ स्वार्थी मनुष्यों ने, स्वार्थी प्राणियों ने, अपने सूक्ष्म से स्वार्थ के लिए देखो, राष्ट्र की निधि की निधि को समाप्त कर दिया, और वह निधि क्या होती है? सबसे उज्ज्वल यदि कोई राष्ट्र की निधि है, सबसे पवित्र यदि राष्ट्र की कोई निधि है, तो वह संस्कृति है। राष्ट्र की निधि संस्कृति है और उस निधि के बिना राष्ट्र देखो, किसी प्रकार भी नहीं चलता देखो, जिस राजा के द्वारा द्रव्य होता है और द्रव्य को अच्छी प्रकार उपयोग में लाने के लिए निधि नहीं होती। तो वह द्रव्य भी कोई भी, वह

द्रव्य मृतक है, व्यर्थ है, उस द्रव्य का क्या बनेगा इस संसार में, परन्तु मैं यही कहने आया हूँ। आज मैं सूक्ष्म सा वेद का प्रकाश देता चला जा रहा था, आज के संसार में, इस भारत भूमि में, जहाँ राम और वशिष्ठ, जहाँ महाराजा रघु, महाराजा सगर, महाराजा असमंजस, महाराजा हरिश्चन्द्र, महाराजा भागीरथ, शुभ्रान, अञ्चेत, धृति, ध्राष्टकेतु आदि ऋषि ये नाना प्रकार की प्रणाली, राम की, प्रणाली, रघुकुल की चलती रही आदि, आदि।

सोम रस

परन्तु इसके उच्चारण करने का क्या अभिप्राय है आज मुझे, मेरे गुरुदेव तो कई काल में निर्णय कर चुके है। परन्तु मुझे तो केवल यह देना है, कि आज यह मान बैठे है कि यह जो विज्ञान आया है, भौतिक विज्ञान यह पश्चिमी पृथ्वी मण्डल से आया, पश्चिमी से आया है हमारे द्वारा नहीं था। अरे, कहाँ थे तुम? अरे, क्या उच्चारण कर रहे हो, अरे, जहाँ महर्षि जैमिनी ने जा करके, आधुनिक काल में मेरे गुरुदेव तो जानते नहीं, आधुनिक काल में उसे जर्मनी कहते है, जैमिनी जी ने जिसका निर्माण किया था। महाराजा जन्मेजय, जिस समय महाभारत का काल समाप्त हो गया, महाराजा जन्मेजय यहां से जितने चारों वेद थे, उनकी संहिताएं थी, वह सब देखो, जिसे आधुनिक काल में हम जर्मनी कहते है, उसमें उन्होंने उसमें विद्यमान किए, और वहाँ देखो, वीर अभिमन्यु का, अर्जुन का, घटोत्कच्छ इन सबका साहित्य देखो, वहाँ चला गया था। उनका सूक्ष्म सा साहित्य और जो यहाँ रह गया, अरे, यहां इतने स्वार्थी बन गएं महाभारत काल के पश्चात क्या इन्होंने देखो, पुस्तकालयों से ज्ञान लेना शान्त कर दिया, उनको अग्नि के मुख में परणित कर दिया, जब अग्नि के मुख में कर दिया तो यहाँ अज्ञानता नहीं आती तो और क्या आता। अरे, जहाँ यहाँ सोमरस को पान करने वाला, यहाँ देखो, गुरु द्रोणाचार्य ने, पितामह भीष्म ने, सोमरस के ऊपर एक पुस्तिका बनाई, लेखनीबद्ध की उसमें और यह कहा कि प्रत्येक प्राणी सोमरस का पान करने वाला बने। सोमरस किसे कहते है? यहाँ शाकाहारी बनना चाहिए, यहाँ अन्न

का पान करना चाहिए और इस भारत भूमि को देखो, स्वर्ग बनाना चाहिए। आज जब वह सभी उन गुरुओं की निधि, उन राष्ट्रों की निधि, अग्नि के मुख में चली गई, तो क्या करते। परन्तु शाकाहारी न बन करके, आज यह प्राणाहारी बन गया संसार, प्रतिहारी बन गया, परन्तु जब शाकाहार को समाप्त करके यह अग्नि के मुख में इन्होंने दे दिया, तो यह और क्या बनते।

भारत की धरोहर

परन्तु मैं केवल संक्षिप्त, संक्षिप्त वाक प्रगट करूंगा। वास्तव में उच्चारण करने के लिए इतना है कि मुझे इतना कष्ट है कि यह संसार देखो, कहाँ जा रहा है परन्तु देखो, आज मुझे कहांनियां बहुत है, उच्चारण करने के लिए, परन्तु समय सूक्ष्म है। आज मैं दर्शनों की, संसार की, चर्चा करता चला जाऊं, तो नही समाप्त होगी। मैं आज मैं केवल इतना ही वाक प्रगट कराने आया हूँ, कि आज के मानव को यह नहीं मान लेना चाहिए, कि यहाँ विज्ञान नहीं था। यह विज्ञान आज देखो, प्रत्यक्षवादी मानते है, कि हम प्रत्यक्षवाद को मानते हैं। परन्तु देखो, आज तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए, जितना भी संसार में अप्रत्यक्षवादी है, अप्रत्यक्ष में जाओगे वहाँ तुम्हें कुछ मिलेगा, प्रत्यक्षवादी बनोगे, वहाँ तुम अपने को, कुछ को नष्ट कर दोगे, मैं इसका विरोधी नहीं की प्रत्यक्षवाद नहीं होना चाहिए, प्रत्यक्षवाद भी होना चाहिए। परन्तु देखो, अप्रत्यक्षवाद भी, जिसे हम परमात्मा, जिसे ओ३म्, जिसे और भी अन्य रूपों से संसार मानता चलता आया है। परन्तु मैं केवल एक सूक्ष्म सा आदेश प्रगट कर रहा था। आज यहाँ क्या बनना है, यहाँ केवल देखो, सोमरस का पान करना है। यहाँ केवल अन्न का भक्षण करना है, यहाँ नाना सोम लताओं को पान करना है, यहाँ मानो जैसा जिसका जिसका अमृत है, परमात्मा ने जैसा जिसको बनाया है, वैसा ही इसको आहार पान करना है और यदि इससे कोई विपरीत चला मानव अपनी बुद्धि को नष्ट भ्रष्ट करता चला जा रहा है। आज जब हम संसार का भ्रमण करते है, इस भारत भूमि का, द्वितीय राष्ट्रों का भी भ्रमण करते है संसार

में विज्ञान की तुलना करते है, परन्तु देखो, यह यहाँ तो विज्ञान भी होना चाहिए परन्तु विज्ञान के साथ साथ, परन्तु यह न मानो कि यह विज्ञान हमारे द्वारा नहीं था, यह पश्चिम से आया है, अरे, नहीं यह तो परिवर्तन होता है। आज जिन्हें तुम वैज्ञानिक कहते हो, अरे, वह काल था, जब जिसको आधुनिक काल में तुम रुस कहते है और आज पातालपुरी, अमरीका कहते हो, परन्तु उन राष्ट्रों में देखो, महर्षि वेदव्यास को ले गएं और वहाँ उन्होंने शिक्षा को ग्रहण किया। आज कहाँ हो तुम? परन्तु वे गुरु हमारे थे, जिन्होंने देखो, संसार में अपने जीवन को अवतरण कर दिया, अपने जीवन को दे दिया, परन्तु देखो, उन मूर्खों को, जहाँ आज तुम जिन्हें बुद्धिमान तुम समझे हो, तुम्हारे विराजमान है बुद्धिमानता में उन्हें आज उन्हें तुम अपने हृदय में स्थान देते हो, वे मूर्ख देखो, परन्तु मूर्खता से उन्हें मनुष्यता में लाने का प्रयत्न किया।

गौ का महत्व

आज परन्तु देखो, इसको आज हमें विचारना चाहिए, आज हमें यदि पूर्व की भान्ति बनना है, वेदव्यास की भान्ति बनना है, हमें जैमिनी और देखो, महर्षि भृगु आदि आचार्यों की तुलना करनी है, तो हम स्वर्ग बना सकते है संसार को, अन्यथा क्या होगा, यह तुम्हें प्रतीत है, जिस समय इस महा ब्रह्मणी वस्ता आर्यावर्तो का, जहाँ आर्य विश्राम करते है, जहाँ आर्य रहते है, तुम्हें प्रतीत है, जब आर्यों का आहार व्यवहार समाप्त हो जाता है तो संसार कहां जाता है, जब संसार कहां जाता है तो संसार अग्नि के मुख्य में चला जाता है। तो प्रतीत है अग्नि के मुख में चला जाता है परन्तु अग्नि क्या, जो आज तुम्हें प्रत्यक्ष है, भस्मासुर वाली है, जैसा गुरु ने वर्णन मेरे पूज्य गुरुदेव ने वर्णन किया जैसे नहुष की वार्ता है परन्तु इसी प्रकार प्रत्येक मानव अग्नि के मुख में जाने के लिए उद्यत हो रहा है, यह उस वेदी पर पहुंच चुका है। आज का संसार उस वेदी पर पहुंच चुका है जहाँ देखो, जिस गढ़ढे में अग्नि प्रदीप्त हो रही है, आज उसमें तत्पर है, आज इसमें देखो, अग्नि में प्रविष्ट होने के लिए उद्यत हो रहा है। यह क्या है, परन्तु

देखो, अग्नि के मुख में जाने के लिए प्रत्येक मानव प्रयत्नशील है। आज कैसे प्रयत्नशील है, आज यही प्रश्न होता है, अरे, प्रयत्नशील इसलिए है कि जहाँ आज यह राजा है अरे, जहाँ, मैं देखता हूँ, गुरुदेव को तो प्रतीत नहीं, जहाँ गऊओं का निरादर किया जाता है, जहाँ गऊओ का निरादर किया जाता हो, जहाँ एक गऊ का निरादर देखो, महाराज दिलीप जी ने किया, उसी गऊ के निरादर के लिए वशिष्ठ ने आज्ञा दी, गुरु ने कहा अरे, यह तूने क्या किया राजा, अरे, गऊ का निरादर किया तुमने, परन्तु देखो, बारह वर्ष तक गऊ का सेवक बन करके रहा। अरे, वह राजा, आज के राज्य संसार की क्या गति है, आज के संसार की क्या विचारधारा है, आज का संसार कहता है अरे, अन्न से तो उदर की पूर्ति होती नहीं, और क्या करेंगे, इससे अपने उदर की पूर्ति करेंगे। अरे, यह क्या है, यह किसी काल में तुमने विचारा है या नहीं। परन्तु इन वाक्यों को विचारों, इनमें क्या रहस्य है। आज राजाओं से कहो महाराजा! गऊओं की रक्षा करने के लिए कुछ किया जाए, उन्होंने कहा राजा कहते है सम्भू वर्णोस्ति अनिकृता अनिकृता वञ्चति प्रवणे सहे अरे, गऊओं की, तुम कहाँ गऊओं को स्थिर करते हो, परन्तु त्रधि प्रवणा वर्तते अरे, जहाँ तुम देखो, सूक्ष्म जो तुम्हें लाभ देते है, सुगन्धिवर्धक तुम्हें वायु देते है आज तुम देखो, सूक्ष्म से प्राणियों को अपने मुख में अर्पित कर जाते हो। जहाँ गऊओं का तुम्हें दुग्ध पान करना था, घृत पान करना था, आज के संसार में उसे सर्वत्र को ही भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। अरे, क्या यह संसार जीवित रह सकेगा, क्या यह प्राणी जीवित रह सकेगा, अरे, क्या देखो, गऊओं के रक्त को पान करने से, क्या प्रतीत, तुम्हारे अन्तःकरण में क्या बनेगा, अरे, देखो, आज तुम देखो, गऊओं के पान करने से तुम्हारे शरीर में क्या बनेगा, यह किसी काल में विचारा है या नहीं, परन्तु नहीं विचारते, क्यों नहीं विचारते क्योंकि विनाश का समय जो आता चला जा रहा है। इसलिए नहीं विचारा जाता है, तो बुद्धिमान कहता है, अरे, यह तो ऐसे ही बकते रहते है। परन्तु उनको बकना उच्चारण किया जाता है और कहीं मांस भक्षण की

चर्चा हो रही हो ओह! यह तो बड़ा बुद्धिमान है अरे, पश्चिम से आया है और देखो, इनके यहाँ यही भक्षण किया जाता है यह बड़ा सभ्य है परन्तु उनको सभ्यता का पाठ, कहाँ, बुद्धिमान तुम्हें वृत्तियों....... वक्ता है। आज का संसार जीवित रह सकेगा, परन्तु कदापि जीवित नहीं रह सकेगा और तुम अरे, जहाँ देखो, संसार के गुरु बन करके, तुम्हारा एक समाज चलता था ब्राह्मणों का, परन्तु आज वह तुम्हारा शान्त हो करके, आज तुम्हें देखो, वे आते है, और वे शिक्षा दे जाते है जिन शिक्षाओं से तुम्हारे जीवन का और राष्ट्र का विनाश हो जाता है। परन्तु देखो, मेरे गुरुदेव ने वर्णन किया, कि जब विनाश का, संग्राम का समय आता है तो क्या क्या होता है? मांस, एक तो गुरुदेव ने मांस के भक्षण का वर्णन किया। एक इन्होंने वाद और विवाद के और भी कई प्रकार के भौतिक विज्ञान की कुछ संज्ञाएं दी परन्तु मैं तो अपने गुरुदेव से यह कहा करता हूँ कि अभी तो सर्वश संग्राम में बहुत कुछ दूरी है, क्यों दूरी है, क्योंकि पूर्ण लक्षण नहीं आए है, जिससे सर्वश संसार का संग्राम होगा।

पूर्ण लक्षण नहीं है। क्योंकि लक्षण उस काल में आते है, जब संसार के विनाश का समय आता है भौतिक विज्ञान में, भौतिक विज्ञान में एक यन्त्र किसी ने अग्नेय यन्त्र बनाया परन्तु द्वितीय किसी वैज्ञानिक ने देखो, जल यन्त्र बनाया, जिसे शान्त करने वाला भी यन्त्र हो जब तक जब देखो, भौतिक विज्ञान से जब संग्राम होता है, कि जब देखो, जल वृष्टि करने वाले भी यन्त्र विराजमान हो जाएं, जैसे कोई राष्ट्र आज के संसार की जो गति है, एक व्यक्ति कहता है कि राजाओं से ऐसी सूचना प्राप्त होती है, कि एक यन्त्र जिसने अपने राष्ट्र से त्यागा तो, देखो, पृथ्वी मण्डल में, जितने राष्ट्र है, वह सब समाप्त हो सकते है। परन्तु देखो, यहाँ यही नहीं, आज ऐसे यन्त्रों का आविष्कार किया जा रहा है। परन्तु इन यन्त्रों से क्या बनेगा? आज यन्त्र है, परन्तु बनेगा, जो बनेगा, जिनको आगे चल करके समय तुम्हें निर्णय निर्धारित कर सकता है। मैं तो केवल वर्तमान की चर्चा करने आया हूँ, और वह समय आएगा, जो आगे इन वाक्यों को निर्धारित करेगा, कि ये वैज्ञानिक यन्त्र क्या करेंगे

और तुम्हारे लिए, परन्तु ये क्या कर रहे है।

भौतिक विज्ञान से विनाश

परन्तु आज देखो, अग्नि के मुख में भी चले जा रहे हैं प्रत्येक मानव चिन्तित रहता है जब मुनिवरों! संग्राम का समय आता है निकट, तो उस समय प्रत्येक मानव देखो, चिन्तित रहता है। आज वह अपने जीवन का चिन्तित नहीं, वह आज केवल, इस चिन्तन में लगा रहता है कि तू अपने उदर की पूर्ति कैसे करेगा? आज तुझे द्रव्य को किस प्रकार से एकत्रित करना है, परन्तु द्रव्य का पुजारी बन जाना है, परमात्मा की महानता को त्याग करके, द्रव्य का पुजारी बन करके, अपने जीवन को उस अग्नि में परणित कर देता है, जहाँ उसे देखो, केवल वह घुटन हो जाता है जीवन नष्ट हो जाता है और इसमें देखो, उसकी मानवता भी समाप्त होती चली जाती है।

धर्म की परिभाषा

आज मैं यह भी उच्चारण करना चाहता था कि देखो, आज धर्म की मर्यादा, धर्म की वेदी क्या है, मैं यह तो संक्षिप्त में चर्चा करा रहा था कि वह समय दूरी है अभी, जब संसार का संग्राम होगा, वह समय कुछ दूरी है, परन्तु देखो, मैं तो एक चर्चा और करने आया हूँ आत्मिक धर्म कैसे बनेगा? धर्म की परिभाषा क्या है? धर्म किसे कहते है? आज यहाँ महात्मा बुद्ध वाले कुछ उच्चारण करते है, महात्मा शङ्कर वाले कुछ उच्चारण करते है, महात्मा दयानन्द वाले कुछ कहा करते है, परन्तु ईसा वाले कुछ कहते है, परन्तु देखो, मोहम्मद वाले कुछ कहा करते है, मैं वास्तव में अपने हृदय से कहा करता हूँ मैंने गुरुदेव को निर्णय कराया कि मैं मोहम्मद को वास्तविक महात्मा नहीं माना करता। वास्तव में ईसा को, मैं वास्तव में अपने हृदय से उसका स्वागत किया करता हूँ, क्योंकि महात्मा ईसा एक महान थे, उनके जीवन में एक महान क्रान्ति थी और अब यह तो आगे समय निर्धारित करेगा, कि उसके अनुयायी क्या करेंगे, यह तो मैं उच्चारण नहीं कर सकता। परन्तु देखो, महात्मा बुद्ध और भी नाना प्रकार के मत

मतान्तरों में मनुष्य चला जाता है, अब धर्म क्या वस्तु है? अब देखो, मोहम्मद वाले कहते है कि देखो, हमारा जो यह पुस्तकम है, यह परमात्मा ने हमें दिया, मोहम्मद पर यह आता था, मोहम्मद ने हमें दिया परन्तु यहाँ यह जानना, कि मोहम्मद यदि उस पुस्तक से इत्यं पुस्तकम से आज मोहम्मद को उनसे दूरी कर देते हैं, तो उससे प्राप्त करो, हमारा कल्याण होगा, वे कहते हैं कि हमारा कल्याण बिना मोहम्मद के नहीं होगा।

वेद की देन

परन्तु आज हम इसी प्रकार ईसा वालों को कहा करते है तो ईसा के मानने वाले कहते है ईसा तो अन्तरिक्ष में होता है आज वे कहते है कि वह बड़े आनन्द से राज करता है, वह भगवान का पुत्र है। आज मैं यह जानना चाहता हूँ, कि भगवान का पुत्र संसार में कोई नहीं है, आज जिसको तुम अपने मुख में ले जाते है। क्या वह भगवान का पुत्र नहीं है, क्या मानव भगवान का पुत्र नहीं है, क्या वह भगवान की पुत्री नहीं है, क्या? जितने प्राणी है क्या वह भगवान के पुत्र नहीं है क्या, जिनमें परमात्मा की सहायता मिल रही है, स्वाभाविकता वह दयाकर रहा है सब प्राणियों पर, क्या वे भगवान के पुत्र नहीं है क्या, परन्तु देखो, आगे वह कहते है यदि उनके पुस्तकम से हम यदि आज ईसा को दूरी कर देते है, तो वह कहते है हमारा कल्याण नहीं होगा, परन्तु और भी मतों में भी यही है आज महात्मा बुद्ध के विवेचनों में भी कुछ यही चर्चाएं है, परन्तु यदि हमारे से यह प्राप्त किया जाए, यदि तुम महात्मा दयानन्द, महात्मा शङ्कराचार्य, भगवान कृष्ण, भगवान राम, वेद व्यास और देखो, महर्षि पतञ्जलि और महर्षि कणाद आदि आचार्यों को इनसे निकास दिया जाए, तो कल्याण हो सकता है। परन्तु मैं कहा करता हूँ, हो सकता है, क्यों नहीं होगा? परन्तु वह क्यों नहीं होगा, वह केवल इसलिए होगा, कि हमारा जो आधार है वह वेद में ज्योति है, प्रकाश है। हम जो भी प्रकाश का चिन्तन करेगा, चैतन्य स्वरूप का चिन्तन करेगा, उसका ही कल्याण होगा, उसका ही कल्याण होगा। और यदि हम केवल एक व्यक्ति

को ले करके चलते है, आगे किसी एक व्यक्ति को करते हैं जिसे महान आत्मा तो कहते है, उसको गुरु बना करके चलते है, मैं इसका विरोधी नहीं, कि गुरु नहीं होना चाहिए, परन्तु गुरु भी होना चाहिए, पर देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव है, न प्रतीत कितने समय से मुझे शिक्षा देते चले आए है। शिक्षा देते ही रहते हैं, इनका कर्तव्य ही केवल यह है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव है, इनसे सब कुछ प्राप्त किया है, परन्तु तुम अपने गुरु से दूरी करके उनके आदेशों को मान करके केवल तुम अपना कल्याण करा सकते हो, तो मैं कहूँगा अवश्य करा सकते हो। परन्तु इनके वाक्यों को आचरण बनाया और हम समाधि होने में इनका एक मन्तव्य और प्रकाश परन्तु यदि परन्तु और जहाँ हमें जाना वह, तो गुडुम्बावाद से भी दूरी का विषय है, उसको विचारो, परन्तु वह गुडुम्बाबाद से दूरी का विषय परन्तु इसको निकालो हम कौन सा है? वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है, वह शुद्ध चैतन्य ब्रह्म जिसके आंगन में जा करके हमें एक आनन्द ही आनन्द प्राप्त होता है, हम नाना प्रकार के विज्ञान से दूरी हो जाते है हम इन दूर से दूरी चले जाते है ।

मेरे गुरुदेव ने कल कई महात्माओं की चर्चा की, आज मोहम्मद वादियों से प्राप्त किया जाए, परन्तु यह क्या हो रहा है? आज मोहम्मद ने, उन्होंने भई! देखो, एक शब्द कहा प्रिय और अप्रिय वस्तु को विचार लो, परमात्मा एक है। परन्तु उनके वाक्यों का इनका प्रत्येक व्यक्ति संप्रति नहीं किया करते है, परन्तु जहाँ आचरण की विशेषता आती है, मुक्ति का विषय आता है। परन्तु वहाँ क्या है? केवल मानव का गुड़म्बावाद, मानव का गुड़म्बावाद में देने के सिवाय और क्या है? परन्तु देखो, इस पर विचारते चले जाओ, ईसा वालो में केवल गुड़म्बावाद में और द्रव्य का पुजारी बनने के अलावा वहाँ क्या है? परन्तु वेद की पोथी ऐसी है जो हमें निर्मलता प्रकाश देती है हमें देखो, त्यागमूर्ति और तपस्वी बना करके, हमें देखो, वह ज्योति अपनाने की इच्छा करती है। एक समय वह आता है कि हम ज्योति में लीन, हो जाते हैं। परन्तु इसको विचारों, और विचारने से कार्य बनेगा, आज केवल इसी से नहीं

बनेगा, कि हम अपने उदर की पूर्ति करते चले जाएं, आज केवल हम देखो, अपने उदर में, दूसरों के जीवन को भक्षण करते है, इसलिए हमारा जीवन नहीं बनेगा। परन्तु जीवन के बनने का यदि कोई साधन है, जीवन के बनने का यदि कोई मार्ग है, तो वह मानो एक सदाचार है, उसी से मानवता आती है, परन्तु उसका विचारने से कार्य बनेगा? परन्तु आज राजा से कहो जा करके, क्या महाराज! हम गऊ रक्षा के लिए, आप से उद्घाटन चाहते है, आप इसका निर्माण कीजिए, तो उस समय कहेगा कि मेरे द्वारा समय नहीं है, समय निर्धारित नहीं है और कहीं ये निर्माण किया जाए कि हम देखो, मुर्गियों को निर्माण कर रहे है, वह कहेगा अच्छा चलिए, तो यह क्या है? परन्तु यह विनाश का समय नहीं, तो और क्या है? परन्तु यह विनाश का समय है। यह बेटा! अग्नि के तट पर विराजमान है, आज का संसार, आज यही नहीं भारत भूमि का ही नहीं, सर्वत्र जितना भी ब्रह्माण्ड है, सब पृथ्वी मण्डल ब्रह्माण्ड इसी प्रकार है परन्तु देखो, यह कैसे जीवन बनेगा।

उद्बोधन

हे मेरे आदि आचार्य जनों! हे मेरे भद्र पुरुषों! मैं तो एक ही प्रार्थना करने आया हूँ वह केवल क्या है? मैं गुरुजी से विरोध किया करता हूँ, गुरुजी को अपशब्द भी कहता हूँ क्यों कहा करता हूँ? केवल अपनी विचार धाराओं को तुम्हारे समक्ष निर्धारित करने के लिए, मेरी पवित्र माता, तुझे उन पुत्रों को जन्म देना है अपनी महानता से, तुझे वह अहिंसा परमोधर्म का पालन करके चलना है माता, जिससे गऊओं की रक्षा हो, एक गऊ जीवन भर दूध देती है, उसके जीवन से देखो, सहस्रों प्राणियों को लाभ पहुंचता है, आज एक गऊ का भक्षण किया जाए, एक उसी गऊ को नष्ट किया जाए, अधिक से अधिक देखो, उससे कुछ एक सौ प्राणियों की उदर की पूर्ति हो सकती है, परन्तु यदि उस गो को यदि जीवित रहने दिया जाए, तो वह जो गऊ अपने जीवन में देखो, सहस्त्रों प्राणियों की पूर्ति करती है, अब कितना लाभ है उससे, परन्तु परमात्मा

ने दिया है इसीलिए की अधिक से अधिक लाभ प्राप्त किया जाए। आज के मानव ने क्या कर लिया, कि देखो, इससे देखो, अपने गृणी में अपने ऐश्वर्य के साधन देखो, अपनी उदर की, रसना की पूर्ति के लिए साधन बना लिया है। हे मेरे आचार्य जनों! मैं तो केवल यह उच्चारण करने आया हूँ, जिस समय यह भारत भूमि जिस समय महाराजा भरत, अरे, वह बालक, वह माता कैसी पवित्र माता, हे माता! तू भरत को जन्म देने वाली है और भरत जैसे जो सिंहों के, सिंहनी के पुत्रों से किलोल करते थे, सिंहनी के मुख से विराजमान होकर के यह कहते, तुझे मैं नष्ट कर दूं, अरे, वह उसके बालक देखो, सिंहनी से विनोद करते थे। माता! तू तो वह माता है, अरे, अहिंसा परमोधर्मी माता है, माता! तू वह माता न बन, जिए देखो, तेरे गर्भ से विष उगलने वाला बालक उत्पन्न हो, आज अमृत उगलने वाले बालक को जन्म दे, तू दयानन्द को क्यों नहीं जन्म देती पुनः से? तू शङ्कर को क्यों नहीं जन्म देती? भगवान राम को क्यों नहीं जन्म देती? आज तू पतञ्जलि व जैमिनी को जन्म क्यों नहीं देती? परन्तु तेरी वह विशेषता कहाँ चली गई माता! तेरी वो उज्ज्वलता कहाँ चली गई, तू गार्गी बनने के लिए भारत भूमि में जन्म लिया, परन्तु यहाँ यदि तू मांस का इत्यादियों का, भक्षण करके आज तू अपनी वीरता का साधन जानती है तो जान क्योंकि तुझे मनुष्य कुचलते रहेंगे संसार में, मनुष्य तुझे अपने आधीन बताते रहेंगे, देखो, तुझे नष्ट भ्रष्ट करने की योजना बनाते रहेंगे। माता! तूने इस भारत भमि में जन्म लिया, आर्यों की भूमि पर जन्म लिया, ये वो भूमि है, जहाँ भगवान राम की पतिका थी देखो, जहाँ दूसरे के अधिकार को नहीं लिया जाता, राम को जानते हो, मेरे गुरु राम की चर्चाएं, राम की विशेषता नित्य प्रगट किया करते है, कृष्ण की चर्चा नित्यप्रति प्रगट किया करते है, राम का यह सङ्कल्प था, कि मुझे अपने जीवन में दूसरे के अधिकार को नहीं लेना है, रावण ने देखो, आ करके भारत को अपना लिया था, लंका से आ करके, पाताल पुरी को अपना लिया था और द्रुति राजा को अपना लिया था त्रिपुरी के हिस्से में राज था उसका, केवल

सूक्ष्म सा राष्ट्र रह गया था। भगवान राम ने देखो, राष्ट्रों को विजय करके, और उनके दुराचार को समाप्त करके, उनका राष्ट्र उन्हीं को अर्पित कर दिया। यह भावना है एकता की, यह भावना है समाजवाद की, आज हम समाजवाद को लाना चाहते है, आज केवल उच्चारण करने से समाजवाद नहीं आएंगा, आज राष्ट्र की नीति, राष्ट्र को उचित्त बनना है, तो ब्राह्मणों की, बुद्धिमानो को करना है आगे, राजा से कहो कि हे राजा! तू कहाँ है, और माताओं को विचारना था, ये माताओं को, अपने जीवन में, वेद के स्वाध्याय, वेद का पठन पाठन करती और गायत्री जप करके बालक को जन्म देना है, जिससे दुराचारी राजा को नष्ट, भ्रष्ट करने वाला बालक होगा। आज कहाँ हो तुम? परन्तु कहाँ हो और किसलिए आए हो संसार में, और क्या तुम्हारा उद्देश्य था, क्या बन गया संसार, परन्तु देखो, यहाँ यदि मानव शुद्धता नहीं करेगा, आप जानते हो कि प्रकृति के कितने प्रकोप है। मुझे प्रतीत है मुझे गुरुदेव की अनुपम कृपा से मुझे सूक्ष्म सा ज्ञान है, वास्तव में तो किञ्चित है। परन्तु बुद्धिमानो की सभा में, तो बहुत ही सूक्ष्म है। आज मैं जैमनियों की सभा में विराजमान हो करके, तो बहुत ही सूक्ष्म सा किन्तु मेरा आदेश है। परन्तु जानते हो कि प्रकृति का प्रकोप है, यह क्यों है? आज, हम संसार की क्रिया करते है, प्रकृति का प्रकोप क्या है, कोई जल का प्रवाह आ रहा है देखो, आज अन्तरिक्ष में जल की वृष्टि हो जाती है, देखो, बिना समय के वृष्टि हो जाती है, आज कहीं देखो, वायु का प्रकोप आता है, कहीं अग्नि का प्रकोप आता है, ये सब कुछ क्या हो रहा है? कहीं देखो, भूमि में आ करके राष्ट्र की निधि नष्ट हो जाती है, यह क्या है? मानो देखो, वह जो तुम्हारा स्वार्थ, इस अन्तरिक्ष में सूक्ष्म रूपों से रमण कर रहा है, वह सूर्य की किरणों में, वह समुद्रों में जा करके वैसा ही तुम्हारे द्वारा पाप आज तुम्हारे समक्ष आता चला जा रहा है। आज तुम कहाँ हो? परन्तु विचारो, तो सही सिद्धान्त को, आज तुम वैदिक साहित्य

को देखो, तो इसमें क्या है ।

पाप पुण्य स्थली

मुनिवरों! देखो, महर्षि जैमिनी जी ने क्या और देखो, अग्रणी अच्युतम् भवनाति महाराजा घटोत्कच्छ ने महाराजा अर्जुन ने देखो, यज्ञ में यह था क्या क्रणा गच्छति कर्मणा यह मानव जब वृति हो जाता है, अपने कर्तव्य से दूरी हो जाता है, आज के यह प्रकृति के प्रकोप आते है, अन्न नष्ट हो जाता है। आज तुम्हारा देखो, और नाना प्रकार की सम्पति समाप्त हो जाती है। परन्तु यह सब कुछ तुम्हारे पाप और पुण्य कर्मों से ही होता है। परमात्मा तो क्या करता है, परमात्मा तो निर्लेप है, परमात्मा तो तुम्हारे पाप पुण्य कर्मों की लेखनी बद्ध कर रहा है। और कहाँ उसका वह लेखनी बद्ध वाला स्थल कहां है, मुनिवरों! वह न्यायालय कहाँ है? वह न्यायालय प्रकृति में और, न्यायालय तुम्हारा जो अन्तःकरण है, उसी पर तुम्हारे पाप पुण्य कर्म अङ्कित हो जाते है और अङ्कित हो करके वह पाप अग्रणी बन करके, उस समय तुम्हारे जीवन का विनाश कर देते है।

आन्तरिक भाव की पवित्रता से आदर

आज तुम विचारों, सूक्षता में विचारो, तो मेरे गुरुदेव ने बहुत सूक्ष्म से रहस्य नित्यप्रति प्रगट किया करते है। परन्तु मैं तो केवल इतनी ही चर्चा करने आया हूँ, आज मैं गाथा तो बहुत ही उच्चारण करता, परन्तु एक तो अपने हृदय की से इस वार्ता को निकास दो कि आज हम यह मानते रहे कि पश्चिमी राष्ट्रों से यह भौतिक विज्ञान आया, परन्तु विज्ञान तुम्हारे द्वारा था, आज तुम्हें पुनः से वैज्ञानिक बनने का प्रयत्न करना चाहिए, आज तुम बुद्धिमान बनों, आज तुम्हारा देखो, यह विश्व आदर करेगा, विश्व आदर पुनः से तुम्हारा किस प्रकार कर सकता है? आज विश्व में आदर इस प्रकार से नहीं होगा, विश्व आदर इस प्रकार से नहीं करेगा, किसी प्रकार से, राजा हो, सन्यासी हो, महात्मा हो और राष्ट्र का कर्मचारी हो, परन्तु द्वितीय राष्ट्र उसका आदर किस काल में करते है? जब करते हैं, जब उसका आन्तरिक भाव पवित्र बन जाता है, आन्तरिक

भावना पवित्र बन जाती है, राष्ट्र में, राजा का मान द्वितीय राष्ट्रों में, उस काल में होता है, जब राजा अपनी प्रजा को नियन्त्रण में करता हुआ और अपने अन्तःकरण को ऊँचा बना देता है और निस्वार्थ बन करके कार्य करता है, जहाँ प्रजा में, राष्ट्र में स्वार्थ रहेगा, देखो, आज वह विनाशता को प्राप्त होता चलेगा।

माताएँ

आज मैं क्या दृष्टिपात कर रहा हूँ संसार में, पति और पत्नी में स्वार्थ की भावना, पत्नी यदि अपने पति से प्रीति करती तो स्वार्थ को लेते हुए, आज यदि आधुनिक काल की माताएं किस प्रकार की है, यदि आज की माताएं, आज के पिता, यदि देखो, महाराजा हरिश्चन्द्र वाली वार्ता कर दें, तो माता कहेगी तुम्हारा मार्ग यह है, मेरा यह है। परन्तु मुझे आप से कोई प्रयोजन नहीं। परन्तु माता वह है, माता वह है जो पति की साथी हो, पति को आपत्ति में भी, आपत्ति सहन करने वाली हो, माता सीता की भान्ति। हे माता! यहाँ वह माता रही है, माता गार्गी जो नग्न रहती थी, नग्न और त्याग और तपस्या में तल्लीन और देखो, संसार को चकित बनाने वाली। मैं आज, मुझे गुरुदेव ने संक्षित आदेश दिया था, सूक्ष्म समय रह रहा है, समय समाप्त होने जा रहा है। परन्तु मैं गुरुदेव का अधिक समय लेना नहीं चाहता। परन्तु मुझे गुरुदेव ने समय दिया, तो मैंने उसे स्वीकार कर लिया और मैंने सूक्ष्म से शब्दार्थों में कुछ चर्चाएं की, परन्तु मेरी यह चर्चाएं कटुता को तो अवश्य लेती हुई थी, परन्तु यथार्थ जब उच्चारण होता है तो उसमें कटुता प्रतीत होती है। आज परन्तु देखो, आज प्रत्येक प्राणी को विचारना है, स्वर्ग बनाना है, और यह भी निश्चित है कि यह धर्म प्रिय गुणा सुति आज तुम्हें इस संसार को अग्नि से दूरी करना है। हे भोले आचार्य! भोली माताएं! भोले भक्त जनों! आज तुम जब पश्चिम का प्राणी जब तुम्हारे द्वारा आता है, उसको वह शिक्षा दो, उसको वह उपदेश दो, जिससे देखो, यहाँ से ले करके जाए, और यदि वह अपनी असत्यता को यहाँ त्याग जाए और उसको यदि तुमने उसे अपना लिया, तुम में कोई मानवता नहीं

है, परन्तु तुममें कोई मानवता नहीं है। परन्तु मानवता तुम्हारी उसी काल में है पश्चिम आए, अपने पशुपन को ले करके, तुम्हारे द्वारा आए, गुरुओं के द्वारा आए और गुरु माता और गुरु से वह शिक्षा ले, जिससे वह तुम्हारे प्रभाव में आ करके, और अपने राष्ट्र में, क्योंकि यह भारत भूमि है। वह आर्यावर्त्त है यहाँ देखो, राम और कृष्ण की पतिकाएं थी, वहाँ देखो, उनको क्यों नहीं अपनाते, आज तुम्हे अपनान नाना प्रकार की किलिष्टता अपनाना, आज इससे क्या होता है, इससे तुम्हारा जीवन विनाश को प्राप्त होता है। आज तुम यह जानने लगो, कि आज देखो, पश्चिम के आहार को, पश्चिम के व्यवहार को, उसकी वेशभूषा को, अपना करके हम, आज अपने राष्ट्र को आर्यावर्त्त बना सके, या हम आज इस पर शासन कर सके, तो कदापि नहीं कर सकोगे, क्यों नहीं कर सकोगे? उसका कारण कि जहाँ जैसा प्रभाव होता है, जहाँ जैसी संस्कृति होती है, परन्तु देखो, वहाँ उसका वैसा ही वातावरण होता है, और अपना वातावरण अपने अनुकूल बनाना पड़ता है, देखो, उस काल में राष्ट्र को चला सको, अन्यथा राष्ट्र भी नहीं चलेगा।

भयतानी प्राणी

आज मैं जो भी संसार में तुम्हारे द्वारा आए, उनकी अच्छाईयों को अपनाना और अपनी अच्छाईयों को उन्हें दे देना, जिससे देखो, वह तुम्हारे सम्पर्क में अच्छाईयों वाले बन जाए और तुम उनके सम्पर्क में आ करके, सुन्दर बन जाओ। ये अपनाओ, आज उनकी वेशभूषा को अपनाने से कोई प्रयोजन नहीं, उनके कर्मकाण्ड को अपनाने से कोई प्रयोजन नहीं, आज तुम्हें उनकी वाणी को अपनाने से कोई महाप्रयोजन नहीं है, यह मूल वाक नहीं है, परन्तु देखो, आज तुम उसको अपनाओ जिससे तुम्हारे द्वारा आए, तुम वह अग्नि हो, कि हे मेरी भोली माताओं! भोले भद्र पुरुषों! तुम वह अग्नि हो, जो तुम्हारे छूने मात्र से मानव श्रेष्ठ बनता है, वह कौन सी अग्नि, मेरे गुरुदेव ने कल चर्चाएं की थी, ये वो अग्नि है जो महाराजा जैमिनी यहाँ से, वेदव्यास यहाँ से चले गये, उन राष्ट्रों में पहुँचे जहाँ देखो, भयतानी प्राणी

रहते थे, जिनमें कोई सभ्यता नहीं थी, केवल क्या करते थे, कि मांस को भी, जैसे का तैसा ही, उसको अग्नि के मुख में भी न दिया उसको वैसा का वैसा ही पान कर लिया। परन्तु देखो, वेदव्यास अपनी पतिका को ले करके चले, ओ३म् की पतिका को, वेद की पतिका को ले करके चले और वेद की पतिका का जब सुन्दर आदेश दिया तो क्या हुआ कि वह ऋषि के प्रभाव में आ करके, आज उनका जीवन कुन्दन बन गया। कुन्दन बन गया, तुम वह अग्नि हो। हे आर्यवर्त के रहने वाले प्राणी आर्यों! तुम वह अग्नि हो, तुम्हारे छूने मात्र से मनुष्य, किसी काल में श्रेष्ठता में प्रवेश हो जाएगा, श्रेष्ठ बनता था। परन्तु आज तुम वह कीचड़ बन गएं कि तुम्हारे सम्पर्क में आ करके वह कीचड़ में आता है। कीचड़ ही बन जाता है प्राणी। परन्तु उसको न अपनाओ, केवल अग्नि को लाने का प्रयत्न करो त्याग और तपस्या में, केवल तुम अग्नि को तभी ला सकते हो, जब तुम अपने स्वार्थ को त्याग दोगे स्वार्थ को त्याग दोगे, त्याग में ही सब कुछ आता है यह जितना भी असीम परिवार है और जितना परिवार, परन्तु यह कुछ परिवार तुम्हारी निस्वार्थता का न होना है। यही तुम्हें विनाश को ले जाएगा, यही तुम्हें असभ्य बनाता है, और इसी से तुम दूसरे के अधीन बन जाते हो।

अब मुझे चर्चा, गुरुदेव कल का समय और देंगे, तो मैं कल और भी उच्चारण करूंगा। केवल आज का यह आदेश समाप्त हो गया, और जो मेरे से कोई सूक्ष्मता, कोई हीनता हो गई है उसके लिए गुरुदेव मुझे क्षमा भी अवश्य कर देंगे, आज तो मैं केवल यही आदेश प्रगट करने आया था, मेरे गुरुदेव ने जो संग्राम का, विश्व संग्राम का, भौतिक विज्ञान का जो निर्णय दिया, परन्तु उसमें कुछ समय है, उसमें समय यह तो आगे तुम्हें समय निर्णय करता चला जाएगा। परन्तु आज का यह हमारा आदेश समाप्त और इस अग्नि से दूरी होने के लिए, तुम्हें वास्तव में निस्वार्थ बनना है, पवित्र बनना है। आज यहाँ प्रत्येक माताओं को, प्रत्येक पुरुष को, पिता को, ऋषि को महान से महान बनना है जिससे तुम परमात्मा की सृष्टि को, अपने मानव

को और अपने राष्ट्र को सबको ऊँचा बना सको।

जीवन की श्रेष्ठता का आधार

कल मेरे पूज्य गुरुदेव ने एक वाक कहा था मन, कर्म, वचन, कोई वाक नहीं, परन्तु मन, कर्म, वचन से जहाँ तक पाप का सम्बन्ध है यह कैसे नहीं होगा? यह उसी काल में नहीं हो सकेगा, जब तुम्हारे द्वारा स्वार्थ नहीं होगा, और जब तक तुम में स्वार्थ है, तब तक तुम देखो, मन, कर्म, वचन से तीनों प्रकार के पाप से दूरी नहीं हो सकते, अगर तुम राष्ट्र में रहे, हो राष्ट्र का पालन करो। राष्ट्र के उद्देश्य को ले करके चलो। परन्तु उसमें स्वार्थवाद न हो, राजा है, राजा राष्ट्र का पालन करता है, प्रजा का भी अधिपति है उसे कर्म करने से प्रयोजन है, उसे दूसरों के, प्रजा के ऐश्वर्य को, अपने ऐश्वर्य में लाना, उसके लिए पाप हो जाता है। उससे देखो, इसी का नाम स्वार्थ है और देखो, ऋषि का नाम निःस्वार्थ है। आज स्वार्थ को त्याग दो, निस्वार्थ अपने जीवन में लाते चले जाओ, तुम्हारा जीवन श्रेष्ठ बनता चला जाएगा। महान बनता चला जाएगा। तुम पाप कर्मों से दूरी हो सकते हो, अन्यथा नहीं हो सकते, और मुझे गुरुदेव कल सूक्ष्म समय देंगे, तो मैं यह भी वर्णन करूंगा, कि संसार को यह आर्य ही श्रेष्ठ बनाएंगे, जब भी बनाएंगे, ये भी है। परन्तु आर्य कहते किसे है? यह गुरुदेव नित्यप्रति व्याख्या किया करते है, आर्य उसी को नहीं कहते, आज के संसार ने तो यह अपना लिया कि ऋषि दयानन्द को जो मानता है वही आर्य है, परन्तु कोई कहता है कि जो ऋषियों के वाक्यों पर चलता है वही आर्य है, परन्तु कोई कहता है आज के मनुष्य को जब मुझे किसी काल में दृष्टिपात करता हूँ तो कहता है मैं तो बड़ा आर्य समाजी हूँ, कट्टर हूँ, परन्तु देखो, इससे कुछ नहीं बनेगा, आज कट्टर से ही कुछ नहीं बनेगा, परन्तु उस समय बनेगा, जब तुम अपनी कट्टरता को त्याग दोगे, यहाँ कट्टरता से कोई मानव ऊँचा नहीं बनता, आज मानव जब ऊँचा बनता है, जब अपने कट्टरपने को त्यागता है, शुचिता को अपनी वेदी पर लाता है, ऋषियों के ऋण को अपने अन्तःकरण में धारण करता है, जब मानव आर्य बनता है

संसार में, अन्यथा यहाँ आर्य नहीं बनोगे, परन्तु देखो, ऋषि दयानन्द वास्तविक आर्य थे, शङ्कराचार्य वास्तव में आर्य थे, परन्तु देखो, उनके अनुयायी कुछ और भी वास्तविक आर्य थे। ऋषि दयानन्द के आज भी कुछ आर्य है, कुछ वास्तविक आर्य है। परन्तु अधिकतर कैसे, जिनको मैं तो नहीं उच्चारण कर सकता। मैं उच्चारण क्यों करूं, क्योंकि उच्चारण करने का समय नहीं, आज मैं उसी समय कोई, यहाँ नहीं, परन्तु देखो, यहाँ आज वह आर्य कहते है कहीं वेद की चर्चा होती हो, कहीं वास्तविक विवेचन हो रहा हो परन्तु उनके प्रतिकूल हो, तो कहेंगें कि यह सब पाखण्ड है कि अनुकूल हो, अनुकूल होना चाहिए, उनके विचारों के अनुकूल हो, वह यौगिकता से भरा हुआ नहीं होना चाहिए, परन्तु वह उनके अनुकूल हो, वह बड़ा सुन्दर है। परन्तु यहाँ भी सोचो, विचारो बुद्धिमानता ही, केवल बुद्धि ही नहीं कहती यहाँ तो ऐसा सूक्ष्म रहस्य कि जो बुद्धि से परे वाला जो वाक विचारने वाला हो, यथार्थता में देखना चाहते हो, ऋषि दयानन्द को देखो, आज तुम और भी यथार्थता में देखना चाहते हो, महात्मा शङ्कराचार्य को देखो, गुरुओं को देखो, आज तुम महर्षि पतञ्जलि के जीवन को दृष्टिपात करो। आज तुम वास्तव में आर्य बनते चले जाओगे, यहाँ आर्य ही आते है और जब यहाँ आर्य आते है जब ही यह संसार श्रेष्ठ होता है यही नहीं, संसार श्रेष्ठ होता है। परन्तु देखो, आज का यह मेरा आदेश समाप्त होने जा रहा है, मेरे गुरुदेव कल मुझे समय देंगे, कल मैं आर्य की सुन्दर व्याख्या करूंगा, परन्तु समय की वार्ता है, समय मिलेगा, तो करूंगा, अब यह आदेश हमारा समाप्त होने जा रहा है।

परन्तु देखो, आज यह आदेश मेरे गुरुदेव, इन सूक्ष्म से आदेशों में बहुत सी अशुद्धियां भी हुई होंगी, परन्तु इनमें बहुत से कटु शब्दार्थ भी हुए होंगे, मैं गुरुदेव से इन सबकी क्षमा चाहता हूँ।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य..... धन्यवाद!

मेरे आदि ऋषि मण्डल! आज तुमने देखो, इस महा महानन्द की चर्चाएं सुनी, ये महा आनन्द है परन्तु यह

आनन्द कर देते है। परन्तु जहाँ आनन्द है वहाँ इनके वाक्यों से देखो, मानव निराश भी हो जाता है। परन्तु इनके वाक्यों को पान करके, मनुष्य मार्ग नहीं त्यागते, केवल मनुष्य के हृदयों में एक कम्पन्नता उत्पन्न हो जाती है। कम्पन्नता तो उत्पन्न हो जाती है और क्रान्ति भी आती है। हमारे हृदय में क्रान्ति ला देते है किसी काल में ये, परन्तु इनके वाक वास्तव में सुन्दर है, परन्तु इनके लिए ही सुन्दर है, उनके लिए ही सुन्दर है, परन्तु देखो, आज इन वाक्यों को भी प्राणी को स्वीकार करना चाहिए, परन्तु जैसा इन्होंने कहा है, मुझे तो इनका वाक अधूरा प्रतीत हुआ, कल समय मिलेगा, तो और सूक्ष्म आदेश मिलेगा, क्योंकि अग्रणीय भूतस्सुता वाक इनका अशुद्ध नहीं रहना चाहिए और अधूरा नहीं रहना चाहिए। अब चलो, कोई वाक नहीं।

विभाजन में रचना

आज का यह आदेश समाप्त होने जा रहा है। आज के आदेशों का हमारा अभिप्राय क्या था, कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएं, प्रत्येक ऋषि मण्डल, आज के संसार में बहुत विचार करके चलना होगा, महानता को अपनाना होगा, वास्तविक मार्ग को अपनाना होगा और यह भी निश्चित है कि तुम इस मार्ग को आज नहीं अपनाओगे, कल अपनाओंगे, किसी न किसी काल में तुम्हें अपनाना ही होगा। भगवान कृष्ण ने एक आदेश कहा था अर्जुन को दिया और अर्जुन से यह कहा हे अर्जुन! एक समय वह आता है कि मनुष्य को मेरे मार्ग को अपनाना ही पड़ता है। तो यह उनका कितना सुन्दर शब्द है, यह कितनी सुन्दर प्रतिभा है। उन्होंने एक वाक कहा कि मेरे आंगन को, मेरे इस मार्ग को अपनाना ही पड़ेगा, प्रत्येक मानव को, कितना सुन्दर शब्द है मुनिवरों! इसका अभिप्राय यह है कि एक समय वह आएगा, वह आता है प्रत्येक व्यक्ति के लिए, क्या उसे वेद की ज्योति के मार्ग को अपनाना ही पड़ता है, चाहे वह नास्तिकवाद में चला जाए, चाहे आस्तिकवाद में रहो, पापाचार में रहो, परन्तु उसे एक समय अपनाना पड़ता है यह मार्ग, यह तो प्रतीत नहीं किसी भी काल में अपनाएं, और यह भी है कि दैत्य और

देवताओं का भी यहाँ संग्राम होता रहता है।

आज के बेटा! ऋषि ने महानन्द जी ने बेटा! इनके शब्दार्थो से ऐसा प्रतीत हुआ कि दैत्य और देवताओं का संग्राम अब भी चलता रहता है, परन्तु देखो, यहाँ दैत्यों और देवताओं का संग्राम, चलता रहेगा, जब तक यह सृष्टि रहेगी, क्योंकि सृष्टि की रचना जो हुई है, यह विभाजन करने वालों की रचना है, यह विभाजन करने वाला कौन है सृष्टि में? जैसे मुनिवरों! हमारे शरीर में नित्यप्रति एक नवीन सृष्टि रची जाती है और अब वह विभाजन करने वाला हमारे शरीर में मनीराम बैठा हुआ है, इसी प्रकार इस सृष्टि में, परमात्मा की सृष्टि में विभाजन करने वाला वही देखो, कोई न कोई तत्त्व प्रकृति का विभाजन करता रहता है, परन्तु विभाजन करता रहता है और इस विभाजन से ही संसार की रचना होती है। जब परमपिता परमात्मा से यह महत चलता है तो महत यह प्रकृति में, यह सूक्ष्म प्रकृति से मिलान करता है और यह मिलान करके मुनिवरों! देखो, प्रकृति के मिलान करने के पश्चात्, एक दूसरे को विरोध में ला देता है, कैसे विरोध आता है? जल का, अग्नि का विरोध हो जाता है। इस महत के कारण, पृथ्वी का और जल का विरोध हो जाता है। परन्तु विभाजन होता रहता है, विभाजन होने का नाम संसार की रचना है। मानव के शरीर की जो रचना है वह भी विभाजन होने की है। रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण इसमें समाया हुआ है। समाहित है। हमारे शरीर में, परन्तु यह जो मनीराम है यह मात्रा बनाता रहता है इनकी, रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण की मात्रा बनाता रहता है, इनको सूक्ष्मता में, न्यूनता में अधिकता में ये विभाजन करता है जब सतोगुण प्रधान हुआ तो सतोगुण ला दिया। तमोगुण प्रधान हुआ तो तमोगुण में मात्रा अधिक हो गई, जब रजोगुण प्रधान हुआ तो रजोगुण में मात्रा हो गई, तो यह विभाजन करता रहता है इसी प्रकार यह संसार जो यह विभाजन करने वाले यह विभाजन होता रहता है, इसलिए संसार की रचना हमें प्रतीत होती है और जहाँ एक दूसरे से मिलान हो जाता है, तो यह हमें यह जो प्रत्यक्ष है यह हमें अप्रत्यक्ष हो जाता

है। किस प्रकार होता है, बेटा! यह इस प्रकार होता है हमारे शरीर में मनीराम देखो, रजोगुण, तमोगुण की विभाजनता करता है, मन और बुद्धि की विभाजनता अपने में मन और बुद्धि में विभाजनता लाता है, और आत्मा के गुण है ज्ञान और प्रयत्न उनका विभाजन होता रहता है, इनको जब भी यह ज्ञान और प्रयत्न दोनों एक स्थान पर आ जाते है, उस समय इसको मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और देखो, जहाँ ज्ञान और प्रयत्न दूरी रहते हैं विभाजन रहता है, तब तक यह मानव पाप भी करता है, नाना प्रकार का पृथकवाद पर विश्वास होता है और जब यह विभाजन करने वाली वस्तु को त्याग देता है, उस काल में उस प्राणी का कल्याण हो जाता है, यह यौगिक बन जाता है, मानवत्व में विचरण करता है, आर्य बन जाता है, अब बेटा! यह आदेश समाप्त हो गया है, कल मुझे समय मिलेगा तो कल शेष चर्चाएं प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो प्रभु!

पूज्यपाद गुरुदेवः मुनिवरों! यह आज का आदेश हमारा समाप्त होने जा रहा है कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं। अब वेद का पाठ होगा सूक्ष्म सा, उसके पश्चात वार्ता समाप्त आज महानन्द जी ने जो कहा है वह बहुत ऊँचा और विचित्र है, मुझे तो प्रतीत नहीं था कि इतना वाक भी यह जानते है, परन्तु बहुत कुछ जानते हैं।

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य.....

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! आप हमारा विनोद भी कर रहे है? हास्य!

पूज्यपाद गुरुदेवः बेटा! आपने भी अग्रणी भवति नहीं। बेटा! यह विनोद नहीं, सुन्दर है।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा गुरुदेव।

पूज्यपाद गुरुदेवः ओ३म् आद्द दावसु वनो दृश्चता वर्णो प्राभादि ग्रताः भना व्रताः मानं देवाः। ओ३म् सर्वाञ्चते निधा प्रायणाः वा चा रथि वणु प्रागणा देवाः। ओ३म् ब्रह्मणो देवं ददातु महा नमस्ते स्तेते नमोः नमोनः स्वा।

रामलीला मैदान, अलीगढ़।

४ २० ०८ १९६९ वैज्ञानिक अनुसंधान

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर, वेदमन्त्रों का पठन पाठन कर रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ प्रायः वेद मन्त्रों का सुन्दर जो कर्मबद्ध प्रारम्भ हो रहा है, वास्तव में जब हम यह विचार विनिमय करते हैं, कि वेदों के ज्ञान पर अनुसन्धान करना चाहिए, वेदों में कितना ज्ञान है, कितना विज्ञान है, और अनुसन्धान करने के लिए तत्पर भी हो जाते हैं, परन्तु जब अनुसन्धान की पवित्र वेदी पर, जब हम विराजमान होते हैं, तो हमें कुछ ऐसा प्रतीत होने लगता है, कि हम इस ज्ञान और विज्ञान पर अनुसन्धान करें। संसार में बेटा! वेदों में प्रकृति का सुन्दर ज्ञान विज्ञान है, परमपिता परमात्मा जो ऋत की भान्ति जो इसमें रमण कर रहा है, उस ब्रह्म की अलौकिता का वर्णन आता रहता है। केवल वेद में ज्ञान और विज्ञान से परिपक्व है, जितना भी कर्म काण्ड है, वह सब प्रकृति से सम्बन्धित है, परन्तु उस कर्म काण्ड में जितनी चेतना है, वह ब्रह्म से सम्बन्धित है। अब अनुसन्धान की वेदी पर पंहुचने के लिए जब तत्पर होते हैं।

ब्रह्म की चेतना

तो विचार यह आता है कि हम चेतना के ऊपर अनुसन्धान करें या जो अचैतन्य वस्तु है, उसके ऊपर अनुसन्धान किया जाएं। क्योंकि हमारे यहाँ वायु जी ने बहुत सुन्दर शब्दों में कहा है, आदित्य जी महाराज एक समय विराजमान थे, आदित्य जी ने महर्षि वायु जी से यह कहा कि तुम ब्रह्म को क्या स्वीकार करते हो, तो महर्षि वायु जी ने यह कहा कि ब्रह्म को मैं सन्निधान मात्र से स्वीकार करता हूँ, और वायु जी ने प्रश्न किया आदित्य जी से कि महाराज! आप ब्रह्म की चेतना को कैसा अनुभव करते हैं? तो महर्षि आदित्य जी ने यह कहा कि वास्तव में मैं भी अन्त में सन्निधान मात्र से स्वीकार करता हूँ। परन्तु विचार विनिमय यह करना है, प्रकृति का क्षेत्र कितना है,

और जितना भी क्षेत्र प्रकृति का है उस प्रकृति में शून्यता है। परन्तु उसमें जो चैतन्य और उसमें जो क्रिया है अथवा उसमें जो चेतना है, वह ब्रह्म की है, अब दोनों का सन्निधान होना प्रारम्भ हो जाता है। परन्तु इसमें कितनी शाखाएं होती हैं, कितना इसमें विज्ञान है, क्या राष्ट्र के सम्बन्ध में क्या क्या है। मानो शरीर में मन है, यह भी प्रकृति से ही सम्बन्धित है, परन्तु विचार आता है कि मन में चेतना कहां से आई, वह चेतना हम किसकी स्वीकार करेंगे, परन्तु वह प्रकृति के सन्निधान मात्र से ब्रह्म की चेतना स्वीकार करना हमारे लिए अनिवार्य हो जाता है। रहा यह वाक अब यह प्राण की चेतना है, मानो प्राण अपनी गति कर रहा है, इसमें जो कम्पन्नता हो रही है, वह भी उसको हम प्रकृति की स्वीकार करते हैं। तो उसी में हमें देखो, कुछ वाक सुन्दर प्रतीत नही होता। मानो वह भी चेतना ब्रह्म की ही स्वीकार करना हमारे लिए योग्य होता है। आगे चल करके जब हम और भी अनुसन्धान करने लगते हैं, कि हम मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार का, जैसे मन है, परन्तु बुद्धि में जो चेतना आती है, बुद्धि में जो एक विभाजन करने की अथवा उसमें विचार विनिमय करने की जो सत्ता आती है, उसका भी मूल कारण हमें ब्रह्म ही प्रतीत होता है, परन्तु बुद्धि के लिए नाना प्रकार की धाराएं दूसरी धारा प्रारम्भ हो जाती है, कहीं देखो, ये बुद्धि बन करके रहती है, जहाँ आगे चल करके मेधा, ऋतम्भरा, और प्रज्ञावी बन करके कार्य करती है। परन्तु इसके भी नाना प्रकार के भेदन माने गएं हैं। अब उसके पश्चात चित्त है जिसमें जन्म जन्मान्तरों के संस्कार विराजमान रहते हैं, वह संस्कार जब चित्त में विराजमान होते हैं। हमारे आचार्यों ने तो यहाँ तक कहा है कि मानव के चित्त में, मानव के करोड़ों करोड़ों जन्मों के संस्कार विराजमान होते हैं। परन्तु इसके ऊपर अनुसन्धान किया जाएं, एक मानव है, परन्तु उसके सूक्ष्म से चित्त में, एक मानव, सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण कर लेता है। परन्तु राष्ट्र का भ्रमण करता हुआ, वह द्वितीय राष्ट्रों में जाता है, भूमण्डल का भ्रमण कर लेता है, चन्द्रमा की यात्रा कर लेता है, मङ्गल की यात्रा कर लेता है, मानो शुक्र इत्यादि

बुध की यात्रा में परणित हो जाता है। वहाँ के प्राणी मात्र को दृष्टिपात कर लेता है, अब चित्त में वह संस्कार मानो वह संस्कार चित्त में विराजमान हो जाते हैं, अब हम विचारते हैं, कि कि हमारे राष्ट्र का कितना क्षेत्रफल है। तो मुनिवरों! देखो, वही चित्त में, वही तरंगे उत्पन्न होकर के, मानव के मस्तिष्क में आ जाती है, और वाणी से उच्चारण करने लगता है। मानो यह कितना ऊँचा अनुसन्धान है, क्या इसके ऊपर विचार विनिमय प्रत्येक मानव को करना चाहिए। इसके पश्चात हम चित्त का अनुसन्धान जब हम करेंगे, तो हमें यह प्रतीत होगा, क्या यह जो सर्वत्र प्रकृति है, जितना भी प्रकृतिवाद है, इसमें जितना परमाणुवाद है, यह भी एक चित्त की भान्ति अपना कार्य करता चला जा रहा है। परन्तु एक राष्ट्रवेत्ता है, राष्ट्र में धिराज बन जाता है, वह राष्ट्र के अपने राष्ट्र के लिए विचार विनिमय करता है। परन्तु वह दूसरे राष्ट्र का भ्रमण करता है, दूसरे राष्ट्र वाले जब प्रश्न करते हैं, तो उन वाक्यों को उनके समीप नही नियुक्त कर सकता। जिससे अपने राष्ट्र की हानि हो जाएं, तो वह यह जानता है कि क्योंकि उसके मस्तिष्क में वो सब उसके चित्त में अवृत हैं, व्यापकवाद से ही वह चित्त दर्शीता उसके चित्तवाद में होती है, इसीलिए बेटा! देखो, वह उन वाक्यों को नही पान करता।

चित्त के संस्कारों पर अनुसन्धान

अब एक मानव है, परन्तु वह सङ्कीर्णता से विचार विनिमय करता है, सङ्कीर्णता जितनी मानव के मस्तिष्क में होती है। उतनी मानो देखो, प्रकृति में, प्रकृति का एक गुण है, जिसको हम आकुञ्चन भी कहते हैं, आकुञ्चन गुण भी प्रकृति का है, क्योंकि यदि प्रकृति में आकुञ्चनवाद नही होगा, तो मुनिवरों! देखो, माता के गर्भस्थल से बालक भी उत्पन्न नही हो सकता। हम जैसे भी उत्पन्न नही हो सकते। क्योंकि वास्तव में हम माता के गर्भ में आते हैं, उसके माता के गर्भ में पनपते रहते हैं, पनपने के पश्चात पृथक हो जाते हैं, पृथक हो जाने के पश्चात मानो देखो, हममें व्यापकवाद आना प्रारम्भ हो जाता है। बुद्धि का विकास होने लगता है। चित्त के जो संस्कार हैं, उनमें उद्बुद्धता होने

लगती है, परन्तु देखो, जिस पर अनुसन्धान भी किया जाता है। यदि हम चित्त के संस्कारों पर अनुसन्धान करेंगे, तो हमें यह प्रतीत होगा कि वास्तव में अनुसन्धान है क्या, हम अनुसन्धान किसको कहते हैं, हम प्रकृति का अनुसन्धान करें, ब्रह्म में जो प्रकृति में चेतना है, उसके ऊपर अनुसन्धान करें, परन्तु देखो, मानव का जीवन तो ऐसा प्रतीत होता है, क्या इसके जीवन में तो अनुसन्धान ही अनुसन्धान है, और करना चाहिए। कहीं राष्ट्र का अनुसन्धान है, आगे राजा है, परन्तु किसी राजा को, किसी प्राणी को देखो, किसी प्रकार का राष्ट्र अन्नाद सुन्दर लगता है। किसी को किसी प्रकार का सुन्दर प्रतीत होता है। परन्तु कोई यह कहता है, क्या सब अपने अपने अधिकार में सीमित होने चाहिए। कोई यह कहता है कि नही, इसमें प्रसन्नता आनी चाहिए, तो विचार यह होना चाहिए कि हम वास्तव में अपने विचारों पर कितने सुन्दर बनें। कितनी हममें व्यापकता आनी चाहिए, हम राष्ट्रवाद को कैसा बनाना चाहते हैं, तो यह सब प्रजा के जो विचार, जब राजा तक पंहुचेंगे, तो राजा उनको स्वीकार करेगा। परन्तु स्वयं राजा को यह विचार विनिमय करना है, कि हमें, स्वयं कैसा बनना है? परन्तु जब वह अनुसन्धान करेगा, क्या तेरे ऊपर ही सर्वत्र प्रजा का जीवन न्यौछावर हैं। क्योंकि प्रजा तेरे ही निर्धारित किए हुए आङ्गन में रहती है अब तुझे कैसा बनना है? परन्तु यह बडा महान एक सब अनुसन्धान है, जिसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करने की, सदैव आवश्यकता रहती है।

संसार में अराजकता

तो मेरे प्यारे! महानन्द जी! यह कहा करते हैं। आधुनिक काल की चर्चा अधिक प्रगट करने लगते हैं। परन्तु जब आधुनिक काल की चर्चा आने लगती है, तो यहाँ हमें ऐसा प्रतीत होता है। परमाणुओं से भी ऐसा प्रतीत होता है। वायु मण्डल से ऐसा प्रतीत होता है कि संसार में अराजकता का प्रसारण होता चला जा रहा है। परन्तु जब यह प्रतीत होता है परन्तु वह क्यों करते हैं, कुछ ऐसे भी होते हैं कि अराजकता को स्वीकार करते हैं परन्तु

ये क्यों करते हैं यह एक अनुसन्धान का विषय है। परन्तु वह तो उन्ही से यह प्रश्न किया जाएं, क्या यह तुम्हारे द्वारा ऐसे वाक क्यों प्रारम्भ होते हैं? क्यों ऐसा होता है? मानो यह कहां से शब्द जाता है? इनका मूल कारण क्या है? हमे इसके मूल कारण को विचारना है, वास्तव में वसुन्धरा है, मन है, अस्ति प्राण है, ऐसा कौन सा मानव के शरीर में ऐसी कौन सी सत्ता है, जो ऐसा चाहता है कि मैं सब प्रकार से सम्पर्क रखना चाहता हूँ।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि मानव संसार में अनुसन्धान करने के लिए आता है, आज जब वसुन्धरा के गर्भ में एक वैज्ञानिक जाता है, नाना प्रकार के खनिज पदार्थों को एकत्रित करने का उसका स्वभाव बन जाता है। माता वसुन्धरा की गोद में जा करके विराजामन हो जाता है। जब उसे देखो, एक दूसरी धातु प्राप्त होती रहती है, आती रहती है, उसके समीप, मस्तिष्क में विकासवाद आ जाता है। अन्त में वह यह कहता है कि मैं इसको नही जान सकता, मानो प्रकृतिवाद में कितनी तरंगे हैं, मैं इस प्रकार नही जान सकता, तो हमारे ऋषियों ने बेटा! बहुत सुन्दर कहा, बहुत ही सुन्दर कहा है कि यदि हम ब्रह्म की चेतना को और प्रकृतिवाद को जानना चाहते हैं, तो हमें यौगिक बनना चाहिए, हमें वास्तव में यौगिक बनना चाहिए। क्योंकि योग में जा करके मानव बेटा! महान और शान्त हो जाता है। उसे संसार के लिए जितना परमाणुवाद है, तरंगेवाद है, उनसे उसकी तृप्ति हो जाती है, क्योंकि यह प्राण और मन की चेतना जो संसार में प्रतीत होती है। मानो ब्रह्म की प्रकृति की देखो, प्रकृति की दृढता और ब्रह्म की चेतना हमें प्रतीत होती है, उस चेतना को दृढ़ता को दोनों को उसका अधिपथ्य हो जाता है, और वह चेतना में जब पंहुच जाता है, तो जड़ता से उसका स्वयं अधिकार हो जाता है।

परमाणुओं का सूक्ष्मवाद

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! और जहाँ मानव की जड़ता से अधिकार हुआ, परन्तु जड़ता के अधिकार होने के पश्चात ही मानव जड़ता के आङ्गन में नही आना चाहता। वह

स्वयं चेतना में रहना चाहता है, और चेतनित के द्वारा जब चेतनित हो जाता है तो बेटा! देखो, यह प्रकृति उसके स्वयं आधीन हो जाती है। अब प्रकृति में जितना विज्ञान है, वह चाहे चन्द्र मण्डल का हो, अथवा शुक्र का हो, बुध का हो, किसी भी लोक लोकान्तर का हो, उसको जानने में वह सब प्रकाश स्तम्भ हो जाता है। क्योंकि वह चेतना सर्वत्र है, जो सर्वत्र चेतना है, उस चेतना को उसने जान लिया है। **जो ब्रह्म की सर्वत्र चेतना को जान लेता है, बेटा! वह इसका अधिपथ्य कर ही लेता है। क्योंकि आत्मा संसार में महान और सूक्ष्म है, सूक्ष्म होने के नाते बेटा! उसको प्रकृति व्याप्ति नही है इस प्रकार से** । क्योंकि प्रकृति जब इस प्रकार नही व्यापती, उसको लोक लोकान्तर भी नहीं व्यापते, जैसे हमारे यहाँ ऐसा माना गया है, क्या बृहस्पति मण्डल में वायु प्रधान है, परन्तु वायु प्रधान में पार्थिव तत्त्व वाले जो शरीर जाते हैं। तो बेटा! देखो, वहाँ वह जीवित नही रह पायेंगे, क्योंकि उनका प्राणान्त हो जाएगा। क्योंकि वहाँ केवल उनकी प्रतिभा अकृत रह सकेगी, तो इसीलिए देखो, जैसे वायुमण्डल के पार्थिकता में आ जाएं। तो वह पार्थिकता में जीवित नही रह सकेंगे। क्योंकि उनका जीना, हम तो वास्तव में स्वीकार नही करते, उनका जो शरीर है, वह आत्मा का जो शरीर है, परन्तु वह एक दूसरे लोक में सुगठितता नही है। अब मङ्गल मण्डल के जो प्राणी हैं, वह पृथ्वी मण्डल पर जीवीत रह सकते हैं, क्योंकि पृथ्वी मण्डल के प्राणी मङ्गल मण्डल पर जीवित रह सकेंगे। क्योंकि मङ्गल में यदि पार्थिव तत्त्व प्रधान है, और इस पृथ्वी मण्डल पर भी पार्थिव तत्त्व प्रधान है। तो इसीलिए आज मैं यह उच्चारण करने आया नही आया, कि मैं लोक लोकान्तरों की इच्छा प्रगट करूं। केवल वाक यह उच्चारण करना था, कि जिन वाक्यों पर सब पर अनुसन्धान करना है, और इसको अपने जीवन में लाने का प्रयास करना है, अब इनको कैसे लाया जाएगा? परन्तु एक वाक तो हमारे ऋषि मुनियों ने यह उच्चारण किया है, क्या हम योग के द्वारा, इन सब पर अपना अधिपथ्य कर सकेंगे, इससे अन्तरात्मा को शान्ति भी प्राप्त होगी, और एक द्वितीय मार्ग

यह है कि हम एक दूसरे परमाणु को जानते रहे, परन्तु जब हम परमाणुवाद में जाते हैं, एक परमाणुवाद को हम जानते हैं। तो दूसरा परमाणु उसके पास विराजमान है, इसके साथ साथ दूसरा परमाणु इससे सूक्ष्म है, जब हम उसको जानते हैं, तो उससे सूक्ष्म परमाणु उसके साथ है, परन्तु जब इस प्रकार उस परमाणु को, तृतीय परमाणु को जानते हैं। तो चतुर्थ परमाणु, उसके साथ साथ लगा हुआ है। परन्तु जब हम चतुर्थ परमाणु को जानते हैं, पञ्चम परमाणु उसके साथ जुड़ा हुआ है। उसके साथ लगा हुआ होने के नाते बेटा! हम पाँच प्रकार के परमाणुओं को जानते हैं, अब इसमें कुछ परमाणु हैं कुछ महापरमाणु है। कुछ देखो, एक दूसरे से सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु होते हैं मानो देखो, उन परमाणुओं में भी सूक्ष्मवाद है जैसे मुनिवरों! देखो, वायु के परमाणु हैं, वायु के परमाणु लगभग मुनिवरों! देखो, लगभग देखो, साठ हजार प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म होते चले गयें हैं एक स्थूल है, उससे सूक्ष्म से सूक्ष्म तो साठ हजार तक बेटा! देखो, उसकी सूक्ष्मता मानी है। अब देखो, जैसे हमारे यहाँ अग्नि के परमाणु हैं, अग्नि के परमाणु हैं देखो, एक अग्नि का परमाणु देखो, जो गृहपथ्य नाम की अग्नि है, वह देखो, माता अपने गृह में प्रविष्ट करती है, उसकी प्रतिष्ठा करती है एक अग्नि यज्ञशाला में प्रविष्ट होती है, मानो देखो, यज्ञशाला में जो अग्नि प्रदीप्त होती है, अब यज्ञशाला में जो अग्नि हम प्रदीप्त करते हैं। सामग्री उसमें अर्पित करते हैं, जितने प्रकार की सुगन्धिदायक औषधियां होंगी, वनस्पतियां होंगी, उतने ही प्रकार की सूक्ष्मवाद का बेटा! उनमें होती चली जाती हैं। ऐसा हमारे यहाँ यद्यपि विशेषज्ञ वेत्ताओं ने स्वीकार किया है क्या जब यज्ञमान यज्ञ करता है और यज्ञमान की जो भावना है, परन्तु वह यज्ञमान की भावना में, एक अरब प्रकार के परमाणु प्रत्येक स्वाहा के साथ में उत्पन्न होते रहते हैं। मानो वह जो परमाणु हैं, जो प्राण के द्वारा उत्पन्न होते हैं, जो हमने जल, अन्न इत्यादि वनस्पतियां पान की हैं, उनके तो परमाणु बनेंगे। परन्तु उनमें कितने प्रकार के सूक्ष्म से सूक्ष्म होते चले जाते हैं,

तो बेटा! कितना महान यह अनुसन्धान है।

अग्नि से एक औषधि के साठ प्रकार के सूक्ष्म परमाणु

तो विचार विनिमय करना है, आगे यह उच्चारण करने जा रहा था, कि वह जो जितनी वनस्पतियां हम अग्नि में परणित करते है। अब अग्नि प्रत्येक औषधि को ले करके, प्रत्येक औषधि के साठ प्रकार के सूक्ष्म परमाणु बना देती है। और वह औषधियों में किसी में मानो देखो, पार्थिव तत्त्व की अधिकता है। किसी में अग्नि की प्रधानता है। जैसे समिधा है, चन्दन में, मानो जितनी सुगन्धि होती है, अहा! चन्दन में अग्नि की प्रधानता है, क्योंकि उसमें प्रतिभा है, इस प्रकार देखो, जैसे पीपल का वृक्ष है, पीपल के वृक्ष में मुनिवरों! देखो, उसमें आकुञ्चन करने की बहुत शक्ति होती है। इसीलिए पीपल का वृक्ष हमारे यहाँ देखो, यज्ञशाला में महासृष्ट स्वीकार किया गया है। आगे चल करके देखो, जैसे वट वृक्ष है, वट वृक्ष की समिधाओं में लगभग मुनिवरों! देखो, एक समिधा को जब हम अग्नि में प्रदीप्त कर देते हैं। उससे वायु तत्त्व की और कृतिभा की जैसे मानो हम पार्थिवता और वायुता की दोनो की प्रधानता हम स्वीकार करते हैं उसमें, मानो देखो, जब अग्नि से वह सुगन्धि देती है, तो उसमें से लगभग निन्यानवें प्रकार के परमाणुओं की उत्पति होने लगती है। तो इसी प्रकार से एक एक को लेकर के यह अग्नि जब सूक्ष्म परमाणु बनाती है, वह सूक्ष्म अब अग्नि के कितने परमाणु हैं, कितने प्रकार के परमाणु उत्पन्न होते हैं, अब एक दूसरे परमाणु में गति जानने लगोगे, जानते रहोगे तो एक दूसरे यन्त्र का भी तुम विकास करते रहोगे, और देखो, वायु तत्त्व प्रधानता का तुम्हें यन्त्र बनाना है। तो उसमें वायु के परमाणुओं को तुम्हें निकासना होगा, अब उनका अनुसन्धान करना होगा। कैसे निकासा जाएं? बेटा! यह मस्तिष्क में उसको विचारा जाएं, मस्तिष्क में विचार करके, उन धातुओं को वसुन्धरा से लिया जाएं, वसुन्धरा से जब वह धातु ली जाती है। मानो देखो, एक दूसरी धातु का मिलान करते हैं, तो वह धातु वह जो परमाणु भ्रमण कर रहे हैं तत्त्व में, तत्त्व प्रधानता में बेटा! वह इसके साथ साथ इनका मिलान होता है और

वह एक दूसरी वसुन्धरा, की हम, धातुओं के एक दूसरें से मिलान करते हैं, मिलान करके बेटा! वह परमाणु स्वयं सुगठित हो जाते हैं, अब वह परमाणु सुगठित हो जाते हैं उनमें व्यापकवाद प्रकृति का स्वाभाविक गुण होता है। क्योंकि देखो, वायु में व्यापकवाद है, अग्नि में प्रसारण शक्ति, अधिक होती है, अब ऐसे उन परमाणुओं को जानने से ही बेटा! हम आगे चल सकते हैं। मानो एक मार्ग यह है, कि जो हम विज्ञान का मार्ग प्राप्त करते हैं। परन्तु यह मार्ग कहां तक सम्बन्धित होता है यह आगे चल करके मैं उच्चारण करूंगा क्योंकि वेद का पाठ आयेगा।

अनुसंधान की वेदी

आज का वेद का पाठ हमारा बहुत ही सुन्दर विवेचना देता चला जा रहा था और वह विवेचना यह थी कि वास्तव में हम अनुसन्धान की पवित्र वेदी पर जाना तो चाहते हैं परन्तु दो प्रकार का अनुसन्धान मैंने अभी अभी नियुक्त तुम्हारे समक्ष किया, क्या एक तो वह मार्ग है और एक यह परमाणुवाद का मार्ग है परन्तु परमाणुवाद का इस प्रकार का मार्ग है ये, क्या एक परमाणु को तुम जानोगे दूसरा तुम्हारे साथ में सुगठित है और वह चाहता है कि मुझे भी जानो। परन्तु देखो, मस्तिष्क में तो यह आ जाता है कि इसको भी जानो। परन्तु जितनी भी मनुष्य की बुद्धि सूक्ष्म होती चली जाएगी, जितना इसमें सूक्ष्मवाद और व्यापकवाद की तरंगे आती रहेगी, उतना ही परमाणुवाद को हम सुगठित कर सकते हैं। आगे चल करके बेटा! देखो, इस मार्ग को हम प्राप्त करते हुए, इसमें हमें नाना प्रकार की धातु और द्रव्य इत्यादियों की आवश्यकता रहती है, स्वर्ण की आवश्यकता अधिक रहती है, क्योंकि स्वर्ण में विद्युत अधिक होती है और जैसे अग्नि हैं मानो देखो, ये अग्नि तो जिसको हमारें यहाँ यज्ञशाला में परणित की जाती है, और एक अग्नि वह है, जो अग्नि हमारे यहाँ विद्युत बन करके प्रकाश देती है, एक वह अग्नि है जो विद्युत को प्रकाशित करती है, एक वह अग्नि है, जो इनकी तरंगों में रमण करके, भ्रमण करती है। परन्तु कितनी प्रकार की विद्युत होती है, उस विद्युत के जो परमाणु होते हैं, वह

अग्नि भी जैसे अग्नि और जल के मिलान से मानो देखो, पृथ्वी अग्नि और वायु और जल के दोनो के मिलान से इसमें जल का मिश्रण और पृथ्वी का मिश्रण करने से ही बेटा! देखो, वह स्वयं, वह अग्नि के और जिसको हम विद्युत के परमाणु सुगठित हो जाते हैं, और वह परमाणु मानो एकत्रित हो जाते हैं। इसी प्रकार बेटा! देखो, परमाणुवाद, एक दूसरी धातु को सुगठित करने से, वह एकत्रित हो जाते हैं। हमारे यहाँ बेटा! विद्युत से भी अधिक सूक्ष्म है, ऐसी ऐसी सूक्ष्म धातु हैं, जो विद्युत को भी निगल जाती हैं, बेटा! मानो देखो, जैसे मानव को मृत्यु निगल जाती है, इसी प्रकार विद्युत को निगलने वाली भी धातु हैं परन्तु इनको जानने के लिए वास्तव में हम उत्सुक रहें और वेद का अध्ययन करेंगे, और वेद से हम उन वस्तुओं को निकासने का प्रयास करें, तो मुनिवरों! हमें वह वस्तु प्राप्त हो सकती हैं।

वास्तविक चेतना

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं वाक उच्चारण करता करता बेटा! बहुत दूरी चला गया हूँ, वाक मुझे अनुसन्धान के लिए जाना था आज मुझे यह वाक नही उच्चारण करना था, क्या पुनः से विज्ञान के क्षेत्र में चला जाऊं। यह तो विषय हमारा चलता रहेगा, आज तो केवल यह वाक उच्चारण करना था कि हमें वास्तव में चेतना को जानने का प्रयास करना चाहिए। हमारी वास्तविक चेतना क्या है? जिसके आधार पर हम चेतनित हो रहे हैं, वह केवल ब्रह्म ही है, ब्रह्म को जानना हमारे लिए बहुत ही अनिवार्य होता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आओ, आज ब्रह्म के लिए याचना करते चले जाएं, आज मुझे अपना वाक भी बहुत सूक्ष्म प्रगट करना है, क्योंकि आज का हमारा वाक यह कहता चला जा रहा है, कि हम ब्रह्म के ऊपर अपना अनुसन्धान करते चले जाएं, और उस महान देखो, जैसा इस महान देखो, जैसा हमने अभी अभी उच्चारण किया था एक मानव राष्ट्रीय बनना चाहता है। परन्तु राजा को स्वयं को यह विचारना होगा कि मुझे कैसा बनना है, जब मैं प्रजा का अधिपथ्य करने के लिए तत्पर हुआ हूँ। विधान

मेरा कोई हो, परन्तु देखो, मुझे चरित्रवान होना बहुत अनिवार्य है। अब चरित्र में क्या क्या वस्तु आती हैं? इसके ऊपर भी मानव को विचार विनिमय करना होता है, एक वह चरित्र है जो मानो देखो, अपने ब्रह्मचर्यव्रत से रहता है, वह भी चरित्र है, एक वह है कि वाणी का भी चरित्र है, वाणी से कोई शब्द ऐसा नही उच्चारण न हो जाएं, जिससे दूसरों को कष्ट हो, मानो देखो, यह वाणी ही राष्ट्र के लिए घातक बन सकती है। तो मानो देखो, मेरा वाणी का भी अनुसन्धान और वाणी का भी चरित्र होता है। एक मेरे भुजों का चरित्र होता है, नेत्रों का चरित्र होता है, यह अपनी अपनी इन्द्रियों का जो संयम बनता है, वह चरित्र की नृत्यता को जानता है, कि वास्तव में चरित्र नाम में क्या क्या वस्तु आती हैं इसके ऊपर भी बेटा! अनुसन्धान करना, विचार विनिमय करना, यह मानव का परम कर्तव्य हो जाता है। एक तो कर्तव्य होता है यह बेटा! सर्वोपरि परम कर्तव्य कहलाया जाता है।

मृत्यु ही ब्रह्म

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमारा यह वाक क्या कहता चला जा रहा था, कि हम परमपिता परमात्मा के आङ्गन में जाएंगे, तो हमारा सर्वश चरित्र ऊँचा बन जाएगा, बेटा! हमारा जीवन सर्वोपरि और महान बनता चला जाता है, जब हम परमपिता परमात्मा को अपना आराध्यदेव स्वीकार कर लेते हैं, तो मृत्यु से पार हो जाते है, क्योंकि मानव को निगलने वाली संसार में मृत्यु होती है, और मृत्यु वास्तव में क्या होती है, इसके ऊपर हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत विचार विनिमय किया है। हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने तो यहाँ तक कहा है, क्या यह मृत्यु ही ब्रह्म है, जिससे मानो देखो, यह कहा है कि मृत्यु ही ब्रह्म है, क्या मृत्यु का यह सर्वश रूप है, जब प्रलय काल आती है, तो यह मृत्यु ही तो सर्वश प्रकृति को निगल जाती है। ऐसा कहीं कहा है, परन्तु हमारे यहाँ तो बेटा! ऐसा कहा है, क्या मृत्यु ही वह है कि मानव चेतना को नही जानता और जड़ता में

सदैव रमण करता रहता है वह संसार में मृत्यु से सदैव मुख में रहता है।

तो मेरे प्यारे! संसार में शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नही कहते, शरीर को त्यागना ही होगा एक न एक समय आता है, जब मानव शरीर को त्यागता है, यह अन्तरात्मा शरीर को त्याग देता है, क्योंकि आत्मा, अन्तरात्मा के लिए बेटा! किसी का पुत्र अथवा पुत्री नही बनता है तो इसीलिए हमारे यहाँ यदि आत्मा में इतनी मोह ममता होती, तो बेटा! देखो, यह अपने मानो देखो, पुत्र जो बनें हैं, यह संसार बना हैं एक नवीन रचना बनी है, मानो देखो, यह त्याग करके किसी भी काल में नही जाने के लिए तत्पर होता, यह मुनिवरों! देखो, यहाँ आत्मा के सम्बन्ध में, केवल प्रकृति की एक महान, सुन्दर रचना है। उसमें वह प्रतिभा है, उसके आधार पर मानो देखो, विचार विनिमय उसी के आधार पर मानो मानव अपने मन के वशीभूत होकर करके ममता स्वीकार कर लेता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आचार्यों ने यह कहा है, कि मृत्यु सब को निगल जाती है, मृत्यु मानो अभिमानी बनता है, न आती है तो मृत्यु आ करके उसको निगल जाती है, कैसी मृत्यु आती है? वह मृत्यु मानव के समीप हताश बन करके आती है। अहा! बेटा! वह हतप्रव्हे अस्ति अस्तुत कृताम मेरे प्यारे! ऋषिवर! निराशा बन करके आती है, और वह जब निराशा बन करके आती है, निराशा ही संसार में बेटा! मानव की मृत्यु कहलाई जाती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आओ, आज हम प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं, और हम यह विचारते चले जाएं, कि हम मृत्यु से कहां जा करके पार हो सकते हैं। बेटा! आचार्य जनों ने कहा है कि संसार में वही मानव मृत्यु को पार हो सकता है, जो ब्रह्म की चेतना को जानता है। ब्रह्म के ज्ञान को जानता है। ब्रह्म की चेतना पर अपना अधिपथ्य कर लेता है। अपने को उसमें रमण कर लेता है, वह और प्रकृति पर उसका अधिपथ्य हो जाता है। तो वह मानव बेटा! मृत्यु से पार हो जाता है। इसीलिए आचार्यों ने कहा है, क्या जो मानव मृत्यु से पार होना चाहता है, मृत्यु को

उल्लांघाना चाहता है, वह ब्रह्म की चेतना, ब्रह्म की शरण आ जाएं, ब्रह्म की शरण में आ जाने से, बेटा! हम सर्वत्र जान सकते हैं।

मानव का कर्तव्य

यह आज का हमारा वाक है, आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह क्या हम प्रभु की चेतना को सदैव स्वीकार करते रहें, और ब्रह्म की चेतना पर और जड़ता पर विचार विनिमय करते, अनुसन्धानवेत्ता बनते रहें। बेटा! यह आज का हमारा वाक अब समाप्त होने जा रहा है, मैं आज कोई अधिक चर्चा तो प्रगट करने तो नही आया था, आज के वाक्यों का अभिप्राय हमारा यह था, कि हम सदैव उस ब्रह्म की चेतना में रमण करते रहें। आनन्दपूर्वक ब्रह्म को जानते रहें, और रहा यह कि मानव का जीवन तो संसार में आता है पश्चात में, परन्तु अनुसन्धान इस पर सबसे प्रथम वस्तु है, अहा! एक से एक वस्तु पर अनुसन्धान करता रहता है, एक गृह आश्रम में ब्रह्मचारी जाता है, परन्तु देखो, उसको कुछ काल में उस गृह आश्रम का अनुभव होता है। परन्तु देखो, उसके पश्चात वह अनुसन्धान में लग जाता है, अब युवा था, अब मध्य काल में आ गया, अब वृद्धपन आ गया, मानो यह भी तो अनुसन्धान है। क्या, तू वृद्ध काल में, क्यों आ गया? कौन सी गति, कौन सी चेतना ऐसी है, जो तुझे वृद्ध काल में ले आती है। वृद्ध काल तेरा आ गया, मानो कहीं जैसी गति बाल्यकाल में माता की लोरियों में दूधि का पान कर रहा था। आनन्द पूर्वक रमण कर रहा था, अब वह समय आ गया तू वृद्ध हो गया अरे, क्यों हो गया? कौन सी ऐसी चेतना है, ब्रह्म की इस प्रकृतिवाद में क्या यह ब्रह्म की चेतना है, या प्रकृतिवाद है, उसके ऊपर बेटा! कल हम विचार विनिमय करेंगे। आज का वाक यह समाप्त होने जा रहा है, परन्तु प्रत्येक मानव का कर्तव्य है, एक तो कर्तव्य होता है और एक परम कर्तव्य होता है कि प्रत्येक वस्तु का अनुसन्धान करना और ब्रह्म की चेतना का अनुसन्धान करना तो यह बहुत ही अनिवार्य है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह वाक हमारा

समाप्त होने जा रहा है, कल मुझे समय मिलेगा, तो बेटा! शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। आज का वाक अब यह समाप्त होने जा रहा है। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या, कि हम ब्रह्म के आङ्गन में जाएं, ब्रह्म की चेतना में पंहुचे, यदि हम सर्वश वैज्ञानिक बनना चाहते हैं, बुद्धिमता बनना चाहते हैं, योगी बनना चाहते हैं, तो ब्रह्म के आङ्गन में जाओं, और प्रभु के आङ्गन में जाने से बेटा! मानव को परम शान्ति प्राप्त होती है। क्योंकि अग्नि की जो गति है, ऊर्ध्वा होती है, किसलिए होती है? क्योंकि उसका स्वामी ऊर्ध्वा में रहता है, क्योंकि सूर्य से अग्नि का सम्बन्ध है, अग्नि की ऊर्ध्वा गति प्रायः होती है। तो बेटा! अग्नि ऊपर को जाने के लिए प्रदीप्त होती है, इसी प्रकार मानव का जो अन्तरात्मा होता है। **उसकी** ऊर्ध्वा गति होनी चाहिए, ऊर्ध्वा गति जब होती है, इसको शान्ति प्राप्त होती है, क्यों होती है? क्योंकि उसका स्वामी जो है, वह ऊर्ध्वा में रहता है, उसकी गति भी ऊर्ध्वा है। चेतना की जो गति होगी, वह ऊपर को, ऊर्ध्वा होगी, परन्तु ध्रुवा नही होगी, प्रकृति की गति ध्रुवा होगी, नीचे को ले जाने वाली है। इसीलिए प्रकृति में जा करके अन्तरात्मा कदापि प्रसन्न नही होता, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचारना है कि हमें ब्रह्म की चेतना में जाना है। ब्रह्म के लिए हमें सदैव चिन्तन करना है। अपनी ऊर्ध्वा गति बनाना हमारा परम कर्तव्य है। अब वेद का पाठ होगा बेटा! समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव वाक तो आपका बहुत प्रिय और सुन्दर हुआ परन्तु समय बहुत सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरूदेवः बेटा! कल समय मिलेगा, तो अधिक चर्चाएं कल प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः तो भगवन! कल समय प्रदान किया जाएगा तो बहुत ही सुन्दर होगा।

पूज्यपाद गुरूदेवः हास्य..... बेटा! कल जैसा भी समय होगा उसके अनुकूल वाक प्रगट करेंगे, आज का वाक तो समाप्त होने जा रहा है,

तो मुनिवरों! आज का वाक हमारा समाप्त होने जा

रहा है, अब जैसा कल समय होगा, हम उच्चारण करेंगे, अब वेद का पाठ। आर्य समाज लोधी रोड।

९ २१ ०८ १९६९ आध्यात्मिक विमर्श

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ नित्य प्रति वेदों का कर्म उच्चारण अथवा उनकी पद्धतियों का विवरण और उसका कर्म सदैव प्रचलित रहता है, क्योंकि हमारा जो वेदज्ञ ज्ञान है, उस महान ज्ञान में पवित्रता है, और वह किस प्रकार का पवित्र है, जैसे ब्रह्म पवित्र है, इसी प्रकार, वेदों का ज्ञान भी पवित्र है। क्योंकि उसमें इतनी पवित्रता हम क्यों स्वीकार करते हैं, जो ज्ञान सर्वत्र ब्रह्माण्ड के लिए, एक तुल्य होता है। उस ज्ञान को हमारे यहां पवित्र कहा जाता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! यह जो वेदों का अनुपम प्रकाश है, हमने बहुत पूर्व काल में, पूर्व स्थलों में भी उच्चारण किया है, और इसकी प्रतिभा का परम्परा से वर्णन करते चले आएं हैं। आज हम ही नही वर्णन कर रहे हैं, हमारे सर्वश ऋषि मुनियों ने, वेदज्ञ आचार्यों ने, सभी ने इसका सुन्दर रूपों से इसका निरूपण किया है।

मङ्गल मण्डल में महाराजा अर्जुन

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस परमपिता परमात्मा, वेदों की पवित्र ज्ञानमयी, आनन्दताओं की हम वर्णन करते चले जाएं। हमने बहुत पूर्व काल में, इस अनुपम प्रतिभा का वर्णन करते हुए भी कहा है, आज भी हमारे स्मरण आते चला जा रहा है, हमारे यहाँ यह ईश्वरीय वेदों का ज्ञान विद्यमान है, यह विचार विनिमय क्या, हमने सर्वश विचारक ब्रह्मवेत्ता सभी, इस वाक को स्वीकार करते हैं। बेटा! यह हमारे यहाँ परम्परा आचार्यों ने भी और वैज्ञानिक पुरुषों ने भी इसको सिद्ध किया है। एक समय मुझे स्मरण है, जब यहाँ बेटा! महाराजा अर्जुन से यह प्रश्न किया गया, जब वह मङ्गल मण्डल से यहाँ, तो उनसे से यह प्रश्न किया गया कि वहाँ से क्या प्राप्त

करके आयें हैं? तो महाराज अर्जुन ने वहाँ प्रश्न करने वाले, कौन? महाराजा दोर्णाचार्य थे, महाराजा द्रोणाचार्य ने कहा हे पुत्र! तुम क्या प्राप्त करके आए हो? उन्होंने कहा कि महाराज! आपकी अनुपम कृपा से, मैंने वहाँ नाना प्रकार के वैज्ञानिक अस्त्रों शस्त्रों को जानने का प्रयास किया। मैंने यह जो ब्रह्मस्त्र है, भगवन! इसको मैंने उस अहा! प्रमाणी प्राप्त किया है और एक कृति भी यन्त्र है, जो यहाँ मानो देखो, यहाँ उसकी सूक्ष्मता मानी जाती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! अहा! विज्ञान में, मानव जब वैज्ञानिक बनने के लिए चलता है, तो उसके लिए क्या क्या उसका अभिप्राय यह भी महाराजा नें प्राप्त कराया कि हे अर्जुन! वहां ज्ञान की प्रतिभा किस प्रकार की है? उस समय महाराजा अर्जुन ने कहा वेदा बृहस्तति सुप्रजा अस्वंति रुद्रो भागा प्रकृति अघ्वानं बृहस्ति सुप्रजा। महाराज अर्जुन ने कहा कि हे भगवन! हे प्रभु! वहाँ वेदज्ञ ज्ञान अस्ति सुप्रजा मानो वहाँ वेदों का पवित्र ज्ञान है, और वह सुमति से प्राप्त करते हैं, इसी के आधार पर वहाँ विज्ञान की प्रतिभा मानी जाती है। परन्तु रहा यह वाक्, कि विज्ञान को हम किस रूप में स्वीकार करते हैं अथवा वेदों का ज्ञान वहाँ किस रूप में स्वीकार करते हैं, यह भी एक महान विचार का विषय रह गया था, तुम्हारा क्या महाराजा अर्जुन ने कहा ब्रह्मणे अप्रहे कास्वानं ब्रीहि असवि विग्राता मनु सुप्रजा व्यापनोति ब्रह्मणा, वहां भी भगवन! देखो, ब्राह्मण है, ब्रह्मवेत्ता हैं, मानो ब्रह्म विचारक हैं, विचारक होने के नाते, वेद पर अधिक से अधिक अनुसन्धान होता है, अनुसन्धान होने के नाते राजन्न नमा प्रवे सुति क्योंकि राज का विधान भी मानो वेदा प्रवे अस्ति वेदा वह जो वेद आज्ञा करता है। उसके अनुसार बरतते हैं, प्रभु! तो मुनिवरों! देखो, यह उन्होंने यह वाक यहाँ आ करके निर्णित कराया। यह कहा कि भगवन! वहाँ पवित्रतव है, मानो यह वाक दूसरे है कि वहाँ का वातावरण उसके अनुसार विचारक पुरुष होते हैं, अहा! परन्तु ज्ञान की प्रतिभा, ज्ञान के यहाँ भी प्राणी मात्र रहता है। बेटा! वहाँ ज्ञान की प्रतिभा एक रत्त ही रहती है, इसीलिए वेदज्ञा ज्ञान प्रव्हे वेद के ज्ञान को पवित्र कहा गया

है। क्योंकि जो समस्त ब्रह्माण्ड में एक सा ही निर्णय करने वाला हो, उसी को हमारे यहाँ पवित्र ज्ञान की प्रतिभा कहा जाता है।

सन्निधान मात्र से रचना

तो मेरे प्यारे! ऋषियों! आज मैं कहाँ चला गया हूँ, मुझे यह वाक उच्चारण करने का अवसर नही प्राप्त हो रहा था, वाक यह प्रारम्भ करते चले जा रहे थे, कि आज हम वेद के उस पवित्र ज्ञान को स्वीकार करने का प्रयास करें। क्योंकि वही वेदों का ज्ञान सर्वत्र है। क्योंकि उसकी प्रतिभा सर्वत्र है, आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! यह कहा करते हैं कि नाना प्रकार के रूढ़िवादी यह स्वीकार नही करते, मैं यह कहा करता हूँ, बेटा! इसमें जितनी भी सुन्दरता है, ज्ञान की प्रतिभा है, परमात्मा का चिन्तन करने का विधान है। परन्तु उसमें जितनी सुन्दरता है, वह सब वेद से ही जाती है। वेद की ही प्रतिभा होती है उसमें, परन्तु यहाँ वेद नाम ज्ञान को कहते हैं, पवित्रवाद को कहते हैं, जिस ज्ञान में पवित्रवाद होता है, उसी को वेद की उपाधि प्रदान की जाती है, बेटा! हमारे यहाँ यह स्वीकार नही किया गया है, क्या आज हम चारों वेदों की पोथी में से केवल वेद के ज्ञान को कटिबद्ध कर सकते हैं। हम उसी में ही देखो, प्रतिष्ठित कर सकते हैं, यह ज्ञान ऐसा अनुपम है, जैसे परमात्मा अनुपम हैं, और अनन्त है, इसी प्रकार मुनिवरों! जैसे नाना प्रकार के लोक लोकान्तर प्रभु की अनन्तता में परणित हो रही है। दृष्टिपात आती है, इसी प्रकार बेटा! उस प्रभु का ज्ञान वेदों का ज्ञान भी अनन्तता में स्वीकार किया गया है, यह हम नहीं उच्चारण कर रहे हैं, आदि ऋषियों ने बेटा! इस ज्ञान की प्रतिभा का वर्णन करते हुए कहा है, आज इस पर जितना भी विचार किया जाता है कि इससे सुन्दर प्रतिभा का जन्म होता रहता है। एक से सुन्दरता का प्रतिभा का जन्म होता रहता है। उसी जन्म के कारण मुनिवरों! देखो, मानव अपने को आभा में स्वीकार करता हुआ आगे को चलता है। अग्रणीय बनता चला जाता है। ज्ञान को अपने को पथिक बना लेता है। बेटा! मानव सुन्दर मार्ग को मानव स्वतः ही प्राप्त कर लेता

है, जैसा हमने कल के वाक्यों में प्राप्त कराया, आज प्रत्येक मानव के ऊपर एक विचार है, कि मानो देखो, मानव की दृष्टि किस प्रकार परिवर्तित हो जाती है। आज एक मानव देखो, माता की लोरियों में आनंदतव को प्राप्त कर रहा है, माता की लोरियों में जीवन को प्राप्त कर रहा है। दिव्यों का पान कर रहा है, वही बालक, मुनिवरों! युवा हो जाता है, युवा हो जाने के पश्चात वह प्रतिभा कहाँ से क्योंकि वह प्रकृति का जो व्यापकवाद है, मानो उसमें जो प्रसारण करने की अनुपम शक्ति है, वह शक्ति मुनिवरों! क्योंकि प्रकृति से बना हुआ यह पिण्ड स्वीकार किया जाता है। आत्म ब्रह्म एकारसो ऐसा आचार्यों ने स्वीकार किया है। कि आत्मा इस शरीर में मानो एक रस रहने वाला, इस आत्मा का न कोई स्थूल होता है, और न वह मानो देखो, सङ्कीर्णता में जाता है, अहा! जैसा भी विचारक अब्रहे अग्रणा कृति मानो देखो, वही प्रकृति के जो तत्त्व होते हैं, वह सन्निधान मात्र से ही मुनिवरों! देखो, आकुञ्चनवाद और उसमें प्रसारणवाद की गति स्वतः आती रहती है। क्योंकि वह सन्निधान जो पूर्व हो गया है, उस सन्निधान मात्र से ही सर्वत्र चल रहा है।

आकुञ्चन शक्ति

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आदि ऋषियों ने इसके ऊपर बहुत सुन्दर सुन्दर टिप्पणियाँ दी हैं, आज भी मैं उस टिप्पणी को प्रदान करने वाला हूँ। आदि आचार्यों ने कहा है कि वह जो आकुञ्चनवाद है, मानो देखो, उसमें आकुञ्चन शक्ति होती है, वह भी शरीर में विद्यमान है, इसीलिए, मुनिवरों! देखो, शरीर में आकुञ्चन वहाँ होता है। माता के गर्भस्थल से कैसा सूक्ष्म सा आता है, अहा! वह कितना सूक्ष्म बन करके आता है, क्योंकि उसका जन्म होता है। तो जब जन्म होता है। तो मुनिवरों! देखो, प्रकृति का देखो, सम्पूर्ण भाव जिसे हम आकुञ्चन शक्ति कहते हैं, वह उसमें विद्यमान होती है। उसके पश्चात जब वह प्रबल होने लगता है, तो वह मानो देखो, वह आकुञ्चन, अपना कार्य भार त्याग देती है। त्याग करके उसमे एक मानो देखो, उसमें ऊर्ध्वा गति आनी प्रारम्भ हो जाती है, और प्रसारण क्रिया

आ जाती है। अहा! देखो, उस क्रिया के आधार पर क्योंकि वह उस चेतना का जो सन्निधान मात्र हो गया है। प्रकृति से उस चेतना के सन्निधान मात्र से बेटा! देखो, मानव के वह ब्रह्म की जो चेतना है, वह उसके प्रकृति से उसका सन्निधान है, **सन्निधान होने के नाते बेटा! स्वतः ही बेटा! देखो, मानव की प्रक्रिया में परिवर्तित होता चला जा रहा है**, और शरीर वह जो चेतना, आत्मा की चेतना है, आत्म ब्रह्म अकृति मानो देखो, वह जो प्रकृतिवाद है वह जो चेतना सन्निधान मात्र से आत्मा की चेतना शरीर में हैं। उसके स्वभाव से बेटा! प्रकृति का स्वभाव, ऐसे उमड़ जाता है जैसे माता के अपने पुत्र को व्याकुल हुए को दृष्टिपात करके बेटा! जैसे दूधी में दुग्ध उमड़ आता है, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, जैसे ऋतु में, ग्रीष्म ऋतु आती है तो पृथ्वी से देखो, तेज उगलना प्रारम्भ हो जाता है, तेज की सुचेता उत्पन्न हो जाती है और मुनिवरों! देखो, जैसे अप्रतम् ब्रह्मे अकृतां मुनिवरों! देखो, जब वर्षा ऋतु आती है वसुन्धरा के गर्भ में देखो, जब जल की स्थापना होती है, उस समय वसुन्धरा के गर्भ से बेटा! नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म हो जाता है, स्वतः उत्पन्न होने लेती है, स्वतः उसका भाव उत्पन्न होने लगता है, उसका कारण क्या है, क्योंकि वह जो सन्निधान मात्र था मानो देखो, **वह जो सन्निधान मात्र जो चेतना का है प्रकृति का स्वभाव उमड़ आता है** जैसा भी काल, समय होता है जैसा भी प्रवर्त्तिता में आने लगता है परन्तु उसी के आधार से, उसका स्वभाव उमड़ आता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! इसी प्रकार मानव के शरीर का स्वभाव उमड़ने के लिए तत्पर हो जाता है, उमड़ने लगता है और वह स्वतः ही मुनिवरों! देखो, उसकी प्रबलता होने लेती है, युवा हो जाता है, युवा हो जाने के पश्चात क्योंकि वह निरन्तर प्रथा वीर सतानम् वेद का आचार्य कहता है वह जो जन्म है मानो जिसको हम, जिसको वीर क्रान्ति का अस्तुति मुनिवरों! जिसको हम पुरूख कहते हैं, पुरखा कहते हैं, जिसे हमारे यहाँ देखो, जन्म ब्रीहि असते मानो जो शरीर का वनस्पतियों का, जो रस है वनस्पतियों का रस, मानव के शरीर में ऐसे प्रबल

बन जाता है शरीर का कार्य, करता है, वह पुरूष ही बेटा! देखो, वीर्यवान कहलाता है, पुरूष के यहाँ, वह तेजस बन जाता है क्योंकि वह जो नाना प्रकार की वनस्पतियां जो मानव पान करता है, उन वनस्पतियों मे वह रसस्वादन है, वही मानो देखो, तेज को उत्पन्न करने वाला है, और वही मानव की प्रतिभा को ओत प्रोत कराता हुआ, मानव के शरीर का ओज उत्पन्न होना प्रारम्भ हो जाता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह जो वनस्पतियों का, जो मानो रस है उसी को हमारे यहाँ पुरखा कहा जाता है, उसी को हमारे यहाँ वीर्यवत कहा जाता है, पुरूष कहते हैं आगे चल करके बेटा! इसी वनस्पतियों की संसार की जो गति है, वह ब्रह्म की जो चेतना प्रकृति में स्वतः उत्पन्न हो गई थी, परन्तु उसी सन्निधान मात्र से ही अहा! प्रकृति का स्वभाव स्वतः देखो, उत्पति और विनाश का कार्य होता चला जाता है।

आशा, निराशा के कारण

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव की प्रवृत्तियों में, किसी काल में उत्सव उत्पन्न हो जाता है, किसी काल में उसके हृदय में निराशा की चेष्टा आ जाती है, बेटा! निराशा आ जाती है क्यों आ जाती है, क्योंकि प्रकृति का स्वभाव है। जैसे समुद्र की तरंगे होती हैं। समुद्र की तरंगों में हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कहा है, समुद्र की तरंगे देखो, वह देखो, अमावस्या को समुद्र की तरंगे देखो, वह निराशा में परिवर्तित होती हैं और उस समय देखो, चतुर्दशी और देखो, पूर्णिमा आती है सोम से चन्द्रमा का समबन्ध होता है तो बेटा! देखो, उसमें स्थूलता आ जाती है, ऊर्ध्वा गति हो जाती है, सोम अपने आनन्द को चलता है, इसका अभिप्राय यह है कि इसी प्रकार क्योंकि मानव के शरीर में क्योंकि समुद्र भी है, मानव के शरीर में प्रकृति का सर्वत्र व्यापार हो रहा है, व्यापार होने के नाते, उस मानव शरीर में ही बेटा! निराशा छा जाती है। किसी काल में उत्सव आ जाता है, एक मानव किसी काल में यह विचारता है कि मैं योगी बनने जा रहा हूँ, एक मानव यह चाहता है कि मैं चन्द्रमा की यात्रा करने जा रहा हूँ, चन्द्रमा के लिए अपना उत्सव बनाता है, मानो देखो, वह अब मैं कैसे यन्त्रों

को जानूं? किन यन्त्रों के जानने के प्रयास से, यह विचार विनिमय करता है। मानो वह योगी बनने के लिए प्रयत्न करता है, सन्ध्या, उपासना करनी चाहिए, विचार आता है मन में मुनिवरों! परन्तु देखो, समय आता है क्या वह देखो, विचार शान्त हो जाते हैं, उसका कारण क्या है कि मानव के जीवन में मैंने कल के वाक्यों में कहा था बेटा! कि मानव के जीवन में देखो, करोड़ों करोड़ों वर्षों के संस्कार, करोड़ों करोड़ों जन्मों के संस्कार बेटा! मानव के चित्त में विराजमान होते हैं। जैसे पृथ्वी में बेटा! देखो, जैसे बीज होता है। परन्तु देखो, वर्षों तक, बीज पृथ्वी में स्थापित रहता है जब वर्षा ऋतु आती है इस बीज की स्वतः बेटा! देखो, चेतना से जल के द्वारा जब जिसकी चेतना है, तरंगो की चेतना है, मानो उसी आधार पर बेटा! वह बीज उत्पन्न हो जाता है, इसी प्रकार बेटा! मानव के शरीर में जो वह जन्म जन्मान्तरों के संस्कार है, यदि वह संस्कारों को बेटा! महानता उदय हो गया तो वह जो विचार आएं बेटा! वह दृढ हो जाते हैं, और यदि उनमें मानो देखो, एक निराशा का अङ्कुर उत्पन्न हो गया, पाप कर्म का देखो, कोई अस्वत संस्कार मानो देखो, मानव के समीप आ जाता है, तो बेटा! वह प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, और जैसे अमावस्या का समुद्र होता है, शान्त कोई तरंगे नही होती, क्योंकि वह शून्य हो जाता है प्राणी, यह संस्कारों का एक महान समूह, यह मानव के समीप आ गया है। क्योंकि जैसे उस महान प्रभु ने, मानो प्रकृति को, चेतना दे करके, संस्कार कर लिया था, संस्कार करते उसी मानो संस्कार से संस्कार को हम एक रूप में सन्निधान कहते हैं, उसी के आधार पर बेटा! देखो, प्रकृति का चक्र चलता रहता है, स्वतः अपना कार्य चलता रहता है, उसका व्यापार ऐसे चलता रहता है। जैसे मुनिवरों! देखो, मानव के मन की प्रबल अर्थ की कल्पना होती है, उसी के आधार पर, क्योंकि मन की एक सरल धारा उत्पन्न होती रहती है।

मन की धाराएं

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम यह विचार विनिमय करते है कि मन की उत्पति क्या है? और मन

क्या है? जो मानव के शरीर में चञ्चल बन करके रहता है, क्या मन के आश्रित हो करके, वह संस्कार उत्पन्न होते हैं, या मन से कोई पृथक वस्तु है, आचार्य जनों ने कहा है इस सम्बन्ध में बेटा! मुझे एक वार्ता स्मरण आती चली गई है, एक समय बेटा! देखो, मैंने यह वाक पूर्व काल में भी प्रगट किया है, एक समय जब महर्षि गौतम जी को देखो, एक समय उनके पिता जी, अरुण जी ने कहा कि हे पुत्र! जाओ, तुम शिक्षा को प्राप्त करके आओ, तो मुनिवरों! देखो, वह जब आचार्य के कुल में पंहुचा, तो उन्होंने नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन किया, अध्ययन करने के पश्चात, जब वह गुरु के कुल से अपने पिता के कुल में आए तो उनको अभिमान हो गया, कि मैंने संसार की विद्याओं का अध्ययन कर लिया है। तो मुनविरों! देखो, वह पिता यह विचारता है, कि यह क्या है? कि मानो जो मेरे पुत्र के मन में यह क्या विचार आ गएं है तो मुनिवरों! उन्होंने कहा ब्रह्मा कस्मति सुप्रजा जाता प्रहे अस्वंति रुद्रा हे भगवन! मैं संसार की सम्पन्न विद्याओं को प्राप्त कर लिया है। तो उन्होंने कहा सूत और प्रसूत किसे कहते हैं? तो मुनिवरों! देखो, दोनो के ऊपर विचार विनिमय हुआ, तो ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु! मेरे गुरु ने इस विद्या को प्रदान नही किया है। उन्होंने कहा तो अरे, तुमने जाना ही क्या है? तो मुनिवरों! देखो, वह दोनो पिता और पुत्र का दोनो का विवाद प्रारम्भ हो गया, तो मानो दोनो के ज्ञान और विज्ञान की चर्चा प्रारम्भ होने लगी, उन्होंने जब मन की धाराओं का वर्णन कराया, सबसे प्रथम देखो, ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय में चला। तो ब्रह्म के ऊपर विचार विनिमय चला, तो उन्होंने कहा हे वत्स्! तुम एक पात्र में जल ले आओ, तो मुनिवरों! देखो, जल को ब्रह्मचारी ने स्थिर कर दिया। उन्होंने कहा यह लवण है, इसको जल में स्थिर कर दो। मुनिवरों! देखो, जल में स्थिर कर दिया, अर्पित करने के पश्चात जब वह देखो, जल में रमण कर गया, उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारी! अब इस पात्र में से लवण को लाओ। उन्होंने यह विचार किया, अब इसको गणित किया, तो मुनिवरों! देखो, निर्णय करने के पश्चात वह लवण नही था, ब्रह्मचारी

ने कहा प्रभु! वह लवण इसमें नही है उन्होंने कहा अरे, लवण कहाँ गया?, उन्होंने कहा प्रभु! वह तो जल में प्रतिष्ठित हो गया, उन्होंने कहा यह जो जल में लवण कैसे प्रतिष्ठित हो गया है? ऐसे ही ब्रह्म भी इस संसार में प्रतिष्ठित हो रहा है। मानो जैसे जल में यह लवण प्रतिष्ठित है, इसी प्रकार लवण भी इस ब्रह्माण्ड में इस सर्वश जगत में प्रतिष्ठित हो रहा है। तो मुनिवरों! विचार विनिमय चलता रहा, अहा! वह इस विचार के आगे प्रश्न उत्तर उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! यह जो प्राण है यही मानव का जीवन है। प्राण के आश्रय ही मानो देखो, यह सूक्ष्म से प्रबल हो जाता है। इसमें ही देखो, इसमें ही मानो देखो, रहने की शक्ति है। इसी में ही देखो, प्रबल बनाने की शक्ति है, यह वह प्राण है, जो मानव के शरीर में आवागमन करता रहता है, इस प्राण के जानने का ब्रह्मचारी तुम प्रयास करो। उन्होंने कहा भगवन्! बहुत सुन्दर और यह जो मन है, यह स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया जाता है। केन्द्रित करता है, यह और मानव को स्थिर कराता है, क्या वास्तव में देखो, यह मन क्या है? अस्वते अस्वति रुद्रो माणा।

मस्तिष्क के चार प्रकार

आचार्य तो यह कहते हैं कि विश्वभान है। मानो ये इसमें रमण करने वाला है, परन्तु यह जो मन है, यह शरीर में स्मरण शक्तियों का केन्द्र कहलाया गया है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ब्रह्मचारी ने, अहा! देखो, अपने अनुभव में, ये वाक लाने का प्रयास किया, क्या वास्तव में स्मरण शक्ति मन से आती है, या प्राण भी इसका कोई रूप माना गया है। ब्रह्मचारी ने बेटा! अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग देने के पश्चात वह ब्रह्मचारी मुनिवरों! देखो, वह पन्द्रह दिवस तक उन्होंने अन्न को त्याग दिया, अन्न को त्याग करके केवल जल का ही पान करते रहे, जल का पान करने से प्राण तो स्थिर रहे है क्योंकि प्राण की गति प्राप्त होती रही, वह आवागमन करता रहा, आवागमन करने के पश्चात मुनिवरों! देखो, ब्रह्मं अस्वति आ अस्वंति रुद्रा प्राणा ब्रह्मचारी ने बेटा! जब दुर्बल हो गया, और स्मरण शक्ति शान्त होने लगी, अपने पिता के द्वार पर आ गया, पिता

से कहा, भगवन! मेरे लिए प्राण की गति तो ज्यों की त्यों स्थिर हो रही है, परन्तु देखो, स्मरण शक्ति का केन्द्र समाप्त हो गया है। उन्होंने कहा, हे ब्रह्मचारी! अब तुम अन्न की पूजा करो, अन्न को पान करना प्रारम्भ कर दो, तो मुनिवरों! देखो, उन्होंने अन्न को प्रारम्भ कर दिया, अन्न को पान करने लगे, तो स्मरण शक्ति पुनः जागरूक हो गई। स्मरण शक्ति जागरूक हो गई, तो इसका अभिप्राय यह है कि मानव की स्मरण शक्ति का जो केन्द्र है वह मस्तिष्क में स्वीकार किया गया है। वह जो स्मरण शक्ति का केन्द्र है वह मस्तिष्क में है और मस्तिष्क का जो सम्बन्ध है क्योंकि मस्तिष्क भी यहाँ कई प्रकार के होते हैं, एक जैसे मस्तिष्क होता है एक लघु मस्तिष्क होता है, एक महाअकृति मस्तिष्क होता है, एक महालघुमस्तिष्क होता है, चार प्रकार के मस्तिष्क होते हैं बेटा! इन चार प्रकार के मस्तिष्कों में इन मन की प्रतिभा रमण करती रहती है। क्योंकि चार प्रकार की प्रतिभा, जब इसमें रमण करती रहती है, इसका सम्बन्ध बेटा! चार प्रकार की बुद्धियों से स्वीकार किया गया है जैसा मैंने पूर्व काल में वर्णन करते हुए कहा है बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञा इसी से बेटा! देखो, यह मन की ही प्रतिभा है, मन की ही दशा है क्योंकि मन की प्रतिभा से बुद्धि का केन्द्र मे है, लघु मस्तिष्क, वहाँ महा प्रतिभा मस्तिष्क से बेटा! नाना प्रकार की सूक्ष्म वार्त्ताओं का जन्म होता रहता है, सूक्ष्मवाद का जन्म होता रहता है और वह देखो, जो महा लघु मस्तिष्क है, उसी महा लघु मस्तिष्क का बेटा! नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों से सम्बन्ध होता है, वह जो महा लघुमस्तिष्क है उसे ब्रह्मरन्ध्र भी कहते हैं, और कृति महा मस्तिष्क भी कहा जाता है, बेटा! उसको, और उसको लोकां प्रतिक्रियावादी मस्तिष्क भी कहा जाता है परन्तु उस मस्तिष्क मे बेटा! वह जो सूक्ष्म वाहक तरंगे चलती रहती हैं, क्योंकि वह जिसको हमारे यहाँ ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं, उसमें नाना प्रकार की तरंगों का जन्म होता रहता है। और उन तरंगो का सम्बन्ध बेटा! लोक लोकान्तरों से होता है, इसीलिए योगी जब ब्रह्मरन्ध्र में जाता है। महा लघु मस्तिष्क में चला जाता है, उसका अन्तरात्मा तो बेटा! वह

इस प्रकृति पर संयम करता हुआ, मेरे पुत्रों! देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों का स्वामीतव बन जाता है।

मन की तरंगें

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं योग के विषय की चर्चा प्रगट नही कर रहा था वाक यह प्रारम्भ होता चला जा रहा था, क्या ऋषि ने कहा हे ब्रह्मचारी! यह जो मन की जो तरंगें है। वह मस्तिष्क से ले करके वह महा लघुमस्तिष्क तक ब्रह्मरन्ध्र जिसका केन्द्र रहता है आगे चल करके कहा है कि यह मानव के उदर में भी विराजमान रहता है, क्योंकि इसमें विभाजनवाद है, प्राण की जहाँ प्रक्रिया चलती रहती है, वही मुनिवरों! देखो, मन की प्रतिभा है, और मन के साथ साथ भ्रमण करता रहता है क्योंकि जहाँ मन नही होगा, वहाँ विभाजन नही हो सकता बेटा! जहाँ मुनिवरों! देखो, रक्त का शोधन होता है, रक्त की जहाँ ध्वनियां उत्पन्न होती है मानव के शरीर में, वहाँ मन विराजमान होता है। क्योंकि रक्त का जो विभाजन करता है, रक्त को जो शुद्ध को और अशुद्ध को विभाजन करता रहता है, वह सब मन का ही कार्य, मन का व्यापार होता रहता है, इसी प्रकार यह जो मानव के शरीर में जो उदर है, उदर में जो उदान नाम का जो प्राण है, मानो ये नाना प्रकार के रसस्वादन का विभाजन करता हुआ, मन विराजमान है, क्योंकि बिना मन के बेटा! विभाजन संसार में नहीं होता, इसी प्रकार हमारे यहाँ देखो, इस पृथ्वी में देखो, विश्वभान मन के यह पृथ्वी में रमण करता रहता है और रमण करता हुआ, मानो देखो, यह विश्वभान बन करके मानो किसी भी अङ्ग में यह प्राण रहते हैं अन्न में देखो, जल में प्राण रहते हैं, अन्न में बेटा! प्राण की प्रक्रिया स्वीकार की गई हैं। आचार्यों ने और इसीलिए कहा है, क्योंकि देखो, अन्न में कहीं कहीं प्राण को स्वीकार किया गया है, क्योंकि ऋषि ने कहा है। क्योंकि प्राण को जो विभाजन होता है, वह मन के द्वारा होता है, अन्यथा एक प्राण बन करके बेटा! बिना मन की प्रतिभा के यह प्राण भी शरीर में एक क्षण भर भी नही रह सकेगा। क्योंकि देखो, इसका इतना व्यापार हैं, मन का, वह सब देखो,

प्राण के मिश्रित हो करके चलता है। क्योंकि प्राण को ही तो विभाजन करता है, प्राण से ही तो तरंगे उत्पन्न होती है। जो तरंगो का केन्द्र है। वह कहा है और मुनिवरों! देखो, केन्द्र होता है, वह विभाजन करता है, उसी का नाम तो हमारे यहाँ मनीराम स्वीकार किया गया है।

अन्न में मन

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे आचार्यों ने कहा है कि अन्न में ही मानो देखो, अन्न में ही मानो देखो, मन की प्रतिभा स्वीकार की गई हैं, मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे आचार्यों ने कहा है, कि अन्न में ही मानो देखो, अन्न में ही मन की प्रतिभा स्वीकार की गई है, अन्न से ही मानो देखो, स्मरण शक्ति का जन्म होता रहता है। वह जो अन्न है, उसको हम वास्तव में जानना है, और प्रतिभा के साथ साथ जानना है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारे यहाँ हमारा यह मैं क्या कह रहा था कि मैं उच्चारण कर रहा था कि मानव के शरीर में एक वाक रह गया कि मानो देखो, ब्रह्मचारी ने कहा कि हे भगवन! यह तो मुझे सिद्ध हो गया। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऋषि ने कहा यह सूत और प्रसूत माने गएं हैं, क्योंकि प्राण और मन दोनो ही इस प्रकृति में व्यापार रूप से कार्य कर रहे हैं, और इन्ही में विराजमान होने वाली, जो ब्रह्म की चेतना है, वह भी इसी के साथ गमन कर रही है। क्योंकि वह प्राण की भी प्राण है, मन का भी मन है, बुद्धियों का भी बुद्धि है, प्रकृति का भी महा प्रकृति है, अहा! देखो, वह जो ब्रह्मचेतना है, वह उसके साथ रमण कर रही है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! अहा! ब्रह्मे अस्ति सुप्रजा आचार्यों ने कहा है, क्या यह जो मानव का शरीर युवा बन गया था मानो देखो, युवा अहा! इस मन के प्राण की ही रूप इससे मन की विभाजन क्रिया से व्यापार अहा! शरीर युवा बन गया, बाल्यकाल से युवा बन गया युवा हो जाने के पश्चात बेटा! देखो, इसमें व्यापार प्रकृति में आ करके व्यापार प्रकृति ने सब बना लिया। तो मुनिवरों! जानो, की उसका युवापन जो है वह भी देखो, युवा ऊर्ज्वा में चला गया और यदि उसने ब्रह्म की चेतना को स्वीकार कर लिया, चेतना में उसकी प्रतिभा रमण

करने लगी, तो मानो बेटा! उसका युवापन सुन्दर बन गया है और उस मानव को बेटा! किसी भी काल में वृद्धपन क्रिया नही आती। क्योंकि वृद्धपन की प्रक्रिया उसे कहते हैं, जहाँ तृष्णा विराजमान होती है कार्य संसार का हो नही पाता, क्योंकि प्रकृति का उसने जीवन भर व्यापार किया है, प्रकृति की गोद में रमण कर किया है उसने, उसके आनन्द को मनाता रहा है, परन्तु देखो, आगे चल करके क्योंकि वृद्धपन आ जाना है, क्योंकि वृद्धपन उसके शरीर में आ गया है, अब तृष्णा क्योंकि तृष्णा के साथ साथ वृद्धपन चलता है। यदि मानव की तृष्णा प्रबल होती चली गई, अग्नि की भान्ति प्रचण्ड हो गई है, और कामना की पूर्ति होती वही तो बेटा! उसी नाम वृद्धपन कहलाया गया है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! अभी तो ये युवापन में ब्रह्म की चेतना में लग जाता है अहा! वह क्योंकि वह गृहपथ्य आश्रम में भी, आज का मानव यह कहता है कि गृहस्थ आश्रम में भी प्रभु की चेतना आ सकती है? मैं यह कहा करता हूँ कि प्रभु! की चेतना तो सर्वत्र विराजमान है वह कोई ब्रह्म किसी के आश्रम को, कृतिक नही करता है अहा! वह न उसके लिए प्रतिबन्धन का विषय नही बन जाता है, वह तो केवल प्रभु का ज्ञान है, मानव का ज्ञान है, मेरी पुत्री का ज्ञान है, अहा! और देखो, वह जो गृहाश्रम में पति पत्नी का जो ज्ञान है हमारे यहाँ ऋषि ने देखो, यही कहा है बालक नचिकेता से देखो, क्या कहा था, क्या गृहाश्रम में गृहपथ्य नाम की अग्नि की पूजा होती है, और उस अग्नि की जो प्रतिभा को जाना जाता है, वह बड़ा आश्चर्य सुन्दर कहलाते हैं। क्योंकि वह दोनो ही ब्रह्म की चेतना में आत्मा है, वह आत्मा उनके द्वारा विराजमान है, आत्मा का स्वाभाविक गुण है, क्या उसके द्वारा जानना हमारा कर्तव्य है, जब पति और पत्नी दोनो विचार विनिमय करते हैं, सुन्दर रूपों से विचार विनिमय करते हैं, क्या ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? लोक क्या है? जब यह प्रश्नावली उनकी चला करती है, तो बेटा! क्यों न उनके द्वारा चेतना आयेगी।

गृहाश्रम

आगे रहा यह विषय, क्या गृहाश्रम का पवित्रतव

है यह तो परमात्मा का सुन्दर नियम है, मानो उसको परमात्मा के नियम के आधार पर हमें परिपक्व बनाना है, क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य है, कर्तव्यवाद की पवित्र वेदी पर आ करके, गृहाश्रम और एक ही विचार विनिमय किया गया है । क्योंकि ब्रह्म की चेतना के लिए बेटा! किसी आश्रम में भी बन्धन नही होता, परन्तु देखो, वह नीचे से ऊर्ध्वा गति हो जाती है क्योंकि प्रकृतिवाद में चला जाता है, और प्रकृतिवाद में जा करके अपनी महती परम्परा को मानव शान्त कर देता है अपनी महती परम्परा को शान्त करके, बेटा! वह ऐसे ऐश्वर्य में लग जाता है क्या उसकी ऊर्ध्वा गति बन जाती है, मस्तिष्क की गति ऊर्ध्वा नही होती ध्रुवा हो जाती है, ध्रुवा हो करके मुनिवरों! देखो, वह प्रकृति की गोद में ऐसे खिलवाड़ करता है, जैसे मुनिवरों! देखो, चन्द्रमा पूर्णिमा के दिवस देखो, समुद्र की सोमलताओं में रमण करता रहता है। इसी प्रकार जैसे नाना प्रकार की सोमलताएं नाना प्रकार की वनस्पतियां बेटा! उसके आङ्गन में रमण करती रहती हैं। इसी प्रकार

वह मानव प्रकृति की गोद में रमण करने लगता है, और रमण करता हुआ, अपनेपन को शान्त करता हुआ मानो देखो, वह प्रकृतिवाद में इस प्रकार रमण कर जाता है कि तृष्णा उसके साथ साथ रमण करती है, अब तृष्णा तो बलवती हो गई है, अब तृष्णा के लिए वह देखो, तृष्णा उत्पन्न हो जाती है। पुत्र कार्य करता है, तो पुत्र का कार्य सुन्दर प्रतीत नही होता, मानो वह तृष्णा में लग जाता है, और वह उच्चारण करता है, अपने अपने क्रोध के द्वारा कही हिंसा के द्वारा, क्या हे पुत्र! यह कार्य तुम सुन्दर नही कर रहे हो, मेरा यह अनुभव है। मानो देखो, वह तृष्णा विराजमान है, पुत्र अपने अनुकूल कार्य करना चाहता है। परन्तु वह जो वृद्धपन में तृष्णा जाग्रत हो गई है, वह कार्य को नही करने देती, पुत्र के द्वारा भी क्रोध आता है। अपमान की मात्रा छा जाती है। बेटा! देखो, पिता में अपमान आता है, पुत्र में भी अपमान आता है, तो वहाँ घृणा का क्षेत्र बन जाता है। वहाँ एक मानो घृणा का क्षेत्र बन गया, तो बेटा! इसको क्या कहोगे तुम? क्या इसको

युवापन कहोगे, बाल्यपन कहोगे, यौगिकवाद कहोगे देखो, बेटा! उसको तो उच्चारण करना चाहते हो, मानो वह मानव मृत्यु के मुख में विराजमान है, मृत्यु से खिलवाड़ कर रहा है। क्योंकि तृष्णा जब तक जाग्रत रहती है, और तृष्णा की पूर्ति नही होती, जानो कि वह मृत्यु की गोद में रमण कर रहा है।

वेदपाठी

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कहता चला जा रहा है कि आज वृद्धमन किसे कहते हैं? वृद्धपन कहाँ से उत्पन्न होता है? जब तृष्णा अधिक उत्पन्न हो जाती है, तृष्णा का क्षेत्र बलवती हो जाता है, उस काल में बेटा! देखो, मानव वृद्धपन को प्राप्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कहता चला जा रहा था, कि वेद हमें क्या शिक्षा देता है, वेद हमें क्या सार्वभौम शिक्षा यह देता है, कि मानव! तू परमात्मा की गोद में चल, आनन्दपूर्वक वसुन्धरा की गोद में चल, वह तुझे अपने आनन्द में रमण कराएगी, अपने आनन्द में अपनी लोरियों में पान कराती रहेगी। तुझे आज परमपद को प्राप्त करना है, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक्, क्या कहता चला जा रहा है, कि वेद की जो परम पवित्र जो शिक्षा है, वह सार्वभौम, मानव के लिए परणित होती चली जा रही है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ, आज का हमारा यह वाक यह क्या कहता चला जा रहा है। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह है कि हम प्रत्येक वस्तु का अनुसन्धान करते चले जाएं, और देखो, हम अपने मन में यह विचार विनिमय करते चले जाएं, कि हमारा मानवतव हमें क्या कह रहा है, क्योंकि मानव, अपने जीवन में उस वस्तु को धारण करता है। उसे किसी काल में यह प्रतीत होता है कि वास्तव में यह वेद सुन्दर है, क्योंकि वेद में, वाणी के विचारने से बेटा! वेद पाठी नही बन जाता, वेद के मन्त्रों को उच्चारण करने से भी वेद पाठी नही बन जाता है। आचार्य कहता है वायु जी ने कहा है, क्या वास्तव में वेद का पाठी वह होता है, जिसका जीवन वेद के अनुकूल

होता है। वेद के अनुकूल जिसका जीवन होगा, वह वेद पाठी होता है। बेटा! उसी के जीवन में वेद की प्रतिभा आती है, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह आज का हमारा कि हमें वेद की पवित्र विद्या को स्वीकार कर लेना चाहिए, और उसके अनुकूल अपने जीवन को बनाना चाहिए यह है।

आज का हमारा वाक मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नही आया हूँ, कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! अपने विचार प्रगट कर सकेंगे। क्योंकि आज इतना समय नही था, जो इनको प्रदान किया जा सकता, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह, कि हम अपने जीवन को उत्तम बनाने का प्रयास करें, और नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की ये पवित्र विद्या है, वास्तव में यह ज्ञान और विज्ञान के द्वारा क्योंकि यह वेदों में निहित है, इस वेदमन्त्र को, वेद के विचार को, हमें अपने विचार में लाना है। हमें अपने जीवन में लाना है वेद, बेटा! किसी आश्रम को यह नही कहता क्या तुम निठल्ले बन जाओ, वेद तो यह कह रहा है, क्या, तुम वास्तव में वेद ब्रह्मे प्रकाशम देखो, अपने जीवन को प्रकाश में ले चलो। प्रकाश के आङ्गन में चलों, प्रकाश के आङ्गन में चलोगे, तो तुम्हारा जीवन सुन्दर बनेगा, अन्धकार में ध्रुवा गति बन जाएगी, तुम्हारे जीवन की। क्योंकि वहाँ नष्ट भ्रष्ट होती चली जाएगी, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट कर सकेंगे। आज का वाक यह समाप्त हो गया, कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! अपने विचार प्रगट करेंगे, अपनी कटुता को त्यागते हुए।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज के हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह, क्या हम प्रभु की चेतना में रमण करते रहें। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! का जो विषय है, वह केवल ज्ञान और विज्ञान के ऊपर लोकों की कुछ चर्चा इनकी इच्छा है प्रगट करने की, तो आज का यह वाक समाप्त होने जा रहा है। आज का वाक हमारा बहुत ही सूक्ष्मतम था, परन्तु इसमें रहस्य बहुत अधिक था, इसीलिए हमें इसके ऊपर विचार विनिमय करना है।

अनुसन्धान की वेदी पर जाना है, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्।

पूज्य महानन्द जीः गुरुदेव! वास्तव में वाक तो आपका बड़ा ही सुन्दर और प्रिय लगा, परन्तु समय बहुत सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरूदेवः बेटा! कल समय मिलेगा, तो कल अधिक से अधिक समय प्रदान किया जा सकेगा, आज का विषय तो केवल सूक्ष्म था। । अब तुमने जाना कि इसमें कितना रहस्य था और ज्ञान की कितनी प्रतिभा थी।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन्!

पूज्यपाद गुरूदेवः तो मुनिवरों! आज का यह हमारा वाक अब हमारा समाप्त होने गया, अब कल समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। आज के वाक्यों का अभिप्राय क्या कि मानव के द्वारा वृद्धपन नही आने चाहिए। ज्ञान प्रकाश आना चाहिए, ज्ञान स्वरूप मानव को प्रतिभावादी बनना चाहिए, जिससे मानव के द्वारा, मुनिवरों! देखो, वह सदैव परमात्मा के आङ्गन में, परमात्मा की चेतना में, चेतना को रमण करने में, अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करता हुआ, ब्रह्म की चेतना को अपने में, अनुभव करता हुआ, वेद के सुन्दर मार्ग को अपनाने का प्रयास करें। आज का वेद पाठ, आज का यह वाक समाप्त। अब मेरे प्यारे! महानन्द जी! कुछ चन्द्रमा के सम्बन्ध में अपने वाक प्रगट करेंगे। आज का वाक यह समाप्त हो गया है, और लोकों की चर्चाएं, विज्ञान की चर्चाएं कल न प्रतीत यह अपने विचार कहाँ कहाँ से ला करके प्रगट करेंगे। परन्तु देखो, जैसा भी समय होगा, अब वेद का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन्! आज्ञा'

पूज्यपाद गुरूदेवः आनन्द मङ्गलम् भवति

ओ३म् ब्रह्म भविता माणं रुद्रा विशा गतं रयीणाम्।

ओ३म् भूषणा ऋषि वन्धना प्रायः गणो आ भा मनु गायन्ता मनु व्यापकं रथि चा याधि मन्धनाः।

ओ३म् ब्रह्म भगा मा व्यापकं रथश्चनाहाम्। आर्य

समाज लोधी रोड, जोरबाग।

10 ## २४ ०८ १९६९ प्रभु की विचित्रता का दिग्दर्शन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, इन मनोहर सुन्दर वेदपाठ में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन आता रहता है। जो परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है। हे मेरे प्रभु! तू कितना अनन्तवान हैं, हे प्रभु! तू कितना अनन्तता में परणित रहता है, तेरी महिमा, वास्तव में सुन्दर है, प्रभु! आप ने मानव समाज को, मानव समाज को ही नहीं, प्रभु! आप ने प्राणी मात्र को, उत्पन्न किया है। और कितनी सुन्दर प्रतिभा है। कितना सुन्दरवाद है, क्या उसका वर्णन नही किया जा सकता, प्रभु! जब आप सृष्टिवाद में रमण करते हैं, तो प्रभु! आप ने सृष्टि के प्रारम्भ में, कितना सुन्दर रूपक दिया है, कितनी सुन्दर आपकी रचना है, क्या, वनस्पतियों के रस को एकत्रित करके, आप ने वनस्पतियों के रस को एकत्रित करते हुए प्रभु! आपने प्राणी मात्र की उत्पति की, अहा! ये सुन्दर है, इसका वर्णन कैसे किया जा सकता है, क्योंकि वाणी में इतनी शक्ति नही, बेटा! माता के शरीर को किस प्रकार का रचा है, प्रभु ने, क्या सूक्ष्म बिन्दु के जाने के पश्चात, परन्तु वह उस बिन्दु में जो कण होते हैं, परन्तु वह जिस इन्द्रिय का, जिस स्थान का बिन्दु होगा, उस स्थान को बेटा! वह परमाणु अकृत होता हुआ, मुनिवरों! देखो, उस तत्व में रमण करता चला जाता है। माता के गर्भस्थल से बेटा! हम जैसे पुत्रों का जन्म होता है। उस प्रभु की कितनी सुन्दर अलौकिकता है, वर्णन नही किया जाता। हे देव! तू कितना महान है, वास्तव में जैसा सन्निधान से हम स्वीकार करते हैं, वैसा ही प्रतीत होता है।

वेद मन्त्रों में ज्ञान, विज्ञान

आज मेरी प्यारी माता और पिता यह कहते हैं, दृष्टिपात पाया जाता है, क्या यह तो माता पिता के सम्बन्ध

से ही उत्पन्न होते हैं, वास्तव में यह वाक यथार्थ है, परन्तु माता पिता को तो यह ज्ञान नही है, क्या यह परमाणु कहां का है, कहां इसको हमें स्थिर करना है? बेटा! परमाणु वह वनस्पतियों का जो रस है। अन्न का जो रस है, नाना वनस्पतियों का जो रस है, बेटा! वह माता के गर्भस्थल में स्थापित हो जाता है। परन्तु वह नाना इन्द्रियों का रसावादन अर्पित होता हुआ, परन्तु देखो, यह तपस्वी अस्ते उस प्रभु ने सृष्टि के प्रारम्भ से बेटा! सुन्दर सङ्कल्प किया था और वह कैसा सुन्दर सङ्कल्प था, हे पुत्री! ब्रह्मे व्यापा स्वस्ति अभ्यानं गर्भाणि कृति असुतो हे पुत्री! तेरे गर्भ से प्रजा का जन्म हो। मानो तेरे ही गर्भ से प्रजा का जन्म होगा, मुनिवरों! देखो, यह सङ्कल्प है, उस का, और उस यत्र को प्रभु ने निर्धारित कर दिया, माता से पुत्री का जन्म होता है, तो उसमें इसी प्रकार की नस नाड़ियों का संगठन होता हुआ, उसकी सुगठिता होती हुई, मुनिवरों! देखो, उसका रक्त उसी प्रकार सुगठित होने लगता है।

अनन्तता में प्रभु

परन्तु यह सब प्रभु की सुन्दर अलौकिकता का एक मार्ग है। वास्तव में प्रभु की अलौकितता हमें प्रतीत हो रही है। आज जो मानव यह उच्चारण करने लगे, कि मेरा ही जीवन है, मुझे यह वास्तव में अधिकार है, तो वह वास्तव में सुन्दर नही होता, क्योंकि मैंने कल के वाक्यों में कहा था, कि प्रभु कितना महान है, उस प्रभु की अलौकिकता कितनी उज्ज्वल है, कितनी सुन्दरता में परणित रहती है। आज मुझे समय प्राप्त होने जा रहा है, कि हम वेदों के पठन पाठन में, वेदों की परम्पराओं में क्या प्राप्त होता है? प्रभु की महती, प्रभु की अलौकिकता का वर्णन और उसकी महती का वर्णन जब हमें दृष्टिपात आता है, तो अन्तरात्मा प्रसन्न होने लगता है। हमें यह अनुभव होता है, क्या यह जो हमारा अन्तरात्मा है, यह कितना उज्ज्वल है, अञ्चाम् ब्रह्मे अञ्चिम् ब्रह्मे अस्ति विश्वा धन नमा असुतो महा गतं ब्रह्मे व्यापकं अस्ते असुतं वामंचतं ब्रीहि

असुता वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है, कि वास्तव में हमें प्रभु की महिमा को विचार विनिमय करना है। जहाँ वेद के पठन पाठन का कर्म आता है। आज के वेद पाठ में लोक लोकान्तरों का वर्णन आ रहा था, परन्तु कहीं बृहस्पति का मण्डल था, तो कही जेठाय नक्षत्र का वर्णन था। बेटा! जैसा प्रभु ने कर्म पृथ्वी मण्डल में रचा, उसी प्रकार का कर्म सूर्य मण्डल में हैं उसी प्रकार का कर्म चन्द्र मण्डल में हैं, उसी प्रकार का मङ्गल मण्डल में है। उसी प्रकार कर्म बृहस्पति और आरुणि और जेठाय आदि मण्डलों में स्वीकार किया जाता है। परन्तु उसका सङ्कल्प कितना महान है, कितना अलौकिक है, कितनी विचित्रता उसमें रहती है, बेटा! मानव अन्त में नेति नेति शब्द को उच्चारण करने लगता है। क्यों करने लगता है? क्योंकि मानव का जीवन अल्पज्ञ होने के कारण, उसमें अल्पज्ञता आने के कारण वह नेति शब्द का प्रतिपादन करता है। क्योंकि अनन्तता में तो प्रभु ही विराजता है, और जब यह अनन्तता के द्वार पर चला जाता है। अनन्तता के द्वार पर चला जाता है, तो यह नेति उच्चारण कर देता है क्योंकि जो बाह्य, प्रकृति का जो क्षेत्र था वह समाप्त हो गया।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना है, हमें अपने जीवन को सुन्दर बनाना है। जिससे हम, वास्तव में हमारा जीवन सुन्दर, उस काल में बनेगा, जब हम प्रभु की महती का वर्णन करेंगे। उसकी अलौकिकता पर विचार विनिमय करेंगे। क्योंकि हमारा जीवन, बहुत ही सुन्दरता में परणित हो जाएगा। हमारे जीवन में एक अलौकिकवाद होना चाहिए, उसी वाद से हमारे जीवन की सुगठिता सुन्दर होती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक्, यह क्या कहता चला जा रहा था, ध्रुवं ब्रह्मे ध्रुव सुता है, हे ध्रुवा व्रते आज हमें अपनी ध्रुवा गति को भी जानना है, और ऊर्ध्वा गति का भी जानना है। दोनो प्रकार की गति को जानते हुए, हम अपने जीवन का वास्तव में राष्ट्रीयता में ले जाएं, सुन्दरता में ले जाएं, क्योंकि वह तो हमारा ही जीवन, अहा! हमारी ही मानवता से सुगठित रहता है। उसी को हमें सुन्दर और

उज्ज्वल बनाना है। जिससे हमारे जीवन का जो सार है, मनोनीतता हैं, उसको वास्तवकिता में सार्थक कर सकें। ये है बेटा! आज का हमारा वाक क्योंकि आज हमे सूक्ष्म सा समय, देखो, मेरे प्यारे! महानन्द जी! भी चाहते हैं, परन्तु यह तो आगे समय उच्चारण करूंगा, मैं अपने कुछ वाक्यों पर, आज इनके वाक्यों पर भी मुझे टिप्पणी प्रगट करनी है, कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने, चन्द्रमा के ऊपर अपना कुछ विचार प्रगट किया, मङ्गल पर अपने वाक प्रगट किए, आज मुझे तो इतना प्रतीत नही है, जितना इन्होंने कल मुझे वर्णन कराया है। विज्ञान से सम्बन्ध में, परन्तु इनका विज्ञान में गति, सुन्दर प्रतीत हो रही थी। वास्तव हम जो विचार विनिमय करते हैं, परम्परा से, परम्परागतों के आधार पर, क्या मङ्गल मण्डल में प्राणी मात्र का जहाँ सम्बन्ध रहता है, वहां वास्तव में इनका वाक यथार्थता में प्रतीत हो रहा था।

चन्द्र मण्डल में जीवन

आगे रहा यह वाक्, कि आज हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हम चन्द्र मण्डल में जाते हैं, कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने यह प्रगट कराया कि अहा! मण्डलं ब्रहे विज्ञानं ब्रहे अस्ति जीतनति ब्रहे अस्ति ऐसा मुझे ऋषि ने वर्णन कराया, कि चन्द्र मण्डल को आज का वैज्ञानिक जीवन को स्वीकार नही करता है। परन्तु देखो, इसमें, मैंने अपने प्यारे पुत्र से कहा था, कि मैंने अपने प्यारे महानन्द जी से कहा था कि वास्तव में बहुत पूर्व काल में कहा था, कि जीवन होता है। परन्तु रहा यह वाक्, कि हम चन्द्र मण्डल में वायु और जल को प्रधानता देते हैं, परन्तु देखो, महानन्द जी ने भी कल के वाक्यों में यह कहा था, आज भी ये उच्चारण इनके मन में एक शङ्का उत्पन्न हो रही है, और वह कि जब वहाँ चन्द्र मण्डल में वायु प्रधानता है, तो मृत्त मण्डल का वैज्ञानिक, उसमें वायु का अभाव क्यों उच्चारण करता है। परन्तु यह बड़ा ही गहन प्रश्न है जिसके ऊपर हमें विचार विनिमय करना है, इसके ऊपर वास्तव में विचार विनिमय करना है, और इसका विचार यह है, क्या हम पृथ्वी मण्डल से जाते हैं,

अथवा पार्थिव तत्त्व को ले करके जाते है। तो जहाँ वायु में पार्थिव तत्त्व अधिक नही होता, जल तत्त्व होता है अग्नि का कुछ मिश्रण अधिक होता है वहाँ देखो, पार्थिव तत्त्व वाले को वायु सूक्ष्म प्रतीत होती है। क्योंकि पार्थिव तत्त्व के नाते, सूक्ष्म प्रतीत होती है अहा! क्योंकि रहा यह यन्त्र भी उसी के आधार पर बने हुए हैं, यन्त्र भी पृथ्वी मण्डल के ही परमाणुओं से सुगठितता अधिक होने के नाते, पार्थिवता अधिक होने के नाते अहा! उसमें अकृते वायु की प्रधानता भी स्वीकार की गई है। इसी प्रकार आज हमारा जो पृथ्वी मण्डल है, इसमें जहां हम पार्थिव तत्त्व और जल तत्व प्राप्त कर सकते हैं और हम यह वायु तत्त्व तीनों को एक समय तीनों को एक समानता में विचार करते हैं, क्योंकि जल और पार्थिकता की प्रधानता मानी गई है, परन्तु ऐसा हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ में भी स्वीकार किया गया है।

चन्द्र मण्डल में वायु

आगे आचार्यों ने यह कहा कि वायु की प्रधानता की विशेषता ही है चन्द्र मण्डल में, क्या वायु वहाँ इस प्रकार क्यों है? क्योंकि वायु का इतना वेग इसीलिए है, यहां के प्राणी को मृत मण्डल के प्राणी को, इसीलिए सूक्ष्म प्रतीत होता है, क्या वह इस वायु में पार्थिव कण अधिक न होने के कारण, उसमें ऐसा प्रतीत होता है। अहा! परन्तु वायु की प्रधानता वास्तव में थी, हम वास्तव में स्वीकार करते हैं अब हम यह वाक कैसे स्वीकार करें, कि इसका हमारे द्वारा प्रमाण क्या है हमारा वेद कहता है चन्द्रो गच्छतं ब्रह्मे अश्वंति वायु नाम चन्द्रक्रते असवानि व्यापकृति विज्ञन ब्रह्मा अस्वंति लोकाः ऐसा हमारे यहाँ, वेद कहता है, आचार्य वेद का प्रमाण हमें प्राप्ति करा रहा है, क्या ऐसा ही चन्द्रमा में स्वीकार किया जाता है। क्या वायु सुते वायु में प्रधानता, परन्तु जल का मिश्रण है इसीलिए चन्द्रमा में शीतलता की प्रधानता स्वीकार करते हैं। हमारे यहाँ तो ऐसा ही, क्या जैसे चन्द्रमा की कान्ति जब पृथ्वी मण्डल पर आती है, पृथ्वी मण्डल पर आती है, तो वह कान्ति जब आती है वह कान्ति मानो जब किसी रूप में आती है,

तो जल की प्रधानता होती है, शीतलता अधिक आच्छादित होती है और शीतलता देखो, इतनी दूरी तक पृथ्वी मण्डल से आने तक इतनी शीतलता रहती है, क्या वह भी बीज को अमृत प्रदान कर सके और देखो, कृषक करने वाले, कृषि वाले, कृषक को इसके अन्न में मानो अमृत की, वह ओत प्रोतता करा सके, तो वह चन्द्रमा की मानो शीतलता में मानो मिश्रित होता है वह प्रमाण भी हमें प्राप्त होते हैं, और इसका अनुभव भी इसी प्रकार से अनुभव प्राप्त होता रहता है।

तीन मण्डलों की सीमा

रहा यह वाक्, अब रही मङ्गल मण्डल की चर्चाएं, क्योंकि मङ्गल मण्डल में पार्थिव तत्त्व प्रधान स्वीकार करते हैं, परन्तु पृथ्वी मण्डल का जो प्राणी है, उनसे उन प्राणियों का जो स्थूल है, वह कुछ सूक्ष्म है, उनका इतना स्थूल नही है, इसका कारण क्या है? उसको केवल कारण यह है, कि पार्थिव तत्त्व तो प्रधान है, परन्तु पार्थिव तत्त्व प्रधान होने के कारण, जल का मिश्रिण सूक्ष्म होता है। जल के मिश्रण में सूक्ष्मवाद होता है इतना नही, परन्तु उसमें अग्नि में प्रतिकृति होती है जहाँ जिस मण्डल से, इतना कृतियां में मुनिवरों! देखो, वहाँ वायु में, पृथ्वी में अग्नि में अधिक प्रचण्डता होगी, मानो देखो, उस काल में सूर्य प्रकाश देने वाला है, वहाँ सूर्य का प्रकाश मानो इस प्रकार का आता है, जिससे मानव का जो स्थूल है, उसका जो शरीर है वह पृथ्वी मण्डल से सूक्ष्म होता है। क्योंकि कुछ हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है। सोनाम ईश्वत नाम की जो रेखा होती है, जो मङ्गल मण्डल पृथ्वी के मध्य में होती है, और मध्य का उसका जो अप्रोत भाग होता है, वह माधुरी लोकों से उसका सम्बन्ध होता है, मानो उस रेखा का जो सम्बन्ध होता है तो वह, तीन मण्डलों का समूह प्राप्त होता है तीन मण्डलों की सीमा होती है देखो, मङ्गल की और ध्रुव आकृति और पृथ्वी की तीनों की सीमा होती है। तो सीमा होने के कारण मानो जब यहाँ का पृथ्वी मण्डल का प्राणी जाता है, तो शुक्र का, शुक्र में होम् नाम की रेखा होती है, उससे उसका समन्वय हो जाता है। तो चारों

मण्डलों का एक भू आस्वात त्रीणि अणवेत धातु नाम का दोनों में मिश्रण रहता है सब प्रकार की रेखाओं में इनका मिश्रण होने से एक दूसरे से वहाँ प्राण की गति सन्नोत होती है, जो विशेष प्राण होता है, उसकी गति में जैसे गति शान्त होती है, कही मध्यम हो जाती है, और कहीं उसमें क्योंकि तीव्रता आ जाती है, इसीलिए क्योंकि एक दूसरे मण्डल से मण्डल का मिलान न हो सके। क्योंकि उसमें त्राहिमाम् त्राहिमाम् न हो जाएं, ऐसा हमारे यहाँ स्वीकार किया गया है। जब पृथ्वी मण्डल का प्राणी चलता है, तो वह यन्त्र को उस आङ्गन से ले जाना होता है, इन लोकों का जहाँ मिलान होता है, रेखाओं का, एक दूसरे से, और एक मार्ग मानो सोम भाग नाम का मार्ग होता है, उस सोम नाम भाग के मार्ग से, यन्त्र जब पृथ्वी मण्डल का जाता है, तो मङ्गल में जाता है। मानो वह मङ्गल मण्डल में चला जाता है, और एक और जो हमारे यहाँ समि भू मध्य नाम की एक रेखा है, जिसका सम्बन्ध मानो जहाँ जिसको हम शुक्र मण्डल कहते हैं, शुक्र और मङ्गल की रेखाओं से दोनो का समन्वय होता है, यदि यन्त्र उस आङ्गन को चला गया उस यान के मार्ग से चला गया तो वही यन्त्र शुक्र में जा करके, अपना अस्तित्व बना सकता है।

राष्ट्रीय सिद्धान्त

तो ऐसा हमारे यहाँ कुछ विज्ञानशालाओं, विज्ञानवेत्ताओं ने स्वीकार किया है। परन्तु मैं इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा नही प्रगट करना चाहता हूँ, क्योंकि मैं उस विज्ञान में नही जाना चाहता। मुझे तो केवल आत्मा की चर्चा, आत्मा का विवेचन वर्णन करना था। मैं आज इसी स्थान पर चला जाऊं, वाक उच्चारण करता हुआ, जहाँ से मुझे मैं पंहुच गया था, इतनी दूरी, वाक यह प्रारम्भ हो रहा था, क्या हम प्रभु की विचित्रता पर, विचार विनिमय करते चले जाएं ये मैं सब प्रभु की विचित्रता का वर्णन करा रहा हूँ। उनका का दिग्दर्शन करा रहा हूँ कि प्रभु का जो देव है, जो सचिदानन्द है वह कितना सखा है और उसकी अलौकिकता में कितनी महानता विराजमान है। इसी प्रकार हमारे यहाँ कुछ, जैसा भी स्वीकार किया गया है,

जो मैने महानन्द जी के वाक्यों पर कुछ सूक्ष्म टिप्पणी भी दी है, और भी मैं टिप्पणी करने वाला हूँ, रहा यह वाक क्या इन्होने राष्ट्र सम्बन्ध में, अपने वाक प्रगट किए हैं परन्तु इन्होंने सुन्दर वाक्यों में अपने विचार प्रगट किए इससे पूर्व काल में भी राष्ट्रीय विचार प्रगट किए हैं, राष्ट्रीय जो विधान है, राष्ट्रीय जो एक सार्वभौम सिद्धान्त है, जो एक विचारघारा है, विचारकों की, राष्ट्रीय विचारधारा में, मानो मैंने बहुत पूर्व काल में कुछ अपने वाक प्रगट भी किए हैं, आज भी मैं उनको करने के लिए तत्पर रहता हूँ। हमारा यह वाक चलता रहता है, मुनिवरों! देखो, यह तो एक प्रतीत है, कि राष्ट्र का जो निर्माण है, वह निर्माण वेदों में भी आता है, उसी पर भगवान मनु ने भी उसी, कुछ उसके ऊपर टिप्पणियाँ, अपना विचार व्यक्त किया है।

चरित्र की उपलब्धि का आधार

आज मैं भी उसके सम्बन्ध में, अपने विचार दे सकता हूँ और देना चाहता हूँ कि राष्ट्र कैसा होता है? राजा कितना सुन्दर होना चाहिए? कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में, अपने विचार व्यक्त कियें थे उन विचारों में बहुत सुन्दर वाक थे, परन्तु चरित्रवान के सम्बन्ध में कितने सुन्दर, अब विचार यह करना है, कि राजा के द्वारा चरित्र कैसे आता है? और चरित्र की उपलब्धि कहां से होती है? राजा के द्वारा, क्योंकि जहाँ नाना प्रकार की सामग्री होती है, ऐश्वर्य होता है, विज्ञान होता है, विज्ञान की नाना प्रकार की सुविधाएं होती हैं, और वह मुनिवरों! ऐसे भयंकर, प्रकृति के वन में जा करके, और भौतिकवाद विज्ञान में जा करके, अपने चरित्र को कैसे सुरक्षित बना सकता है। यह प्रत्येक मानव के द्वारा प्रश्न रहता है। परन्तु यह हमारे द्वारा भी प्रश्न है, एक मानव भयंकर वन में तपस्वी बना हुआ है, उसके द्वारा एक ही सुविधा है, नाना प्रकार के वृक्षों के फल, फूल इत्यादि पान करता हुआ, अहा! अपने योगाभ्यास में रमण करता रहता है, उसी योगाभ्यास में रमण करता हुआ, अपनी कृति असुतों को जानता रहता है, वह आत्मचेतना में लगा रहता है, परन्तु उसके द्वारा वह सुविधा नही है, क्योंकि वह

केवल पर्वतों में विराजमान है, योगाभ्यास में है, प्राणायाम कर रहा है। परन्तु जहाँ मानव को नाना प्रकार की सुविधाएं हैं। पत्नीयां भी गृह नाना प्रकार की सुन्दर सुन्दर और भी सुविधाएं हैं, ऐसे स्थान में, अपनी सुरक्षा को कैसे बनाना होगा? यह बड़ा विचारकों का एक विषय बन जाता है।

राजा का कर्तव्य

तो मैं इस सम्बन्ध में अपने विचार देना चाहता हूँ, क्योंकि मैं अपने प्यारे महानन्द जी के इन वाक्यों के ऊपर अपनी टिप्पणी देना चाह रहा हूँ, इसका उत्तर यह है कि हम, राजा को यह विचारना है, सबसे प्रथम कि तू ऐसे भयंकर युग में आ गया है, जहाँ तुझे नाना प्रकार की सुविधा हैं, नाना प्रकार के आहार और व्यवहार की सुविधाएं हैं, उसमें तू आज तो अपने जीवन को भ्रष्ट भी कर सकता है। तो इसका उत्तर केवल हमारे ऋषि मुनियां ने यह दिया है, कि राजा को किसी भी काल में अपने धर्म को नही त्यागना चाहिए, अब धर्म की मीमासां करनी है, कि धर्म किसे कहते हैं? क्योंकि धर्म के ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियाँ होती रहती हैं। मेरे प्यारे! महानन्द जी! धर्म के ऊपर अपनी टिप्पणियाँ नही दे सके हैं, अहा! और मेरे प्यारे! महानन्द जी! धर्म के ऊपर प्रगट भी कर सके हैं, और मैं भी अपने विचार सूक्ष्म से देना चाहता हूँ। धर्म किसे कहते हैं?

ईश्वरीय धर्म

धर्म को विचारना है मानो देखो, धर्म वह होता है, जो मानव का अन्तःकरण, जिसको स्वीकार करता है। उस मानव को मानवीय धर्म नही अपनाना चाहिए। परन्तु मानव के मानवीय धर्म के साथ साथ, जो मानव के बनाएं हुए धर्म होते हैं, उनको नही अपनाना चाहिए, राजा को उस धर्म को अपनाना है, जो ईश्वरीय धर्म होता है। ईश्वरीय धर्म क्या है? ईश्वरीय धर्म की क्या मीमांसा है? कि मानव नेत्रों से दृष्टिपात करता है, तो वह किसी भी रूढ़ि को स्वीकार करने वाला हो, मानव अपना धर्म कुछ स्वीकार कर ले, परन्तु वह नेत्रों से ही दृष्टिपात करेगा, नेत्र क्योंकि ईश्वरीय धर्म है, सुदृष्टिपान करना उसका धर्म है वह ईश्वरीय

धर्म के आधार पर, वह नेत्रों से दृष्टिपात करता है, मुख से नाना प्रकार के आहार करता हैं, देखो, फल इत्यादियों को पान करता है, नाना प्रकार के अन्न को पान करता है, जल को पान करता है। तो वह ईश्वरीय धर्म है। इसी प्रकार श्रोत्रों से वाक स्वीकार किया जाता है, वह किसी भी रूढ़ि को स्वीकार करने वाला हो, परन्तु वह उसी को स्वीकार करेगा, इसी प्रकार आगे चल करके अहा! जो भी कुछ इन्द्रियों से व्यापार होता है, वह इन्द्रियों के, ईश्वरीय धर्म के आधार पर होता है। तो आज उसे अपने इन्द्रियों के धर्म को विचारना है, हमारा ईन्द्रियों का धर्म क्या है? इसी के ऊपर धर्म की मीमांसा को जानता हुआ, राजा को ईश्वरीय धर्म अपना करके, बेटा! अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना है, राष्ट्र को सर्वोपरि बनाना है, क्योंकि देखो, उस धर्म के ऊपर ही तरंगों वाला जो प्राणी है, वह नाना प्रकार के भौतिकवाद से, वह लिपायमान नही होगा, क्योंकि वह भौतिकवाद से जब लिपायमान होता है, परन्तु वह उसी काल में होता है, जब धर्म को अपने से दूरी कर देता है। ईश्वरीय धर्म को उसे अपनाना है और ईश्वरीय धर्म को अपना करके, वह नाना प्रकार का, जो विशालवाद है, भोगवाद है, उससे बेटा! उदासीन रहना है। पति पत्नी दोनों को, उदासीनता में रमण करते हुए, मानव धर्म को अपनाना है, और सुगन्धि को अपनाना है, दुर्गन्धि को त्यागना है। केवल समाज में सदाचार को लाना है, परन्तु लाने का केवल एक ही उपाय है, कि वह ईश्वरीय धर्म को अपनाता चला जाएं जब ईश्वरीय धर्म को अपनाएगा, तो उसमें ने तो हिंसा होगी, मानो उसमें अहिंसा परमोधर्म है। अहिंसा परमोधर्म, यह राजा का सर्व प्रथम लक्षण होता है, एक उसका धर्म होता है, इसी प्रकार आगे चल करके ऋषि मुनियों ने कहा है, आचार्य जनों, वेद भी कहता है कि राजा को स्वयं अपनी प्रजा के ऊपर विचार विनिमय करना होगा, क्योंकि राजा का जो जीवन होता है, वह भी योगी के तुल्य होता है। जैसे योगी का जीवन होता है परमात्मा के आश्रित रहते ही, इसी प्रकार देखो, राजा का जीवन भी देखो, परमात्मा के आश्रित होता है, परमात्मा

के ऊपर होता, उसका जीवन। इसीलिए उसे, मानव को विचारना है कि पुरोहित इत्यादि मेरे सुन्दर हों, ब्राह्मण समाज मेरे यहाँ शिक्षा देने वाला हो, अहा! जब वह, प्रजा के ऊपर शासन करने का अधिकार उसको होता है, शासन नही कर सकता, क्योंकि शासन कौन करता है? जिसे ऐश्वर्य भोगना हो, परन्तु वह तो सेवक होता है, सेवा करने का उसे ही अधिकार होता है, जो स्वयं अपनी इन्द्रियों का शासक बन जाता है, वह प्रजा की सेवा कर सकता है, प्रजा को सद मार्ग पर ला सकता है। मुनिवरों! देखो, वही सुन्दरता में परणित होता है। और जो मानव अपनी इन्द्रियों पर संयम नही कर सकता, इन्द्रियां पर उसकी विचारधारा नही उत्तम बनती, तो वह मानव यह उच्चारण करता है, कि मैं आज साम्यवाद को लाना चाहता हूँ, वैदिकवाद ही ऊँचा साम्यवाद है, उसको लाने में मानो सदैव असमर्थ रहता है।

सेवक राजा

कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! एक वाक और वहां सुन्दर प्रगट किया, कि जो मानव यह कहते हैं साम्यवादी हूँ, वह राजा क्यों बन गया, क्योंकि राजा बनने का उसे अधिकार भी नही होता, कितना सुन्दरतम है, क्योंकि राजा नही होता, साम्यवादी विचारधारा के जो व्यक्ति होते हैं, और जो राजा होते हैं, वह अपने को राजा ही स्वीकार नही करते, वह अपने को केवल सेवक स्वीकार करते हैं और प्रजा की सेवा वही व्यक्ति कर सकता है जो अपनी इन्द्रियों पर, अपने मन को विजय कर लेता है। इन्द्रियों को विजय प्राप्त करने से वह राजा बन जाता है, सुन्दर बन जाता है, निर्मोही हो जाता है। क्योंकि उसके लिए, सर्वत्र प्रजा उसके लिए पुत्र के तुल्य है, जब वह प्रजा सर्वत्र पुत्र के तुल्य है, अहा! वह जो पुत्र के तुल्य प्रजा बन चुकी है, उसी के ऊपर तो विचार विनिमय करना है, सुन्दरता को लाना है, अहा! वह प्रजा उसकी पुत्र है, अपना केवल जो पुत्र होता है, वही पुत्र नही होता, सर्वत्र प्रजा उसकी पुत्र के ही तुल्य होती है। परन्तु दुराचार करने राजा कहां जाएगा? किस स्थान को वह दृष्टिपात करेगा? क्योंकि वह

सब उसके पुत्र के तुल्य ही, माता और पिता है। परन्तु कहां जाएगा वह दुराचार करने के लिए? बेटा! वह उसके लिए मार्ग ही प्राप्त नहीं होता।

राष्ट्र का धर्म

तो बेटा! हमें यह विचारना होगा, हम सब वैदिक साम्यवाद की चर्चा, मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने प्रगट भी की थी वह बडी सुन्दर थी। परन्तु वैदिक साम्यवाद में ही तो कहता है, एक साम्यवाद की जो महिमा है, वह बड़ी विचित्र है भगवान मनु ने तो इसके ऊपर विचार और टिप्पणियाँ प्रगट की हैं, वह वेद को, धर्म को आगे को ले करके चलता है, साम्यवाद भी धर्म को आगे ले करके चलता है, और कर्तव्यवाद में भी धर्म समाहित रहता है। जैसे माला, जैसे मनके में, धागे में, मनके पिरोएं हुए होते हैं, इसी प्रकार देखो, कर्तव्यवाद में भी धर्म है, इसी प्रकार जैसे धागे में जो मनके होते हैं, जैसे लोक लोकान्तर प्राण रूपी धागे में पिरोएं हुए होते हैं, नाना प्रकार की रेखाओं में नाना लोक लोकान्तर पिरोएं हुए होते हैं, इसी प्रकार यह राष्ट्र का धर्म कहलाया गया है। अहा! हम वैदिक साम्यवाद की चर्चा करें, परन्तु न प्रतीत मेरे प्यारे! महानन्द जी! साम्यवाद की चर्चा क्यों प्रगट करते रहते हैं हमारे यहाँ राष्ट्रीय विधान कहता है, जिस समय क्योंकि एक अवस्था मानव की शून्य हो जाती है, जिस समय देखो, वह देखो, सोमरस की अवस्था में, जब उसका तीसरापन समाप्त हो जाएं, तो चौथेपन में, उसे गृह को त्याग देना चाहिए। हमारे वेदों में भी साम्यवाद है, और देखो, उच्चारण करने वाले, मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने वर्णन कराया, कि आज का मानव, मानो सन्यास मार्ग में पर स्थिर है, और वह उस स्थान को नही त्यागना चाहता। अहा! वह कौन होते हैं? मानो वह स्वार्थवाद के लिए राष्ट्र नही हो सकता, क्योंकि राष्ट्र को तो स्वार्थवाद को त्यागना ही होगा। एक विचार और देना है और यह हमारी, जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने एक वाक और कहा था कि राजा में वैश्य प्रवृत्ति होनी चाहिए, राजा के विधान में अथवा नही, यह

बहुत सुन्दर विचार था, मेरे प्यारे! महानन्द जी! का।

ईश्वरीय विधान

परन्तु मैं भी आज उस वाक को पुनः से, उसकी पुनरूक्ति तो नही करूंगा, केवल सूक्ष्म से विचार देना चाहते हैं, क्योंकि जब राजा के मन में यह विचार आ जाता है, कि द्रव्य को एकत्रित कर, परन्तु राजा द्रव्य को एकत्रित करने की राष्ट्र में प्रवृत्ति उस काल में आती है जब उसका ऐश्वर्य, उसका स्वार्थ पराकाष्ठा पर चला जाता है, और उसकी पद की, जो द्रव्य की लोलुपता, उसकी अधिक इच्छा उसे हो जाती है, उस काल में वह निश्चित हो जाता है, क्या, वह द्रव्य को एकत्रित करने की प्रवृत्ति बन जाती है, परन्तु द्रव्य एकत्रित करना, द्रव्य तो उसको इतना ही लेना है राष्ट्र कोष में जितना उसमें आता है। परन्तु जब वह राष्ट्र को एकत्रित करता है, तो उसके भाग बनाता है। तो राष्ट्र भाग भिन्न होता है और जो अपने कर्मचारियों का देखो, भाग भिन्न होता है और जो देखो, दान का भाग होता है, वह भिन्न होता है। परन्तु जब भागों का विभाजन हो जाता है, तो राजा को उसी भाग को अच्छी प्रकार देखो, उसको अपने कोष में एकत्रित कर लेना चाहिए। और वह एकत्रित क्यों कर लेना चाहिए? क्योंकि राष्ट्र के बहुत से कार्य होते हैं, मानो कर्मचारी होते हैं, रक्षा का कार्य भी उसी के आश्रित होता है, क्योंकि रक्षा कौन करेगा? क्षत्रिय और क्षत्रिय उस हम सभी, रक्षक किस काल में रक्षा करेगा, जिसका आहार व्यवहार पवित्र हो और वह रक्षा किसकी करेगा? वैश्यों की, वह रक्षा प्रजा की करेगा, ब्राह्मण की करेगा, ब्राह्मण पर कोई आक्रमण न कर दे, मानो जैसे प्रभु ने हमारा यह मानव शरीर का निर्माण किया है, मानव शरीर का निर्माण करते हुए, प्रभु देव ने उसकी विचित्रता में आता है, सबसे प्रथम प्रभु ने देखो, ब्रह्मा का स्थान बनाया है, दक्षिण भाग में मानो देखो, जहाँ मस्तिष्क रहता है, मस्तिष्क देखो, नाना प्रकार की नाड़ियों का समूह है, और ज्ञान और विज्ञान का भी यह समूह है, क्योंकि इसमें चार मस्तिष्क माने गएं हैं, एक मस्तिष्क होता है, एक लघु मस्तिष्क होता है, एक ब्रह्मरन्ध्र

मस्तिष्क होता है, एक महा मस्तिष्क होता है। चार प्रकार के मस्तिष्क होते हैं और चारों प्रकार के मस्तिष्कों में मुनिवरों! वास ब्रह्मा का रहता है, ब्राह्मण की उसमें विराजमानता रहती है। उसी में वह रमण करता रहता है। उसके पश्चात वह जो, उसके पश्चात वह जो भुज है, उसमें क्षत्रिय विराजमान रहता है। क्योंकि वह रक्षा करता है। आज कोई मानव, मानव के मस्तिष्क पर कोई आक्रमण करता है, तो भुजबल उसकी रक्षा करने के लिए चले जाते हैं। यह प्रभु का विधान है, परन्तु यही तो है प्रभु के विधान में, प्रभु ने राष्ट्रीयकरण किया है, और यह कहा हे मानव! यदि तू प्रजा को कर्तव्यवाद में लाना चाहता है, तो जैसा मैंने यह तेरा शरीर बनाया है, निर्माण किया है, उसी के आधीन हो करके, उसी के समूह में आ करके, तुझे वास्तव में राष्ट्र का निर्माण करना है। आगे वैश्य का स्थान आता है, जो भी हम आहार करते हैं, नाना प्रकार के पदार्थों का आहार करते हैं, ब्राह्मण के द्वार से जाता है। ब्राह्मण, त्यागी और तपस्वी होता है, रसना कितनी त्यागी और तपस्वी है, बेटा! रसना नाना प्रकार के आहार और व्यवहार करती है, नाना प्रकार के सुन्दर घृत को पान करती है। गो घृत को पान करती है, गो दुग्ध को पान करती है, परन्तु रसना के वहाँ एकत्रित भी नही होगा, कितना त्याग उसके द्वारा होता है। वह त्यागता हुआ क्षत्रियों से होता हुआ, वह क्षत्रिय उसको ग्रहण नही करते, क्योंकि वह जो भाग है, वह वैश्य का है, वैश्य उसको पचाता है, वैश्य उसको सुन्दर बनाता है, रस बनाता है, और उसको सुन्दर रूपों से अपने आप ही देखो, उसके विभाजन हो जाते हैं। देखो, जहाँ जो इन्द्रिय है, जहाँ जहाँ शरीर में जो भाग है, परन्तु वह उसके ही द्वारा चला जाता है, वही वह उसका स्थान प्रतीत हो जाता है। जो उसके स्थान में, एक माधुर्यता विराजमान हो जाती है। उसके पश्चात वह जो वैश्य है, परन्तु वह सबको अपना अपना भाग परणित करता देता है, वह जो क्षत्रिय का भाग है, क्षत्रिय को, ब्राह्मण को, ब्राह्मण का भाग है, शूद्र को शूद्र का भाग है, मुनिवरों! देखो, मानव के रक्त से ले करके और लघु मस्तिष्क तक

अर्पित कर देता है। वह सब अपनी अपनी अकृतियों को विभाजन करता चला जाता है और वह जो विभाजनवाद है, मानो वह वैश्य के द्वारा होता ही है। मैंने बहत पूर्व काल में वर्णन किया परन्तु वैश्य के द्वारा इतना विभाजन हो जाता है, तो विभाजन होते ही, उसकी जो विभाजनवाद की जो प्रक्रिया है, वह रमण करती हुई वह मानो देखो, वह क्षत्रिय को उतना भाग प्राप्त होता है, जितना उसका भोग जितना उसका विभाजन, जितना उसका वह विभाजन कर देता है।

वज्र रूपी औषधि

इसी प्रकार आज हमें यह विचार विनिमय करना है, कि जैसा प्रभु ने यह शरीर बनाया है, यदि क्षत्रिय स्वयं देखो, राजा रक्षा करने वाला हो, स्वयं वैश्य का कार्य करने लगेगा, तो वैश्य का कार्य जब क्षत्रिय करने लगा, तो सेवा किसकी करेगा। परन्तु सेवा बन ही नही सकती, अहा! उसमें वह जो प्रवृत्ति है सेवा करने की आ ही नही सकती, क्योंकि वह तो द्रव्यपति बन गया है, द्रव्यपति में देखो, सेवा करने की प्रवृत्ति नही होती है, वह द्रव्य से तो सेवा कर सकता है, परन्तु यदि कोई आक्रमण करेगा, तो उसकी वह सेवा नही कर सकता। क्योंकि वैश्य जो है, क्योंकि बिना नम्रता के द्रव्य को एकत्रित नही कर सकता। क्योंकि हमारा जो उदर होता है, वह सबसे नम्र होता है शरीर के भाग में सबसे नम्र होता है, मानो देखो, उसमें कोई आकाश तत्त्व ही प्रधान होता है, और जहाँ आकाश तत्त्व की प्रधानता होगी, और जहाँ बहुत ही नम्र होगा, वह रक्षा नही कर सकता। क्योंकि रक्षा कौन करेगा? जिसके देखो, जिसके भुजबलों में देखो, सुन्दर बल होता है, और वह जो भुज बल होते हैं, मानव के लिए, अहा! रक्षार्थ के लिए होते हैं, प्रभु ने बनाएं हैं, अहा! उनमें देखो, मानो देखो, अस्थियों से बना हुआ होता है, और कठोर होता है, वज्र के तुल्य कठोर होता है, वही तो रक्षा करेगा, आज कोई मानव यह कहने लगे, कि क्या आज हम उदर से, हम अस्थि की रक्षा कर सकें, तो यह नही हो सकता। परन्तु रक्षा करेगा, इससे करेगा, इसीलिए ऐसा हमारे यहाँ

ईश्वरीय विधान स्वीकार किया गया है, और ईश्वरीय जो विधान है, वह अकाटय है, उसको कोई संसार में नष्ट नही कर सकता। इसीलिए हमारे यहाँ, ऐसा कहा है, क्या राजा को वैश्य प्रवृत्ति कदापि नही बनानी चाहिए। राजा यदि वैश्य प्रवृत्ति में चला गया, तो वह रक्षा, राष्ट्र की किसी भी काल में नही कर सकता। इसीलिए हमारे यहाँ, उनका कार्य क्या है, उनका कार्य यह है कि वैश्य, इतना कठोर बन गया है, वैश्य देना नही चाहता, वह दूसरों को देना नही चाहता, न ब्राह्मण को देना चाहता है, न वैश्य को, न अपने आप ही, उसको अग्रत करना चाहता है, और न शुद्र को, और न क्षत्रियों को, क्षत्रिय का कर्तव्य है, क्या, उस वैश्य को खण्ड खण्ड कर देना चाहिए। उस वैश्य को खण्ड खण्ड करो, परन्तु उसके प्रभाव में न आ जाओ। उसकी नम्रता में यदि क्षत्रिय आ गया। तो आज क्षत्रिय रक्षा नही कर सकेगा, मानो उसका कर्तव्य है, एकत्रित करने वाले को दण्ड देना चाहिए, और जो एकत्रित करता है, मानो उसे दण्ड दे करके, उसका वितरण सुन्दर सुन्दर होना चाहिए। राष्ट्र की रक्षा, राजा की आवश्यकता इसीलिए होती है, क्योंकि वैश्य जन जब एकत्रित करना प्रारम्भ कर देते हैं जैसे उदर में मानो अजीर्ण हो जाता है, इसी प्रकार जब राजा के राष्ट्र में, एकत्रित करना प्रारम्भ कर देते हैं, तो राजा के राष्ट्र में अजीर्ण हो जाता है, और उस अजीर्ण की औषध क्या है? अजीर्ण की औषध क्या है अजीर्ण की औषध है नाना प्रकार के वनस्पति, परन्तु वह उदर के लिए, तो वनस्पति कार्य करती है, उसमें देखो, किसी में पित्त प्रधान होता है, किसी में वायु प्रधान होता है, वह उसको पान करने से, दोषों को पृथक पृथक किया जाता है। इसी प्रकार राष्ट्र के दोषों को नष्ट करने के लिए वह वज्र रूपी औषधि है राष्ट्र में, परन्तु वज्र रुपी जब औषधि दी जाएगी वैश्यों को, तो वैश्य सुन्दर रूपों से उसका वितरण करेंगे और राजा के राष्ट्र में वह जो अजीर्ण हो गया था, वह सब अजीर्ण समाप्त हो जाएगा। तो यह प्रवृत्ति के कोई राष्ट्र भी है, हमें इसे बनाना है, इसी में धर्म है, इसी में कर्तव्यवाद है, इसको जानने के लिए मानव को

सदैव तत्पर रहना चाहिए।

व्यापकवाद

तो मैं तो कोई विशेष चर्चा तो प्रगट करने नही आया हूँ, मैं तो केवल उस प्रभु की विचित्रता का वर्णन कर रहा था, और यह प्रभु की ही विचित्रता है, क्या प्रभु ने कितना सुन्दर विधान, इस मानव शरीर में रचा है। इसीलिए यह राजा को चाहिए, क्या वह अपने मानवतव पर अधिपथ्य होना चाहिए, इन्द्रियों पर अधिपथ्य होना चाहिए, और राष्ट्रवाद पर सुन्दर अधिपथ्य होना चाहिए। जिससे देखो, वह राजा के लिए ऐश्वर्य नही होता, राजा को तो स्वयं यह चाहिए, कि वह स्वयं अपने भुज बलों से कार्य करें, परन्तु वह निर्मोही रहने का प्रयास उसमें होना चाहिए, क्योंकि निर्मोही जितना होता है। उतना संसार से उदासीन होता है, जितना एक योगी को उदासीन बनना है, इससे कुछ सूक्ष्म मानो देखो, राजा को उदासीन बनना है। क्योंकि व्यापकवाद से योगी बनते हैं, व्यापकवाद से दार्शनिक बनता है, और व्यापकवाद से ही वह राजा बनते हैं। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हमें वास्तव में विचार विनिमय करना है, क्या, हम प्रभु के विधान को ले करके चलें, प्रभु की महिमा को ले करके चलें, और प्रभु की विचित्रता को ले करके अपने जीवन को उन्नत बनाना है, और उसकी रचना पर विचार विनिमय करना, हमारा वास्तव में कर्तव्य होता है। यह है बेटा! आज मुझे सूक्ष्म चर्चा प्रगट करनी है, क्योंकि महानन्द जी के वाक्यों पर मुझे टिप्पणी देनी थी, वह टिप्पणी हमारी समाप्त हो गई है। रहा यह वाक इनका क्या सन्यास को प्राप्त नही होते।

मस्तिष्क में चरित्रवाद

बेटा! मैंने मैं उच्चारण करने के लिए तत्पर होता हूँ क्या मस्तिष्क में चरित्रवाद की जब तक प्रतिभा है, वह राजा बना रहे, परन्तु यह अनिवार्य नही है, कि वह प्रजा के लिए बना रहे, उसको राष्ट्र का कार्य जब तक है, तब तक करना चाहिए, इसमें कोई ऐसा वाक नही है, जितना भी उसका मस्तिष्क, उसका शरीर, उसकी मानो स्मरण

शक्ति कार्य कर सकती हो, उसका चरित्र सुन्दर हो, तो वह जब तक उसकी मनोनीत इच्छा हो और वह कर सकता हो, उस कार्य को तो करना चाहिए, उसके ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नही है। ईश्वरीय कोई बन्धन नही है। मानो देखो, सन्यास भी लेना चाहिए, यदि उसे मोक्ष की इच्छा है, परमात्मा के चिन्तन की इच्छा है, तो वास्तव में क्योंकि उसके द्वारा होता ही है, क्योंकि उसको इसीलिए उसे सन्यास ले लेना चाहिए राजा को, क्योंकि राष्ट्र की प्रजा में त्याग भावना आती है, त्याग भावना की प्रवृत्ति से वह कार्य कर लेना चाहिए, इसमें किसी प्रकार का दोषारोपण नही होता। परन्तु रहा यह वाक्, कि ईश्वरीय विधान है या नही, क्योंकि प्रजा को सुन्दर बनाने में, वह सन्यास ले लें, त्याग प्रवृत्ति के लिए, तो इसमें भी कोई दोष नही होता।

तो यह वाक आज का हमारा समाप्त होने जा रहा है, अब समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। कल मेरे प्यारे! महानन्द जी! को सूक्ष्म सा समय और प्रदान कर सकते हैं, आज का समय इतना आज्ञा नही दे रहा था, क्योंकि समय बहुत सूक्ष्म था और वाक और भी उच्चारण करने थे। तो यह आज का वाक अब समाप्त हो गया है, अब समय मिलेगा, तो विचार कल प्रगट करेंगे। क्योंकि जब हमारे वाक्यों में सूक्ष्मता रह जाती है, वह उनकी पूर्ति कर देते हैं, तो आज का वाक यह समाप्त हो गया है, अब शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। जोर बाग नई दिल्ली ओ३म् ब्रह्मा भगा माणं सर्वश्चमा गतम्। महाशय कृष्ण हाल, ज़ोर बाग।

11 २५ ०८ १९६९ महापुरुषों का उद्देश्य

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, नित्यप्रति उस मनोहर क्रियाएं अथवा उनका सुन्दर वर्णन प्रायः आता रहता है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि वेदों का जो पवित्र ज्ञान है, वह हमें

किस मार्ग के लिए प्रेरित कर रहा है उसकी सुन्दरता, उसकी मानवता और उसकी विचित्रता पर मानव को सदैव विचार विनिमय करना है, क्योंकि वेदमन्त्रों में कौन सा विषय नहीं है संसार का, उस प्रकृतिवाद, राष्ट्रवाद और विज्ञानवाद तीन प्रकार की व्याख्या वेदज्ञ हमे प्रकाश में परणित करता है तीन व्याख्या देता है। हमारे यहाँ इनको बेटा! ऋत और सत में परणित किया गया है। दो ज्ञान है ऋत और सत, ऋत नाम प्रकृति की समिधाओं का है, और सत नाम ब्रह्म का है, और वास्तव में कुछ ऐसा भी माना गया है कि आत्मा, परमात्मा और प्रकृति तीनों का विवरण करता है, और व्यावहार में ज्ञान, कर्म, उपासना भी इसी के द्वार से आती है।

राष्ट्र का विधान

तो बेटा! वेदों से हमें क्या वस्तु प्राप्त होती है, जो हम सदैव उच्चारण करते रहते हैं, हम नित्य प्रति अपने वाक्यों में प्रगट करते रहते हैं। वेद ज्ञान हमें सूर्य मण्डल और भी नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों पर पंहुचाने के लिए सदैव तत्पर रहता है, इसके पश्चात अब यह द्वितीय वाक है, कि हम कौन से विज्ञान को जानना चाहते हैं, हमारा आध्यात्मिक विज्ञान भी है, वह कितना सुन्दर है, जो मानव को सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। एक भौतिकवाद है, जितना मानव भयंकर वन में चला जाता है, जितना भी प्रकृति की तरंगों में चला जाता है, जितना भी परमाणुवाद में मस्तिष्क चला जाता है, उतनी इच्छा प्रबल होती है। तृष्णा भी बलवती होती रहती है, क्योंकि प्रकृतिवाद भी ऐसा है, राष्ट्रीय शुद्धम् राष्ट्रवाद है, राष्ट्रवाद के ऊपर हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने बहुत सुन्दर सुन्दर वाक प्रगट किए हैं, परन्तु इसके विधान में भी भिन्न भिन्न वार्त्ताएं आती हैं। मैंने कल के वाक्यों में कहा था कि राष्ट्र का जो विधान है, ये मानव मन माना नही बना सकता, क्योंकि इसका जो निर्माण, इसकी जो प्रतिभा है, वह ईश्वरीय सम्बन्धित है। क्योंकि प्रभु ने जैसा नियम बनाया है, उसी के आधार पर तो हमें अपने राष्ट्र और मानवता का निर्माण, उसकी प्रतिभा को विचार विनिमय करना है।

मेरी प्यारी माता जिस समय अपने पुत्र को उत्पन्न करने की इच्छा होती है, तो माता यह निर्णय नही कर सकती, कि मैं पुत्र उत्पन्न करूं, अथवा पुत्री उत्पन्न करूं। उसका निर्णय ही इस प्रकार का नही होता। परन्तु यदि वह आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद के ऊपर भी उसका अनुसन्धान हो और अपनी टिप्पणियाँ हो, अपने मन के ऊपर संयम हो, तो हो सकता है कि माता उन वाक्यों को जान सकती है। उन वाक्यों को भी जान सकती है उस विज्ञान को जान सकती है, जो प्रभु ने रचाया है। कैसी सुन्दर रचना है, कि माता के द्वार से रचना हो रही है, परन्तु माता को ही ज्ञान नही हो पाता, हास्य.... कैसी विचित्रता है।

अन्तरिक्ष में वाणी

तो यह सब विचित्रताओं के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना होगा। मानव के मन से प्राण से नाना प्रकार का शब्द का नाद होता है, परन्तु वह नाद अन्तरिक्ष से आता है, और वह नाद केवल उसका मूल क्या है? इसके ऊपर विचारना है, वाणी के ऊपर मानव को संयम करना है कि वाणी की जो शब्द की रचना होती है, शब्द के ऊपर विचार विनिमय करना है, मानो कोई मानव अपशब्दता में चला जाता है। उस वाक को, वाणी को अपशब्द उच्चारण करता हुआ, अशुद्ध वाक्यों में ले जाता हुआ, वह वाणी का शोधन तो नही हुआ। ऋषि मुनि कहते हैं कि वह वाणी का शोधन होना चाहिए और हमारे ऋषि मुनियों ने तो यह कहा है कि मानव को, हमारे यहाँ परम्परा काल में, एक समय महर्षि शोभन ऋषि महाराज को, उनकी वाणी पर संयम नही रहता था, परन्तु जब वाणी पर संयम नही रहता, तो ऋषि मुनि कहा करते थे, कि भई! तुम वाणी पर संयम करो। तो वाणी पर संयम न करने से उनकी कितनी भी तपस्या, परन्तु वह गायत्री का पठन पाठन करते, परन्तु वाणी पर संयम ने होने के कारण, वाणी का तप न होने के कारण, वह सब व्यर्थ हो जाता था। तो ऋषि कहते हैं, आज वेद भी कहता है, कि वहां ब्रहे अस्तु पिशाच अक्रते अभ्या नमो रुद्रा क्योंकि शब्द की रचना अन्तरिक्ष से होती है, और अन्तरिक्ष में ही वह वाणी

रमण कर जाती है।

तो ऋषि कहते है, आचार्यों ने कहा है, वेद भी कहता है कि वाणी से अशुद्ध उच्चारण करना, वह जो वायु मण्डल है, उसको अशुद्ध करती चली जाती है। ऋषि मुनि कहते हैं, कि जितना भी वाणी में अशुद्धवाद होगा, अशुद्ध के साथ साथ क्रोध होगा, उसके साथ साथ अभिमान भी होगा, तो जितनी यह प्रक्रिया उसके साथ रहेगी, उतना ही परमाणुवाद में अधिक, एक नवीन प्रकार की गति आती रहेगी, और वह जो परमाणुओं में गति आयेगी, वह सुन्दर सुन्दर परमाणु भी दूषित होते चले जाएंगे। तो यह ऋषि कहते हैं, वेद कहता है बेटा! तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें बहुत सुन्दर विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान की वेदी पर जाना है, यह संसार परम्परा से, इसी प्रकार से चला आ रहा है, किसी काल में यहाँ धर्म की प्रबलता हो जाती है, तो किसी काल में अधर्म की प्रबलता हो जाती है। परन्तु न तो धर्म ही नष्ट होता है और न अधर्म ही नष्ट होता है। ऐसा प्रायः इस संसार में अनुभव भी किया गया है, और कुछ ऐसा प्रतीत भी होता है।

नेत्रों का पक्ष

तो हमारे इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हमें सदैव विचार विनिमय करना है, हम अपनी वाणी पर अपने मनों पर और अपने नेत्रों पर हमें चिन्तन करना है, क्योंकि नेत्रों का पक्ष भी तो हमें विचारना है। एक मानव नेत्रों से दृष्टिपात करता है परन्तु वह नेत्रों की जो ज्योति वह अशुद्धता के लिए नही, प्रभु ने प्रदान की है, वह केवल वेद विचार, वेद के शब्दों को, और उनके ऊपर विचार और नेत्रों को इतना सुगठित संयमी बनाना है। क्या हम किसी सुन्दरी को दृष्टिपात करें, तो उसमें भी व्यापकवाद हो, उसमें भी प्रभु को दृष्टिपात करें, और हम किसी राष्ट्र की विचारधारा पर जाएं। तो वहाँ भी हम प्रभु को ही साक्षी बनायें, क्योंकि वह जो रचयिता है, वह प्रभु हैं, उस रचयिता के ऊपर हमें, वास्तव में बल देना है। विचार विनिमय करना है, क्योंकि संसार में जब मानव स्वयं ऊँचा होगा, तो यह संसार हमें स्वयं ऊँचा ही ऊँचा प्रतीत होगा,

और जब इस संसार में स्वयं हमारे हृदय में अशुद्धवाद होगा, हम दूसरों की त्रुटियों को दृष्टिपात करते रहेंगे, तो बेटा! हम इस संसार को, हम इस संसार में अपने बल को ऊँचा बना ही नही सकते। हमारे यहाँ बेटा! बहुत से ऋषि मुनियों ने परम्परागतों से अपने जीवन की तपस्या, क्योंकि महर्षि दुर्वासा मुनि बेटा! हमने बहुत समय पूर्व भी, हमने साहित्य, इतिहास प्रगट किया था। उनका जो साहित्य था, उनकी जो विचारधारा थी, क्योंकि देखो, जो दूसरों को नष्ट करने की प्रवृत्ति जिसके हृदय में होती है, दूसरों को अपमानित करने की दृष्टि होती है। उसका परिणाम भयंकर होता है। ऐसा ऋषि मुनियों का विचार है कि मानो मानव के जन्म जन्मान्तरों के तप भी नष्ट हो जाते हैं, तो ऐसा ऋषि मुनि कहते हैं, हमें सदैव इसके ऊपर विचार विनिमय करना होगा, मानव को अपमान करना बहुत सहज होता है, परन्तु मानव का मान करना यह सहज नही होता। क्योंकि संसार में स्वामी बनना, बहुत ही सुन्दर होता है परन्तु सेवक बनने में, नाना प्रकार की बाधाएं आती रहती हैं।

सेवक

मुझे स्मरण है, जब हम गुरु के समीप जाते, तो मार्गों में मर्गराजों के मध्य में विराजमान हो जाते थे। बेटा! परन्तु यदि उस काल में अभिमान होता, मान होता, तो उनके मध्य में नही जा सकते थे। परन्तु देखो, वह कटु शब्दों का प्रतिपादन भी होते रहते हैं, परन्तु यहाँ देखो, राजा बनो, तो सेवक बनो परन्तु ज्ञानी बनो तो सेवक बनो, सेवा अपने अपने जैसा उनका दायित्व होता है, उसी प्रकार के वह सेवक होते हैं। जब यहाँ सब संसार में सब सेवक बनेंगे, और अपने प्रभु को चैतन्य देव को अपना स्वामी बनाएंगे, तो बेटा! हमारा जीवन सर्वोतम बनता चला जाएगा। परन्तु देखो, उनके ऊपर विचार विनिमय अनुसन्धान की वेदी पर जाना है। हमें सदैव अपने विचारों से इतना सुगठित बनाना है, कि हम वास्तव में सेवकतव

में रमण करते चले जाएं।

बुद्धिमान

मेरे प्यारे! महानन्द जी!, बहुत से शब्दों को ऐसे कटुता में ले जाते हैं, परन्तु देखो, वह कटुता, वह होती रहती है, अहा! हो सकता है कि सात्विकवाद में कटुता का प्रतिपादन होता है। परन्तु वह सात्विकवाद भी मानव की वाणी को अशुद्ध बना देता है। मानव की वाणी को जब अशुद्ध बना देता है, हमारी जब वाणी अशुद्ध हो गई, तो हमारा जीवन ही क्या रहा संसार में? हमारा तप तो कुछ नही रहा, क्योंकि तप की जो मीमांसा है, वह आचार्यों ने बड़े सुन्दर रूपों से वर्णन की है। आज हमें उसके ऊपर वास्तविक रूप से विचार विनिमय करना है, हमें प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को विचारना, अनुसन्धान करना और अपने ऊपर संयम करना, यह सबसे प्रथम मानव का लक्षण होता है। बुद्धिमानो ने, आज कोई मानव यह कहता है, कि मैं सर्वश बुद्धिमान हूँ, तो परमात्मा के प्रति, मैं बहुत ही सूक्ष्म बुद्धिमान हूँ। आज कोई मानव यह कहता है कि चन्द्रमा में जाने के लिए बुद्धिमान बन गया, आज कोई मानव यह कहता है, कि वेद की पोथी को मैंने अध्ययन करने के पश्चात, मैं बुद्धिमान बन गया। परन्तु यह नही, बुद्धिमान वह व्यक्ति होता है, जो बुद्धियों से अपनी इन्द्रियों पर संयम कर लेता है जो संयमी बन जाता है। जो मानव अभिमानित हो जाता है और उसे अभिमान आ जाता है क्षेम करता हुआ तो वह संसार में केवल अक्षर बोधि होता है, अक्षर बोध में उसकी जो मानवीयता होती, वह सब नष्ट भ्रष्ट हो जाती है। ऐसा आचार्य जन कहते हैं, तो बेटा! हमे उसके ऊपर सदैव विचार विनिमय करना है, अनुसन्धान करना है, अनुसन्धान की वेदी पर जाना है, जिससे हमारे जीवन का, मानवता का सुन्दर प्रसार होता रहे, और मानवता की सुन्दर वेदी पर हम रमण करते हुए, अपने जीवन को इस प्रकार लेते चले जाएं, जैसे मुनिवरों! मानव के शरीर में, मानव के मुखारबिन्द में, बेटा! जैसे रसना हो, रसना नाना प्रकार के रसस्वादन करती है। परन्तु देखो, वह दन्त के मध्य में रहती है, परन्तु नाना प्रकार के

स्वादन करती है, परन्तु अपने द्वारा कुछ नही होता और जिस मार्ग को वह प्राप्त करने के लिए आना था आती है संसार में, तो यह बेटा! मैं अपने विचारों को शान्त करने जा रहा हूँ, अब मेरे प्यारे! महानन्द जी! अपने कुछ सूक्ष्म से विचार प्रगट करेंगे।

त्याग, तपस्या में मानव

पूज्य महानन्द जीः ओ३म् मधु व्रत्यं सर्वा आभ्यां गतं ऋषि वन्धना। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने मुझे आज पुनः से पुण्य अवसर प्रदान किया है, वास्तव में गुरुदेव के जो सुन्दर उद्गार, वह मेरे अन्तःकरण को छूते चले जा रहे थे, स्पर्श करते हुए, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मैं आज ज्ञान की गोद में विराजमान हूँ, परन्तु मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नम्रता का और वाणी का बहुत सुन्दर प्रतिपादन करते चले जा रहे थे, आज हम संसार की उस पवित्र बेला पर और अपने उन वाक्यों पर विचार विनिमय करना चाहते हैं, जहाँ मानव सुन्दर बनता है, परन्तु मानव को सुन्दर बनने के लिए, जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने हमें अभी अभी वर्णन कराया, उनमें बहुत सुन्दर प्रतिभा थी, परन्तु हमें यह विचार विनिमय करना है, कि यह व्यवस्था कैसे बनेगी? यह संसार कैसे आ सकेगा? क्योंकि चर्चा तो स्वर्ग में जाने की है, और मानव स्वर्ग के विचार लाता हुआ, केवल नारकिक बनने की प्रवृत्ति भी लाता है। तो यह कैसे हो सकता है? कि मानव दोनों प्रकार की वस्तु को एक ही साथ पान करना, एक ही आङ्गन में पान करना चाहता है। वह स्वर्ग की कामना भी करता है, और नाना प्रकार के भोगविलास की कामना भी करता है, और नाना आज वह रसना को उत्तम भी बनाना चाहता है, सात्विकता में और उस रसना से दूसरों के रक्त को पान भी करना चाहता है। तो यह कैसे कार्य बनेगा, यह मेरे विचार में नही आ पा रहा है। आज इसको सुन्दर बनाने के लिए, वास्तव में मानव को त्याग और तपस्या की आवश्यकता रहती है।

मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था, कि एक वैज्ञानिक त्याग और तपस्या में जाता है। एक योगी है, वह त्याग और तपस्या में जाता है। दोनों का उत्थान हो जाता है,

दोनो में भिन्नता रहती है। परन्तु दोनों ही उदासीन हो जाते हैं, आज वास्तव में जब मैं यह विचार विनिमय करता हूँ, आधुनिक काल के विचारकों पर जाता हूँ, तो आश्चर्य हो जाता है, आज मैं राष्ट्रवाद पर जाता हूँ, तो और भी आश्चर्य आता है और विधान के आगे विधान को विचारने लगता हूँ। तो एक महान ही आश्चर्य आता है। और यदि धार्मिकता को विचार विनिमय करते हैं, तो आश्चर्य आता है। तो यहाँ तो आश्चर्य, आश्चर्य है, वास्तव में एक तो आश्चर्य प्रभु का आश्चर्य है। एक आश्चर्य, आधुनिक काल के प्राणियों का प्रतीत होता है, आज परन्तु उस आश्चर्य को हमे आशचर्य ही बनाना है और आश्चर्य ही रहेगा, परन्तु आश्चर्य कहीं नही जाएगा। मानव की प्रवृति में, उस प्रवृत्ति, अन्तर्द्वन्द्व की जो प्रवृत्ति है, वह नष्ट हो जाएगी।

रूढ़ि से संप्रदाय

आज जब मैं राष्ट्रीय वेदी पर जाता हूँ, विचार विनिमय होने लगता है। परन्तु वहाँ राष्ट्र के जो नियम है, वह वास्तव में ईश्वरीय नियम से बहुत ही दूरी हैं, दूरी होने के कारण कटुता मानव को प्रतीत होने लगती है। जब इन वाक्यों का यथार्थता में प्रतिपादन करते हैं। तो हमारे जैसे शब्द हैं, वास्तव में कटुता में प्रतीत होने लगते हैं। इसी प्रकार जैसे हमने बहुत पूर्व काल में भी कहा है, आज भी मुझे स्मरण आता चला जा रहा है, कि हमारे यहाँ जितने महापुरूष आते हैं, उन सबके विचार महान होते हैं, कोई भी महान पुरूष आओ, परन्तु उसके विचार महान होते हैं। यहाँ का मानव, परन्तु एक दूसरे के विचारों को नष्ट करने में तत्पर हो जाता है। परन्तु आज मैं रूढ़िवाद की चर्चा प्रगट करने लगूं, तो आश्चर्य होगा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को। यहाँ एक से एक, दूसरे को नष्ट करके, अपने को सुन्दर बना रहा है। परन्तु वास्तव में सार्वभौम विचार यह है, कि संसार में सभी सुन्दर हों, सभी सुन्दर होते हैं। जैसे जिसका प्रारब्ध होगा, जैसा जिसका संस्कार जैसे उसकी प्रतिभा होती है, उसी के साथ साथ उसका जीवन चलता चला जाएगा। आगे रहा यह वाक्, कि जब महान पुरूषों की चर्चा करते हैं, तो प्रत्येक महान पुरूष का एक ही लक्ष्य

रहा है कि यह संसार ऊँचा बनें, परन्तु उसने अपनी वाणी को सुन्दरता में परणित कर दिया है, परन्तु केवल उसका लक्ष्य यह रहा, कि राष्ट्र और मानव समाज ऊँचा बनें। यहाँ बहुत पूर्व काल में मुझे दृष्टिपात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, यहाँ महर्षि मानो देखो, आदि ऋषियों के विचार आते रहे हैं, ऋषियों के विचार परम्परा से ही, पोथियों में आते रहे, जैसा महर्षि कपिल इत्यादियों के विचार आते रहे, सिद्धान्त भी आते रहे, और उनकी जो प्रकृति से सम्बन्धित, उनका जो एक महान दार्शनिक विचार था, वह भी आता रहा, और उसके ऊपर भी विचार विनिमय मानव का होता रहा और होता रहेगा, आगे भी इसी प्रकार चलता रहेगा, परन्तु देखो, यहाँ महान समय समय पर महान पुरूष आते हैं, अपना अपना कर्तव्य करते हुए चले जाते हैं। मैंने बहुत पूर्व काल में महापुरूषों की, अपने पूज्य गुरुदेव से गणना कराई थी, परन्तु इनके हृदय के एक वेदना होती है क्या यह प्रजा ऊँची बनें उनकी सदैव ही तो वेदना हो रही है अब उनके मानने वालों में, अपने ही और दूसरों के मानने वालों की वेदना में दोष आ जाता है, दोषारोपण हो जाते हैं। उसमें ही उनकी वेदना को न जान करके, आगे चल करके, उसमें रूढ़ि आ जाती है। और जब रूढ़ि आ जाती है तो उसके नाना प्रकार के सम्प्रदाय बन जाते हैं, और सम्प्रदाय बनते ही एक दूसरा मानव, एक दूसरे के घृणा के क्षेत्र में वह मानव चला ही जाता है।

राष्ट्रवाद का कार्य

आज जब मैं यह विचार विनिमय करता हूँ, कि धार्मिकता क्या है, आज जब मैं दयानन्द के विचार धारा वाले व्यक्तियों में जाता हूँ, तो वह यह चाहते हैं, कि वास्तव में यह हमारा सुन्दर मत है, इसी प्रकार जब मैं परम्परा वाले व्यक्तियों में जाता हूँ, तो वहां यह प्रतीत होता है, कि वह बड़ा महान पापी और पामर था इसी प्रकार नानक के मानने वालों में जाते हैं, वह दूसरों को पामर कहते हैं, मोहम्म्द के मानने वालों में जाते हैं, वह वहाँ दूसरों को पामर कहा करते हैं, परन्तु जब ईसा के

विचारों में जाते हैं, तो वह कहते हैं कि अरे, भोले! तुम वहाँ कहाँ जा रहे हो, जहाँ तुम्हें घृणा की दृष्टि से दृष्टिपात किया जाता है। आओ, तुम्हें अपने कण्ठ में लगाते हैं, परन्तु एक दूसरे मानव को जब धर्म के ऊपर देखो, नाना प्रकार की घृणा मानव क्षेत्र में में आती रहती है, तो इसका क्या उपाय है? मानो इसके ऊपर तो मानव की सुन्दर टिप्पणी होनी चाहिए, कि जिस टिप्पणी के आधार पर देखो, ये धर्म और मानवता की रक्षा हो सके, अन्यथा संसार उस वेदी पर चला जा रहा है, क्या यहाँ धर्म और मानवता के ऊपर ही नाना प्रकार का आक्रमण होता रहेगा। परन्तु यहाँ धर्म को नष्ट नही किया जाता है, केवल रूढ़िवाद के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिए। महापुरूषों के विचार चुन लो, देखो, सभी कि विचारों को चुन लो और सभी के विचारों को चुन करके, एक जो विचार सुन्दर बना लेना चाहिए और उसको बना करके यह कार्य किसका? यह राष्ट्रवाद का कार्य होता है परन्तु आज का जो राष्ट्रवाद है, उसका सिद्धान्त यह है, कि क्या एक दूसरे को, एक दूसरे मानव से घृणा करा देना, धर्मों में घृणा करा देना और अपने नेतृतव की पूर्ति करना, यह राष्ट्र का एक नियम बन चुका है। परन्तु जब यह नियम बन गया है और आज से नही, बहुत कुछ समय से यह नियम बन गया, इस नियम का परिणाम यह है, क्या, यह नियम इसीलिए है कि हमारी जो लोलुपता है, हमारा जो स्वार्थवाद हैं, परन्तु उसमें किसी प्रकार का विघ्न न आ जाएं, यह संसार मानो कहीं चला जाओ, धर्म कहीं जाओ, पोथी कही जाओ, वेद कहीं चले जाओ, दयानन्द कही चला जाओ, देखो, गुरु देखो, नानक कही चला जाओ, परन्तु कोई भी कही चला जाओं, परन्तु हमारा जो आनन्द है, उसमें किसी प्रकार का दोषारोपण न आ जाए, हमें तो केवल अपने दोषों के ऊपर विचार विनिमय करना है और विचार यह करना है, कि बिना धर्म के आज जो मानव राष्ट्रवाद को बनाना चाहता है। तो वह राष्ट्रवाद कितने समय तक चलेगा? परन्तु कितने समय तक वह रह सकेगा, वह कुछ ही समय के पश्चात, उसकी परम्पराएं नष्ट हो

जाया करती हैं। परन्तु देखो, विचार विनिमय सभी के ऊपर विचार करना है। आज देखो, मानव परन्तु देखो, मानवता में भी नाना प्रकार के दोषारोपण आ जाते हैं, जब मैं यह विचार विनिमय करता हूँ, कि महान आत्माएं, जिन्होंने संसार के इस पृथ्वी मण्डल पर आयें, सुधारकों की चर्चाएं प्रगट की, सुधारक बने, परन्तु उनका अन्तरात्मा यदि अन्तरिक्ष में यह विचारोगे, क्या अन्तरिक्ष में यह आत्मा भ्रमण करता है, और वह आत्मा बड़ी व्याकुल होती रहती है, क्या यह मेरे जो मानने वाले यह कहाँ जा रहे हैं, मैंने कौन सा उपदेश दिया था इनको, मैंने तो यह कहा था कि तुम गऊं की रक्षा करो, मैंने यह नही कहा था कि तुम गऊं का भक्षण करने लगो। परन्तु मैंने तो यह कहा था कि वेद की पोथी को विचारो, सत्य को सत्य स्वीकार कर लो, मैंने यह नही कहा था कि राष्ट्रीय यह विचारों में जा करके अपनेपन को अपनी पवित्रता को नष्ट करते चलो। अहा! वह आत्मा तो इनकी व्याकुलता में परणित रहती है। परन्तु देखो, इसके ऊपर तो विचार विनिमय ही करना होगा। अनुसन्धान करना होगा, परन्तु अनुसन्धान की दृष्टि से जब इसको विचारोगे, तो तुम्हें यह प्रतीत होगा, कि वास्तव में हमे कहा जाना है, एक मानव दूसरों को कटु शब्द उच्चारण करने में बड़ा सहज रहता है परन्तु देखो, अपनेपन को ऊँचा बनाने में असमर्थ रहता है आज क्यों असमर्थ है क्योंकि वह दूसरों की त्रुटियों पर विचार विनिमय करता है, अपनी त्रुटियों को न विचार करके, वह उसमें इस प्रकार के दोषारोपण हो जाते हैं।

पद की लोलुपता में असमर्थता

इसी प्रकार हमें वास्तव में विचार विनिमय करना है, मैं जब सन्यास के मार्ग पर जाता हूँ, तो और ही कुछ प्रतीत होता है, जब मैं सन्यास आश्रम में जाता हूँ, अहम् ब्रह्म अस्मि का सुन्दर उपदेश रहता है। अहम् ब्रह्मस्मि परन्तु देखो, और जिस काल में जब वह उनको छू लेता है, तो वहां अपवित्रता का उपदेश आ जाता है यह क्या है? विचारा नही जाता, परन्तु इससे प्रतीत होता है, कि धर्म और परमपिता परमात्मा को इस संसार ने अच्छी प्रकार

जाना नही। परन्तु वह जानने से, मानव एक दूसरे से घृणा करता है, वास्तव में तो यह कहता है कि मैं धर्म को और मैं वेद को जानता हूँ तो उसके प्रति वह घृणा के क्षेत्र में विराजमान है, तो यह जानो, कि वह वेद के अङ्गों का जानता नही, और अङ्ग, उपांगो से वह मानव बहुत दूरी, वह मानव रहता है, उसकी विचारधारा ही बहुत दूरी है। आगे रहा यह वाक्, कि अब यदि हम यह विचार विनिमय करने लगें, कि इस राष्ट्र को, आज जो परम्परा चल रही है, परन्तु यह बहुत सुन्दर परम्परा बनने वाली थी, परन्तु देखो, क्या हुआ, क्या इस परम्परा में, जिनको धर्म को ले करके, आगे चलना था, वह धर्म को त्यागते चले गएं और जब धर्म को त्यागा गया, उस परम्परा में जो अपनाने में असमर्थ हो गएं, असमर्थ क्यों हो गएं? क्योंकि पद की लोलुपता में, और वह अपने विचारों को स्वतन्त्र बनाने में, क्योंकि विचार स्वतन्त्र नही बने मानव के, मानव की वाणी स्वतन्त्र हो गई परन्तु आन्तरिक विचार स्वतन्त्र नही बनें। जब मानव के विचार आन्तरिक स्वतन्त्र बनेंगे। तो उस काल में यह संसार और मानव समाज ऊँचा बनेगा, राष्ट्रवाद उसका भी ऊँचा बनेगा, परन्तु आन्तरिक जो भावना है, वह पराधीन है, किसके अधीन है, पद के आधीन है, और भी देखो, अन्तरात्मा की वाणी जो है। उसको अपनाने में पराधीनतव माने जाते हैं।

महात्मा नानक

इसी प्रकार जब हम यह विचारते हैं, कि महान पुरूषों कैसे थे, एक समय मानो देखो, यहाँ ऐसा माना गया है कि ऐसे महापुरूष होते रहते हैं, इस कृति काल में भी, महाभारत काल के पश्चात एक समय महात्मा नानक से किसी मानो यवन ने कहा, कि आप हमारे सम्प्रदाय में आ जाओ, तो बड़ा सुन्दर होगा, उन्होंने कहा कि मैं क्यों आ जाऊं? तुम्ही यहाँ आ जाओ, क्योंकि देखो, तुममें हममें किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही है, केवल विचारों का है, उन विचारों का परिवर्तन कर लो और मैं यवन क्यों बन जाऊं, क्योंकि यवन बनने से मुझे क्या लाभ होगा? मानो देखो, असुति सुप्रजा यहाँ तो सभी संसार में मानव है,

मानव हमें बनना है, और मानवता की पवित्र वेदी पर चलना है। गो और विद्या की रक्षा करनी है, उसे हमें करना चाहिए। परन्तु देखो, यह सब महापुरूष ने कहा।

महात्मा दयानन्द

एक समय देखो, आचार्य दयानन्द से एक शब्द कहा था, ऋषि से यह कहा गया, क्या तुम देखो, मठाधीस बन जाओ, उन्होंने कहा कि मैं क्यों बन जाऊं? एक समय यह कहा कि तुम देखो, खण्डन न करों, मण्डन ही मण्डन करों, उन्होंने कहा कि खण्डन करना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। अशुद्धियों का खण्डन, मैं सभ्यता के आङ्गन में करूंगा, मधु मेरे द्वारा होगा, और अभिमान की मात्रा नही होगी, परन्तु देखो, मेरे द्वारा वेद साक्षी होगा। जब वेद साक्षी होगा, तो मैं उस राष्ट्र में हूँ, मैं उस राजा के राष्ट्र में हूँ, क्या जिस राजा के राष्ट्र से मैं कदापि दूरी हो भी नही सकता। परन्तु यह महापुरूषों के शब्द है, महापुरूषों के शब्दों पर जाना ही मानवतव का कर्तव्य है, शब्द तो उच्चारण यथार्थ है, परन्तु उसमें अभिमान है। वह दूसरे आसन के लिए कहता है कि मैंने यह घोषणा की है, उस घोषणा पर अभिमान आ गया, जब अन्तरात्मा यह कहता है कि जहाँ अभिमान है, वहीं मृत्यु हैं, इन शब्दों का अच्छी प्रकार प्रतिपादन न हो करके, मानव अभिमानी बन करके अपनेपन से दूरी चला जाता है।

महापुरूषों का कर्तव्य

इसीलिए यह सब कुछ अशुद्धियां भी हैं, परन्तु इन अशुद्धियों को महापुरूषों का कर्तव्य है, आज यह कैसे अशुद्धियां समाप्त हों, क्या सब बुद्धिमान एकान्त विराजमान हो करके, शान्त वातावरण में विराजमान हो करके, धर्म के ऊपर अपने विचार प्रगट करें, और धर्म के ऊपर विचार प्रगट करके, एक मत हो करके, एक विचार बना करके और एक प्रतिभा को अपना करके संसार में ऊँचे से ऊँचा विधान बना करके, अपने मानव को सुरक्षा करनी चाहिए। यह हमारा विचार परन्तु देखो, परम्परा से चला आया है, कुछ काल आयेगा परन्तु ऐसे महापुरूष भी अवश्य होंगें, और यह सभी कुछ कार्य होगा, परन्तु रहा यह वाक क्या

देखो, मैंने अभी अभी कुछ शब्दों में कहा था आज तो नही, क्योंकि ब्रह्मवाद में, विज्ञानवाद में, यौगिकवाद में और जब देखो, विज्ञानवाद और प्रकृतिवाद और ब्रह्मवाद में किसी किसी प्रकार का विरोध नही है। किसी भी मानो रूढ़िवाद में चले जाओ, द्वितीय मत नही हो सकता, जैसे एक मानव नेत्रों से दृष्टिपात करता है, नेत्रों से करेगा, वह किसी मत और किसी भी सिद्धान्त को स्वीकार करने वाला हो, आज के मानव का यही तो बुद्धिमानो का ब्रह्म विचार है, इसी विचार को ले करके चलना, परम्परा के वाक तो सुन्दर थे। परम्परा में देखो, एक राजा स्वयं देखो, एक साधु को दृष्टिपात करके मानो वह अपने राष्ट्रस्थली को त्याग देता था, देखो, वह चरणों को छूता था, ऐसा क्यों था? इसका कारण यही था, क्या देखो, वह जो ब्रह्म विचारक महान पुरूष थे, वह राजा को जा करके कहा करते थे, हे राजा! तेरे राष्ट्र में इस प्रकार की हानि है, इसको उत्तम बना।

महर्षि रेवक मुनि का राजा दिलीप को उद्बोधन

एक समय मुझे स्मरण है यहाँ देखो, जब महाराजा दिलीप के राष्ट्र में देखो, किसी प्रकार की हानि हुई, तो महर्षि रेवक मुनि पंहुचे और महर्षि रेवक मुनि ने कहा हे दिलीप! आज यह रघु प्रणाली मानो देखो, यह जो परम्परा है मानवीय परम्परा है राष्ट्रीय परम्परा को तुम नष्ट कर दोगे, अहा! इस प्रकार से नष्ट न करो, और यदि यह इस प्रकार से नष्ट हो गई, वह क्यों कहा, क्योंकि उनके राष्ट्र में उनके यहां देखो, गऊंओं पर किसी प्रकार का आक्रमण न करो, आक्रमण हो जाने के पश्चात, ऋषि ने यह कहा, क्या जब राजा के राष्ट्र में दुग्ध नही होगा, तो राष्ट्र कैसे शक्तिशाली बनेगा, आज कोई मानव यह कहता है कि हम केवल अन्न से ही शक्तिशाली बन जाएं, तो यह कदापि नही होगा। जिस राष्ट्र में दुग्ध अधिक होगा, मानो गऊं अधिक होंगी, मानो वह राष्ट्र सुन्दर बनेगा, उस राष्ट्र में मानो शक्ति होगी, मानो विचार विनिमय करने की शक्ति

होगी, आज का राष्ट्र मानो यह भारत भूमि जैसे भगवान कृष्ण राम की भूमि में मानो देखो, इस प्रकार की नाना प्रकार की जो विडम्बनता आती चली जा रही हैं। अहा! देखो, द्वितीय आंगन को चले जा रहे हैं, कि माँस के भक्षण करने वाले व्यक्तियों ने चन्द्रमा पर आक्रमण कर लिया, परन्तु ऐसा हम, ऐसा मैं नही उस राष्ट्र में दुग्ध का अधिक होने के नाते, दुग्ध अधिक होने के नाते दूध की महिमा है। जो विज्ञान के ऊपर इतना विचार विनिमय किया जा रहा है।

धर्म और मानवता के लिए एकता

जब यहाँ परम्परागतों में मुझे स्मरण है जब दुग्ध का पान किया जाता, तो विज्ञान के ऊपर अधिक बल था, विज्ञानशाला ऐसी थी कैसी कैसी विज्ञानशाला, चन्द्रमा में, मङ्गल में और बुध में और शुक्र में जाने वाली विज्ञानशाला, जानो यातायात भी होता रहता था, परन्तु स्मरण आता रहता है, आज देखो, इस विज्ञान में किसी प्रकार का, आज कोई भी किसी प्रकार की रूढ़ि हो, जैसा यह दो मत, उसमें नहीं हो सकेंगे हो ही नही सकते। क्योंकि आज एक मानव मङ्गल पर जाना चाहता है, परन्तु मङ्गल पर जाने के पश्चात वह देखो, उसी मार्ग से जाएगा, जिस मार्ग से देखो, द्वितीय मत के मानने वाला हो, मानो जाएगा, अब देखो, उसमें एक ही मत रहेगा, क्योंकि मार्ग एक है, और विज्ञान इस प्रकार का, परमाणु वही है, उसी प्रकार का यत्र है, परन्तु यत्र में किस प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही है। अहा! इसी प्रकार देखो, योगी है, वह योगी प्राण और मन को एकाग्र कर लेता है, मन और प्राण की जो एकाग्रता है। वह किसी भी मत मतान्तर में द्वितीय नही हो सकती। परन्तु इसी प्रकार आज मेरा यह विचार है, कि हे भोले पुरूषों! सभी विचारकों को एक मत हो करके चलना है, क्योंकि धर्म और मानवता की रक्षा करनी है, यहाँ धर्म और मानवता में मानो किसी प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व नही होना चाहिए और वह अन्तर्द्वन्द्व यदि रहेगा, तो कुछ काल के पश्चात मानव अपने अपने अन्तर्द्वन्द्व के लिए विराजमान रहो। आगे एक दूसरा मानव तुमसे वार्ता भी प्रगट नही करेगा, आगे वह

समय आ रहा है, क्या भयंकर जब अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। वह भयंकर अग्नि मानव को निगलती चली जाती है, मानव को निगलती चली जाती है, संसार अधोगति को प्राप्त हो जाता है, महाभारत काल में क्या हुआ, यही तो हुआ कि अपनी अपनी रूढ़ि बन गई। मानो देखो, उन्होंने राष्ट्र की रूढ़ि बना ली, मानो देखो, उन्होंने राष्ट्र की रूढ़ि बनाई, परिणाम यह हुआ कि संसार का वैज्ञानिक समाप्त हो गया, संसार का मानव समाप्त हो गया।

महापुरुषों का एक मत

इसी प्रकार हमें विचार विनिमय करना है, और सुन्दर विचारकों के समीप जा करके, मानो विचारों को हमें व्यक्त करना है, आज देखो, दयानन्द का विचार हो, देखो, आज मोहम्मद का विचार हो, ईसा का विचार हो, नानक का विचार हो, परन्तु विचार सबके बहुत सुन्दर हैं। यदि उनके मौलिक विचारों को लिया जाएगा, तो एक ही मत है, उन सभी महान पुरूषों का एक मत है, शङ्कर के विचारों को लिया जाएं, अहा! सभी का एक ही विचार है। परन्तु उन विचारों को सुगठित करने वाले बुद्धिमानो की आवश्यकता रहती है संसार में। परन्तु जब बुद्धिमान देखो, केवल सङ्कीर्ण विचारों का बन जाता है, तो उसमें बुद्धिमानिता समाप्त हो जाती है। उसमें बुद्धिमता रहती ही नही, आज एक मानव, एक मत का, दूसरे मत की चर्चा कर ही नही सकता और करेगा तो वहां विवाद आ जाएगा। क्योंकि वह उन महापुरूषों की मौलिक चर्चाओं को नही जानता, कारण उसका यह है, कि मौलिक चर्चाओं को नही जानता, मौलिक चर्चाओं को जानने में विवाद रहता है, अहा! यह इसी प्रकार बहुत परम्परा से चला आ रहा है, आगे मैं इन चर्चाओं को ले जाना चाहता हूँ। केवल विचार यह है कि हमें विचारना है, हमें वास्तव में सुगठित और वेद की परम्परा को ले करके चलना है। क्योंकि आज हम एक दूसरे की, मानव की मानवीयता पर और पौथियों पर और उनके ज्ञान पर विचार नही रहेगा, अशुद्धियों को त्याग दो, शुद्धता को अपना लो, यही मानवता का कर्तव्य है। यही मानववाद, वेदवाद कहता है, परम्परा से और

इसी के आधार से राष्ट्रवाद है मानो देखो, जब एक दूसरे मानव में अन्तर्द्वन्द्व ही नही रहेगा, तो नाना प्रकार के दुराचारी व्यक्ति नही रहेंगे, और जब दुराचारी व्यक्ति नहीं रहेंगे, तो राजा किस पर शासन करेगा, क्योंकि प्रजा अपना अपना कार्य करती रहेगी। राजा तो इसीलिए होता है कि प्रजा धर्म से विहीन हो जाती है। धर्म की रक्षा करने के लिए, अब राजा यदि स्वयं उसके आंगन में आ करके केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति करेगा, तो वह राजा नही, परन्तु राजा और प्रजा दोनों स्वार्थी बन करके अग्नि प्रदीप्त हो जाएंगी, क्योंकि प्रायः ऐसा होता रहता है। तो आज हमें विचारना यही है, कि हम एक मत हो करके, संसार को उत्तम बनायें, राष्ट्र को उत्तम बनायें और अपनी एक पतिका बना करके, पृथ्वी मण्डल को सुन्दर बनायें अहा! क्योंकि देखो, यहाँ ऐसा होता है और ऐसा पूर्व काल में था, जो कि कणाद और गौतम के काल में इसी प्रकार का था, गौतम और कणाद के काल में भी यही था, आगे देखो, यह समाज संसार परम्परा से चला आ रहा है अहा! देखो, राजा बन गएं परन्तु राजा बन करके उन्होंने भोले प्राणियों को, उन्होंने नाना प्रकार की लोलुपतता दे करके इस ....शेष अनुपलब्ध जोर बाग नई दिल्ली।

12 ३१ ०८ १९६९ आत्म ज्ञान से मानव उत्थान

देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का, गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ ऐसा माना गया है, कि मूल चार वेद माने जाते हैं। परन्तु उन चार मूल वेदों की ग्यारह सौ सत्ताईस शाखाएं स्वीकार की गई है, इसमें से प्रथम संहिता का नाम पिप्लाद कहलाया गया है, द्वितीय शाखा का नाम शृङ्गकेतु कहलाया गया है, उससे पूर्व मैं आज शाखाओं का वर्णन नहीं कराने जा रहा हूँ। उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारे यहाँ ग्यारह सौ सत्ताईस शाखाएं स्वीकार की गई है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज तुम्हें यह जानकर बड़ी महान प्रसन्नता होगी कि आज का हमारा जो वेद पाठ था, परन्तु वह वायु

मुनि महाराज के जो मुनिवरों! पैंतालीसवें प्रपौत्र, महर्षि श्वेतकेतु थे, उस संहिता का पाठ समाप्त होने जा रहा है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ ऋषि मुनियों की परम्परा, इनकी प्रणाली, इनकी महती हमारे यहाँ, परम्परागतों से प्रदीप्त होती चली आई है, जिसके ऊपर मानव को सदैव विचार विनिमय करने की आवश्यकता है, हमारा जीवन, हम अपने जीवन को यदि अच्छी प्रकार विचार विनिमय करेंगे, हमारे जीवन की जो प्रतिभा है, वह जो हमारा प्रत्येक अङ्ग है, वे परमपिता परमात्मा ने, जिसका निर्माण किया है। वह प्रत्येक अङ्ग हमारे लिए विचारणीय है, तो हमें विचारना है और परम्परागतों की पवित्र वेदी पर ले जाना है। जिस पवित्र वेदी पर ले जाने के पश्चात हमारा जीवन, हमारी मानवता वास्तव में पवित्रता प्राप्त हो जाती है।

अन्तःकारण का प्रकाशक

आज का हमारा वेद पाठ, आज हमारी सुन्दर शाखाएं, हमें सुन्दर, महान उपदेश देती चली जा रही थी, और वेदज्ञ प्रकाश के सम्बन्ध में, विचार विनिमय होता चला जा रहा था। आज का वेद पाठ कह रहा था, वेदज्ञ प्रकाश यह जो वेद है, यह अनुपम प्रकाश है, यह महान प्रकाश है। तो मेरे प्यारे! महानन्द जी! यह कहा करते है, क्या, जब आज वेद को प्रकाश स्वीकार करते हो, तो तुम भी, वेद अनुपम प्रकाश प्रातःकाल से सायं काल तक उत्पन्न होता रहता है, चन्द्रमा से भी प्रकाश आता रहता है, तारामण्डलों से भी प्रकाश आता रहता है। तो इसका उत्तर हमने बहुत पूर्व काल में दिया भी था, कि वास्तव में जब हम यह विचारने लगते है, कि सूर्य को भी वेद ही स्वीकार करें, क्योंकि जब इसको प्रकाश कहते हैं, परम प्रकाश कहा जाता है, तो वेद का आचार्य है, जैसे हमारे नेत्रों का देवता, नेत्रों का प्रकाशक, जिस प्रकार मुनिवरों! यह सूर्य माना गया है, यह नेत्रों को प्रकाशित करता है, इसी प्रकार मानव के अन्तःकरण को प्रकाशित करने वाला बेटा! यह वेदज्ञ ज्ञान ही होता है, इसके ऊपर विचार विनिमय करना है। कि हमें अपने अन्तःकरण को प्रकाश

में लाना है और ज्ञान रूपी प्रकाश की आवश्यकता है और वह ज्ञान, विज्ञान प्रतिभाशाली उसे वैदिक ज्ञान में ओत प्रोत है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेद पाठ केवल प्रकाश के लिए ही तो पुकार रहा था, परन्तु यह प्रकाश हमें कहाँ ले जाता है, मृत्यु से पार कर देता, हमें मृत्यु से और अक्षिण कर देता है हमें मृत्यु हमारे समीप नहीं आती। हमारे यहाँ मृत्यु के सम्बन्ध में नाना प्रकार की विडम्बना चली आई है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! यह कहा करते है, क्या यह संसार, सर्वत्र संसार मृत्यु के मुखारबिन्द में जा रहा है। यह मृत्यु संसार को, अपने में वशीभूत कर लेती है, अपने में धारण कर लेती है और यह मृत्यु मानव मात्र को निगल जाती है।

मृत्यु का स्वरूप

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर यहाँ तक नहीं, बेटा! लोक लोकान्तरों को निगल जाती है, लोक लोकान्तरों के प्राणियों को निगल जाती है, यहाँ आचार्य जनों ने ऐसा कहा है, कि आज हम उसके ऊपर विचार विनिमय करने वाले बनें, कि मृत्यु क्या है? बेटा! मृत्यु के सम्बन्ध में एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली आ रही है, वास्तव में तो मृत्यु क्या है सबसे प्रथम आज तक यह कहलाया गया है, जो भी, संसार में मृत्यु ही एक ऐसा शब्द है, जो मानव के लिए बहुत ही आश्चर्यजनक है और विचारता रहता है कि मृत्यु क्या है? तो ऋषि कहते है, आचार्य जी ने कहा है, महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज ने एक समय बेटा! महर्षि रेवक के और महर्षि शाण्डिल्य इत्यादि ऋषि मुनियों का एक समाज एकत्रित हो रहा था, जिसमें बेटा! महर्षि भृगु और महर्षि शाण्डिल्य और महर्षि मुदग्ल आदि ऋषियों का आगमन होता चला जा रहा था, परन्तु जब महर्षि पिप्लाद मुनि का सभा में आगमन हुआ, तो वहाँ ब्रह्म विचार विनिमय हो रहा था, क्या ब्रह्म क्या है? आत्मा क्या है? तो इसके सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर सुन्दर विचार विनिमय हो रहे थे। होते हुए, उसके पश्चात जब महर्षि पिप्लाद मुनि ने अपने आश्रम

को आगमन किया।

शरीर की प्रतिभा

तो मुनिवरों! देखो, उनका पुत्र था, केवल सात वर्ष उसकी मृत्यु हो गई थी। परन्तु जब वह अपने गृह में आए, पत्नी जी को जब दृष्टिपात किया, तो वह व्याकुल हो रही थी और व्याकुल होते हुए उसने कहा कि मेरे पुत्र की मृत्यु हो गई। महर्षि पिप्लाद जी ने कहा देवी! संसार में मृत्यु कोई शब्द नहीं होता, उन्होंने कहा कि महाराज! यह आप क्या उच्चारण कर रहे है, मृत्यु शब्द क्यों नहीं होता? मुझे तो मृत्यु प्रतीत होती है, मेरा पुत्र मेरे समीप नहीं रहा है, आज मैं अपने पुत्र को कहाँ से ला सकती हूँ? परन्तु जब, यह दोनों के ऊपर प्रश्न होने लगे, तो महर्षि पिप्लाद जी ने कहा क्या, हे देवी! इसलिए मृत्यु कोई शब्द नहीं होती, क्योंकि संसार में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अमिट मानी गई है, इसलिए मैं इसको स्वीकार नहीं करता हूँ। तो देवी ने कहा तो महाराज! मैं आप से यह जानना चाहती हूँ, क्या, यह जो मेरा शरीर आपको प्रतीत हो रहा है, यह शरीर, जब मैं इस रूप में नही थी, तो इससे पूर्व यह शरीर कहाँ रहता था? उन्होंने कहा देवी! यह शरीर जब तुम्हारा इतना स्थूल रूप में नहीं था, यह बाल्य काल में था। बाल्यावस्था में क्रीड़ा कर रहा था। आनन्दपूर्वक अपनी माता की लोरियों में आनन्द को प्राप्त कर रहा था। ऋषि पत्नी ने कहा कि महाराज! जब यह देखो, जब मैं क्रीड़ा भी नहीं करती थी, उससे पूर्व यह शरीर कहां रहता था उन्होंने कहा कि यह माता के गर्भस्थल में क्रीड़ा कर रहा था, और माता की लोरियों के द्वारा नाना प्रकार की नस नाड़ियों का जो समूह माना गया है, उनके द्वारा सुन्दर सुन्दर रसस्वादन कर रहा था और उसी के द्वारा अपने जीवन की प्रतिभा को पाता चला जा रहा था। आज अव्रति देवी ने ऋषि पत्नी ने कहा कि महाराज! जब माता के गर्भ स्थल में भी, गर्भाशय नहीं था, मानो देखो, माता के गर्भ में जब परमाणुवाद नहीं था, तो उससे पूर्व कहाँ रहते थे? तो ऋषि ने कहा देवी! उस समय माता और पिता के रज वीर्य के रूप में ये परमाणु सुगठित हो रहे थे और उस

समय प्रतिभा देखो, माता पिता के शरीर में ओत प्रोत हो रही थी, तेज बन करके, सोम बन करके, क्योंकि सोमावृत्ति सोमा व्रताम अप्रते सोमा देखो, यह संसार सब सोम ही है, क्योंकि देखो, इसमें, क्योंकि इतनी सौम्यवादिता माता पिताओं में होती है, इतनी उनकी प्रतिभा पवित्र कहलाई गई है। उन्होंने कहा कि महाराज! जब माता पिता के शरीर में रज, वीर्य सोम बन करके नहीं रहते थे, उससे पूर्व यह कहां रहते थे? तो ऋषि पत्नी के वाक्यों को पान करने वाले ऋषि ने कहा देवी! उस समय यही परमाणु कुछ अन्न में विराजमान थे और कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में विराजमान हो रहे थे। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर महाराज! परन्तु जब यह अन्न और वनस्पति नहीं थी, तो उससे पूर्व यह परमाणु कहाँ रहते थे? उन्होंने कहा हे देवी! जब मानो देखो, अन्न भी नहीं था और वनस्पति भी नहीं थी, उस समय यह कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे। कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे, उस समय यह कृषक की भूमि में आनन्दत्व मनाते चले जा रहे थे, ऋषि पत्नी ने कहा कि महाराज! जब यह परमाणु मानो देखो, जब यह कृषक की भूमि भी नहीं थी, तो पूर्व कहाँ रहते थे, परमाणु उन्होंने कहा देवी! जब यह कृषक की भूमि नहीं थी, उससे पूर्व यह परमाणु देखो, पृथ्वी में बिखरे हुए थे, पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु थे। उन्होंने कहा महाराज! क्या यह पृथ्वी के परमाणु स्वीकार किए जाएं, उन्होंने कहा कदापि नहीं, देवी! यह कुछ पृथ्वी के परमाणु होते है, कुछ जल के परमाणु होते है, कुछ अन्तरिक्ष के परमाणु होते है, कुछ मानो यह पञ्च महाभौतिक जो परमाणु है, उनकी सुगठितता हो जाती है, और इनके विच्छेद मानो देखो, इन परमाणुओं को सुगठित करने वाला, इस मानव शरीर में जीवात्मा विराजमान रहता है। मानो जब यह जीवात्मा इस शरीर में पृथक हो जाता है। शरीरम ब्रह्मे अप्रता रुद्रा जब इस शरीर को यह आत्मा त्याग देता है, तो यह परमाणु अपने अपने कारण में लय हो जाते है।

पुत्र

हे देवी! आज तुम्हारा पुत्र, परन्तु पुत्र की वेदी क्या

है? आज यदि पुत्र की वेदी को स्वीकार किया जाए, कि हम पुत्र किसे कहते है? तो हे देवी! तुमसे इनका उत्तर भी नहीं बन पाएगा, मानो इन परमाणुओं को हम पुत्र कहते है, मृत्यु कहते है, कौन सी वस्तु मृत्यु को प्राप्त हो गई, परन्तु मानव जो व्याकुल होता है। आज मेरी प्यारी माता व्याकुल होती है, मानो गुरु और शिष्य दोनों व्याकुल होते है, एक दूसरे का विच्छेदन हो जाने के पश्चात्, यह क्या है, मानो देखो, एक वस्तु हमें प्राप्त होती है, परन्तु वह जो हमारे समीप इस रूप में नहीं रहती, तो प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, प्रत्येक ऋषि मण्डल को महान कष्ट होता है। परन्तु यदि यह विचार विनिमय किया जाए, कि वास्तव में मृत्यु क्या है? तो ऋषि कहते है, ऋषि पिप्लाद जी ने कहा है हे देवी! मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, वास्तव में मृत्यु के ऊपर विचार विनिमय किया जाए, और जब यह तुम्हारे पुत्र के मानो जो पुत्र बना हुआ था, परमाणुओं का जो बना हुआ शरीर था, उसमें से जब आत्मा निकल गया मुनिवरों! देखो, इस मृत्यु के मुखारबिन्द के मुख में अर्पित कर दिया, अहा! अग्नि के परमाणु अग्नि में मिश्रित हो गए। जल के परमाणु जल में मिश्रित हो गए, पृथ्वी के परमाणु पार्थिव तत्त्व में मिश्रित हो गए, उसी प्रकार मानो अन्तरिक्ष के परमाणु अन्तरिक्ष में चले गएं, वह सब मानो अपने अपने परमाणु अपने ही जहाँ से यह आए थे, उसी दिशा को प्राप्त हो गएं, और आत्मा देखो, अपने उस अन्तरिक्ष में भ्रमण करने लगा। यहाँ आत्मा मानो बिना शरीर के, यह बिना शरीर के नहीं रह सकता, यह अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा अपने शरीर को त्याग करके अन्तरिक्ष में चला जाता है। अन्तरिक्ष में नाना प्रकार की वायु में भ्रमण करता रहता है। जैसा उन्होंने कहा, हे देवी! जैसा देखो, वाजश्रवा ने मानो देखो, महर्षि गौतम कुल में उत्पन्न होने वाले और विश्वामित्र ब्रहोवृत्ति मानो देखो, प्राची देखो, भारद्वाज में उत्पन्न होने वाले, और विश्वामित्र बृहे वृत्ति मानो देखो, वाजश्रवा ने और देखो, यहाँ मृत्यु आचार्य ने, यमाचार्य ने मानो देखो, बालक से कहा था, अप्रति रुद्रा मनो सुप्रजा, उन्होंने कहा था हे बालक! हे ब्रह्मचारी! हे नचिकेता! आज

यह जो शरीर को त्याग करके, आत्मा चला जाता है, यह अन्तरिक्ष से चला जाता है, परमाणुवाद किसी भी काल में नष्ट नहीं होता, क्योंकि यह प्रकृतिवाद है, इसी को हमारे यहाँ प्रकृतिवाद कहा जाता है। आज हमें आत्मा के लिए, वास्तव में आत्मा के लिए उपासना करनी चाहिए। इन वाक्यों में आत्मा से हमारा कल्याण होता है आत्मा को ही उपास्य देव स्वीकार करते है, तो आत्मा से ही तो हमारा उत्थान होता है।

स्वार्थवाद में व्याकुलता

महर्षि पिप्लाद जी ने कहा हे देवी! आज ऋषि मुनियों के वचन है, उनके जो वचनामृत है वह सर्वत्र हमें वास्तव में, हमें शिक्षा देते चले आ रहे है, क्या आओ, और इसका पान करते चले जाओ, मृत्यु क्या है? वास्तव में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, आज जो मानव व्याकुल होता है, उसके द्वारा कोई किसी प्रकार का स्वार्थवाद होता है, मानो उसकी नाना प्रकार की कुछ भविष्य की विवेचनाएं होती है, परन्तु देखो, उसके कुछ सुखद दुखद होते है। जिससे मानव इस प्रकार व्याकुल होता रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें मृत्यु के वास्तविक स्वरूप को जान लेना चाहिए, वास्तव में मृत्यु किसे कहते है? मृत्यु उसी को कहते है, क्योंकि उसकी जो अग्रता है, हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने कहा है, क्या मृत्यु किसे कहते है? जो मानव संसार में कायर बन करके रहता है, वह सदैव मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। अरे, शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं कहलाया जाता है। हमारे यहाँ बेटा! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है, कि शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है, मृत्यु नाम है उसका, जो संसार में कायरता से जीवित रहता है। आज कोई मानव, मानव को हानि पहुंचाने का प्रयत्न करता रहता है, मानव, मानव की विडम्बना में परणित रहता है, नष्ट करने में, परन्तु यह जानों कि वह मानव मृत्यु के मुख में चला जा रहा है। मृत्युवादी वही व्यक्ति होता है, जो धर्म को त्याग करके, अधर्म में उसकी प्रवृत्ति बन जाती है। बेटा! अहा! असुर बन जाता है, असुरता को प्राप्त हो जाता है, वही तो मृत्यु

को प्राप्त होता है। अन्यथा संसार में मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि यदि हम मृत्यु की मीमांसा करना चाहते है, मृत्यु क्या है? बेटा! मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि आत्मा ही जीवन है।

नेत्रों का देवता, सूर्य

संसार में मुझे एक वार्ता और स्मरण होती चली जा रही है बेटा! जो मैंने बहुत पूर्व काल में इनकी विवेचना करते हुए कहा है, आज भी मुझे स्मरण आती, चली जा रही है, एक समय बेटा! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज राजा जनक के द्वार पर जा पहुंचे। राजा जनक ने महर्षि जी का बड़ा सुन्दर स्वागत किया, चरणों को स्पर्श करके सुन्दर आसन दिया, आसन पर ही जब विराजमान हो गएं, नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराने के पश्चात राजा उनके चरणों में ओत प्रोत हो गएं। राजा ने कहा हे भगवन! मैं आपसे कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। महर्षि याज्ञवल्कय मुनि बोले राजन! करो, तुम्हारा क्या प्रश्न है? उन्होंने कहा प्रभु! मेरा सबसे प्रथम यह प्रश्न है, कि हमारे जो नेत्र है, उनका देवता कौन है, हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होते है? राजा जनक के वाक्यों को पान करने वाले ऋषि ने कहा हे राजन! इसको तो प्रत्येक मानव जानता है, प्रत्येक बालक बालिकाएं जानती है, कि हमारे जो नेत्र है, वह सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते है, सूर्य हमारे नेत्रों का देवता है, जब सूर्य प्रातःकाल में अपनी नाना प्रकार की कान्तियों से कान्तियों के संग उदय होता है। तो मानव मानव जागरूक हो जाता है मेरी प्यारी माताएं अपने पुत्रों को जागरूक कर देती है, हे बालक! अब प्रकाश सूर्य उदय हो गया है, अब प्रकाश आ गया है, अहा! तुम जागरूक हो जाओ। तो मुनिवरों! देखो, एक मीमांसा हमारे यहाँ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने की है। क्या दिवस केवल सूर्य की आभा और कल्पना करते है। हे राजन! इसलिए हमारे नेत्रों का जो देवता है, वह सूर्य कहलाया जाता है।

चन्द्रमा का प्रकाश

राजा ने कहा, भगवन! जब यह सूर्य नहीं होता तो

हम किसके प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते है? उन्होंने कहा हे राजन! जब यह सूर्य नहीं होता, तो हम चन्द्रमा के प्रकाश में अपना कर्तव्य करने के लिए तत्पर हो जाते है, और वह हमारे नेत्रों का देवता बन जाता है। नाना प्रकार की, नाना प्रकार की कान्तियों से युक्त होता हुआ, चन्द्रमा हमें प्रकाश देने के लिए तत्पर हो जाता है, उस चन्द्रमा को हमारे यहाँ देखो, सोम कहा जाता है। जब देखो, पूर्णिमा का दिवस आता है। उसकी सुन्दर सुन्दर कान्तियां मानो जब समुद्रों में जाती है, तो सुन्दर जल को अपने में ग्रहण करता हुआ, यह चन्द्रमा सोम कहलाया जाता है। उसी सोम के द्वारा बेटा! यह देखो, कृषि करने वाले जो वैश्य होते है, मानो उनकी जो पृथ्वी होती है, उसको अमृत प्रदान करने वाला, यह सोम चन्द्रमा ही होता है, माता के गर्भ स्थल में जब हम जैसे प्यारे पुत्र होते है, तो एक माता की रसना के निचरले विभाग में सोम नाम की नाड़ी होती है, देखो, वह जो सोम कृति नाम की नाड़ी होती है, वह अमृत को पान करती रहती है, चन्द्रमा से अमृत लेती है, और वहीं अमृत मानो देखो, माता की लोरियों के द्वारा पर होता हुआ और मुनिवरों! आगे चल करके, उसी नाड़ी का पञ्चम रूप बन जाता है, और पञ्चम नाम की नाड़ी माता के गर्भस्थल में बेटा! जब जरायुज होता है, उसकी नाभि से नाड़ियों का सम्बन्ध होता है, नाभि के द्वारा ही, मुनिवरों! देखो, सोममयी अमृत को पान करता रहता है। यहाँ तक वह प्रकाश देता रहता है, तो हे राजन! जब सूर्य नहीं होता, तो हम चन्द्रमा के प्रकाश में अपना कर्तव्य करने में तत्पर हो जाते है।

तारा मण्डलों का प्रकाश

राजा ने कहा प्रभु! जब यह चन्द्रमा भी नहीं होता इसके पश्चात हम किसके प्रकाश से प्रकाशित किया करते है? इस समय राजा के वाक्यों का पान करने वाले ऋषि ने कहा है, हे राजन! जब यह चन्द्रमा भी नहीं होता सूर्य भी होता तो हम तारा मण्डलों के प्रकाश से प्रकाशित होने लगते है, जैसे तारामण्डल ही हमारे देववत कहलाए जाते है। नेत्रों के देवता बन जाते है, इन्हीं के प्रकाश में कार्य

करना प्रारम्भ कर देते है, मानो वह तारा मण्डल नाना प्रकार के तारामण्डल कहलाए गएं है, हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा है, क्या हमारी इस सर्वत्र सृष्टि में बेटा! तीन प्रकार के सौर मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाया गया है। द्वितीय सौर मण्डल का अधिपति बेटा! ध्रुव कहलाया गया है, और तृतीय सौर मण्डल का अधिपति जेठाय नक्षत्र कहलाया गया है। परन्तु एक एक सौर मण्डल के अन्तर्गत नाना मण्डल रहते है, नाना लोक लोकान्तर रहते है, हमारे ऋषि मुनियों ने ऐसा कहा है, बेटा! परमपिता परमात्मा की सृष्टि में बेटा! असंख्य सूर्य कहलाए गएं है, असंख्य, देखो, जेठाय नक्षत्र है, और असंख्य देखो, ध्रुव मण्डल कहलाए गएं है, हमारे यहाँ याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, ऋषि को, राजा को वर्णन कराते हुए, राजा को कहा हे राजन! मानो हमारे यहां जो पृथ्वी मण्डल है, ऐसे ऐसे तीस लाख पृथ्वियां सूर्य मण्डल में समाहित हो जाती है और जैसा यह सूर्य मण्डल है, ऐसे ऐसे, एक सहस्र मण्डल देखो, बृहस्पति मण्डल में समाहित हो जाते है, और जैसा यह बृहस्पति मण्डल है ऐसे ऐसे एक सहस्र बृहस्पति मण्डल आरूणि मण्डल में समाहित हो जाते है, और जैसा यह आरूणि मण्डल है, ऐसे ऐसे एक सहस्र मण्डल ध्रुव मण्डल में समाहित हो जाते हैं, और जैसा यह ध्रुव मण्डल है, ऐसे ऐसे एक सहस्त्र मुनिवरों! जेठाय नक्षत्र में समाहित हो जाते हैं।

प्रभु की महिमा

तो यह है प्रभु की महिमा, आज मैं प्रभु की अलौकिकता को कहा तक वर्णन करता रहूँगा। बेटा! परमात्मा की सृष्टि में, असंख्य तो चन्द्रमा कहलाए गए है, असंख्य मण्डल कहलाए गएं है, नाना सूर्य देखो, बृहस्पति इत्यादि माने गए है, तो मेरे प्यारे! ऋषि मैं इस आज के लोक लोकान्तरों के विज्ञान में जाना नहीं चाहता, परन्तु देखो, सूर्य मण्डल हमारे यहाँ देखो, एक अग्रे लोक कहलाया गया है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने यह वर्णन कराते हुए कहा है, कि आज का संसार तो चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है, मैने बहुत पूर्व काल में उनके शब्दों में

कहा है, उनके शब्दों की पुनरूक्ति करते हुए कहा है, बेटा! देखो, चन्द्रमा में जाना कोई सुन्दर नहीं है। **परन्तु आत्मा का जानना संसार में सर्वोपरि उत्तम कहलाया गया है।** क्योंकि संसार में आत्मा का उत्थान होता है, देखो, सूर्य चन्द्र मण्डल में जाने से मानव समाज या राष्ट्रवाद किसी काल में उत्तम नहीं बना करते है। वह परम्परागतों से ही, मानो विज्ञान चला आ रहा है, द्वापर के काल में विज्ञान की प्रतिभा कितनी पराकाष्ठा पर थी, बेटा! तुमने दृष्टिपात किया होगा, राजा रावण के यहाँ विज्ञान पराकाष्ठा पर था, परन्तु मैं आज इस विज्ञान के युग में नहीं जाना चाहता हूँ। यह विज्ञान क्या कर रहा है, परन्तु यह वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, कि आज हमें आत्मा का ज्ञान होना चाहिए। आत्मा के लिए हमें विडम्बना होनी चाहिए। क्योंकि आत्मा से ही मानव का उत्थान होता है, आज हम भौतिक विज्ञानवेत्ता बनने के लिए तत्पर रहते है, हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! भौतिक विज्ञान के लिए बहुत कुछ विवेचनाएं की है, कि हमें भौतिक वैज्ञानिक बन जाना चाहिए, परन्तु बुद्धि, मेधा के आधार पर एक मानो देखो, मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार के परमाणु त्रिस्रेणु, महात्रिस्रेणु, पञ्चस्रेणु, इन नाना प्रकार के परमाणुओं को एकत्रित करता रहता है और वह नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की सीमाएं, जो उनकी जो सीमा है। मानो उनकी जो नाना अकृत रेखाएं है। उनके जानने का प्रयास करता रहता है।

वैज्ञानिक घटोत्कच्छ

मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! द्वापर के काल में जब महाराजा भीम का पुत्र घटोत्कच्छ ने यह विचारा कि मैं मङ्गल और पृथ्वी के मध्य का मार्ग जानना चाहता हूँ। तो मुनिवरों! उन्होंने अच्छी प्रकार जाना, अहा! देखो, मङ्गल और पृथ्वी के मध्य की जो रेखा है, उसका नाम सोमभान नाम की रेखा कहा गया है। परन्तु देखो, जो चन्द्रमा और पृथ्वी के मध्य की रेखा है, उसको सोम कृति नाम की रेखा गया है। परन्तु आगे मैं नाना प्रकार के यन्त्रालयों में जाना नहीं चाहता, आज मैं इस विज्ञान में

जाने के लिए तत्पर हो जाऊं, परन्तु विचार विनिमय यह चल रहा था, ऋषि ने कहा हे राजन! जब चन्द्रमा सूर्य नहीं होता, तो हम मानो नाना प्रकार के तारामण्डलों के प्रकाश से प्रकाशित होने लगते है, जो इतने विशाल लोक लोकान्तर है, जिसमें सहस्रो सहस्रो सूर्य समाहित हो जाते है और नाना चन्द्र मण्डल समाहित हो जाते है, आज हम देखो, उन तारामण्डलों के प्रकाश से प्रकाशित हो जाते है।

शब्द का प्रकाश

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा ने कहा हे ऋषिवर! मैं यह जानना चाहता हूँ, जब यह तारामण्डल भी नहीं होते, तो हम किसके प्रकाश से प्रकाशित होने लगते है। उन्होंने कहा हे राजन! जब यह मानो तारामण्डल भी नहीं होते, तो हम देखो, शब्द के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते है, जब मानो वाक आता है, उस वाक की ज्योति में ज्योतिवान हो जाते है, क्योंकि नाना प्रकार के जो सौर मण्डल है, जो लोक लोकान्तर कहलाए गए है, यह सब अन्तरिक्ष में ही रमण करते रहते है। कैसी प्रभु की विचित्रता है, बेटा! कि नाना प्रकार के लोक लोकान्तर अन्तरिक्ष में ही रमण करते रहते हैं, परन्तु एक दूसरे से उनका मिलान नहीं हो पाता, अपने अपने मार्ग में भ्रमण करते रहते है। क्योंकि अपनी परिधि में भ्रमण करते हैं, प्राण और मन के द्वारा उनकी प्रक्रियाएं प्रारम्भ होती रहती है, परन्तु विचार यह है, क्या, वह जो शब्द है। उन दोनों के मध्य में, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों के मध्य में से होता हुआ, शब्द की उत्पत्ति मानी गई है। आज जब हमारा देखो, रसना का, तालु का, दोनों का सम्बन्ध मानो तालु का सम्बन्ध हो जाता है, तो शब्द की रचना हो जाती है। इसी प्रकार ऋषियों ने कहा है, क्या ऋत और सत के आधार पर मुनिवरों! देखो, शब्द की प्रतिभा उत्पन्न होने लगती है। उसी शब्द के आधार पर बेटा! देखो, आज मानव कोई वाक उच्चारण करने के लिए सदैव तत्पर रहता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इस वाक को अधिक

गम्भीर नहीं बनाने जा रहा हूँ, मैं विज्ञान में नहीं ले जाने जा रहा हूँ, केवल में नहीं ले जाने जा रहा हूँ। केवल वाक यह है क्या उन्होंने प्रमाण देते हुए कहा एक मानव मार्ग में चला जा रहा है परन्तु मार्ग से कुमार्ग पर चल देता है, अन्धकार छाया हुआ है, वह मानव उच्चारण करता है, क्या कुमार्ग में चला जाता है, अरे, है कोई, हमें मार्ग चेताने वाला, उस समय बेटा! एक मानव जो मार्ग में स्थिर है। वह अपने शब्द से उच्चारण करता है। आ जाओ, मैं मार्ग में स्थिर हूँ।

चेतना का बोध

तो मुनिवरों! देखो, वह मानव उसी शब्द के प्रकाश से उस मार्ग को प्राप्त कर लेता है। उसी मार्ग में पहुंच जाता है। क्योंकि वह मानो उसका शब्द प्रकाश है और उसी प्रकाश के आधार पर बेटा! वह मार्ग को प्राप्त कर लेता है। तो राजा ने कहा ऋषि से, हे भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ, क्या, जब यह शब्द भी नहीं होता, अन्तरिक्ष, हम किसके प्रकाश से प्रकाशमान होते है? उस समय मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऋषि ने कहा हे राजन! जब यह मानो शब्द भी नहीं होता, लोक लोकान्तर भी नहीं होते, चन्द्र और सूर्य भी नहीं होता, तो उस समय, हे राजन! हम आत्मा के प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते है। यह आत्मा ही ज्योतिवान है, क्योंकि इस शरीर में जब तक आत्मा है, जब तक मानो संसार के नाना प्रकार के पदार्थों को दृष्टिपात करता रहता है, और मुनिवरों! जब यह आत्मा निकस जाता है, केवल मानव का शव है, अहा! उसमें बेटा! नेत्र भी है अरे, सूर्य भी है अरे, मानव क्यों नहीं प्रकाशमान हो जाते है। मुनिवरों! उस समय चन्द्रमा भी है, कान्ति भी है, अमृत भी है, सोम भी है, परन्तु देखो, उस सोम को क्यों नहीं प्राप्त कर लेते हो। इसी प्रकार बेटा! देखो, दिशाएं भी है, श्रोत्र भी है, क्योंकि देखो, शब्दों की रचना भी अन्तरिक्ष में होती है, अरे, क्यों नहीं शब्द को श्रवण कर लेते हो। वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमारा जो अन्तरात्मा है, अरे, हम आत्मा के प्रकाश से प्रकाशमान होते रहते है। इसीलिए ऋषि कहते है, क्या,

आज मानव को इस आत्मा को जानने का प्रयास करना चाहिए, आत्मा क्या है? मानो जो इस शरीर में भास रहा है, जिसकी चेतना से हम चेतनित हो रहे है, उस चेतना को जानना हमारा परम कर्तव्य कहलाया गया है।

कल्पवृक्ष

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं कोई अधिक विवेचना तो देने नहीं आया हूँ, केवल वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है, कि हमें संसार में मानो मृत्यु को जानना है, तो देखो, उस आत्मा को जानना है, क्योंकि आत्मा को जानने से मृत्यु तुम्हारे सम्मुख आ करके उच्चारण करने लगेगी, कि मेरा कोई अस्तित्व नहीं है संसार में, परन्तु यदि मृत्यु कोई वस्तु है, तो मृत्यु वही है, जो मानव धर्म को त्याग करके बेटा! अधर्म में परणित हो जाता है अमानवता में चला जाता है, वहीं मानव बेटा! देखो, मृत्यु को सदैव प्राप्त होता रहता है, जैसा यहाँ चाक्राण ने कहा है, जब वह प्रजापति के आश्रम में पहुंचे, तो चाक्राण से कहा था प्रजापति ने, हे चाक्राण! यदि तुम उद्गाता बनना चाहते हो यज्ञशाला में, तो तुम उसी देवता के उद्गाता बनो, जिस देवता को तुम जानते हो, और जिस देवता को तुम नहीं जानते हो, उसका तुमसे प्रश्न किया जाएगा, तो तुम्हारा मस्तिष्क नीचे गिर जाएगा, तो वाक क्या है, इसके विषय में हम कुछ नहीं जानते, परन्तु इसकी विवेचना करते है, चर्चा करते है, तो हमारा मस्तिष्क नीचे आ जाता है। परन्तु मृत्यु क्या है? क्या इसके विषय में हम नहीं जानते है, हमारा जो जीवन है, वह क्या है? अन्तरात्मा क्या है? नास्तिक क्या है? संसार में बेटा! मानव इन वस्तुओं को जानने के लिए आता है, आज मैं यह नहीं उच्चारण करने आया हूँ, कि मानव को वैज्ञानिक नहीं बनना चाहिए, आज मानव को नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को नहीं जानना चाहिए, परन्तु इस अन्तरात्मा को भी जानो, जिसके जानने से बेटा! ब्रह्म की चेतना जानी जाती है, बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को जान लिया जाता है। आज हमें इसको जानना है, मैं भी बेटा! आज हम एक सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्रह्मे मानो देखो, आज हम ब्रह्म को त्याग करके, नाना प्रकार के परमाणु में

चले जाते है, वास्तव में परमाणुवाद भी जानना चाहिए, परन्तु परमाणुवाद में जो गति आती है, उनमें जो चेतना है, उसको चेतना देने वाला कोई वस्तु है, हमें उस चेतना को जानना है। मानव के शरीर में जो चेतना आ रही है, उस चेतना का कोई न कोई अस्तित्व है, परन्तु देखो, हमें उस चेतना वाले प्राणी को जानना है। उसको जानने से हमारा जीवन बेटा! सर्वोत्तम बन जाता है, और यह जो संसार तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, ये तो बेटा! एक प्रकार का ऐसा है, जैसा कल्पवृक्ष से मानो यहाँ कल्पना करने के लिए आएं है कोई मेरी प्यारी माताएं देखो, नाना पुत्रों की कल्पनाएं करती है और मेरे ऋषिवर नाना प्रकार के तप की कल्पना करते है। मानो नाना प्रकार के ऐश्वर्यों की कल्पना करता है, परन्तु यह जो संसार तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, बेटा! यह तो एक प्रकार का कल्पवृक्ष है, यहाँ प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्याएं, प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल, सब यहाँ एक प्रकार की कल्पना करने के लिए आ रहे हैं।

देवर्षि नारद और दुखी मानव का दृष्टांत

तो बेटा! यह जो प्रभु ने रचा है, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला जो ब्रह्माण्ड है, वह सब एक प्रकार का कल्पवृक्ष है कल्पवृक्ष हमें प्रतीत हो रहा है। एक वार्ता मुझे स्मरण आती जा रही है, आज मैं उस वार्ता को प्रगट कराने के पश्चात्, हमारा यह वाक समाप्त होता चला जाएगा। एक समय बेटा! देवर्षि नारद मुनि महाराज इस संसार में आ पहुंचे, मृत मण्डल में वह भ्रमण करते रहे और उनके मन में एक कल्पना थी क्या मैं आज किसी मानव को जो सबसे दु:खित है उसको मैं स्वर्ग में ले जाने के लिए यहाँ से स्वर्गलोक में ले जाऊंगा। तो मुनिवरों! देवर्षि नारद मुनि उस संसार में भ्रमण करने लगे, भ्रमण करते हुए बेटा! दृष्टिपात किया क्या एक मानव बेटा! देखो, बड़ा दु:खित हो रहा था, वह प्रभु से याचना कर रहा था प्रभु! मैं अब जीवन नहीं चाहता देवर्षि नारद मुनि बोले अरे, मानव! तुम दूखित क्यों हो रहे हो? क्या कारण है?

उन्होंने कहा प्रभु! मैं इस समय बड़ा दुःखित हूँ क्यों दुःखित हो महाराज मेरी पत्नी मुझे नित्य प्रति दण्डित करती है। आज मुझे प्रातः काल में दण्डित किया है, मैं बड़ा दुःखित हो रहा हूँ। प्रभु! मैं अपना जीवन नहीं चाहता। देवर्षि नारद मुनि बोले अरे, चलो आज मैं तुम्हें स्वर्ग में ले चलूं, वह मनुष्य बड़ा प्रसन्न हुआ, प्रसन्न हो करके बोला चलिए, प्रभु! तो मुनिवरों! देखो, वह स्वर्ग के लिए उन्होंने प्रस्थान कर लिया जब स्वर्ग के द्वार पर पहुंचे, देवर्षि नारद मुनि बोले अरे, देखो, भई! यह सुरक्षा द्वार है, और यह कल्पवृक्ष है तुम इस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो जाओ, मैं भगवान विष्णु से आज्ञा ले आऊं कि तुम स्वर्ग में जाने योग्य हो अथवा नहीं, तो मुनिवरों! देखो, नारद मुनि तो स्वर्ग में जा पहुंचे और वह मानव उस कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो गएं, और कल्पवृक्ष के नीचे विराजमान हो करके बेटा! वहाँ मन्द सुगन्ध वायु चल रही थी, और मानव का हृदय बेटा! बड़ा प्रसन्नता में परणित हो गया और मन्द सुगन्ध वायु में प्रभावित हुआ, वह मनुष्य अपने मन में कल्पना करने लगा, अरे, यह तो बड़ा सुन्दर स्थान है, अरे, यहाँ तो तेरे लिए एक आसन होना चाहिए था अब बेटा! वह तो कल्प वृक्ष था, वहाँ कल्पना करते ही एक सुन्दर आसन आ गया, और उस आसन पर वह विराजमान हो गएं, जब आसन पर विराजमान हो गएं तो बेटा! मन्द सुगन्ध वायु में जब देवर्षि नारद मुनि नारदा जी ब्रह्मम कृथे आपोति कामा जब नारद मुनि के कथनानुसार कल्पवृक्ष के नीचे कल्पना कुछ और ही करनी थी, परन्तु वह आसन की कल्पना करने लगा, वह मनुष्य कल्पना करने लगा अरे, यहाँ तो एक विश्राम करने वाला भी आसन चाहिए था, बेटा! वहाँ तो वह कल्पवृक्ष था, कल्पना करते ही बेटा! एक विश्राम करने वाला आसन लग गया, उस पर बेटा! विश्राम करने लगा और वहाँ जब ऐश्वर्य में ललाहित किया, उस मनुष्य ने कल्पना की, अरे, यहाँ तो नाना प्रकार की अप्सराएं भी होनी चाहिए थी। सेवा करने के लिए, अब बेटा! कल्पना करते ही नाना प्रकार की अप्सराएं आ गईं सेवा करने के लिए उस मनुष्य की सेवा होने लगी और

उस मनुष्य में यह कल्पना आई अरे, तेरी अगर मृत लोक वाली पत्नी होती तो तेरे ऊपर डण्डा भी होता अब बेटा! कल्पना करते ही वह पत्नी जी भी आ पहुंची अब वह मनुष्य आगे है पत्नी भी कहीं न कहीं उसके पश्चात है, वह दीर्घ गति से भ्रमण कर रहे है, इतने में देवर्षि नारद मुनि भी स्वर्ग में से आ पहुंचे, नारद मुनि ने जब उसको दृष्टिपात किया, नारद मुनि ने अपनी दीर्घ वाणी से कहा अरे, कल्पना को त्याग। उसने बेटा! उस कल्पना को त्यागा, न तो पत्नी जी है, न अप्सरा है, न आसन है, वहीं एक कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे मानव विराजमान है।

देवर्षि नारद मुनि बोले अरे, महामूर्ख! अरे, तूने कल्पवृक्ष के नीचे आ करके भी भोग विलासों की कल्पना की, अरे, यहाँ यदि तू स्वर्ग की कल्पना करता, तो तुझे यहाँ स्वर्ग प्राप्त हो जाता। अरे, देवता बनने की कल्पना करते, तो देवता बन जाता, अरे, यहाँ तूने मूर्ख! तूने क्या कल्पना की है, तो बेटा! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, कि यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना लोक लोकान्तरों वाला, नाना प्रतिभाशाली बेटा! यह एक प्रकार का कल्पवृक्ष है, यहाँ मानव जैसी भी कल्पना करता है, वैसा ही बनता चला जाता है, यहाँ देवता बनने की कल्पना करोंगे, तो देवता बन जाओगे। ऋषि बनने की कल्पना करोगे, तो ऋषि बन जाओगे। विष्णु बनने की कल्पना करोगे तो तुम विष्णु बन जाओगे। जैसा बनने की कल्पना करोंगे, तो बेटा! वैसे ही बनते चले जाओगे।

घृणा से मृत्यु

तो वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, क्या एक प्रकार का यह कल्पवृक्ष है, देवर्षि ने मुनिवरों! देखो, वहाँ राजा ने कहा क्या, भगवन! इस आत्मा को ही जानना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले हे राजन! इस आत्मा को जानना ही, इस संसार सागर से पार हो जाना है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक यह प्रारम्भ हो रहा था, मृत्यु क्या है? **बेटा! मृत्यु है, जिस विषय को हम नहीं जानते, उस विषय की विवेचना करना प्रारम्भ कर देते है**, जिसका हमें, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में, बेटा! अनन्तमयी विज्ञान है,

अनन्त प्रकार का योग है, बेटा! जैसा प्रभु अनन्त है, वैसी ही देखो, प्रभु की विद्या भी अनन्त है, प्रकृतिवाद भी अनन्त है, लोक लोकान्तरवाद भी अनन्त है, बेटा! आज के मानव, इस शरीर के द्वारा यह जानना चाहे, कि मैं प्रभु की अनन्तता को जान जाऊं, तो बेटा! यह असम्भव है। क्योंकि प्रभु इतना महान है, और वह इतना अनन्तता में परणित रहता है, सदैव, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, आज का हमारा वाक क्या कह रहा था, क्या हम आत्मा को जानने का प्रयास करें और आत्मा, क्योंकि संसार में वस्तु भी कष्ट नहीं होता, न तो परमाणुवाद नष्ट होता है, न आत्मा नष्ट होता है, केवल जो सुगठित बना हुआ शरीर था, मुनिवरों! देखो, वह हमारे नेत्रों के समीप नहीं रहा है। उसको मृत्यु स्वीकार कर लो, अथवा उसको अपने से विच्छेदन होना स्वीकार कर लो, जो तुम्हारी इच्छा है। परन्तु मेरे विचार में तो, मैं नहीं कह रहा हूँ। पिप्लाद ऋषि का वचन है, और यहाँ याज्ञवल्कय मुनि महाराज, पिप्लाद जी कहते है, क्या मृत्यु संसार में कोई वस्तु नहीं, मानव जब अपमानित होता है, मानो जो मानव घृणा से रहता है, वह सदैव मृत्यु के मुख में रहता है। उसी का नाम मृत्यु है। आज का यह वाक अब समाप्त होने जा रहा है, कल बेटा! समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट कर सकेंगे।

तो मुनिवरों! आज का यह वाक समाप्त होने चला, आज का वाक यह क्या, हम मृत्यु को जानने का प्रयास करें, आत्मा को जानने का प्रयास करें, आत्मा क्या है? क्योंकि आत्मा के कारण ही मानव का शरीर चेतनित रहता है, अब यह जो ब्रह्माण्ड है, लोक लोकान्तर है, यह उस महान प्रभु के समीप, उस महान चेतना से चेतनित होते, इसलिए हमें उस प्रभु की चेतना को जानना है, आत्मा को जानना है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब वेदों का पाठ होगा, इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त हो जाएगी। ३१ ८ १९६९ भरतपुर

13 ०१ ०९ १९६९ प्रजापति द्वारा आत्म बोध

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष,

पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ नित्य प्रति कुछ पठन पाठन की पद्धतियों का वर्णन आता रहता है। जब हम विचार विनिमय में करने लगते है कि पद्धतियों का अभिप्राय क्या है? पद्धति उसे कहा जाता है, जिसकी प्रतिभा में वृद्धपन नहीं आता। उसमें सदैव नवीनता रहती है, हमारे यहाँ वेद की, जो सुन्दर सुन्दर पद्धतियाँ है, जैसे नाना प्रकार के स्वरों में, नाना प्रकार के जो स्वर है, उनमें जो उद्दार, जो उद्गम हैं, परन्तु वह नाना प्रकार के कहलाए गएं है। जैसे जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ और उदात्त अनुदात्त, हमारे यहाँ नाना और भी नाना प्रकार के वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया जाता है। जैसे माला पाठ है, हमारे यहाँ बेटा! भिन्न भिन्न प्रकार के विचार विनिमय चलते रहते है।

माला पाठ

मुझे स्मरण आता है, एक समय महर्षि भृगु आश्रम में, महर्षि लोमश, सोमकेतु शौनक इत्यादि ऋषियों का आगमन हुआ। परन्तु महर्षि भृगु जी से प्रश्न किया गया, कि महाराज! हम माला पाठ को जानना चाहते है, माला पाठ किसे कहा जाता है? महर्षि भृगु जी ने इसके ऊपर अनुसन्धान नहीं किया था। उन्होंने कहा कि महाराज! यह जो आश्रम हमें निकट प्रतीत हो रहा है, दृष्टिपात आ रहा है, यहाँ महर्षि पिप्लाद जी रहते है, उनके द्वारा चलते है, और उनसे प्रश्न करेंगे। परन्तु वह ऋषिवर और भृगु जी का सभी ऋषियों का प्रस्थान हुआ, भ्रमण करते हुए जब पिप्लाद आश्रम में पंहुचे। तो बेटा! महर्षि पिप्लाद जी ने कहा क्या, महाराज! मैं इसको नहीं जानता हूँ, मैं भी इसके ऊपर अभी अनुसन्धान कर रहा हूँ, और अभी मेरा अनुसन्धान प्रारम्भ है। क्योंकि मैंने प्रारम्भ में ही इसका विवेचन कर दिया, तो भगवन! उसमें किसी प्रकार का यदि दोषारोपण हो गया, तो प्रभु! मेरा मस्तिष्क नीचे गिर जाएगा। तो ऋषि ने बेटा! यह वाक कहा, तो उन्होंने महर्षि पिप्लाद मुनि ने कहा, यह जो आश्रम हमें आगे

प्रतीत हो रहा है, यह अगला आश्रम महर्षि पापडी मुनि महाराज का है। चलो, इसके द्वारा हमारा आगमन होगा और वह हमारे प्रश्नों का यथाशक्ति उत्तर देंगे। तो बेटा! वह भ्रमण करते हुए, ऋषियों का आगमन, महर्षि पापड़ी मुनि महाराज के द्वारा हुआ, तो बेटा! तुम यह प्रश्न करोंगे, महर्षि पापड़ी मुनि कौन थे, बेटा! वह महर्षि आदित्य मुनि महाराज के सत्रहवें प्रपौत्र कहलाते थे, परन्तु जब महर्षि पापड़ी मुनि महाराज के द्वार पर पहुँचे, तो ऋषियों का जब आगमन दृष्टिपात किया, तो ऋषि का हृदय बेटा! गद् गद् हो गया। उस समय बेटा! उसने वेदमन्त्रों के उन विचारों में देखो, मन मग्न हो रहे थे। उनको वह नित्य प्रति अनुसन्धान, विचार धाराएं प्रारम्भ रहती थी। तो बेटा! जब उनके द्वारा, ऋषि वरूण का आगमन हुआ, तो ऋषि मुनियों ने उन्हें नतमस्तिष्क हो करके प्रणाम किया और प्रणाम करके ऋषियों ने कहा कि महाराज! हम तो आपके समक्ष इसलिए आए है, कि माला पाठ किसे कहते है, हम माला पाठ को जानना चाहते है? ऋषि ने कहा बहुत सुन्दर आईए भगवन! पधारिए।

वह सब बड़े आनन्दपूर्वक ऋषि मुनि सब विराजमान हो गएं, विराजमान हो जाने के पश्चात्, उन्होंने कहा कि महाराज! अब आप प्रश्न कीजिए क्या प्रश्न था? ऋषि ने कहा कि महाराज! हम यह जानना चाहते है कि माला पाठ किसे कहते है? तो ऋषि ने कहा कि मैंने जो जाना है, उसी को निर्णय कर सकता हूँ, परन्तु मैं यदि उसके ऊपर विवाद प्रारम्भ हो जाएगा, तो मैं उस विषय में कोई वाक उच्चारण नहीं करूंगा। महर्षि शौनक जी ने कहा प्रभु! हम तो वही जानने आए है जो आप जानते हैं। उन्होंने कहा कि माला पाठ किसे कहते है? वेद को तुम जानते ही हो, परन्तु वेद में जो नाना प्रकार के मन्त्र है, मन्त्रों में भी जो शब्द है, मानो जो ऋचाएं है, उनको भी जानते हो, श्रवण भी किया है। ऋषि ने कहा कि महाराज! अवश्य किया है। तो ऋषि ने उत्तर दिया कि हम माला पाठ उसे कहा करते है, माला कहते है धागे में, जो मनके पिरोए हुए होते है। जब धागे में मनके पिरोएं जाते है, तो

वह मनके और धागे दोनों एक सूत्र में आ जाने का नाम माला कहलाई जाती है। इसी प्रकार हे मेरे प्यारे! ऋषि मण्डल! इसी प्रकार यह जो परमात्मा का जो ब्रह्माण्ड है जो दृष्टिपात आ रहा है और यह जो वेदों का ज्ञान है, वेदों की जितनी ऋचाएं है, वह ओ३म् रूपी धागे से पिरोई हुई रहती है। मानो देखो, यह जो वेद रूपी ऋचाएं है, यह एक प्रकार के मनके है, और ओ३म् रूपी धागे में पिरोई हुई हैं, इसीलिए हमारे यहाँ वेद के प्रारम्भ में, वेद के मन्त्र को जब उच्चारण करते हैं, तो बेटा! आचार्यजन ओ३म् का उच्चारण किया करते है। ओ३म् का उच्चारण क्यों किया करते है? क्योंकि वेद की ऋचाएं जो ऋचाओं का हमने पठन पाठन किया, परन्तु उच्चारण किया स्वरों सहित, और उसमें सबसे प्रारम्भ ओ३म् को उच्चारण करते, क्योंकि ओ३म् रूपी धागा बना करके और वेदमन्त्र में जो ज्ञान और विज्ञान है, वह उस ओ३म् रूपी धागे से बेटा! पिरोया हुआ है जितना भी ज्ञान विज्ञान है अथवा वह भौतिक विज्ञान हो अथवा वह आध्यात्मिक विज्ञान हो परन्तु ओ३म् रूपी धागे से बेटा! वह पिरोया हुआ होता है। तो ऋषि कहते है हे ऋषिवरों! इसीलिए मैंने तो यह जाना है, क्या यह जितना जगत है, जितना ब्रह्माण्ड है जितना इसमें प्राणीमात्र है, मानो ये सब मानो ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। यह एक प्रकार का जो ब्रह्माण्ड है, यह माला के रूप में परणित हो रहा है, और इसमें ओ३म् रूपी जो धागा है, वह पिरोया हुआ है, इसलिए इसको हमारे यहाँ माला पाठ कहा जाता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऋषिवरों की सन्तुष्टि हो रही थी, उन्होंने कहा कि महाराज! प्रतीत तो ऐसा ही होता है, कि माला पाठ, इसी को कहा जाएगा। परन्तु इसका अभिप्राय अब ऋषि जी कहते है, शौनक जी ने कहा कि महाराज! क्या हम एक ही पाठ को, हम माला पाठ कहते है क्योंकि जैसे हमारे मधु पाठ है, और आरण्य पाठ है, कृतिकि पाठ है, और देखो, जैसे जटा पाठ और घन पाठ है, परन्तु इनमें भी ओ३म् का उच्चारण किया जाता है। तो ऋषि कहते है कि माला पाठ का अभिप्राय यह है, कि

जैसे माला, जैसे माला को रचन्त किया जाता है, माला को कृतियों में किया जाता है, उसकी प्रतिभा को जाना जाता है, मानो उसी प्रकार जब हम जटा पाठ को भान्ति, जटा पाठ की जड़ की भान्ति जान लेते है। तो उनमें उच्चारण करने में भेदन हो जाता है। तो भेदन होने के नाते उसको माला पाठ कहा जाता है। क्योंकि माला पाठ को हम भेदन के कारण, करने लगते हैं, किसी विशेष पठन पाठन की जो प्रक्रियाएं है, उनमें नाना प्रकार के भेदन है, उन भेदनों को, हमने भिन्न भिन्न रूपों से उनका निरूपण किया है। इसलिए मानो एक को विशेष नहीं कहा जा सकता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! महर्षि भृगुजी ने कहा, अरे, भोले ऋषिवरों! क्या तुम्हारी सन्तुष्टि हुई? तो उन्होंने कहा कि महाराज! इसके ऊपर तो हम विचार विनिमय करेंगे। परन्तु यहाँ नहीं करेंगे, तो हम अपने आश्रमों में जा करके, विचार विनिमय करेंगे। अनुसंधान करेंगे, हम उनकी वार्त्ताओं को, हमने श्रवण कर लिया है, और आत्मा ने उसको ग्रहण कर लिया है। परन्तु देखो, उससे हमारी कुछ सन्तुष्टि हुई है।

वेद का पथिक

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ जो ब्रह्म विचारक होते है, परन्तु, वह वेद के ऊपर महा अनुसन्धान करते है, और अपनी प्रवृत्तियों पर अनुसन्धान करना है, यही नही कि वेद के अक्षरों पर हमे अनुसन्धान करना है, परन्तु देखो, जो वेद की हमें प्रतिभा आज्ञा दे रही है, उसे हम अपने हृदय में, अपनी मानवता में, अपनी अन्तरात्मा में धारण करना है, और उसके ऊपर हमें अपने जीवन को अग्रणीय बनाना है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! उसी काल में हम वेद के विशेषज्ञ बन सकते है, हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने तो ऐसा कहा है, क्या, आज वेद के अक्षरों को जानने वाला, ब्राह्मण नहीं कहलाता है। मानो जो अक्षरों के जानने वाला होता है, मानो वह तो एक प्रकार की रटन्त विद्या है। परन्तु जो मानव उसके ऊपर अपने जीवन को धारण करता है, और उस मार्ग का पथिक बन जाता है, वह मानव वेद का पथिक कहलाया जाता है। बेटा! तो मेरे प्यारे! ऋषिवर!

आज का हमारा वेदमन्त्र, आज की हमारी यह प्रतिभा क्या कहती चली जा रही थी, आज मुझे बेटा! इतना गम्भीर विषय उच्चारण नहीं करना, वाक यह प्रारम्भ करना है, कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को जानते हुए, हम अपने जीवन को वास्तव में अग्रणीय बनाएं, और महान से महान बनाने का प्रयास करें, क्योंकि आत्मा का ज्ञान ही हमारा ज्ञान है, जैसा मैंने कल के वाक्यों में, तुम्हें प्रगट कराया है, कि आत्मा के प्रकाश से ही, मानव प्रकाशित होता है, आत्मा की ही ज्योति से मानव क्रियाशील हो रहे है। उसी में चेतनित हो रहा है, हमें उस चेतनित को, उस चेतना को जानना है, जिस चेतना के आधार पर बेटा! यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड क्रियाशील हो रहा है।

वास्तविक पद्धति

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेदमन्त्र क्या उच्चारण कर रहे थे, वेद वाक बेटा! नाना प्रकार की उसकी प्रक्रियाएं, और नाना प्रकार की पद्धतियाँ होती है। जिनके जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त, अनुदात्त नाना प्रकार के वेदमन्त्रों का पठन पाठन नाना प्रकार से किया जाता है, आज हम उस पद्धतियों को अपनाने का प्रयास करें, पद्धति उसे कहा जाता है। जिस पद्धति में बेटा! वृद्धपन नहीं आता। सदैव नवीनतव रहता है, इसलिए वेद का जो ज्ञान है, पवित्र ज्ञान है, बेटा! वह किसी भी काल में उसमें वृद्धपन नहीं आता, सदैव नवीनवाद रहता है, नवीनता रहती है। इसमें सदैव बेटा! पवित्रवाद ही वाद रहता है। उसमें बेटा! देखो, घृणा नहीं होती है उसमें उल्लास हुआ करता है। बेटा! तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का वाक हमारा क्या कह रहा था हम वास्तविक पद्धति को अपनाने का प्रयास करें।

पदार्थों का विभाजन

बेटा! एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली जा रही है, कि मैंने बहुत पूर्व काल में प्रकट कराया था, आज भी मुझे स्मरण आती चली जा रही है। एक वार्त्ता, क्योंकि आत्मा का विषय, आत्मा की चर्चा प्रारम्भ हो रही थी। मानव को

विचार विनिमय करना है, कि आज हमें आत्मा को जानने के लिए कितना प्रयत्न करना है, कितना संघर्ष करना है, कितना अनुसंधान करना है, क्योंकि संसार में यदि हम वास्तविक रूपों से विचार विनिमय करते है, तो प्रत्येक वस्तु हमे अनुसंधान के लिए प्रेरित करती रहती है। आज हम किस किस वस्तु का अनुसंधान करें, एक मानव की, मुनिवरों! नेत्रों की दृष्टि जाती है, नेत्रों की दृष्टि किसी पदार्थ पर दृष्टिपात करती है और उस पदार्थ का दृष्टि जाते ही विभाजन हो जाता है। परन्तु वह विभाजन किस प्रक्रिया से हुआ है? किस प्रकार हुआ है? हमें, देखो, उसके ऊपर भी अनुसन्धान करना है, हमारी वाणी में कितने प्रकार की वाणी है, कितना प्रकार है इनमें, कहीं राष्ट्रीय वाणी है, कहीं मानवीय वाणी है, कही आत्मिक वाणी है, कहीं मुनिवरों! देखो, नाना प्रकार की वाणियों पर विवेचन होता रहता है, उनके ऊपर अनुसंधान करना है। अरे, मानव! आज तुझे यदि अनुसंधान करना है, तो सबसे प्रथम अपने मानव जीवन का अनुसंधान करना होगा। क्योंकि मानव जीवन का यदि अनुसंधान नहीं हुआ, मानव जीवन को वैज्ञानिक रूप रेखा, मानव को, अपने मानव जीवन की, वैज्ञानिक रूपरेखा नहीं बनाई, तो बेटा! हमारा जीवन शून्यता को प्राप्त होता रहेगा।

आत्मज्ञता

मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विवेचन देते हुए कहा था, आज का मानव, संसार का वैज्ञानिक बनना चाहता है, सार्वभौम वैज्ञानिक बनना चाहता है, तो अपनी प्रक्रियाओं को जान जाओ, क्योंकि संसार में दो प्रकार की प्रक्रियाएं होती रहती है, एक वह वस्तु है, जिसका विभाजन होता है और एक वह वस्तु है, जो विभाजन कर देती है, बेटा! तो मुनिवरों! देखो, वह वैज्ञानिक रूपों से, जब इसके ऊपर दृष्टिपात करोंगे, अहा देखो, विभाजन किसका होता है? और कौन विभाजन करता है? इसके ऊपर विचार विनिमय करना बहुत अनिवार्य है, तो वेद का आचार्य कहता है, ऋषि कहता है, यहाँ तो महाराजा दिग्ध ने भी कहा है, महर्षि सोमपान इत्यादि आचार्यों ने भी कहा

है क्या विभाजन कौन सी वस्तु का होता है, बेटा! विभाजन सदैव प्राणों का होता रहता है, और विभाजन करने वाला संसार में, यह मनीराम कहलाया जाता है। वह इस मानव शरीर में हो, अथवा सूर्य मण्डल में हो, चन्द्र मण्डल में हो, मङ्गल में हो पृथ्वी के गर्भ में हो, नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों और खनिज पदार्थों में हो, परन्तु इतना विभाजनवाद, विभाजन होता है, वह महर्षि कपिल जी का सिद्धान्त कहता है। परन्तु वह महर्षि काकड़ी आदि देखो, ऋषियों का सिद्धान्त भी यही कहता है, आज मैं बेटा! उन विषयों पर जाना नहीं चाहता हूँ, जो बहुत सूक्ष्म है, परन्तु वाक यह उच्चारण करना था, कि आत्मा को जानना, हमारे लिए बहुत अनिवार्य है। क्योंकि आत्मा की यदि क्षुधा हमारी पीड़ीत रही, तो बेटा! हमारा जीवन कुछ नहीं कहलाएगा। एक मानव प्रातः काल से, सायंकाल तक अपने उदर की पूर्ति के लिए, विचार विनिमय करता रहता है, और अपने उदर की पूर्ति के लिए बेटा! प्रयत्नशील रहता है। परन्तु यदि उसने अपनी आत्मा की पिपासा के लिए, आत्मिक देखो, क्षुधा को शान्त करने का प्रयत्न नहीं किया, तो बेटा! परम शान्ति मानव को प्राप्त हो ही नहीं सकती। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कह रहा था, कि हमें आत्मा को जानना चाहिए, विचार विनिमय यह करना है, कि आत्मा है क्या? आत्मा किसे कहते है? आत्मा किसी भी काल में नष्ट नहीं होता यह उसको, आत्मा किसी काल में वृद्धपन को भी प्राप्त नहीं होता।

प्रजापति द्वारा आत्मा का ज्ञान

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वेद का विषय क्या कह रहा था, मुझे एक वार्ता स्मरण आती चली जा रही थी, आज के इस वाक में एक समय बेटा! महाराजा प्रजापति के यहाँ से घोष हुआ, और उस घोष में यह हुआ, कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ। तो मुनिवरों! जब आत्मा के लिए उसमें देखो, घोषणा हुई, यह घोष हुआ, तो यह घोष मुनिवरों! दैत्यों और देवताओं दोनों ने ही श्रवण किया, जब दैत्यों ने श्रवण किया, दैत्यों ने अपनी सभा की

और सभा में बेटा! विरोचन को निमन्त्रित किया और विरोचन को सभापति बना करके देखो, सभी दैत्यों ने कहा कि महाराज! आपको देखो, महाराजा प्रजापति के यहाँ से घोष हुआ है, और यह घोषणा, उन्होंने कि मैं आत्मा का ज्ञान करा देता हूँ। आज जैसा शुभ अवसर किसी भी काल में प्राप्त नहीं होगा भगवन! क्योंकि जहाँ एक इस प्रकार की घोषणा आत्मा के ज्ञान के ऊपर होती है महाराज विरोचन ने कहा बहुत सुन्दर तो महाराज विरोचन को बेटा! देखो, दैत्यों ने कहा कि महाराज! आप यहाँ से अपना प्रस्थान कीजिए और प्रजापति के यहाँ अपनी वार्ता और अपनी आत्मा का ज्ञान ले करके हमें ज्ञान कराईए।

देव और दैत्य प्रजापति की शरण में

तो मुनिवरों! वह विरोचन ने अपने स्थान को त्याग दिया, अब मुनिवरों! देखो, देवताओं की सभा हुई देवताओं की सभा में, मुनिवरों! देखो, महाराज इन्द्र ने देखो, महाराजा को सभापति बनाया तो देवताओं ने नतमष्तिस्क हो करके कहा कि महाराजा! प्रजापति के यहाँ से एक घोषणा हुई है, घोष हुआ है, कि आप जाईएं और देखो, प्रजापति के यहाँ से आत्मा का ज्ञान ले करके हमें आत्मा का ज्ञान कराईए। उस समय बेटा! महाराज इन्द्र ने कहा बहुत सुन्दर तो मुनिवरों! देखो, एक स्थान से एक दैत्यराज विरोचन का प्रस्थान हुआ और द्वितीय स्थान से बेटा! देखो, देवताओं के धिराज इन्द्र का प्रस्थान, अपने आसन पर हुआ। तो मुनिवरों! भ्रमण करते हुए, भयंकर वन में जा करके दोनों का मिलान हुआ। दोनों का परिचय हुआ, परिचय होते ही बेटा! एक गुरु के शिष्य बनने के लिए उन्होंने अपना आगमन किया, तो भ्रमण करते हुए प्रजापति आश्रम में जा पहुंचे महाराजा प्रजापति ने बेटा! उनका सुन्दर स्वागत किया आसन दिया विराजमान हो गएं, परन्तु वह भयंकर वन से तीन तीन समिधा ले करके आए थे तो मुनिवरों! देखो, गुरु के चरणों में तीन तीन समिधा को एकत्रित किया और यह कहा कि महाराज! हमने एक घोष आपके यहाँ से श्रवण किया है, कि आप आत्मा का ज्ञान कराते है, हमे आत्मा का ज्ञान कराईए।

उस समय बेटा! महाराजा प्रजापति ने कहा, बहुत सुन्दर, यह मेरी घोषणा हुई थी, आत्मा का ज्ञान अवश्य दूंगा। परन्तु मेरे आश्रम का यह नियम है, क्या तुम बत्तीस बत्तीस वर्ष तक, मेरे यहाँ ब्रह्मचर्य का पालन करो, और तपस्वी बनो।

ब्रह्मचर्य की मीमांसा

तो मुनिवरों! देखो, दोनों ने इस वार्ता को स्वीकार कर लिया, क्योंकि गुरु का वाक शिरोमणी था, तो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचर्य के व्रत को धारण करके, दोनों आश्रम में विराजमान हो गएं और परमात्मा का चिन्तन करने लगे। ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुए ब्रह्मचर्य में रमण करने लगे मैंने बेटा! ब्रह्मचर्य की मीमांसा करते हुए कहा है, पूर्व काल में ब्रह्मचारी किसे कहते है? जिसकी प्रवृत्तियाएं बेटा! देखो, मानसिक प्रवृतियाएं ब्रह्म में विचरण करने लगती है उसको ब्रह्मचारी कहते है। तो मुनिवरों! देखो, दोनों ब्रह्मचर्य का व्रत ले करके, चिन्तन करने लगे प्रभु का चिन्तन चलता रहा, अपनी अपनी नित्य क्रियाओं से नित्यप्रति निवृत्त होते और क्रियाओं से निवृत्त हो करके, ब्रह्म का विचार चलता और प्रभु का चिन्तन और मुनिवरों! नाना प्रकार की मानसिक सुन्दर कल्पनापएं चला करती थी।

शरीर ही आत्मा

इसी प्रकार बेटा! समय आया, बत्तीस वर्ष समाप्त हो गएं, बत्तीस वर्ष के पश्चात दोनों जिज्ञासु प्रजापति के चरणों में ओत प्रोत हो गएं। उन्होंने कहा प्रभु! हमें आत्मा का ज्ञान कराईए, महाराजा प्रजापति ने कहा अरे, इन्द्र! हे विरोचन! यह जो मानव का शरीर तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, इसी को हमारे यहाँ आत्मा स्वीकार किया गया है। इसी को आत्मा जानों, और इसी का पालन पोषण और इसी की रक्षा करो। तो मुनिवरों! देखो, विरोचन और इन्द्र ने, दोनों ने प्रजापति के आसन को त्याग दिया और भयंकर वन में जा पहुंचे, महाराजा विरोचन तो बेटा! देखो, दैत्यों की सभा में जा पहुंचे, और इन्द्र ने भयंकर वन में जा करके यह विचारा, कि जब मैं देवताओं के समक्ष जाऊंगा, और जब वह प्रश्न करेंगे, कि आत्मा क्या है? तो मैं जब शरीर

को आत्मा कहूँगा, तो वह मुझे वह नाना प्रकार के लोग प्रश्न करेंगे, तो उनका क्या उत्तर दूंगा, क्योंकि यह शरीर तो क्षण भृंगुर है, और इसका कोई भी अङ्ग भङ्ग हो जाता है, परन्तु मानव शरीर जीवित रहता है, नेत्र नष्ट हो जाते है, परन्तु मानव शरीर जीवित रहता है। अहा! देखो, जीवन तो इसमें कोई और ही पदार्थ है, और ही वस्तु है, यह शरीर मुझे आत्मा प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यह शरीर तो केवल मानो कार्य करने के लिए है, आज मिला हुआ है, इसी के लिए मिला प्राप्त किया गया है। तो इसलिए मुझे यह प्रतीत होता है कि यह शरीर आत्मा किसी काल में हो ही नही सकता, क्योंकि शरीर का कोई भी अङ्ग नष्ट हो जाता है। परन्तु मानव जीवन क्रियाशील रहता है। अरे, क्रिया देने वाला तो कोई और ही वस्तु है, इससे मुझे यह प्रतीत होता है, क्या यह शरीर आत्मा नहीं है।

तो बेटा! देखो, महाराजा इन्द्र तीन समिधा ले करके बेटा! पुनः उन्होंने अपना प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए महाराजा प्रजापति आश्रम में जा पहुंचे, और प्रजापति से कहा कि महाराज! यह मुझे शरीर आत्मा प्रतीत नहीं हो रहा है, क्योंकि यह शरीर तो क्षणभंगुर है, और शरीर का कोई भी अङ्ग नष्ट हो जाता है, परन्तु जीवन ज्यों का त्यों रहता है। जीवन में किसी प्रकार की अपंगता नहीं आती है, इससे मुझे यह प्रतीत होता है भगवन! आत्मा कोई और वस्तु है। महाराजा प्रजापति ने कहा अरे, इन्द्र! यह तुम्हारा वाक यथार्थ है, परन्तु मेरे आश्रम का नियम है, क्या तुम बत्तीस वर्ष तक पुनः तपस्या करो। मुनिवरों! उन्होंने बत्तीस वर्ष तक पुनः तपस्वी बने और बत्तीस वर्ष तक, ब्रह्म का चिन्तन किया बत्तीस वर्ष बेटा! ऐसे समाप्त हो गएं, ब्रह्म के चिन्तन में जैसे एक मानव स्वप्नवत को प्राप्त हो जाता है। वह समय समाप्त हुआ, तो मुनिवरों! वह पुनः प्रजापति के पास पहुंचे और प्रजापति से कहा हे प्रजापते! आप मुझे निर्णय कराईए की आत्मा क्या है, उन्होंने कहा कि हे इन्द्र! यह जो जिस अवस्था में हम स्वप्न को प्राप्त होते है, यह जो स्वप्न अवस्था है, इसी को आत्मा कहते है। इसी का तुम चिन्तन करो, तो मुनिवरों! देखो, महाराजा इन्द्र ने पुनः

आसन को त्याग दिया, भयंकर वन में जा पहुंचे चिन्तन प्रारम्भ होने लगा और यह विचार आया कि मानव जब स्वप्नवत को प्राप्त होता है अहा.. ......शेष अनुपलब्ध।

14 १४ ०९ १९६९ नम्रता में जीवन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व भान्ति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे यह भी प्रतीत हो गया होगा कि जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर, वेदवाणी का वर्णन होता रहता है। मनोहरता में परणित किया गया है, जिसके ऊपर प्रायः मानव को विचार विनिमय करने की आवश्यकता रहती है, क्योंकि वेदों में अनुपम ज्ञान है, उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा है, जिसको जान लेने के पश्चात मानव का जीवन अमृत बन जाता है। प्रायः मानव को अपने जीवन को अमृत बनाना ही है, क्योंकि संसार में जब मानव आता है उस परमपिता परमात्मा के ब्रह्माण्ड में उसकी मनोहर रचना को विचारना उसके लिए बहुत अनिवार्य होता है। क्योंकि प्रायः मानव मानवतव को ही विचार विनिमय करता है, और विचारों के क्षेत्र में उस मानव की प्रतिभा उज्ज्वल बना करती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वेदमन्त्र क्या कह रहा था वेद कह रहा है, कि मनवंचतम् प्रमहे असवन्तः मा नाः मानो वह दो ही वस्तु हैं संसार में, जैसा मैंने इससे पूर्व काल में भी प्रगट किया है, संसार में कोई और तृतीय वस्तु प्राप्त नहीं होती। क्योंकि वेदों में उस परमपिता परमात्मा की अनुपम ज्ञान और विज्ञान का वर्णन आता रहता है। परन्तु जहाँ ज्ञान और विज्ञान दोनों ही एकतव है, वहाँ मानवतव का भी एक सुन्दरतव विराजमान रहता है। जहाँ वेद के प्रकाश को अपनाने लगते हैं, तो मानव का अन्तःकरण प्रकाशमान हो जाता है, आत्मा पर उसका जीवन निर्भय हो जाता है। क्योंकि मानव को सबसे प्रथम अपने आत्मबल को विचारना है अपना आत्मा की उन्नति करना है, क्योंकि संसार में आना, उसके लिए आत्मतव को जानने का ही एकोकी कार्य रह जाता है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं कि आत्मा में ही उस

परमपिता परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान है, परन्तु यहाँ नाना प्रकार की प्रतिभाओं में, मानव के जीवन की प्रतिभा विराजमान होने लगती है।

प्रभु की प्रतिभा

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आओ, आज हम उस अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते चले जाएं, जो प्रभु हमारे जीवन में ओत प्रोत है, हमारे जीवन का सदैव साथी बना हुआ है। क्योंकि प्रायः मानव यह उच्चारण करता चला आया है, कि वास्तव में प्रभु की प्रतिभा विराजमान हमारे मस्तिष्कों में होती है। हमारे यहां किन्हीं किन्ही ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होने लगता है, परन्तु एक समय बेटा! देखो, कुछ मनोहर ब्रह्मवेत्ता, जिज्ञासु, विचार विनिमय करने लगे। क्या, यह जो परमात्मा ने ब्रह्माण्ड रचाया है, यह क्या है? यह क्यों रच गया? और नाना प्रकार के प्रश्नों को ले करके जब उद्यत हुए, तो विचार विनिमय आया, कि प्रभु ने यह जो जगत रचा है, इसका कोई मूल कारण है। परन्तु वह कारण कौन है? कारण है या इस ब्रह्माण्ड की रचना बिना कारण के हो सकती है, अथवा नहीं हो सकती। तो इसके कारण के लिए विचार विनिमय किया जाएं। तो बेटा! और भी अनुसन्धान किया जाता है, आदि आदि ऋषियों ने नाना विचार विनिमय करते हुए और अनुसन्धान वेत्ताओं ने कुछ ऐसा कहा है, क्या इस ब्रह्माण्ड का आदि मूल कारण, क्या यह आत्मा हो सकता है, या प्रकृति हो सकती है। परन्तु यह प्रकृति तो जड़वत्त है, इसमें क्षमता इतनी नहीं है, परन्तु आगे विचार विनिमय हुआ, कि भई! इसका रचयिता तो कोई है, परन्तु वह कौन है? मूल कारण कौन है? बेटा! उसी को प्रभु चैतन्य देव स्वीकार किया गया है। क्योंकि उस चैतन्यदेव की प्रतिभा ही हमें प्रतीत हो रही है, जहाँ हमारा मानवतव जाता है, जहाँ मानसिक प्रक्रिया जाती है, वहीं वे परमपिता परमात्मा विद्यमान, हमें प्रतीत होने लगता है।

मानव का हृदय

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस परमपिता परमात्मा की महती परमपिता परमात्मा की

महिमा का गुणगान गाते चले जाएं, जो परमात्मा इस संसार में एक महान है, जिसकी रचना से, यह ब्रह्माण्ड क्रियाशील हो रहा है, क्योंकि मानव को नाना प्रकार के वाक्यों को विचार विनिमय करने की सदैव आवश्यकता रहती है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा है, क्या यह मानव इतनी विडम्बना में क्यों विचर रहा है, कोई मानव देखो, पुत्र से दुःखित हो रहा है, मेरी प्यारी माता अपने पुत्रों से व्याकुल हो रही है, अहा! जब पुत्र उत्पन्न हो जाता है, तो आगे उसके कर्तव्य से व्याकुल, विडम्बना से परणित हो जाती है। क्या, इसी प्रकार क्या, मुनिवरों! गुरु के कुल में शिक्षार्थी जाता है, उस समय यदि शिक्षार्थी सुन्दर हो, तो वह आचार्य प्रसन्न है, यदि शिक्षार्थी का बुद्धि कुछ उन्नत नहीं हो, तो वह आचार्य दुःखित हो रहा है, यह सब कुछ क्या है? उस विडम्बना में पंहुचने के पश्चात, मानव को विचार विनिमय करना होता है। यह क्या है? क्या मेरी प्यारी माता क्यों दुःखित हो रही है? क्यों विडम्बना में पनप रही है? परन्तु यदि वह विडम्बना भी प्रायः पूर्ण हो जाती है, उसके पश्चात भी उसे विडम्बना रहती है, आकाक्षांए रहती है, आचार्य को आकांक्षा, शिष्य को आकांक्षा, भिन्न भिन्न प्रकार के वाक्, जब मानव के समीप आने लगते हैं, तो यह विचार आता है, क्या, यह जो आकाक्षांए, विडम्बनाएं हैं, यह क्यों हैं? क्योंकि देखो, उनका जो मनस्तव है, उस मनस्तव के अनुकूल कार्य नहीं होता। जब मनस्तव के अनुकूल कार्य नहीं होता, तो मुनिवरों! उनके द्वारा, स्वाभाविक, विडम्बना उत्पन्न हो जाती है, उस विडम्बना में पंहुचने के पश्चात, मानव का हृदय दुःखित होने लगता है। मानव की अनुपम, जो देन है, मानो देखो, वह भी गधेले में पंहुच जाती है। परन्तु आगे विचार विनिमय होता है, क्या यह सब कुछ क्या है?

तृष्णा का गर्भ

ऋषियों ने कहा है, क्या जब हम महर्षि कपिल जी के सिद्धान्त को विचारते हैं, जो कपिल जी ने कहा है, कि मानव का निर्माण, जब मानव का निर्माण होता है तो दो वस्तुएं मानव के जीवन में मुख्य होती हैं, जिनको हम

मुनिवरों! देखो, कामनाएं कहते हैं, छाया कहते हैं, अहा! जिसको हम तृष्णा भी कहते हैं, तृष्णा के गर्भ में, बेटा! मान और अपमान दोनों विराजामन होते हैं। क्योंकि तृष्णा को गर्भ में मान, अपमान होते हैं, मान और अपमान, मानो यदि मानव का, आचार्य का, शिक्षार्थी सुन्दर है, महान है, परन्तु योग्य है सुयोग्य होता हुआ, वह अपने कार्य को करता चला जाता है। तो गुरु के उस महान तृष्णा में मानो देखो, उसको हम मान कहते हैं, वह मान होता है, वह तृष्णा के गर्भ में विराजमान होता है, यदि शिक्षार्थी सुन्दर नहीं है, वह सुयोग्य नहीं है, मानो देखो, वह उदण्ड है, चञ्चल है, तो आचार्य दुःखित होता है, तो मानो माता, पिता भी दुःखित होते हैं। क्यों होते हैं, क्योंकि उसके गर्भ में, तृष्णा के गर्भ में अपमान है। बेटा! उसका अपमान होता है, तो मान और अपमान दोनों में ही मनस्तव विराजमान होता है। इस मनस्तव के अनुकूल कार्य न होना ही मानव को विडम्बना है, और मानव विडम्बना में परणित होता चला जाता है।

मान अपमान के त्याग से उन्नति

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते हुए, यह कहा करते हैं, कि मान अपमान दोनों को ही त्याग दो। यदि कोई इस मानो संसार में जीवन को उन्नत बनाना चाहता है, पवित्र बनाना चाहता है, महान बनाना चाहता है, तो मान और अपमान को, दोनों को ही त्यागना होगा। क्योंकि यदि दोनों को नहीं त्यागा जाएगा, तो जीवन किसी काल में उन्नत बन ही नहीं सकता, उसी मानव का जीवन सौभाग्यशाली है, बेटा! जिसके द्वारा मान अपमान की तरंगे नहीं होती, जिसका मान अपमान से जीवन उपराम होता है, मानो वह ऊँचा होता है, प्रबल होता है। मुझे स्मरण है, बेटा! यहाँ नाना प्रकार की वार्त्ताएं, नाना वाक जब् स्मरण आने लगते हैं, तो हृदय गद् गद् होने लगता है। बेटा! यहाँ मान अपमान दोनों ही मानव

को मोहित बना देते हैं। उज्ज्वल बना देते हैं।

वशिष्ठ आश्रम में राजा सुनीति

एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली गई। बेटा! एक समय महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज बड़े आनन्द पूर्वक विराजमान थे। परन्तु वह महाराज विश्वामित्र एक समय अपनी सेना के सहित बेटा! भ्रमण कर रहे थे, भ्रमण करते हुए आनन्द से भ्रमण कर रहे थे, परन्तु सांयकाल हो गया, अन्धकार छा गया। जब भयंकर वन में जहाँ माता अरूण्धति और वशिष्ठ मुनि दोनों विराजमान थे वह विश्वामित्र स्वयं पंहुचे, उन्होंने कहा महाराज! ऋषिवर अन्धकर छा गया है। हम विश्राम करना चाहते हैं, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर । उन्होंने कहा महाराज! हमारे लिए क्या, भोजन कैसे प्राप्त हो सकता है? उन्होंने कहा सब कुछ प्राप्त हो जाएगा। तो मुनिवरों! वह स्थिर हो गएं, भयंकर वन में सेना सहित महाराज विश्वामित्र स्थिर हो गएं। अहा! मुनिवरों! महाराजा वशिष्ठ मुनि महाराज ने कामधेनु गऊ से कहा हे कामधेनु! तुझे नाना प्रकार के पदार्थों को पान कराना है। तो कहते हैं मुनिवरों! कि वह तो कामधेनु थी दूध देती रही अहा! मुनिवरों! देखो, उस संसार की जो कल्पना होती है, वह मानसिक कल्पना भी होती है, बेटा! मानसिक सन्तुलन भी होते हैं, महाराज वशिष्ठ मुनि महाराज का यह सङ्कल्प था। क्या, राजा विश्वामित्र की सर्वश सेना तृप्त हो जानी चाहिए। बेटा! वह ऋषि का सङ्कल्प था, क्योंकि मानव का सङ्कल्प, जितना परिपक्व होता है, उतनी उसमें उज्ज्वलता होती है, परन्तु मानसिक सङ्कल्प को तपाने की आवश्यकता होती है, वह तपाया जाता है।

विश्वामित्र को कामधेनु की इच्छा

बेटा! उसके तपाने का प्रकार क्या है? मैं उच्चारण करूंगा, परन्तु प्रथम वाक यह प्रारम्भ कर रहा था कि हम क्या, कामधेनु गऊ दूध देती रही। विश्वामित्र की सेना क्या मानसिक सङ्कल्प और दुग्ध के आचमन से बेटा! सर्वत्र सेना तृप्त होती चली गई। जब तृप्त होती चली गई, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह तृप्त हो गई, अहा! विश्वामित्र ने, रात्रि काल

में यह विचारा, जब विश्राम करने लगे, अपने सेनापतियों को एकत्रित करके, महाराज विश्वामित्र ने कहा भई! इसके द्वारा, वशिष्ठ मुनि के द्वारा जो यह कामधेनु है, यह तो राष्ट्र में हो जाएं, तो बड़ा ही सुन्दर हो, अब हमें क्या करना है? इच्छा तो ऐसी कर रही है, कि ऋषि की कामधेनु को अपने आश्रम में प्रविष्ट कराना चाहिए, परन्तु सेनापतियों ने वाक्यों को स्वीकार कर लिया।

विश्वामित्र का सङ्कल्प

बेटा! प्रातःकाल हुआ, प्रातः काल में महाराज विश्वामित्र ने वशिष्ठ जी से कहा कि हे महाराज! हमारी ऐसी इच्छा है क्या हे ब्राह्मण! यह जो तुम्हारी कामधेनु है, इसे हमें अर्पित करा दीजिए। हमारी इच्छा है, कि हम अपने राष्ट्र, गृह में प्रविष्ट कराना चाहते हैं। महाराजा वशिष्ठ मुनि ने कहा भई! महाराज! इन्द्र ने अर्पित की थी, तो मेरे प्यारे! जब यह वार्ता प्रगट होती रही, परन्तु दोनों का विवाद हो गया, विवाद होने का परिणाम यह हुआ, कि दोनों का संघर्ष प्रारम्भ होने लगा, बेटा! जब दोनों का संघर्ष प्रारम्भ हुआ, उस संघर्ष में क्या हुआ, क्या, वह कामधेनु को, महाराज विश्वामित्र को देखो, वह आगे अश्वत करते हुए, जब वह भ्रमण करने लगे, महाराज वशिष्ठ ने कहा हे कामधेनु! मैं तुझे आज्ञा नहीं दे रहा हूँ, कि तुम राजा के गृह में प्रविष्ट हो जाओ। परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा हो, तुम स्वयं जा सकती हो, तुम स्वतन्त्र हो। क्योंकि किसी के ऊपर बन्धन, किसी प्रकार का मेरे यहाँ नही है। जब यह वाक महाराज वशिष्ठ ने प्रगट किया, कामधेनु ने उसी समय अपना एक सिंहनी का स्वरूप धारण कर लिया। वह महाराज विश्वामित्र की सेना से संग्राम होने लगा, कहा जाता है, बेटा! उस कामधेनु ने नाना उसके युवकों को, बेटा! पृथ्वी में अर्पित कर दिया और वह कामधेनु की विजय हो गई, विजय हो जाने के पश्चात वशिष्ठ जी के आश्रम में प्रविष्ट हो गई, महाराज विश्वामित्र को सङ्कल्प आ गया, कि ऐसी तपस्या करनी चाहिए, मानो जिसकी सहायता करने के लिए यह पशु भी हुआ करते हैं। देखो, क्या कामधेनु वशिष्ठ जी की आज्ञा का पालन कर रही है।

परन्तु मुझे भी इस प्रकार की तपस्या करनी चाहिए, पशु और पक्षी भी मेरी आज्ञा का पालन करने वाले हों।

गायत्री का जप

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! ऐसा श्रवण किया गया है, क्या उन्होंने मन ही मन में यह सङ्कल्प धारण कर लिया और धारण करते हुए, मुनिवरों! देखो, उन्होंने गायत्रियों का पठन पाठन किया, गायत्रियों का अध्ययन किया, गायत्रियों को, बेटा! उन्होंने लाखों गायत्रियों का पाठ करने के पश्चात, जब वह तपने लगे, तपस्या में पारंगत हो गएं। एक समय बेटा! उसके मन में सङ्कल्प आया, कि मैं अब वशिष्ठ जी के आश्रम में पंहुचूंगा, परन्तु उनके आश्रम में जा करके, मैं अपनी वार्त्ताओं को प्रगट करूंगा। अब तो मैं ऋषि बनने के लिए जा रहा हूँ।

राजर्षि विश्वामित्र

मुनिवरों! वह अस्त्रों शस्त्रों से युक्त होते हुए और अश्व पर सवार हो करके बेटा! वह भ्रमण करते हुए भ्रमण करते हुए वह आश्रम में आ पंहुचे, आश्रम में आने के पश्चात, मुनिवरों! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि ने जब विश्वामित्र को दृष्टिपात किया। उन्होंने कहा आईए, राजर्षि! आईए, पधारिए । परन्तु राजर्षि उच्चारण करते ही अहा! उनके क्रोध की कोई सीमा न रही, उसने कहा अरे, ब्राह्मण! क्या तुझे यह अभिमान है, क्या मैं बाह्मण हूँ? ऋषि हूँ, तपा हुआ हूँ, मानो देखो, मैं भी एक उज्ज्वल हूँ, तपा हुआ हूँ, परन्तु तुमहें मैं नष्ट भ्रष्ट कर सकता हूँ, अहा! ऋषि शान्त मुद्रा से, उनके वाक्यों को सहन करते रहे, परन्तु उनका जीवन तो मान अपमान से उपराम था। मान, अपमान के आङ्गन में नही था, क्योंकि उपराम होने के नाते, वह कोई वाक उच्चारण न किया कहते है, विश्वामित्र ने उनके नाना पुत्रों को नष्ट कर दिया, हनन कर दिया, अस्त्रों शस्त्रों से बेटा! वह भ्रमण करता हुआ, अहा! शान्त मुद्रा से, सब कुछ सहन कर लिया। बेटा! वह विश्वामित्र ने यह विचारा, कि मैं तपस्या में अभी सुन्दर नहीं बना हूँ, बेटा! उन्होंने अपने जीवन को और तपाया, केवल भिक्षा

का अन्न पान करते थे और गायत्री का चिन्तन करते थे, कहते हैं कि करोडों गायत्रियों का चिन्तन करने के पश्चात, बेटा! वह पुनः उस अस्त्रों शस्त्रों से युक्त होते हुए, वह भ्रमण करते हुए बेटा! महर्षि वशिष्ठ मुनि आश्रम आ पंहुचे, और वशिष्ठ जी ने कहा आईए, राजर्षि! आईए, पधारिएँ। अहा! उन्होंने राजर्षि उच्चारण किया, उसी काल में बेटा! उनके क्रोध की सीमा न रही, उनके अपमान की सीमा न रही, उन्होंने यह अपने में अनुग्रत किया, कि मेरा एक अपमान हुआ है, मैं अपमानित हो गया हूँ। उस समय कहा अरे, ब्राह्मण! अरे, वशिष्ठ! तुम्हें लज्जा नहीं आती। तुम अनुचित्त वाक उच्चारण कर रहे हो। क्या, मैं ब्रह्मर्षि नहीं हूँ, मैं इतना तप गया हूँ। उन्होंने कहा कि नहीं तुम मेरी दृष्टि से राजर्षि हो। अन्त में बेटा! उनके नाना पुत्रों को नष्ट किया। जब भी नष्ट किया, परन्तु क्या करें, वह लज्जित न हुए, वशिष्ठ जी, क्योंकि वह उपराम थे, मान, अपमान से मोह, ममता से भी उनका जीवन उपरामता को पंहुच चुका था। उन्होंने सहन किया, और यह कहा बहुत सुन्दर। परन्तु प्रारम्भता में परणित होता चला गया।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र

विश्वामित्र ने विचारा कि पुनः तपूंगा। बेटा! वह पुनः तपस्या करने के लिए जा पंहुचे, और वह तपस्या करते रहे। तपस्या करने के पश्चात, बेटा! जब तृतीय काल में अश्व पर सवार हो करके चले, अस्त्रों शस्त्रों से युक्त होते हुए वह भ्रमण करते, वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वार पर आ पंहुचे, बेटा! उस काल में यह परम्परा थी, यह परिपाटी थी, क्या जिसको वह वशिष्ठ मुनि महाराज ब्रह्मर्षि उच्चारण कर देते थे, वह सर्वोपरि ब्रह्मर्षि बन जाता था। मानो जिसको राजर्षि उच्चारण करते थे, यह वशिष्ठ मुनि महाराज का कार्य था। मुनिवरों! वह जब आए, तृतीय काल भी, उसके पश्चात भी उन्हे राजर्षि कहा। उन्होंने कहा आज यदि मेरा नाम भी तपा हुआ ऋषि है, मैं आज तुम्हारे प्राणों का हनन कर दूंगा। बेटा! पूर्णिमा का दिवस था, पूर्णिमा के दिवस होने के कारण मानो देखो, विश्वामित्र उनके आश्रम में ही, सायं काल का समय था, बेटा! उनके आश्रम

में शान्त मुद्रा को प्राप्त हो गया। शान्त, एकान्त स्थान में विराजमान हो गया। अपने अस्त्रों शस्त्रों से युक्त और यह सङ्कलन धारण कर लिया था। आज मैं वशिष्ठ को नष्ट करूंगा। आज मैं उनके प्राणन्त करूंगा। बेटा! पूर्णिमा का दिवस था, परन्तु पूर्णिमा का चन्द्रमा उदय होने जा रहा था, माता अरूणधति और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज दोनों विराजमान हो गएं। वह प्रशंसा होने लगी। माता अरूणधति ने कहा कि महाराज! आज देखो, पूर्णिमा का चन्द्रमा कितना सम्पन्न कलाओं से परिपक्व है, परिपूर्ण है, यह सम्पन्न, षोडश कलाएं, इसके गर्भ में विराजमान हैं। यह कैसा अदभुत प्रकाश दे रहा है, महर्षि वशिष्ठ बोले हे महारानी अरूणधती! आज देखो, यह प्रकाश तो कुछ भी नहीं है, महाराज विश्वामित्र के आगे, महाराजा विश्वामित्र की तपस्या में प्रकाश है, ओज है, अथवा तेज है, क्योंकि वह चन्द्रमा का प्रकाश, इसकी तपस्या के आगे न होने के तुल्य ही माना गया है।

महारानी अरूणधति ने कहा प्रभु! यह आप क्या उच्चारण कर रहे हैं, आपको को तो नाना वाक उच्चारण करते हैं, अशुद्ध वाक्यों का प्रतिपादन करते हैं, और यह कहा करते हैं, क्या आज मैं इसको नष्ट करूंगा, आपके नाना पुत्रों को नष्ट किया है। उन्होंने कहा देवी! इसका अभिप्राय यह नहीं है, क्या, मैं उसको वह मुझे अशुद्धता उच्चारण करता है, नाना प्रकार, असभ्यता का व्यवहार है, उसका अभिप्राय यह नहीं, कि वह तपस्वी नहीं रहा है। देवी! वह तपस्वी है, परन्तु महान तपस्वी है, इसमें सूक्ष्मता है, तो वह क्या? वह राजर्षि बन करके आता है। मेरे से अस्त्रों शस्त्रों से युक्त हो करके आता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक उन्होंने प्रगट किया, तो विश्वामित्र जो स्थान में विराजमान था उसके उन वाक्यों का श्रवण किया, श्रवण करने के पश्चात, उन्होंने कहा अरे, तू कितना धूर्त है, कितना दुष्ट है, पामर है, मानो देखो, यह कैसा सुन्दरम् ब्रह्मे, यह कैसा उज्ज्वल ऋषि है, जो तू उसे नष्ट करने के लिए विराजमान है, और तेरे तप की प्रसंशा कर रहा है। इतना हानि पंहुचाने के पश्चात भी,

तेरी प्रशंसा कर रहा है। बेटा! अस्त्रों शस्त्रों को त्याग करके, और वह वशिष्ठ मुनि के चरणों में ओत प्रोत हो गएं। ओत प्रोत हो जाने के पश्चात, उस समय वशिष्ठ जी ने कहा आईए, ब्रह्मर्षि महाराज! आईए, पधारिए। उस समय बेटा! जब ब्रह्मर्षि कहा, विश्वामित्र जी बोले कि प्रभु! इससे पूर्व आपने मुझे ब्रह्मर्षि क्यों नही कहा था? उन्होंने कहा अरे, भई! जब तुम क्षत्रिय का स्वरूप धारण करके आते थे, तो मैं तुम्हे ब्रह्मर्षि क्यों उच्चारण करता। क्योंकि ब्रह्मर्षि का अभिप्राय यह है, कि जो ब्रह्म में विचरण करता है, क्योंकि ब्रह्म अस्त्रों शस्त्रों से युक्त नही है, संसार में ब्रह्म नम्र है, विवेकी है, और देखो, मान अपमान से परे है। जो इस प्रकार का बन करके आता है, वही तो ब्रह्मर्षि कहलाया जाता है।

ब्रह्म की गोद

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक्यों का अभिप्राय यह, आज के हमारे, कि मानव का जीवन वही उज्ज्वल होता है, जो मानो मान और अपमान से परे होता है। दूरी होता है, जो मानव जीवन में उज्ज्वलता चाहता है, महानता को चाहता है, वह प्रभु की महिमा का विचार विनिमय करता रहता है। ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए बेटा! उसमें नम्रता का आ जाना बहुत अनिवार्य है। निरभिमानता का आ जाना बहुत अनिवार्य है, क्योंकि परमात्मा को न तो मान ही व्यापता है, न अपमान व्यापता है, एक रस रहने वाला है। इसी प्रकार जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहता है, ब्रह्म की गोद में जाना चाहता है, वह इस संसार से उपरामता को चाहता है। बेटा! वह मान और अपमान दोनों को त्यागता चला जाए। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक यह क्या कहता चला जा रहा है, कि हम प्रभु के आङ्गन में जाने के लिए सदैव अपने जीवन को उन्नत बनाएं। मान, अपमान को हम तृष्णा को त्यागने वाले बनें, क्योंकि तृष्णा के गर्भ में मान और अपमान विराजमान होता है। यह महर्षि कपिल जी ने कहा है, मैं नहीं कहता हूँ, बेटा! आदि ऋषिवर कहते हैं, कपिल जी ने कहा है और भी आदि ऋषियों ने वर्णन किया है इस सम्बन्ध में, परन्तु आज का

हमारा वाक यह उच्चारण करता चला जा रहा है कि हम संसार में अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हैं। राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाएं, मानववाद को ऊँचा बनाएं, विज्ञान को ऊँचा बनाएं, परन्तु देखो, आज मानव विज्ञानवेत्ता बनना चाहता है, वह भी परमाणुवाद में जाना चाहता है, जैसा मैंने कल के वाक्यों में अपने विचार प्रगट किए थे, आज भी मैं उन विचारों में नही जाना चाहता हूँ। क्योंकि यह तो भयंकर एक प्रकार का वन है, मैं उस विचारों को ले करके नहीं चाहता हूँ, जिन विचारों में अधिक गम्भीरता से ... विद्या को पान किया गया है। निगलने वाले वशिष्ठ मुनि महाराज और वमन किए को पान करने वाले भगवान राम जैसे शिष्य इसी प्रकार देखो, राष्ट्रवाद और मानव सिद्धान्त का विधान ऐसा होता है। बेटा! राजा के राष्ट्र में शिक्षार्थी के कुल में मानो आचार्य के कुल में बेटा! मानो देखो, उसकी मानवता ही विराजमान रहती है। उसका चरित्र उसके समीप रहता है।

उन्नत राष्ट्र

मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह मुझे स्मरण आने लगता है कि हम अपने राष्ट्र को मानवता को उन्नत बनाना चाहते हैं, बेटा! तो उन्नत उसी काल में बनता है। जब धर्म उसके समीप होता है, यदि धर्म की रक्षा नहीं होती, चरित्र की रक्षा नहीं होती, मानव कर्तव्यवादी नहीं होता बेटा! वह राष्ट्र आज नही तो कल नष्ट भ्रष्ट हो जाएगा। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है, इस संसार की सिद्धान्त में विचारधारा को अपनाया जाता है, तो यह विचार आता रहता है कि हम राष्ट्र को उन्नत बनाने में कितने सफलता को प्राप्त हो सकते हैं। क्योंकि सबसे प्रथम यहाँ राष्ट्र का निर्माण करने वाले निर्माणवेत्ता भगवान मनु जी हुए हैं, भगवान मनु जी ने कहा है कि राजा के राष्ट्र में देखो, मानव से ले करके देखो, जलचरों तक की रक्षा होनी चाहिए। राजा के राष्ट्र में, जिस राजा के राष्ट्र में धर्म की रक्षा नहीं होती धर्म के साथ में रक्षा नहीं होती उसके लाभ

हानि को विचारा नहीं जाता, बेटा! उस राजा के राष्ट्र में प्रायः हानि हुआ करती है, आदि ऋषिवर कहते हैं आचार्यों जनों ने कहा है। मानवता को विचारधारा में आता है, कि राजा के राष्ट्र मे सबसे प्रथम जो लक्षण है, वह अहिंसा परमोधर्म होना चाहिए । अहिंसा परमोधर्म किसे कहते हैं, राजा के राष्ट्र में बेटा! एक मानव से ले करके और मछली तक, राजा के राष्ट्र में नष्ट नहीं होनी चाहिए। क्योंकि वह प्रत्येक, जो प्रभु ने, जो प्राणी रचा है, वह किसी न किसी लाभ के लिए होता है, मानो उसके श्वासों में, अनुपम गतियों में कोई लाभ होता है, यहाँ प्राणी, एक दुसरे प्राणी का बेटा! रक्षक होता है, भक्षक नहीं होता। आज हम जब विचारने लगते हैं, कि राजा के यहाँ अब्रतो पर ब्रह्मे मानो जब यह विचारा जाता है, कि राजा और मानव क्यों विचारे? क्योंकि जब मानव किसी के प्राणों की रक्षा कर नहीं सकता, तो उसके भी, प्राणों को भी हनन करने का अधिकार नहीं होता है। बेटा! यह प्राण ही इस ब्रह्माण्ड में बेटा! प्रभु की सृष्टि में एक नियम होता है, इसी के गर्भ में धर्म होता है, बेटा! क्योंकि मानव यदि किसी प्राणी को जीवन दे सकें, बेटा! जीवन तो दे नहीं सकता, जीवन को हनन करता रहेगा, तो बेटा! देखो, उस प्राणी का अधिकार नही होता, क्योंकि प्रभु की सृष्टि अनुपम है, जो प्रभु के अधिकार का वाक है, प्रभु ही पूर्ण किया करते हैं।

वेद से प्रकाश

बेटा! आज मैं इस वाक को बहुत दूरी ले जाता चला जा रहा हूँ, वाक्यों का अभिप्राय यह है कि राजा के राष्ट्र में आचार्य के कुल में धर्म और मानवता होनी चाहिए। चरित्रवान होना चाहिए, जिससे बेटा! हम अपने जीवन को और मानवता को उन्नत बनाते चले जाएं। बेटा! मैं अधिक चर्चा तो प्रगट किया नहीं करता हूँ, हमारे वाक्यों का अभिप्राय यह, कि जो मानव प्रभु के आङ्गन में जाना चाहता है, वह मान और अपमान से, उसका जीवन उपराम होना चाहिए, और वह राष्ट्रवाद को उन्नत बनाना चाहता है, वह बेटा! देखो, अहिंसा परमोधर्म और धर्म को अपनाता चला जाए, जैसा भगवान मनु जी ने कहा है,

रक्षार्थी बनता चला जाए, वहाँ मानवतव की रक्षा करता हुआ, और आचार्य कुल में शिक्षार्थी बनता हुआ, आचार्य में रमण करता हुआ, अपने मानवतव को, अपने जीवन को उन्नत बनाता चला जाए। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, वेद हमें क्या देता है, वेद हमें प्रकाश देता है, जीवन देता है, ज्योति देता है, अनुपमता देता है, अहिंसा परमोधर्म देता है, बेटा! देखो, जिसको हम परमधर्म कहते हैं, धर्म की नाना परम्पराएं संक्षेप में तुम्हें परिचय कराई थी। आज मैं उनका उल्लेख, द्वितीय काल में नहीं प्रगट कराने जा रहा हूँ, वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि हम वास्तव में उन्नति शील बनते चले जाएं, उन्नत होते चले जाएं, हमारा जीवन उन्नतिशील बनता चला जाए। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है, क्या हम प्रभु का चिन्तन करते हुए, उस मानवतव की रक्षा करते हुए, धर्म और प्रकृति को विचार विनिमय करते हुए, अपने जीवन को उन्नत बनाते चलें जाएं। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय बेटा! तुमने जान लिया होगा, क्योंकि हमारे वाक्यों का अभिप्राय यह है, कि हम वेद को अपनाते चले जाएं, मानव को प्रकाश में ले जाने वाला है। प्रकाश मानव का जीवन है, क्योंकि प्रकाश के आश्रित मानव का जीवन होता है, जैसे राजा के राष्ट्र में धर्म, धर्म के ऊपर राजा का राष्ट्र होता है, क्योंकि धर्म नहीं होगा, तो राजा का राष्ट्र भी नहीं रहेगा, क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण होता है, वह धर्म की रक्षा करने के लिए हुआ करता है। बेटा! राजा की क्योंकि राजा होता ही है, धर्म की रक्षा करने के लिए और व्यापक जीवन बनाने के लिए, व्यापकवाद राजा के राष्ट्र में होता है।

धर्म की पद्धति

आज मेरी प्यारी माता, जब यह विचार विनिमय करती है कि मेरा पुत्र है, मानो देखो, यह पुत्र तेरा ही नही है, तेरे गर्भस्थल में आते ही राष्ट्रीय सम्पति बन जाती है। राष्ट्रीय देन बन जाती है। हे माता! तेरा तो लालन पालन करना, तेरा तो कर्तव्य हो जाता है। परन्तु आज तू उसे

तेरा पूर्णतव, उस पर अधिकार नहीं होता। हे माता! तू लोरी तो दे सकती है, परन्तु उस बालक के प्राणों को नष्ट नहीं कर सकती, क्यों नहीं कर सकती, क्योंकि तेरा लालन पालन करने में कर्तव्यवाद होता है, और नष्ट करने में तेरा धर्मज्ञ, तेरी धर्म की पद्धति नष्ट होती है। इसीलिए विचार विनिमय करना है, क्योंकि हमें केवल रक्षा, कर्तव्यवाद में परणित होना है, बेटा! मैं इन वाक्यों में विलम्ब नहीं देना चाहता हूँ। केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ, क्या हे मेरी प्यारी माता! तेरे गर्भस्थल में, तेरा बालक, तेरे जरायुज में पनप रहा है, परन्तु जब वह माता तेरे गर्भस्थल से पृथक होता है, उसका नवीन कुटुम्ब बन जाता है, प्रबल बन जाता है, नाना सहपाठी बन जाते हैं, और नाना सम्बन्धी बन जाते हैं, परन्तु उसका जगत एक नवीन बन जाता है। यदि माता वह आचार्य कुल में, जब चला जाता है अहा! वह कहता है, कि उसका नवीन कुटुम्ब बन गया, नवीन कुटुम्ब बन जाता है। परन्तु आगे चल करके, वही ब्रह्मचारी, मुनिवरों! देखो, राष्ट्र का सूक्ष्म सा कर्मचारी बन जाता है। तो वह राष्ट्र में सूक्ष्म सा कर्म करने वाला और भी उसका व्यापक बन गया है। यदि वही माता का पुत्र है, धिराज बन जाता है। राजा बन जाता है, तो बेटा! और व्यापक हृदय हो गया, राष्ट्र उसके लिए पुत्र के तुल्य हो जाता है, रक्षा करना उसका कर्तव्य हो जाता है। धर्म की पद्धति को अपनाने के लिए तत्पर हो जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब मिथ्या को, मिथ्या स्वीकार नहीं करता, कर्तव्य में जा करके, परन्तु दार्शनिक द्वितीय राष्ट्र में जाता है, परन्तु द्वितीय राष्ट्रवेत्ता कहते हैं, तुम्हारी सेना कहा रहती है, परन्तु राजा, उस समय अपनी प्रजा के यथार्थ के लिए, बेटा! रक्षा करने के लिए, वहाँ यथार्थवाद का प्रतिपादन नहीं करता, वह कितनी व्यापकता, उसके हृदय में है। ओत प्रोत हो रही है, बेटा! वही ब्रह्मचारी, यदि बेटा! संन्यासी बन जाता है, तो उसका सर्वत्र ब्रह्माण्ड कुटुम्ब बन जाता है। बेटा! केवल वह एक राष्ट्र के विषय में नही, वह सूक्ष्म प्रजा के विषय में नहीं, वह परमात्मा की सर्वत्र सृष्टि का चिन्तन करता है, वह व्यापकता का चिन्तन करता है,

बेटा! उसका जीवन उन्नत हो जाता है, वह उसका धर्म और मानवता, उसी में विराजमान है। इसी प्रकार बेटा! प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को अपने जीवन को उन्नत बनाना है, पवित्र बनाना है, व्यापकता को लाना है।

सत्यवाद से मानव

यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो मैं शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट कर सकूंगा। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह क्या, हम प्रभु का चिन्तन करते हुए, अपनी मानवता को विचार विनिमय करते हुए, अपने जीवन को उन्नत बनाते चले जाएं। अब मुझे समय मिलेगा, तो बेटा! शेष चर्चाएँ, गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में कल प्रगट कर सकूंगा। आज का वाक यह समाप्त होने गया, आज के वाक्यों का अभिप्राय क्या है? धर्म, मानवता, राष्ट्रवाद, बेटा! देखो, और व्यापकता, मानव के जीवन का मुख्य लक्षण होता है, वैदिकता को अपनाने से मानव सुदृढ़ रहता है, यथार्थ उच्चारण करने में बेटा! अउन्नति को चला जाए। हानि हो जाए। परन्तु अपने सत्यवाद को मानव को किसी काल में भी त्यागता नहीं चाहिए। जैसा महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चा आती है, मैंने अभी अभी उनका उल्लेखनीय विचार प्रगट किए। मुनिवरों! तपस्या प्रबल होती है, कल, मैं तप और ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपना विचार दे सकूंगा आज का वाक यह समाप्त होता गया, आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि धर्म और मानवता को उन्नत बनाना है, और परमात्मा को प्राप्त होने के लिए हमें मान अपमान से उपराम होना है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब समय मिलेगा, तो बेटा! शेष चर्चाएं हम कल प्रगट करेंगे, आज का वाक यह समाप्त होता गया, अब वेद का पाठ होगा, इसके पश्चात यह वार्ता समाप्त होने जा रही है

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो भगवन! गुरुदेव! वाक तो बहुत सुन्दर, परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म

पूज्यपाद गुरुदेवः हास्य............ चलो, बेटा! कल समय मिलेगा, तो अधिक चर्चाएं कल प्रगट करेंगे, तो आज का वाक यह समाप्त होता गया, अब शेष चर्चाएं

कल प्रगट करेंगे।

ओ३म् ब्रह्म भविता माणं आ पां चमा रथि सा रणा मा णाहाम्। ओ३म् ग्राहणं दधि गृहिताहं मनो प्रागणं देवं भागा वाचन्नमा दधि ऋषि आ पाञ्चमा देवं भगाहानि। ओ३म् व्रा गृवन्धना प्राची रथाः आ भा ब्रह्मणा गायन्ता मनुज प्रा वसौ देवं आभा हाम्। ओ३म् बह्म गायन्ता मनी प्रजा देवं दधिमा सर्वं भद्राः।

15 १५ ०९ १९६९ चरित्र का स्रोत

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, वह सुन्दर मानवता से सुगठित विचार जो हमारे आचार्यों के निमत हमें प्राप्त हुआ है जैसा हमने कई काल में प्रगट कराते हुए कहा था कि हमारा जीवन हमारी मानवता उस परमपिता परमात्मा से सुगठित रहती है। जो परमपिता परमात्मा ज्ञान और विज्ञान का स्रोत कहा गया है, क्योंकि जितना भी ज्ञान है, अथवा विज्ञान है, वह भौतिकवाद का हो आध्यात्मिकवाद हो, परन्तु वह सब उस परमपिता परमात्मा से ही सुगठित रहता है। क्योंकि परमात्मा वह जो परब्रह्म परमात्मा है, मानो कृत है, जो मानव को जानने के योग्य है। जो मुनिवरों! स्वयं प्रकाश में रमण करने वाला है, उसके राष्ट्र में विचार नहीं होता, आज हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाने के लिए तत्पर हैं। क्योंकि मानव का जीवन जो उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा से सुगठित रहता है। मानव को कुविचार बनाने का अधिकार ही नही हैं, क्योंकि संसार में जो भी मानव कुविचार बनाता है, वह ऐसा उसके जीवन में आता है। वे परमपिता परमात्मा जो चैतन्य स्वरूप है, जो मुनिवरों! देखो, शुद्ध, बुद्ध है, हम उस परमपिता परमात्मा को अपने से दूरी कर देते हैं। यदि परमात्मा को हम अपने से दूरी न करें, तो हमें इस संसार में, तो मुनिवरों! कुविचार लाने का संसार में प्रसंग ही उत्पन्न नहीं होता। परन्तु जब हमारा विचार यह कहता है,

वेद का ऋषि क्या कहा रहा है? वेद के आचार्यों ने बेटा! भिन्न भिन्न समय में नाना प्रकार की विवेचना, इस सम्बन्ध में प्रगट की हैं। आज मैं अधिक विवेचनाओं को तो नही दे पाऊंगा, परन्तु सूक्ष्म सा परिचय कराना चाहता हूँ, कि मानव का जीवन चरित्र से ही स्थूल रूप होता है, जिस मानव के द्वारा बेटा! चरित्र नहीं होता, उसके द्वारा मानवता भी नहीं होती, और जब मानवता नहीं होती, तो बेटा! उस मानव की पशु संज्ञा होती है। पशुवत्त कहलाया गया है।

विचारों से मानव

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे कई काल में प्रगट कराते हुए कहा कि संसार में मानवता की सदैव आवश्यकता रहती है। परन्तु देखो, मानव का निर्माण मानव का निर्माण उसके विचारों से होता है, उसके विचारों में सुगठिता रहती है, और विचार उसके हृदय में स्थित होते हैं, परन्तु हृदय में निर्मलता हो और शुद्धता होनी चाहिए जिससे बेटा! हमें इस संसार सागर में ऊँचे ऊँचे कार्य करने में सफलता को प्राप्त हों, क्योंकि मानव इस संसार में निराशा के लिए उत्पन्न नहीं होता है। वह सदैव मुनिवरों! देखो, आशावादी बनने के लिए आता है, और उसके जीवन में एक उल्लास होता है, कर्म करने की एक वेदना होती है, परन्तु वह कर्म करने की उसमें एक महान सत्ता होनी चाहिए, और उसमें इतनी गति होनी चाहिए, क्या वह मुनिवरों! देखो, उस संसार की प्रतिभा को जानने मे सफलता को प्राप्त हो जाए।

चरित्र की मीमांसा

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे यहाँ बेटा! नाना आचार्यों का जीवन स्मरण आता रहता है, जिनके जीवन में महानता इतनी ओत प्रोत रहती थी, परन्तु जीवन मानव का मुनिवरों! देखो, बिना चरित्र के ऊँचा नहीं बनता। वेद का ऋषि कहता है एक समय बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय आदित्य मुनि जी ने कहा था, वायु मुनि महाराज से, क्या महाराज! वेदं ब्रह्मे सुतानां आपका जो वेदज्ञ प्रकाश है। इसमें मानव के लिए क्या उपदेश

दिया है, उस समय महर्षि वायु जी ने कहा, आदित्य जी से क्या महाराज! वेद का वचन यह कह रहा है कि मानव को संसार में चरित्रवत्त रहना चाहिए। क्योंकि मानव के द्वारा, चरित्र ही एक देन है प्रभु की, जिसमें महान इस संसार सागर से हम पार हो सकते हैं। परन्तु चरित्र की प्रतिभा क्या है? आचार्य ने कहा है, आदित्य जी ने कहा है, कि चरित्र की मीमांसा क्या है? मुनिवरों! यह केवल वायु मुनि महाराज का ही वचन नहीं है, एक समय बेटा! ज्ञानश्रुति ने भी महर्षि रेवक से भी यह कहा था कि चरित्र की मीमांसा क्या है? परन्तु आचार्य ने चरित्र की मीमांसा करते हुए पिप्लाद मुनि के समीप इस प्रकार के प्रश्न आते रहें हैं। हमारे यहाँ परम्परा से ही, बेटा! चरित्र के ऊपर परम्परागत से ही बड़ा ही बल दिया जाता है। परन्तु आज हम केवल वायु मुनि महाराज के ऊपर टिप्पणी तो करना नहीं चाहते, उनके विचारों की पुनरूक्ति करना चाहते हैं। महर्षि वायु जी ने कहा था, कि वास्तव मे तो हम यह विचारते हैं, कि चरित्र की मीमासां क्या है? चरित्र की मीमांसा करते हुए वायु जी ने कहा, हे आदित्य जी! चरित्र की मीमांसा तो सबसे प्रथम तो वही है, आज वही मानव यथार्थ चरित्रवान होता है, जो परमात्मा से अपने से दूरी नहीं करता। क्योंकि जो मानव परमात्मा से अपने को दूरी कर देता है, उसमें नाना प्रकार के अवगुण आ ही जाते हैं, वह दुराचार के उस महान आक्रमण से देखो, स्थिर नहीं होगा क्योंकि उसने परमात्मा जो महान चरित्रवत्त है। जिसके गर्भ में चरित्र समाहित हो जाता है, बेटा! देखो, वह जो परमपिता परमात्मा आनन्दमयी स्रोत है, बेटा! देखो, उसको हम अपने से दूरी करने से, हमारे जीवन में सार्थिकता नहीं आ पाती।

परमात्मा से दूरी से दोष

तो वेद के आचार्यों ने कहा है कि हम परमात्मा को अपने से दूरी कर देते हैं, सबसे प्रथम देखो, मुनिवरों! मानव को अचरित्र होना यही हमें सिद्ध करता है, क्योंकि उससे नाना प्रकार के अवगुण हमारे समीप आ जाते हैं, काम आ जाता है, क्रोध आ जाता है, उसके पश्चात काम,

क्रोध, मद, लोभ, मोह इत्यादि, यह जो नाना प्रकार के अतिता में परणित हो जाते हैं, क्योंकि संसार में बिना मोह के तो मानव का शरीर भी सुगठित नहीं होता। मानव के शरीर का निर्माण भी नहीं हो पाता, परन्तु उसे मोह में सीमावत कहा जाता है। इतना मानव को, जितना वास्तव में आवश्यकता हो, इसको मोह नही, इसको कर्तव्यवाद में परणित कर दिया जाता है। परन्तु जहाँ देखो, अति हो जाती है, अति हो जाना ही मानव की मृत्यु कहा जाना है। क्योंकि किसी भी वस्तु की अति हो जाना, मानव की मृत्यु के समीप पंहुच जाना है। मृत्यु के निकट जाना है, उस मानव को बेटा! मृत्यु ऐसे निगल जाती है, जैसे सांय काल के सूर्य को रात्रि अपने में धारण कर लेती है। इसी प्रकार बेटा! जब हम विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी कोई चरित्र की मीमांसा है, वह केवल इसी में परणित नहीं रहती, केवल हम प्रव्हा सुतं मम ब्रह्मचर्यतव प्रव्हा मुनिवरों! देखो, ब्रह्मचारी उसे कहा जाता है, आदित्य मुनि महाराज के शब्दों में जो मुनिवरों! देखो, ब्रह्मवाचप्रव्हा जो ब्रह्म में विचरण करता रहता है। हम सदैव अपने प्रभु को, अपने समीप लाने का प्रयास करें। यह हमारा सबसे ऊँचा चरित्रवान बनना है, परन्तु जब हम अचरित्रवादी बन जाते हैं, तो परमात्मा को अपने से दूरी कर देते हैं, और जहाँ परमात्मा विमुख हो जाता है, वहाँ मानो कर्तव्य पारायणता नहीं रहती, और जहाँ कर्तव्य परायणता नहीं रहती, वहाँ बेटा! मानव चरित्र की भी सुरक्षा नहीं कर पाता।

वास्तविक भूषण

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने मानवतव को विचार विनिमय करते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। क्योंकि हमारा जीवन चरित्र से सुगठित होना चाहिए, चरित्र ही मानव का वास्तविक भूषण है। मेरे आचार्य परम्परा से एक वाक प्रगट करते चले आयें हैं कि मेरी माता का जो सुन्दर आभूषण होता है, वह उसका चरित्र है, मानव की प्रत्येक इन्द्रियों बेटा! ब्रह्म का प्रवाह और उसके पश्चात उसके चरित्र प्रतिभा उसके निर्माण होने से बेटा! सुगन्धि स्वतः ही उत्पन्न होने लगती है। संसार में

मानव सुगन्धि को उत्पन्न करने के लिए आता है, सुगन्धिवत्त इस संसार को दुर्गन्धिवत्त करने नहीं आता, सुगन्धि देने के लिए आता है, और सुगन्धि संसार में अपने को शोषण करने के लिए आता है। परन्तु जब सुगन्धिवत्त मानव बन जाता है, मानव की सुगन्धि क्या है, मानव की प्रत्येक इन्द्रियों में जब विचार विनिमय करोगे, इन्द्रियों मे क्या है? बेटा! वास्तव में यदि यथार्थ रूप से, उसके द्वार पर जाओगे, तो तुम्हे धर्म प्रतीत होगा, परन्तु यदि भौतिकवाद में जाओगे, तो तुम्हे और कुछ प्रतीत होगा, परन्तु और भी घनिष्टता में जाओगे, तो मल मूत्रों से मुनिवरों! प्रत्येक इन्द्रियों में नाना प्रकार के देखो, नाना कृतियों में अहा! दुर्गन्धिता में परणित रहता है मानव, परन्तु मानव की यह जो दुर्गन्ध है, वह वास्तविक, वह तथ्यवादी दुर्गन्ध नहीं होती। परन्तु वह जो देखो, सुगन्ध देना है, मानव देखो, सुगन्धता में जब मानव अपने विचारों की सुगन्धि देता है। नाना इन्द्रियों को सयंम में बनाता है। विचार देता है, कैसे विचार, सुन्दर विचार, सुगन्धिवत विचार, जैसे मुनिवरों! देखो, सुगन्धि अहा! गृह को पवित्र बना देती है। इसी प्रकार मानव के विचार, मानव का जो शरीर रूपी जो गृह है, इसको स्वतः पवित्र बनाते चले जाते हैं बेटा! ।

गुरुदेव का आश्रम

मुझे स्मरण आता रहता है, जब मुझे ये संसार स्मरण आने लगता है, तो आश्चर्य जनक प्रतीत होने लगता है, मुझे स्मरण है बेटा! वह भी समय स्मरण है, जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के आश्रम में ओत प्रोत होता था, पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा जब मैं परणित हो जाता था, तो मुनिवरों! देखो, एक पंक्ति में शिष्यगण विराजमान रहते, द्वितीय पंक्ति में मेरी पवित्र माताएं, और तृतीय पंक्ति में मार्ग से मृगराज आते, वह भी उसी पंक्ति में विराजमान हो जाते। कैसा सुन्दर समय बेटा! मुझे स्मरण है, मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा प्रभु! यह क्या है? मानो देखो, जो मृगराज है, हिंसक प्राणी है, ये मानव का भक्षण कर जाते हैं। परन्तु आपके चरणो में ओत प्रोत हैं। उस

समय मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने एक वाक कहा था हे पुत्रवत्त! ये तुम्हें प्रतीत है, कि मानव को, जो विचारों में अहिंसा परमोधर्म चरित्र की सुगन्धि आ जाती है, उस समय मानो देखो, यह सब प्राणी भी प्रभावित हो जाता है। वह भी अपने हिंसा को त्याग करके, अहिंसा परमोधर्म में परणित हो जाता है।

ब्रह्म की प्रतिभा

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह समय मुझे स्मरण आता रहता है, परन्तु जहाँ उद्गाता उद्गान गाते रहते थे, मुझे स्मरण है बेटा! महर्षि भारद्वाज आश्रम में जब मुनिवरों! देखो, वह गान गाते थे, मग्नता से आत्मा से, आत्मा परमात्मा की दोनों की सन्धि करते, दोनों के गान का तारतम्य कर देते थे पक्षी गण मौन हो जाते थे राजा का सम्पति पर मोह नही रहता। तो मानव के भी विचार हैं, वह मानव के चरित्र की सुन्दर सुगन्धि है, क्योंकि मानव में चरित्र उस काल में आता है जब कि वह परमात्मा को अपना लेता है। परमात्मा को अपने समीप धारण कर लेता है, बेटा! वह धारण करने का नाम, इसका महान चरित्र बन जाना है। एक मानव राष्ट्रीयवत उच्चारण करने लगता है, राष्ट्रीयवत बनता है। परन्तु राजा को भी यह चाहिए, कि मैं परमात्मा को अपने समष्टि रूपों से प्रविष्ट कर लेना चाहिए। क्योंकि देखो, जब परमात्मा को, अपने में धारण कर लेता है, तो बेटा! वह प्रजा का सेवक, नम्र होता है, क्योंकि संसार में हम यही विचार विनिमय करते है, तो संसार में सबसे नम्र, सबसे महान, वे परमपिता परमात्मा है। सबसे महान सेवक है, यदि टिप्पणी कुछ करना चाहते हैं, कि आज हमें सेवक बनना है, आज हमें स्वामी बनना है, परमात्मा देखो, संसार मे बेटा! देखो, सबसे ऊँचा स्वामी है, और सबसे ही मुनिवरों! देखो, सबसे ऊँचा सेवक भी उसको उच्चारण कर सकते हैं। परन्तु स्वामी और सेवक दोनों ही प्रभु बन करके, बेटा! संसार में जितनी ऊँची प्रतिभा तुम्हें प्रतीत हो रही है, यह प्रकृति चैतन्यवत में तुम्हे दृष्टिपात आ रही हैं। बेटा! चन्द्रमा नाना प्रकार के लोक लोकान्तर है, प्रभु के मण्डल में, बेटा! एक दूसरे

मण्डल से, एक दूसरे मण्डल का मिलान नहीं हो पाता। परन्तु वह क्या है? उस मेरे चैतन्य ब्रह्म की ही तो प्रतिभा है, उस ब्रह्म की ही प्रतिभा हमें प्रतीत हो रही है परन्तु इसीलिए एक दूसरा लोक एक दूसरा लोक दूसरे लोकों से मिलान नहीं कर पाता, यदि एक दूसरा मण्डल, एक दूसरे मण्डल से सुगठित हो जाएं, तो बेटा! देखो, संसार में त्राहि त्राहि हो सकती है। परन्तु देखो, वह हो नहीं पाता, क्यों नहीं हो पा सकता? क्योंकि परमात्मा अनन्तता में परणित रहता है, वह संसार में इतना महान है, क्या उसकी महानता का वर्णन नहीं किया जाता, इसी प्रकार बेटा! जब मानव उसकी महानता में अपने को सुगठित कर देता है, अपने को मुनिवरों! देखो, पिरो देता है, जैसे माला के मनके होते हैं, परन्तु देखो, मनके धागे में पिरोए होते हैं, माला कहलाई जाती है। इसी प्रकार बेटा! जब हम परमपिता परमात्मा को अपने धागे का, सूक्ष्म तार करके, प्रत्येक इन्द्रियाँ उसमें सुगठित हो जाती हैं, मनके सदृश्य तो बेटा! मानव अपने में महान सुन्दर और महान बन जाता है।

चरित्र के लिए राष्ट्र

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं अधिक विवेचना नहीं करने जा रहा हूँ, यहाँ केवल उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि हमें आज राजा को भी विचारना है, क्या तुझे चरित्र को लाना है संसार में, क्योंकि राष्ट्र का जो निर्माण होता है, वह केवल चरित्र को लाने के लिए हुआ करता है, जैसे राष्ट्र का निर्माण मुनिवरों! देखो, दुराचार के लिए नहीं होता, अपने ऐश्वर्य के लिए नहीं होता, राष्ट्र का जो निर्माण होता है, चुनाव होता है, वह केवल देखो, वह संसार के देखो, धर्म पारायण बनाने के लिए हुआ करता है, जब प्रत्येक मेरा प्यारा ऋषि मण्डल, प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या, जब चरित्र में परणित हो जाते हैं, तो बेटा! राजा के राष्ट्र में, तो सुगन्धि उत्पन्न होने लगती है। और उस राजा के राष्ट्र में, जब सुगन्धि आने लगती है, तो बेटा! देखो, दूसरे राष्ट्र में अनुसरण करते हैं, अनुसरण करते हुए मानो देखो, उसके राष्ट्र के विधान को, परम्परागतो से

ही अपनाना प्रारम्भ कर देते हैं। बेटा! इस सम्बन्ध में, मुझे एक वार्ता स्मरण आती चली जा रही है यह मैने कई काल में प्रगट करते हुए भी कहा है आज भी मुझे स्मरण आती चली जा रही है बेटा! ।

राजा रावण को अशान्ति

त्रेता के काल की, त्रेता के काल में जब मुनिवरों! देखो, महाराजा रावण लंका में राज करते थे, तो उनका जीवन वास्तव में बड़ा सुन्दर था, तो मुनिवरों! देखो, उनके राष्ट्र में विज्ञान भी महान था, क्योंकि भौतिकवाद में राजा रावण का राष्ट्र बेटा! बहुत ही पारंगत रहा, मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! देखो, एक समय राजा रावण देखो, किसी विज्ञान की ग्रन्थि थी, परन्तु वह स्पष्ट नहीं हो पा रही थी। जब वह उसमें परणित हो रहे थे तो उसके मस्तिष्क में अशान्ति आ गई, अशान्ति आ जाने के पश्चात, राजा रावण, ने अपने मन्त्रियों से कहा हे मन्त्रीगणों! मैं तो मार्ग मे भ्रमण करने जा रहा हूँ, क्योंकि मेरी आत्मा में शान्ति नहीं हो पा रही है। मैं आत्म शान्ति के लिए अहा! राष्ट्र को त्याग रहा हूँ, आत्म शान्ति प्राप्त करने के लिए तो मुनिवरों! देखो, राजा रावण ने अहा! राष्ट्र को त्याग दिया, मन्त्रियों को अपना राष्ट्र परणित कर दिया, और वह भयंकर वन को भ्रमण करने के लिए उन्होंने प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए, बेटा! वह भयंकर वनों में नाना ऋषि मुनियों के दर्शन करते हुए, वह महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज द्वारा जा पंहुचे। क्योंकि महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज, बेटा! देखो, महर्षि अङ्गिरा ऋषि महाराज के बेटा! एक हजारवें पड़ पौत्र कहलायें जाते थे, बेटा! देखो, महर्षि कुक्कुट मुनि आश्रम में जब वह प्रविष्ट हुए, तो महर्षि कुक्कुट जी ने उनका बड़ा आदर किया, और कहा आईए भगवन! पधारिए, राजा रावण ने उनके चरणों का र्स्पश किया और विराजमान हो गएं, और विराजमान हो करके, विचार विनिमय होने लगा। जब विचार विनिमय होने लगा, तो बेटा! देखो, उनकी तपस्या उनकी मानवीयता से उनके चरित्रवत से देखो, राजा रावण का मन बड़ा ही प्रभावित हुआ, और प्रभावित हो करके राजा रावण ने नम्रता पूर्वक

कहा प्रभु! मेरी ऐसी इच्छा है, कि आप मेरी लंका का भ्रमण कीजिए, उस समय ऋषि ने कहा हे रावण! मुझे इतना समय, मुझे इतना समय आज्ञा नहीं दे रहा है। क्या मैं तुम्हारी लंका भ्रमण कर सकूं। क्योंकि तुम्हारी लंका में जाने का इतना समय नहीं, क्योंकि मैं प्रभु को अपने में संलग्न कराना चाहता हूँ। राजा रावण ने क्योंकि बुद्धिमता होने के नाते, राजा ने उनके नम्र निवेदन करते हुए उनके चरणों की वन्दना की, वन्दना करते हुए उन्होंने कहा अच्छा, क्योंकि ऋषि का हृदय प्रायः उदार होता है। उदारता में परणित हो गएं, उन्होंने कहा तो अच्छा भगवन्!

लंका में महर्षि कुक्कुट मुनि

तो राजा रावण और महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज दोनों ने बेटा! वहाँ से प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए भयंकर वनों में भ्रमण करते हुए परन्तु देखो, वह भ्रमण करते हुए राजा रावण लंका में प्रविष्ट कराया। राष्ट्र गृह में ऋषि का आगमन हुआ, क्योंकि राष्ट्र गृह में एक महान आत्मा का आगमन होना, उन दिनों मुनिवरों! देखो, वह बड़ा सौभाग्य का दिवस था। वह दिवस ऐसा सौभाग्यवत था, कि महारानी मन्दोदरी के हर्ष की कोई सीमा न रही। तो मन्दोदरी को सुन्दर आसन दिया, ऋषिवर विराजमान हो गएं, राजा रावण अपने मन्त्री मण्डल में जा पंहुचे, ऋषि से कहा, देवी ने हे प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ, क्या आप मेरे समीप आयें हैं, परन्तु आप कजली वनों से आ रहे हैं। मेरी इच्छा ऐसी है, कि आप क्या पान करेंगे? उन्होंने कहा हे देवी! जो इच्छा हो, मुनिवरों! देखो, महारानी मन्दोदरी ने, नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराया। ऋषि ने बड़े सुन्दर रूपों से, उन नाना प्रकार के भोजनों को पान किया और आनन्दित हो गएं। आनन्दित हो जाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, इतने में राजा रावण आ पंहुचे, मन्दोदरी चर्चा कर रही थी, हे प्रभु! जब लंका से आप अपना प्रस्थान करोगे, तो मेरे जो पति हैं, आप मेरे पति को भी कुछ ऊँची शिक्षा प्रदान करते चले जाना। क्योंकि संसार में बेटा! जो पत्नी होती है, सदैव अपने पति के कल्याण की कामना करती रहती है, उसके मनों में एक इच्छा होती है, कि मेरे

पति के द्वारा, किसी प्रकार की भी त्रुटि न रह सके। अहा! महारानी मन्दोदरी ने ऋषि से कहा, ऋषि ने कहा देवी! मैं प्रयत्न करूंगा।

ऋषि द्वारा लंका निरीक्षण

परन्तु राजा रावण का आगमन हुआ, राजा रावण ने कहा आईए, भगवन! तो मुनिवरों! देखो, राजा रावण और मुनिवरों! देखो, ऋषि जनों का, दोनों का भ्रमण प्रारम्भ होने लगा। सबसे प्रथम राजा रावण ने बेटा! उन भवनों का निरीक्षण कराया, जो सबसे प्रथम देखो, भवन महाराजा कुबेर ने इसका निर्माण किया था। उसके पूर्व महाराजा कुबेर से पूर्व, महाराजा महीदन्त का भी भवन था, महाराजा शिव का भी था, नाना प्रकार के भवनों का निरीक्षण तो बेटा! बड़े आनन्द पूर्वक सुन्दर सुन्दर भवनों का सुन्दर सुन्दर भवन थे, उनका निरीक्षण किया और वह बड़े प्रसन्नता को प्राप्त होने लगे, ऋषि ने कहा रावण तुम्हारा राष्ट्र तो मुझे बहुत ही प्रिय लग रहा है। मेरा हृदय तो गद् गद् हो रहा है, हृदय मग्न है, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, क्या तुम्हारा राष्ट्र तो वास्तव में तो बहुत ही उन्नत है, ऋषि की वार्ता पान करते हुए, राजा रावण का हृदय मुनिवरों! प्रफुल्लित हो गया, आनन्दित हो गया, भ्रमण कराते हुए आगे, मुनिवरों! नाना प्रकार के जो स्वर्ण के भवन थे, उनका दिग्दर्शन कराया, क्योंकि लंका की प्रणाली परम्परा में, मैंने कई काल में प्रगट की है। क्योंकि राजा रावण से पूर्व लंका का स्वामी कुबेर था, और महाराजा कुबेर से पूर्व लंका का स्वामी महाराजा महीदन्त था, और महाराजा महीदन्त से पूर्व लंका का स्वामी शिव था, और महाराज शिव से पूर्व लंका का स्वामी मुनिवरों! देखो, राजा इत्यादि देखो, राजाओं की परम्परा चली आई। मैं उस परम्परा को आज वर्णन करना नहीं चाहता। केवल संक्षिप्त परिचय देना चाहता हूँ,

लंका की अनुसंधानशालाएँ

मुनिवरों! देखो, राजा रावण ऋषि को अपनी लंका का निरीक्षण कराने लगे, नाना प्रकार के जो स्वर्ण के जो भवन थे, उनमें जा करके ऋषि राजा ने कहा हे ऋषिवर!

यह मेरे गृह में यह देखो, यह स्वर्ण का भव्य भवन है। जो महाराज शिव ने इसका निर्माण किया था, महाराज इसको आप दृष्टिपात कीजिए। ऋषिवर का हृदय प्रसन्न होने लगा, ऋषि ने कहा हे रावण! तुम्हारा राष्ट्र तो मुझे बहुत ही सुन्दर प्रतीत होता है, जिस राजा के राष्ट्र में स्वर्ण के गृह हैं, वह राष्ट्र कितना पवित्र हो सकता है। परन्तु देखो, ऋषि को भ्रमण कराते हुए, राजा रावण बेटा! नाना प्रकार की अनुसन्धान शालाओं में ले गएं जहाँ मुनिवरों! राजा रावण के यहाँ वायु अनुसन्धान शाला में ले गएं। जहाँ वायु के ऊपर निरीक्षण हो रहा था, नाना प्रकार के वायु के परमाणुओं को एकत्रित किया जा रहा था, राजा रावण के राष्ट्र में वैज्ञानिक उनके ऊपर अन्वेषण कर रहे थे। क्या ये परमाणु कितने प्रकार के हैं, इनमें कितनी सूक्ष्मवत है, मुनिवरों! देखो, इस प्रकार वायु अनुसन्धान शाला, आगे उन्होंने अग्नि अनुसन्धान शाला में प्रविष्ट कराया, उन्होंने कहा प्रभु! वह वायु अनुसन्धानशाला थी, यह अग्नि अनुसन्धान शाला है, इसमें अग्नि के ऊपर अन्वेषण होता है। अग्नि के परमाणुओं को जाना जाता है। नाना प्रकार के बेटा! अग्नि के परमाणुवत होते हैं, ऋषि का हृदय प्रसन्नता को प्राप्त होने लगा। राजा ने आगे भ्रमण कराते हुए, जल अनुसन्धानशाला में ले गएं, उन्होंने कहा प्रभु! यह मेरे राष्ट्र में जल अनुसन्धानशाला है, क्या जल के परमाणु क्या क्या कार्य कर सकते हैं, जल के परमाणुओं को हमारे यहाँ वैज्ञानिक किस किस प्रकार एकत्रित करते हैं, भगवन! यह हमारे यहाँ जल अनुसन्धानशाला है। नाना प्रकार की अनुसन्धानशालाओं में भ्रमण कराते हुए, राजा ने कहा आईए भगवन! मुनिवरों! देखो, वह अन्तरिक्ष अनुसन्धानशाला में जा पंहुचे। महाराज! यह मेरे राष्ट्र में अन्तरिक्ष अनुसन्धान शाला है, देखो, मानव के मुखारबिन्द से शब्द का जन्म होता है, वह शब्द अन्तरिक्ष में किस प्रकार लय होता है, और कितनी तरंगे होती हैं, उन तरंगो को हमारे राष्ट्र में जाना जाता है, प्रभु! क्योंकि यह अन्तरिक्ष अनुसन्धान शाला ही है। मानव जब शब्दों का उच्चारण करता है, तो एक शब्द में कितनी तरंगे होती है। कितनी

सूक्ष्म तरंगे होती हैं, उन तरंगो में भी कितने प्रकार की तरंगे, किस किस प्रकार की तरंगे, क्या क्या प्रभाव लाती है। यह भगवन! हमारे यहां अन्तरिक्ष अनुसन्धानशाला में प्रायः वैज्ञानिक करते रहते हैं, भ्रमण कराते हुए, बेटा! वह पृथ्वी अनुसन्धानशाला में ले गएं। उन्होंने कहा भगवन! यह हमारे यहाँ पृथ्वी अनुसन्धानशाला है, पृथ्वी के ऊपर अन्वेषण होता रहता है, नाना प्रकार के देखो, जितने प्रकार के इसमें पार्थिव तत्त्व हैं, अहा! कितनी अग्नि है, कितने वायु के हैं, किस के ऊपर भगवन! अनुसन्धान हो रहा है। हमारे यहाँ यह पृथ्वी अनुसन्धानशाला है बेटा! ऋषि का हृदय बड़ा ही प्रसन्न हुआ।

वैज्ञानिक नारायन्तक

आगे भ्रमण कराते हुए राजा रावण ने कहा आईए भगवन! मैं अपने पुत्र नारायन्तक के द्वारा आपका भ्रमण कराता हूँ, राजा रावण का पुत्र नारायन्तक के समीप जब ले गएं, राजा ने कहा यह मेरा पुत्र नारायन्तक है, नारायन्तक से जब ऋषि का परिचय हुआ, तो ऋषि ने कहा कहिए नारायन्तक! तुम्हारी क्या प्रशंसा है? उन्होंने कहा प्रभु! मैंने चन्द्रमा में जाने वाले नाना प्रकार के यन्त्रों का अन्वेषण किया है, और यन्त्रों का निर्माण किया है, मैं नित्यप्रति चन्द्रमा की यात्रा कर लेता हूँ, क्योंकि मेरे यन्त्रों में इतनी गति है, क्या मैं नित्यप्रति चन्द्रमा की यात्रा कर लेता हूँ, मैंने भगवन! इन यन्त्रों को भगवन! जाना है। नाना प्रकार के यन्त्रों का मैंने अन्वेषण किया है, और भी लोको में जाने का मैं प्रयास कर रहा हूँ, मङ्गल में जाने का भी प्रयास कर रहा हूँ। शुक्र में जाने के लिए मैं उत्सुक रहता हूँ, राजा रावण ने कहा भगवन! यह मेरा पुत्र नारायन्तक है, ऋषि का हृदय बड़ा प्रसन्न हुआ, ऋषि ने कहा रावण वास्तव में तुम्हारी लंका तो बड़ी उन्नत है, तुम्हारी लंका में तो महान उन्नति हो रही है।

मुनिवरों! देखो, राजा रावण आगे भ्रमण कराते हुए नाना प्रकार की चिकित्शाला में ले गएं, अहा! चिकित्साशाला में भ्रमण कराते हुए कहा कि महाराज! यह हमारे यहाँ चिकित्साशाला है, इसमें चिकित्सा होती है,

मानव के मस्तिष्क को, मानव के हृदय से दूरी कर दिया जाता है। परन्तु वह मस्तिष्क इसी प्रकार औषधियों से युक्त कर दिया जाता है, भगवन! देखो, यह महात्मा दधीचि, अश्विनीं कुमारों ने विद्या परणित कराई थी। वह हमारे यहाँ विद्या परणित हो रही है। महाराज यह परम्परागतों की विद्या है, यह मैंने अपने राष्ट्र में स्थापित की है, अश्विनीं कुमार जैसे वैद्यराज हमारे यहाँ इस विद्या का अन्वेषण करते हैं, इस विद्या को विचार विनिमय करते हैं। चिकित्सा भी होती रहती है, भगवन! मैं हमारे यहां एक चिकित्सालय है, ऋषि का हृदय बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और अश्विनीं कुमारों से उनका मेल हुआ, परन्तु विचार विनिमय होता रहा, अश्विनी कुमारों के कार्य की सहराना की, अन्त में बेटा! भ्रमण कराते हुए राजा रावण मुनिवरों! नाना प्रकार के मार्गवेत्ताओं के द्वारा ले गये। महाराज! मेरे राष्ट्र में सुन्दर सुन्दर मार्ग हैं, और यह मार्गवेत्ता हैं, मार्ग का निर्माण करने वाले हैं, भगवन! मेरे राष्ट्र में सुन्दर सुन्दर मार्गशालाएं है, मुनिवरों! ऋषि ने जब भ्रमण किया और मार्गो के विशेषज्ञों के दर्शन हुए, तो ऋषि का हृदय बेटा! और भी प्रसन्न हो गया, प्रफुल्लित हो गया, ऋषि ने कहा घन्य है राजन्! मुझे तो तुम्हारे राष्ट्र को दृष्टिपात करके, मेरा तो हृदय बड़ा ही प्रसन्न है, मैं आज जितनी प्रशंसा कर ही नहीं पाता।

लंका में ऋषि को अग्नि का अनुमान

मुनिवरों! देखो, भ्रमण करते हुए, राजा रावण ने कहा कहिए भगवन्! जब सर्वत्र लंका का भ्रमण कर लिया, उन्होंने कहा कहिए भगवन्! आप को मेरा राष्ट्र कैसा प्रतीत हुआ? इस समय ऋषि ने कहा राजन्! मुझे तो तुम्हारा राष्ट्र बड़ा ही उन्नत प्रतीत हुआ, परन्तु जहाँ मुझे उन्नत प्रतीत हुआ, वहाँ मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, अनुभव हुआ, क्या तुम्हारी लंका में कुछ समय के पश्चात यहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी, जब ऋषि ने ऐसा कहा कि अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी, राजा ने नतमस्तिष्क हो करके कहा प्रभु! ऐसा क्यों? ऐसा आपने क्यों कहा है, ऋषि ने कहा हे राजन्! यह जो राष्ट्र है यह तुम्हारा भौतिकवाद में बहुत ही उन्नत है। परन्तु तुम्हे

देखो, नाना प्रकार के सुन्दर सुन्दर भवनों का निरीक्षण कराया, देखो, नाना मार्गशालाएं, चिकित्साशालाएं, विज्ञानशालाएं, चन्द्रशालाएं, वायुशालाएं, नाना प्रकार की शालाओं का तुमने निरीक्षण कराया, परन्तु तुम्हारे राष्ट्र में कोई चरित्रशाला मुझे प्रतीत नहीं हुई। यदि तुम्हारे राष्ट्र में मुझे चरित्रशाला प्रतीत होती तो मेरा हृदय स्वयं पुकारता। मानो मुझे ऐसा प्रतीत होता है, जिस राजा के राष्ट्र में चरित्र नहीं होता उस राजा के राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। तो हे राजन्! मुझे ऐसा अनुभव हो रहा है, क्या तुम्हारे राष्ट्र में कुछ समय के पश्चात यहाँ अग्नि प्रदीप्त हो जाएगी। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मानव का राजा का राष्ट्र केवल भवनों से, मार्गो से ऊँचा नहीं बनता, चन्द्रमा से और नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में जाने से ऊँचा नहीं बनता, यहाँ ऋषि कहता है, वेद का आचार्य कहता है कि मानव के जीवन का निर्माण मानव के लिए निर्माणाशाला होनी चाहिएं। क्या मानव का निर्माण हो मुनिवरों! देखो, सुन्दर माताएं हों, मुनिवरों! देखो, सुन्दर गृह हो, जहाँ मानव का निर्माण हो।

अधिकारी को ही अधिकार

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा रावण को ऋषि ने कहा हे राजन्! मुझे तो ऐसा ही प्रतीत हो रहा है, उन्होंने कहा कि ऐसा क्यों? उन्होंने कहा अधिकार, अनाधिकार चेष्टा करने से, इस मानव समाज में अधिकार, अनाधिकार चेष्टा जब होने लगती है, वह काल बड़ा ही, राजा के लिए महान सुन्दर नहीं होता। प्रजा के लिए सुन्दर नहीं होता। तुम्हें रावण यह प्रतीत है, एक समय तुम्हें देखो, लंका का राष्ट्र तुम्हें प्राप्त हुआ था, उस समय महाराज पुलस्त्य ऋषि महाराज और महाराज महिदन्त यह चाहते थे कि लंका का स्वामी रावण होना चाहिए। परन्तु देखो, मेरा विरोध तुम्हें स्मरण होगा, सबसे प्रथम मैंने विरोध किया था, यह कहा था कि रावण राजा के बनने योग्य नहीं है। क्योंकि अधिकार, अनाधिकार चेष्टा की गई, जहाँ अनाधिकार चेष्टा की जाती है वहाँ देखो, प्रजा का विनाश हो जाता है। प्रजा में चरित्र नहीं आता, और जहाँ चरित्र नहीं होता वहाँ राजा

का राष्ट्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। यह तुम्हे प्रतीत हैं, मैंने यह तुमसे कहा था, परन्तु यहाँ संसार में अधिकार और अनाधिकार की मीमांसा यह है, कि जिस कार्य का कोई अधिकारी नहीं हो, उसे वह वस्तु प्राप्त नहीं होनी चाहिए। **केवल वास्तव में मान भी देखो, उसी का होना चाहिए, जो मान में आ करके, अभिमान न आ जाए।** कोई और यदि मान में अभिमान आ गया, तो उस मानव का विनाश हो गया, इसी प्रकार हे राजन्! जब राजा ने देखो, विज्ञान आ जाता है, विज्ञान के साथ चरित्र नहीं रहता। उस राजा का विज्ञान क्या करेगा? अग्नि प्रदीप्त होने से और क्या हो सकता है।

चरित्र का स्रोत

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! कोई महापुरूष आता है, चरित्र पुरूष आता है, मानो वह अग्नि प्रदीप्त करके चला जाता है। संसार में इसी प्रकार हे राजन्! यह तुम्हे प्रतीत हैं, यह मैंने अपने अनुभव का वाक तुम्हे प्रगट कराया है। चरित्र की मीमांसा क्या है? कि आज हम अपने राष्ट्र को उन्नत बनाएं, कैसे उन्नत बन सकता हैं? यह भी हमें विचारना है, विचारना यह कि स्वयं अपने मानव को मानववत अपने को चरित्रवत बनाना है, संयमी बनाना है, जब तक हम स्वयं संयमी नहीं बनेंगे, हम एक दूसरे को संयमी बना ही नहीं सकते, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कह रहा है? क्या, हम सदैव अपने प्रभु, उस प्रभु से अपना संलग्न, अपने प्रभु से हमारी प्रीति होनी चाहिए, हमारा जीवन, जब प्रभु से सुगठित रहेगा, क्योंकि **प्रभु चरित्र का स्रोत है** देखो, सर्वत्र उसी के स्रोत से उत्पन्न होते हैं। इसीलिए बेटा! देखो, वह वह जो यहाँ से स्रोत का प्रारम्भ होता है, हमें उस स्रोतवत कारण को अपना लेना चाहिए। जिससे बेटा! देखो, हम संसार में इस मानववत में राष्ट्रवत में बेटा! अपनेवत को पवित्र बना सकें। चरित्र की प्रतिभा को जानते हुए हम इस संसार सागर से बेटा! पार हो जाएं।

प्रथम हिंसा

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं कोई अधिक

चर्चा प्रगट करने नहीं आया, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है क्या हम चरित्र को ऊँचा बनाएं, अपने आप को ऊँचा बनाएं, चरित्र किसे कहते हैं? जो मानो अचरित्रवादी उसे कहते हैं जो मानव अपनी आत्मा का सदैव हनन करता रहता है, जो आत्मा का, मुनिवरों! देखो, आत्मा को हनन करने वाले प्राणी होते है, वह सदैव नारकिक कहलाए जाते है। वही तो मुनिवरों! देखो, अचरित्र है, क्योंकि मानव का अपनी आत्मा का हनन नहीं करना चाहिए। आज जो मानव कार्य को करता है यदि उसका अन्तरात्मा यह कहता है क्या यह कार्य सुन्दर नही है? तो वह नहीं करना चाहिए, परन्तु मानव का यही तो चरित्र है, और जब मानव की आत्मा का हनन करता रहता है, वह मुनिवरों! देखो, चरित्रवान व्यक्ति नहीं होता, वह सदैव अपनी आत्मा का विश्वासी नहीं होता, आत्मा के ऊपर उसका विश्वास नहीं होता, क्योंकि उसका अन्तरात्मा उसे पुकार रहा है, कह रहा है, हे मानव! यह तुच्छ कार्य है, इसको न कर, परन्तु उस समय भी कर पाता है, तो वही तो तेरी हिंसा है। सबसे प्रथम हिंसा ही वह है। परन्तु अहिंसा परमोधर्म वही है, जो आत्मवत कार्य किया करता है, मानव वही सत्यवाद है, वही चरित्र है, बेटा! देखो, इसकी मीमांसा हमारे यहाँ आचार्यों ने की है। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह कि हम अपने जीवन को वास्तव में चरित्रवत बनाते चले जाएं। क्योंकि हमारे जीवन में हमारा जीवन उस काल में पवित्र बनेगा, जब हमारे में चरित्र होगा, मानवता होगी पवित्रवाद होगा, उसी काल में बेटा! हम संसार सागर से पार हो सकेंगे।

यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट कर सकेंगे। आज के अन वाक्यों का अभिप्राय यह है, क्या हम अपने राष्ट्र को अपने मानव समाज को, परमात्मा से सुगठित बनाएं, क्योंकि परमात्मा देखो, आनन्द का स्रोत है, चरित्र का स्रोत है, हमें इसीलिए परमात्मा को अपनाना चाहिए। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो

शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करेंगे। आज का वाक यह समाप्त होता गया। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह क्या हम परमात्मा का चिन्तन करते रहें, वैदिक प्रकाश का अपनाते हुए, हम इस संसार सागर से अन्धकार से पार होते रहें। प्रकाश में जाने का प्रयास करें। क्योंकि परमात्मा के राष्ट्र में रात्रि नहीं होती, वहाँ सदैव प्रकाश रहता है। यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करेंगे। आज का वाक समाप्त होता गया अब वेद का पाठ होगा।

16 १९ ०९ १९६९ ब्रह्म से सहकारिता

जीते रहो, देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का पठन पाठन करते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, जिन वेदमन्त्रों का पठन हमारे यहाँ सुन्दर पाठ्य क्रम प्रायः वर्णन रहता है। विचार विनिमय करने लगते हैं, यह कर्म है, मानो उसमें कितना विवरण, अभिरचुतमं मानो वह नाना प्रकार की सुन्दर पद्धतियों से इसका सुगठित मिलान होता है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं, कि हमारी वास्तव में जो वैदिक परम्परा है, वह मानव के लिए, मानव को मानव बनाने के लिए सदैव अग्रणीय रही है। क्योंकि हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! जब यहाँ ऋषि मुनि, एकान्त विराजमान हो करके, मुनिवरों! आत्मा, परमात्मा की विवेचनाएं अथवा अपने मानसिक सन्तुलन के ऊपर, विचार विनिमय प्रायः होता रहा है। क्योंकि वैदिक परम्परा में सबसे ऊँची ऊँची वार्ता है, जो मानव को विचार विनिमय करना है, जिसके ऊपर अनुसन्धान भी करना है, मानव को सबसे प्रथम अपनी जो मानसिक सङ्कलन हैं, मानसिक जो प्रवृत्ति हैं, उनको सबसे प्रथम संयम करने की आवश्यकता रहती है।

जीवन में सुगन्धि

हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! परम्परागतों से ही, मुझे भी स्मरण आता रहता है जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप जाता था, तो नाना प्रकार के प्रश्न, नाना प्रकार की विवेचनाओं के द्वारा और अपने उद्गम् विचारों से भी मानो

देखो, अपने भ्रांति भरे शब्दों को भी प्रायः करता रहता था। मेरा हृदय उस समय बड़ा प्रसन्न रहता था, जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव विज्ञान के युग में पंहुचते हुए, वैज्ञानिक रूपों से अपनी रूप रेखा का वर्णन कराते थे, उन्होंने सबसे प्रथम एक ही वाक कहा है, कि मानव को वास्तव में ऊँचा बनना है, अपने विचारों को, अपने मानसिक सङ्कलन, जो शक्ति है, उसको उज्ज्वल बनाना है। परन्तु वह उज्ज्वल किस काल में बनती है? जैसा मुनिवरों! देखो, इससे पूर्व वाक्यों में हम प्रगट कराते हुए कहा था, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के उन्हीं वक्तव्यों की विवेचना प्रगट करते हुए, हमारा हृदय उद्गमता से, गौरव से पुकारता चला जा रहा था, कि वास्तव में, हमें परमपिता परमात्मा ने अहा! जो आनन्द का स्रोत है, चैतन्य है, मानो जिस मेरे प्रभु ने यह मानव शरीर रूपी, जो यज्ञवेदी बनाई है, मानो इस यज्ञवेदी को हमें पवित्र बनाना है, हमें इसे दुर्गन्धवत नहीं बनाना है, सुगन्धिवत बनाना है। जैसे बेटा! पृथ्वी के गर्भ में, नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है, मानो वह संसार को सुगन्धि प्रदान करती चली जाती है, इसी प्रकार परमात्मा के क्षेत्र में जब हम आते हैं, हमारा भी कर्तव्य हो जाता है, क्या हम अपनी वाणी से, अपनी प्रत्येक इन्द्रियों के द्वारा बेटा! हम सुगन्धि को उत्पन्न करते रहें, सुगन्धि देते रहें। सुगन्धि का अभिप्राय क्या है? सुगन्धि उसको कहा, सुगन्धि वही प्राणी प्रदान कर सकता है, जो स्वयं अपनी सुगन्धि को जानता है, क्या तेरे हृदय में कौन सी सुगन्धि है, जिसको तुझे जानना है। बेटा! वह है, चैतन्यवत मानो वह उसकी मानसिक जो सङ्कलन है, मानसिक जो प्रवृत्ति है, उसको जब हम विचार विनिमय करेंगे, तो बेटा! वह अमृत, वह सुगन्धिवत हमे स्वयं प्राप्त होने लगेगा। जैसे मेरी पवित्र माता है, परन्तु जब वह अपने वैज्ञानिक रूपों से अपने बालक को जन्म देती है, उस समय वह अपने हृदय से क्योंकि वह जानती है, क्योंकि जो मेरी पुनीत माता है, आयुर्वेदा महापण्डिता होती है, वह यह जानती है, कि अमुक समय में, इस मास में, मेरे गर्भस्थल में, मेरे कौन से मानो पुत्री हो, पुत्र हो, कौन

सी प्रवृत्तियां की रचना हो रही है। कौन सी इन्द्रियों में कौन सा भाव, किस काल में प्रदान किया जाता है।

दिव्य माताओं का जीवन

परन्तु मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! माता मल्दालसा का जीवन यहाँ एक ही वाक स्मरण नहीं आता बेटा! माता कौशल्या का जीवन भी स्मरण आता रहता है, यह माता देवकी का जीवन भी मुझे स्मरण आता रहता है, जहाँ बेटा! उन्होंने देखो, कारागार में एक महाविभूति एक महापुरूष को जन्म देने वाली, मेरी पुनीत माता थी, इसी प्रकार बेटा! जो आयुर्वेदा महापण्डिता होते हैं, मेरी प्यारी माता को सबसे प्रथम आयुर्वेदा पण्डिता हो जानी चाहिए। क्योंकि उसे संसार में, उसे राजा और महा ऋषि मुनियों को उत्पन्न करना है, क्योंकि उसी को संसार, मेरी पुनीत माता को यह राष्ट्र और समाज को उन्नत बनाना है। क्योंकि उन्नत उस काल में बनता है, जब बेटा! माता की प्रवृत्ति विशाल होती है, माता अपनी प्रवृत्तियों में विशालता जब होती है। सङ्कलनबद्ध होती है, उस समय बेटा! माता के गर्भस्थल से सुन्दर महान पुत्र का जन्म होता है।

माता वसुन्धरा

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण आता रहता है, माता कौशल्या का जीवन, माता कौशल्या ने मुनिवरों! देखो, भगवान राम के गर्भस्थल में रहते हुए, उन्होंने बेटा! देखो, राष्ट्र के अन्न को भी ग्रहण नहीं किया। यह तो उनकी प्रबलता थी, यही तो उनकी विशेषता थी और उनकी माता मातावत बनने के लिए बेटा! उनका कितना ऊँचा सङ्कल्प रहता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ किसी भी माता को वसुन्धरा कहा गया है, वसुन्धरा क्यों कहा गया है? क्योंकि यह अपने में वशीभूत करती है, नाना प्रकार की प्रवृत्तियों को प्रदान कर देती है, माता मल्दालसा का यही तो सङ्कलन था, राजा से कि हे भगवन्! मैं अपने गर्भस्थल से पुत्र को जन्म देना चाहती हूँ, पुत्री को जन्म देना चाहती हूँ, पांच वर्ष की मेरी शिक्षा होगी। राजा ने बेटा! उसी वाक्यों को स्वीकार किया था, परन्तु देखो, वह कितनी आयुर्वेद, कितना उसके हृदय में समाहित हो रहा

था। परन्तु देखो, उसके हृदय में, आयुर्वेद की पवित्र विद्या बेटा! इतनी प्रतिष्ठित हो रही थी, क्या उसका हृदय पुकार पुकार के यह कहता था, कि वास्तव में मुझे इस राष्ट्र को, समाज को उन्नत बनाना है। मानो देखो, इस महान पुनीत विद्या को ऊँचा बनाना है। क्योंकि वैदिक विद्या का जो मानो ह्रास होता है, उस काल में होता है, जब मेरी पवित्र माता अपने कर्तव्य को त्याग देती हैं। बेटा! मुनिवरों! देखो, यहाँ एक वाक नही मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें प्रगट कराते हुए कहा था, कि माता जाबाला ने बेटा! एक ही पुत्र को जन्म दिया, सत्यकाम को जो मुनिवरों! षोडश कलाओं का विज्ञानवेत्ता बना, परन्तु देखो, यह माताओं की विशेषज्ञता होती है, परन्तु उनकी पवित्र विद्या का यही तो प्रभाव होता है, क्या, वह अपने गर्भस्थल से और अपनी मानवीयता को जानना ही बेटा! संसार में एक मानसिक सन्तुलन कहलाया गया है।

मृत्यु ही ब्रह्म

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इन वाक्यों में नहीं जाना चाहता हूँ, वाक केवल हमें यह उच्चारण करना है, आज का वेद पाठ हमें क्या कहता चला जा रहा है। आज के इस वेद पाठ में, आज के सुन्दर पाठयक्रम में हमारे यहाँ जो वर्णन किया जा रहा था, कि हम परमपिता परमात्मा को जानने वाले बनें। जो परमात्मा चैतन्य देव है, मानो इसकी प्रतिभा बेटा! जब प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत हो रही है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए, उस वैदिक आनन्दमयी प्रकाश को अपनाते चलें जाएं। जिस प्रकाश को अपनाने के पश्चात, हमारा जीवन वास्तव में पवित्रवत हो जाता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब हम अपनी मानवीयता से, अपने जीवन को मन्थन किया करते हैं, उस समय हमें यह प्रतीत होता है, कि वास्तव में हमारा जीवन मन्थन के योग्य है। विचारणीय है, इसको विचारना है, संसार में। बेटा! देखो, सृष्टि के आदि से ले करके, वर्तमान तक इतना काल आता रहेगा। परन्तु मानवीयता के ऊपर मुनिवरों! देखो, कितनी

टिप्पणियाँ ऋषि मुनियों ने की है। क्या कणाद है, क्या गौतम है, क्या व्यास है, मुनिवरों! प्रत्येक महापुरूषों ने बेटा! इसके ऊपर टिप्पणियाँ की हैं। भगवान कृष्ण ने भी इसी के ऊपर टिप्पणियाँ की हैं, और बेटा! भगवान राम ने भी वशिष्ठ मुनि महाराज उनके विचारों को, तुम दृष्टिपात करोगे, तो उनके विचारों पर भी मानवतव के ऊपर तुम्हें टिप्पणियाँ तुम्हें प्राप्त होती रहेंगी। विचार क्या है, कि आज हम देखो, उन टिप्पणीयों पर न जाते हुए, केवल यह क्या, हम अपने कर्तव्य और अपनी मानवीयता पर विचार विनिमय करें। आज का वेद पाठ हमें यह उच्चारण कर रहा था, क्या हम सदैव मृत्यु से पार होने का प्रयास करे, क्योंकि संसार में मानव जितना भी प्रयास करता है, मृत्यु से विजय होने का किया करता है। मेरी प्यारी माता, यह कहा करती है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए, मेरे गर्भ उत्पन्न होने वाले बालक की भी मृत्यु भी नहीं होनी चाहिए। मेरा सौभाग्य भी अखण्ड बना रहे, परन्तु इसी प्रकार, प्रत्येक मानव भी यह विचार विनिमय करता है, परन्तु देखो, मृत्यु है क्या? विचार नहीं किया जाता कि मृत्यु क्या है? हमारे ऋषि मुनियों ने तो यह कहा है, कि मृत्यु ही ब्रह्म है, परन्तु देखो, मृत्यु ही संसार को निगल जाता है, जैसे मुनिवरों! देखो, अग्नि, अग्नि नाना प्रकार के पदार्थों को निगल जाता है, इसी प्रकार और अग्नि को जल निगल जाता है, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, यह जो ब्रह्म है, यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को निगल जाता है, प्रत्येक प्राणी की आयु को निगल जाता है। इसी प्रकार बेटा! आज हम विचार करने वाले बनें कि कौन किस वस्तु को निगल जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! प्रत्येक मानव मृत्यु से पार होने का प्रयास करता रहता है, उससे मानो एक सङ्कलन रहता है, क्या मैं मृत्यु से विजय होना चाहता हूँ। परन्तु विचार यह आता है कि मृत्यु क्या है? क्योंकि मृत्यु को चुम्बन करना कोई आश्चर्य नहीं, यह भी एक मानव का विचार है, मानव का सङ्कलन है, जब मृत्यु को ज्ञान हो जाता है कि मृत्यु यह वस्तु है, मृत्यु यह पदार्थ है, तो बेटा! देखो, मानव को किसी प्रकार का भय नहीं होता, मानव को सबसे प्रथम

जो भय होता है, भयभीत होता है। अपने कर्मों का होता है, दुष्कर्मो का होता है, जब मानव अपने दुष्कर्मो को त्याग देता है, तो बेटा! वह संसार में निर्भय हो जाता है। न उसे मृत्यु का भय होता है, और न बेटा! देखो, उसे अजीर्ण होने का भय होता है, परन्तु वह संसार में निर्भयवत हो जाता है।

दस इन्द्रियों की पवित्रता

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इस वाक को अधिक उच्चारण नहीं करूंगा, केवल यह वाक आज इसीलिए मुझे उच्चारण करने का, मुझे सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, जैसा महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के शब्दों पर विचार विनिमय हो रहा था, क्या, आज मानव को क्या, आज मानव को यह विचारना है, कि प्रत्येक इन्द्रियों को, प्रत्येक यज्ञ के दस पात्रों को पवित्र बनाना है। उसके ऊपर मानव को सदैव टिप्पणी करना है, विचार विनिमय करना है, प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को, मुनिवरों! उनकी सामग्री बनाना है, उनको हृदय रूपी जो स्थल है, हृदय रूपी जो शाला हैं, उसमें ज्ञान की जो ज्योति जो प्रगट होती है, उस ज्योति में हमें स्वाहा देना है, आहुति प्रदान करना है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जैसे बाह्य यज्ञ होता है, बाह्य यज्ञशाला में मानो देखो, ब्रह्मा यज्ञमान से यज्ञ कराता है। इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, अपनी मानवीय नाना प्रकार की जो प्रवृत्तियाँ हैं, इन्द्रियों का जो विषय है, उनकी जब मुनिवरों! देखो, मन के द्वारा सामग्री एकत्रित हो जाती है। यज्ञम् ब्रह्मे कृताना मुनिवरों! देखो, वही तो हूत कहा जाता है। वास्तव में हूत यही कहा जाता है, जैसा हमारे यहाँ आता है, क्या परमपिता परमात्मा ने बेटा! सृष्टि के प्रारम्भ में सात प्रकार के अन्नों को उत्पन्न किया। इन अन्नों में सबसे प्रथम अन्न, जो सबका साझा अन्न है, उसके पश्चात दूसरा अन्न पशुओं को प्रदान कर दिया, और तीसरा जो अन्न है, वही तो मुनिवरों! देखो, हमारे यहाँ हूत कहा गया है, जिसकी आहुति देने से, मुनिवरों! देखो, तीसरे प्रकार का अन्न, हमारे यहाँ वर्णन किया गया है, मैं इन अन्नों की विवेचना देने नहीं आया हूँ। वाक केवल यह है, कि आज

हम देखो, इस शरीर में, आज हम देखो, यज्ञ के दस पात्रों को पवित्र बनाने का प्रयास करें। क्योंकि इसी से हम सुन्दर और महान यज्ञ कर्म कर सकते हैं, और मृत्यु से वही पार हो सकता है, बेटा! जो इन दस पात्रों को जान जाता है। दस पात्रों की प्रतिभा को जान जाता है। परन्तु इसके द्वारा यह दस पात्रों की प्रतिभा को, जो मानव नहीं जानता, वह मानव सुन्दर बेटा! देखो, मृत्यु से विजय नहीं हो पाता। क्योंकि मृत्यु से विजय तो वही बनेगा, जो मानव अपने मानवीयवत को विचार जाता है, मानव अपने तन्तु को विचार जाता है।

महाराजा ज्ञानश्रुति का जीवन

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कह रहा है, मैं इसके ऊपर अधिक टिप्पणियाँ करना चाहता हूँ, विचार विनिमय केवल यह है, क्या मृत्यु से विजय होना है। बेटा! एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली गई, इस सम्बन्ध में, एक समय बेटा! देखो, भगवान मनु प्रणाली में, भगवान मनु देखो, अप्रतम् दो हजार के लगभग मुनिवरों! देखो, प्रणाली में महाराजा ज्ञानश्रुति का जन्म हुआ था, महाराजा ज्ञानश्रुति का जीवन वास्तव में सदैव पवित्र रहा है, क्योंकि भगवान मनु की प्रणाली में, हमारे यहाँ देखो, ज्ञानश्रुति नाम के राजा हुए, जो तुम्हे बेटा! स्मरण होगा। भगवान मनु की, मुनिवरों! साढ़े सात हजार परम्पराओं ने राज किया, इस संसार में, क्यों किया है? क्योंकि उनके द्वारा चरित्र की प्रतिभा, मानव की प्रतिभा समीप रही है निर्मोहीपने की समीप रही है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में वही मानव सफलता को प्राप्त होता है, जो मानव मुनिवरों! देखो, अपने मानवीयतव को विचार लेता है, चाहे मुनिवरों! राजा हो, प्रजा हो, चाहे महापुरूष हो, परन्तु देखो, उन्ही का नामोच्चारण परम्परागतों से हमारे यहाँ सदैव उच्चारण में रहा है। मानव की वाणी में, मस्तिष्क में, हृदय में उसकी प्रतिष्ठा होती रही है।

ब्रह्मज्ञानी की खोज

मेरे प्यारे! ऋषिवर! महाराज ज्ञानश्रुति एक समय अपने आसन पर विराजमान थे, विराजमान होते, उन्होंने

अपने महामन्त्री से कहा हे मन्त्री! मेरी इच्छा ऐसी है, कि मैं ब्रह्मज्ञानी, एक महापुरूष को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। उनसे कुछ उपदेश लेना चाहता हूँ, जाओं, तुम ब्रह्मज्ञानी के दर्शन कर, मुझे निर्णय कराओं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! महाराजा ज्ञानश्रुति के महामन्त्री ने आज्ञा पाते ही, मुनिवरों! देखो, भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसा कहा जाता है, क्या, वह मन्त्री जी ने, मुनिवरों! देखो, सर्वत्र ब्रह्माण्ड में सर्वत्र भूमण्डल पर भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया, अहा! जब भ्रमण करना प्रारम्भ कर दिया, मुनिवरों! देखो, अहा! पृथ्वी पर जब भ्रमण करने लगे, कहा जाता है नाना राजाओं के गृहों में, ऊँचे ऊँचे भवनों में, उन्होंने दृष्टिपात किया, परन्तु उसे कहीं कोई ब्रह्मज्ञानी के दर्शन नहीं हो पाएं भ्रमण करते हुए बेटा! देखो, नाना राजाओं के यहाँ, देखो, सुन्दर सुन्दर जो द्रव्यपति थे, उनके गृहों में प्रविष्ट हुए, परन्तु देखो, मन्त्री को, कोई ब्रह्मज्ञानी प्राप्त नही हुआ अन्त में बेटा! भ्रमण करते हुए महाराज ज्ञानश्रुति के समीप आ पंहुचे, महाराजा ज्ञानश्रुति से कहा कि महाराज! मैंने तो सर्वत्र पृथ्वी पर भ्रमण किया है, भगवन! मुझे किसी महापुरूष के दर्शन नहीं हुए। मुझे तो कोई ब्रह्मज्ञानी भी प्राप्त नहीं हुआ। उन्होंने कहा अरे, तुमने कहां कहां भ्रमण किया है? उन्होंने कहा भगवन! मैंने सर्वत्र राष्ट्र में भ्रमण किया है, जितने राष्ट्र हैं, इस पृथ्वी पर, मानो देखो, मैंने नाना राजाओं के गृहों में प्रविष्ट हो करके, अहा! मुझे किसी ब्रह्मज्ञानी के दर्शन नहीं हुए, मुझे ऐसे जो भवनवेत्ता है, उनके गृहों में भी अपना वास किया है। परन्तु वहां भी मुझे दर्शन न हुए।

भयंकरों वनों में ब्रह्मवेत्ता

मुनिवरों! ज्ञानश्रुति ने कहा हे महामन्त्री! क्या, हे मन्त्री जी! यह ब्रह्मज्ञानी जो हैं, यह राजाओं के गृहों में प्रविष्ट नहीं होते, राष्ट्र गृहों में प्रविष्ट नहीं होते, ब्रह्मवेत्ता मानो ऊँचे ऊँचे भवनों में नहीं होते, अहा! ब्रह्मवेत्ता तो देखो, भयंकर वनों में प्राप्त होने चाहिए। तुम उनके आसन पर जाओ, कहीं द्रव्यपति भी ब्रह्मवेत्ता बना करते हैं, देखो, द्रव्यपति तो वह ब्रह्मवेत्ता बनता है, जिसकी देखो, द्रव्य में

किसी प्रकार की व्याख्या नहीं होती, मानो वह सदैव बेटा! वह उत्कृष्ट करता रहता है। देखो, रहा प्रकृतिवाद में रमण करते हुए, देखो, तुम्हें यह प्रतीत होगा, क्या यहाँ जितने भी राजा हुए हैं, परन्तु देखो, वह कितने ब्रह्मवेत्ता हुए है, अहा! देखो, निर्मोही हो गएं हैं, परन्तु ब्रह्मवेत्ता होना बहुत ही असम्भव है। यह आज तुम ब्रह्मज्ञानी को दृष्टि करना चाहते हो, तो भयंकर वनों में चले जाओं।

ब्रह्मवेत्ता महर्षि रेवक मुनि

मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी ने उन वाक्यों का स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके बेटा! भ्रमण करते हुए वह भयंकर वनों में पंहुचे। मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो गएं, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में जब प्रविष्ट हुए तो गाड़ीवान रेवक अपनी गाड़ी के छाया में अपने जीवन को व्यतीत कर रहा था, मुनिवरों! वह महामन्त्री जी उनके समीप पंहुचे, उनके हृदय ने यह उच्चारण कर दिया, कि यही ब्रह्मवेत्ता है, गाड़ीवान है, गाड़ी की छाया में ही विराजमान होता है, नाना आश्रमों में मुनिवरों! ऋषि मुनियों ने महर्षि रेवक मुनि की यहाँ एक प्रतिष्ठा थी, आज उनके समीप पंहुचे अहा! उनके समीप पंहुचे मुनिवरों! सबसे प्रथम मन ही मन में प्रणाम किया, और उनके चरणों को छू करके आसन पर ही मुनिवरों! देखो, उनकी प्रतिष्ठा जब अपने हृदय में प्रविष्ट हो गई, अहा! मन्त्री ने, महर्षि रेवक मुनि जी ने यह कहा आईए मन्त्री जी। मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी विराजमान हो गएं। महर्षि रेवक मुनि महाराज के ऋषि ने, ब्रह्म ब्रहा कृति मन्त्री जी ने कहा कहिए, भगवन! क्या आप महर्षि रेवक हैं? उन्होंने कहा कि हे मन्त्री! मुझे महर्षि रेवक तो नहीं कहते, परन्तु गाड़ीवान रेवक हूँ। कितना सुन्दर शब्द है, बेटा! क्योंकि जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं, बेटा! उनके द्वारा अभिमान भी नहीं होता, वह अपनी विद्या में, इतने पारायणवत अपनी विद्या को दृष्टिपात नहीं कर पाते, मुनिवरों! देखो, वह ऋषि होते हुए, ब्रह्मवेत्ता होते हुए, ब्रह्मवेत्ता भी उच्चारण नहीं कर पाते, उनका हृदय कितना

महान होता है। पवित्रवत्त होता है।

द्रव्य की ऋषि को भेंट

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुनिवरों! ऋषि ने कहा कि मैं तो गाड़ीवान रेवक हूँ, उन्होंने कहा महाराज! बहुत सुन्दर है। मुनिवरों! जब महामन्त्री ने यह अपने मन में दृष्टिपात कर लिया, और निश्चय कर लिया, कि यह ब्रह्मवेत्ता हैं। मुनिवरों! देखो, मन्त्री जी उनको नमस्कार करके वहाँ से प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए, वह महाराज ज्ञानश्रुति के समीप जा पंहुचे, और महाराज ज्ञानश्रुति से बोले कि महाराज! मुझे तो ब्रह्मवेत्ता के दर्शन हुए, मानो महर्षि गाड़ीवान रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो जाओ। मुनिवरों! देखो, महाराजा ज्ञानश्रुति ने उन वाक्यों को स्वीकार कर लिया, स्वीकार करते हुए, उन्होंने बेटा! देखो, गृह को त्याग करके, नाना प्रकार की मानो देखो, मणियों से गुथी हुई मुद्राएं और भी सुन्दर सुन्दर कृत लेते हुए, द्रव्य लेते हुए, वहाँ से उन्होंने प्रस्थान कर किया, भ्रमण करते हुए, वह महर्षि रेवक मुनि महाराज आश्रम में प्रवेश हुए। महर्षि रेवक मुनि महाराज ने कहा आईए, राजन्! आईए, ज्ञानश्रुति जी! ज्ञानश्रुति ने कहा भगवन! मैं आपके लिए यह तुच्छ सी भेंट लाया हूँ। यह आप स्वीकार कीजिए। उन्होंने कहा अरे, क्या, यह मेरे लिए है। उन्होंने कहा कि हाँ भगवन! मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक ने, उसे शूद्र कहा, यह कहा अरे, शूद्र! ये तुम क्या लाए हो? मुनिवरों! देखो, राजा ने अपने मन ही मन में यह निश्चय कर लिया, क्या यह द्रव्य कुछ सूक्ष्म है, क्योंकि यह महर्षि जी है, पवित्र हैं, महान तपस्वी हैं, मानो यह द्रव्य उनके लिए कुछ नहीं है, इसीलिए मैं और द्रव्य को ले जाने के लिए जा रहा हूँ।

मुनिवरों! देखो, उन्होंने वहाँ से यह प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र गृह में प्रविष्ट हुए, अपनी धर्म देवी से बोले कि हे देवी! देखो, महर्षि रेवक ने मुझे शूद्र कहा है, मैं यह जो द्रव्य है, इनका अर्पित करना चाहता हूँ, परन्तु उसमें मुझे शुद्र कहा है। उन्होंने कहा तो महाराज! आप क्या चाहते हैं? मुनिवरों! देवी से कहा हे देवी! मुझे, मैं यह चाहता हूँ, क्या मैं ऋषि का प्रसन्न करना

चाहता हूँ, और अपने को ब्रह्मवेत्ता बनाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा तो प्रभु! कैसे उनको प्रसन्न करें? मेरी इच्छा यह है, कि हमारे गृह में जो राज कन्या है, परन्तु राज कन्या को देखो, स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित करते हुए और स्वर्ण के रथ में अर्पित करके, ऋषि को अर्पित किया जाए। वह राजा ब्रह्मे पति राजा ब्रह्मे क्योंकि वह राजाओं के महाराजा हैं, क्योंकि ऋषि जो होते हैं, वह राजाओं के महाराजा होते हैं। इसीलिए मैं उनको राजा ही उच्चारण किया करता हूँ, उनको अर्पित किया जाए। उन्होंने कहा प्रभु! जैसी आपकी इच्छा हो।

तो मुनिवरों! देखो, उनकी पत्नी ने उन वाक्यों को स्वीकार कर लिया। उन्होंने अपनी पुत्री को नाना प्रकार के आभूषणों से युक्त करते हुए अहा! उन्होंने बेटा! देखो, स्वर्ण के रथ स्थिर करते हुए, अपनी कन्या को बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए, अश्वत को वहाँ से प्रस्थान कर दिया। भ्रमण करते हुए वह मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हो गएं, रेवक मुनि जी से महाराजा ज्ञानश्रुति ने कहा कि महाराज! आप के लिए यह भेंट अर्पित करना चाहता हूँ। महर्षि रेवक ने कहा अरे, शुद्र! यह तुम क्या ला रहे हो, जब यह वाक कहा तो ऋषि ने कहा कि मैं और क्या लाता? मुनिवरों! देखो, सब को ऋषि के कथनानुसार उस सब को राष्ट्र को देखो, प्रस्थान कर दिया, अपने गृह में प्रविष्ट हो गएं, महा मन्त्रियों के मध्य में विराजमान हो करके, विचार विनिमय करने लगे, क्या, मैं ऋषि के द्वारा ले करके जाऊं। क्या, जो ऋषि मेरे से प्रसन्न हो जाएं, और मुझे ब्रह्मज्ञान की प्रतिष्ठा करायें। उन्होंने, महामन्त्री ने कहा हे राजन्! तुम नहीं जानते, क्या ऋषि जो होते हैं, वह विवेकी शिष्य को ही महान बनाया करते हैं। द्रव्य से ऋषि को प्रसन्न करना चाहते हो, मेरे विचार में यह आता है, कि ऋषि द्रव्य से प्रसन्न नहीं होते। मुनिवरों! उन्होंने कहा, तब यहाँ से कोपीन धारण करके यहाँ से प्रस्थान कीजिए और उनके आश्रम में प्रविष्ट होईए।

कोपीन में राजा

मुनिवरों! देखो, मन्त्रियों के वाक को पान करते हुए

महाराजा ज्ञानश्रुति ने बेटा! देखो, अपनी कोपीन को धारण करते हुए, अपने आश्रम को प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि आश्रम में प्रविष्ट हुए, महर्षि रेवक ने कहा आईए आईए राजन्! आईए! मुनिवरों! देखो, विराजमान हो गएं, महर्षि रेवक ने कहा कहिए, ज्ञानश्रुति जी! आप क्या चाहते हैं? उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह चाहता हूँ क्या, जिस देवता की आपने उपासना की है, उस देवता का मैं उपदेश चाहता हूँ, आपके द्वारा, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, मैं अति सन्तुष्ट हूँ, क्योंकि तुम त्याग और तपस्वी बन करके, मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुए हो।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, महर्षि रेवक मुनि महाराज ने अहा! बोलो, ज्ञानश्रुति! जिस देवता की अब तक मैंने उपासना की है, उसी का नाम मृत्यु है। क्योंकि मृत्यु मेरा देवता है, आज मैं मृत्यु से विजय होना चाहता हूँ, उसी के लिए, उसी की मैं आराधना करता चला आया हूँ, अहा! देखो, मैंने यह निश्चय किया है, कि मृत्यु से विजय होना है, संसार में यह मेरा देवता है, क्योंकि मृत्यु से विजय होना है, तो मृत्यु ही मेरा देवता है, और आप मृत्यु को ही जानना चाहते हैं। क्योंकि उसी की मैंने उपासना की है, उन्होंने कहा महाराज! मुझे उपदेश दीजिए, उन्हें बेटा! नाना प्रमाण दे करके, उन्होंने कहा क्या, हे राजन्! उन्हें यह प्रतीत है, कि महर्षि पिप्लाद आश्रम में जो विवेचना हुई, मानो देखो, महर्षि भारद्वाज आश्रम में जो विवेचना हुई थी, वह भी उन्हें प्रतीत होगी, महर्षि देखो, भारद्वाज आश्रम में एक समय महर्षि पुण्डरीकाक्ष ऋषि महाराज के समीप, जब प्रविष्ट हुए, तो मानो देखो, उनके द्वारा प्रविष्ट होते ही महर्षि भारद्वाज ने यह कहा था, क्या, तुम क्या जानना चाहते हो? उन्होंने कहा कि महाराज! मैं मृत्यु के ऊपर उपदेश चाहता हूँ। महर्षि भारद्वाज ने कहा कि इसके ऊपर विचार विनिमय किया जाए। मुनिवरों! देखो, महर्षि जमदग्नि और महर्षि रेवक इत्यादि ऋषि मुनियों का समाज था। देखो, उनका पदार्पण हुआ, और भी देखो, आदि आचार्य थे मानो देखो,

इसमें महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज भी थे, विचार विनिमय होने लगा, क्या मृत्यु क्या है? मृत्यु के विजय होने के लिए मानव सदैव प्रयास करता रहता है और ऋषि मुनियों के ऊपर जब ऋषि मुनियों का विचार विनिमय होने लगा, क्या मृत्यु क्या है? विचार आया, कि देखो, भई! महर्षि जमदग्नि ने कहा क्या मृत्यु ही संसार में भय है, क्योंकि मानव को भय नहीं हो सकता, यदि मृत्यु ही न हो, उन्होंने कहा महर्षि पिप्लाद ने कहा, मेरे विचार में तो यह आता है, क्या यह जो मृत्यु है, यह मानो एक मानव की कल्पना है, कल्पना मात्र है मृत्यु, मृत्यु कोई पदार्थ नहीं होता, क्योंकि मुझे तो मृत्यु कल्पना प्रतीत होती है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! इन वाक्यों पर चले हुए, वाक समाप्त हो गया अन्त में, देखो, सायं काल हुआ, ऋषि मुनियों ने अपने अपने विचार दे करके, अहा! अपने अपने आश्रम को उन्होंने प्रस्थान किया।

महर्षि पिप्लाद मुनि के पुत्र की मृत्यु

जब महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज बेटा! जब अपने गृहों में प्रविष्ट हुए अपने आश्रम में बेटा! देखो, उनकी पत्नी बड़ी कष्टमय थी महा दुःखित हो रही थी महर्षि पिप्लाद मुनि बोले देवी! तुम दुःखित क्यों हो? क्या कारण है? उन्होंने कहा प्रभु! मेरा सात वर्षीय पुत्र की मृत्यु हो गई अहा! ऋषि ने कहा क्या देवी इसके ऊपर तो विचार विनिमय हो रहा था, क्या मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती, इसीलिए मृत्यु ही मेरे समीप नियुक्त की है, यह मेरे विचार में नही आ रहा है, उन्होंने कहा भगवन! मैं क्या करूँ? मेरा पुत्र तो मृत्यु को अभी अभी प्राप्त हुआ है। मानो मैं अभी उसका दाह करके आई हूँ। मेरे विचार में तो ऐसा आता है, कि मेरा पुत्र था, परन्तु मृत्यु को प्राप्त हो गया। ऋषि ने कहा देवी! संसार में मृत्यु एक कल्पना है, तुम कल्पना भरे शब्दों को, मेरे से उच्चारण कर रही हो, मेरे विचार में यह वाक नहीं आता रहा है।

शरीर परमाणुओं का समूह

मुनिवरों! देखो, महर्षि पिप्लाद उन्होंने कहा देवी! संसार में यह जो कल्पना है, यह केवल मन की कल्पना

मात्र है, मानो इसमें कोई सार्थकता नहीं है, मृत्यु कोई वस्तु नहीं है उन्होंने कहा भगवन्! यह मैं कैसे स्वीकार करूं? यह जो मेरा शरीर है, यह जो आपको दृष्टिपात आ रहा है, यह क्या है? उन्होने कहा यह परमाणुओं का समूह है, नाना प्रकार के परमाणुओं का समूह है, मानो पञ्चमहाभूतों के जो परमाणु होते हैं वही परमाणु एकाग्र हो जाते हैं, सुगठित हो जाते हैं, और उन परमाणुओं को परमाणुओं को सुगठित करने वाला मानो वह चैतन्य आत्मा है। यह आत्मा इसमें भास रहा है, मानो यह आत्मा ही, जो इस शरीर में विराजमान होने के नाते ही मानो देखो, शरीर भी क्रियाशील रहता है, इसी प्रकार देवी! मेरे विचार में तो यही आता है, क्या, यह जो हमारा शरीर है, यह नाना प्रकार के परमाणुओं से बना है। नाना प्रकार के परमाणुओ का समूह कहलाया गया है। उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जान नहीं पा रही हूँ क्या, यह जो मेरा मानव शरीर दृष्टिपात आ रहा है, जिसे आप परमाणुओं का समूह उच्चारण कर रहे हैं, मानो यह मैं जानना चाहती हूँ, जब मैं इस रूप में नहीं थी, जो आपको दृष्टिपात आ रहा है, इससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थें? जब मेरा शरीर, इस रूप में नही था, उन्होंने कहा यही परमाणु थे, जो माता के गर्भस्थल में विराजमान थे, माता के गर्भस्थल में इन परमाणुओं का मिलान हो रहा था, वह जो चैतन्य देव प्रभु है मानो देखो, जो संसार में सबसे महान कलाकार है, सबसे महान वैज्ञानिक है, और सबसे महान उदार है, वह जो ब्रह्मवेत्ता मानो जिसे ब्रह्म कहते हैं, जो रचना कर रहा था, माता के शरीर में माता पिता के गर्भस्थल में क्योंकि इन परमाणुओं की रचना हो रही थी। आत्मा इनमें प्रतिष्ठित हो करके, मानो देखो, उससे निर्माण हुआ करता है, उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ, मानो जब यह मेरा शरीर देखो, माता के गर्भस्थल में निर्माण हो रहा था, परमाणुओं का, माता के गर्भस्थल में, जब माता का गर्भाशय भी नहीं था, उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा देवी! यही परमाणु माता पिता के रज वीर्य के रूप में विराजमान थे। क्योंकि देखो, इन

परमाणुओं से ही मानो वीर पुरूष कहलाता है, ब्रह्मचारी कहलाता है, ओजस्वी कहलाता है, अग्रेय कहलाया जाता है, देवता कहलाया जाता है, मानव कहलाया जाता है, हे देवी! देखो, इन्ही परमाणुओं से मानव महान बना करता है, यह परमाणुओं की प्रतिष्ठा माता पिता के रज वीर्य के रूप में हुआ करती है, संसार में जो मेघावी बन करके, प्रज्ञावी बन करके और ऋतम्भरावी बन करके परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

माता पिता से पूर्व अन्न में परमाणु

बेटा! ऋषि ने कहा हे देवी! देखो, वही परमाणु थे, जो पिता के संग में विराजमान थे, और माता के शरीर में रज रूप में, रस रूप में विराजमान थे, क्योंकि माता ब्रह्मचारिणी कहलाती है, ओजस्वी कहलाती है, महा तपस्वी कहलाती है, गार्गी की भान्ति कहलाती है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक्, ऋषि ने वर्णन कराया, तो उन्होंने कहा, हे राजन्! मानो पिप्लाद जी से कहा, देवी ने, हे भगवन! मैं यह जानना चाहती हूँ। जब माता पिता के शरीर में भी मानो माता पिता का भी शरीर नहीं था, तो उससे पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा यही परमाणु मानो कुछ अन्न में विराजमान थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में विराजमान थे, यही परमाणु थे, जो मानो देखो, अन्न को सुगठित बनाता है। अन्न को भी प्रगट करता है। मानो देखो, मानो देखो, वनस्पति भी इसी से, उन्हीं परमाणुओं से सुगठित रहती हैं, इसीलिए, हे देवी! यह परमाणु देखो, कुछ अन्न में विराजमान थे, कुछ नाना प्रकार की वनस्पतियों में विराजमान थे, उनकी पत्नी ने कहा मैं यह जानना और चाहती हूँ, मानो जब यह वनस्पति और अन्न भी नहीं था, उसके पूर्व यह परमाणु कहां रहते थे? उन्होंने कहा यही परमाणु मानो देखो, यही परमाणु, जिससे शरीर बना हुआ है, देखो, कृषक की भूमि में ललाहित हो रहे थे, अहा! कृषक भूमि में उपज हो रहे थे, श्वंधन हो रहे थे, उन्होंने कहा भगवन! जब यह कृषक की भूमि नहीं थी, उससे पूर्व यह परमाणु, यह परमाणु कहां थे? क्योंकि उसमें भी नहीं थे, अहा! ऋषि ने कहा देवी!

यही परमाणु मानो पृथ्वी में बिखरे परमाणु थे, पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु थे। पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु ही आज तुम्हे यह प्रतीत हो रहे हैं। अहा! पृथ्वी में बिखरे हुए परमाणु, यह ही नहीं माना जा सकता, क्या पार्थिव तत्त्व ही हमारे यहां प्रधानता में परणित होता है, आचार्यों ने कहा है, इस मानव शरीर में बेटा! कुछ पृथ्वी के परमाणु होते है, कुछ अग्नि के परमाणु होते हैं, कुछ वायु के परमाणु होते हैं, कुछ जल के परमाणु होते हैं, कुछ अन्तरिक्ष परमाणु होते हैं, मानो पांचो प्रकार के परमाणु, इस मानव शरीर में बेटा! भास रहे हैं। उन्हीं परमाणुओ से मानव का शरीर देखो, सुगठित रहता है, इसमें चैतन्य आत्मा विराज रही है, जिन परमाणुओं को सुगठित करता है।

परमाणुओं का परमाणुओं में विलय

उन्होंने कहा हे देवी! यह तुम्हे दृष्टिपात होगा, जिस मानव शरीर से यह अन्तरात्मा चैतन्य चला जाता है। अन्तरात्मा चला जाता है, उस समय तुम्हे यह प्रतीत है, क्या यह परमाणु कहां चले जाते हैं? अहा! उन्होंने कहा देवी! जब यह आत्मा चला जाता है, यह मानो देखो, अग्नि में दाह कर दिया जाता है। मानो उस शरीर का शव का उस समय देखो, वह अग्नि के परमाणु अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, जल के परमाणु जल में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, वायु के परमाणु वायु में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, अहा! वह पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। हे देवी! संसार में देखो, जो पांचो प्रकार के जो परमाणु हैं, पांचों में लय हो जाते हैं, और आत्मा चैतन्य वह भी किसी काल में नष्ट नही होता न तो परमाणुवाद ही विनाशता को प्राप्त होता है, और न आत्मा ही विनाशता को प्राप्त होता है। यह तुम्हे अज्ञानता कैसे आ जाती है कि मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया है।

पापों से भयभीत व्यक्ति को मृत्यु का भय

आज तुम्हे यह प्रतीत है कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती मानो देखो, यह तो तुम्हे निर्णय हो गया होगा क्या मृत्यु केवल क्या है? आज यह विचार विनिमय प्रत्येक मानव को कर लेना चाहिए, कि मृत्यु है क्या? ऋषि ने

कहा है हे राजन्! मृत्यु उसे कहा जाता है जो संसार में मानो अन्धकार बन करके रहता है। संसार में जो भयभीत रहता है, जो पाप कर्म करता है, जो अपने पापों से भयभीत रहता है, वही मानो मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं, अहा! जो मानव सदैव निर्भयवत को प्राप्त हो जाते हैं। जो ब्रह्मवेत्ता बना करते हैं ब्रह्म के ऊपर जिनका चिन्तन रहता है। मानव शरीर के ऊपर जिनका चिन्तन रहता है, जो अपनी इन्द्रियों का, इन्द्रियों के विषयों की सामग्री बना करके, यज्ञशाला में हूत करते हैं, उन्हे बेटा! मृत्यु का भय नहीं होता, मृत्यु का भय किन्हें होता है? मृत्यु उनकों निगलती है, जो बेटा! देखो, उस आवागमन के सदैव चक्र में रहते हैं, आवागमन की प्रतिभा में रमण करते रहते हैं। आज यह विचारना है मानो देखो, वह जो आवागमन है, अप्रत कहलाया जाता है। परन्तु यह ज्ञान में रहने वाला है, ज्ञान स्वरूप कहलाया जाता है, मेंरे प्यारे! ऋषिवर! आत्मा में अल्पज्ञता अवश्य रहती है। परन्तु देखो, इसमें ज्ञान का प्रकाश सदैव होता है, ज्ञान और प्रयत्न इसका स्वाभाविक गुण होता है, जो मैंने किसी काल में बेटा! मैंने वर्णन भी कराया है। आज मैं उस विवेचना में अधिक जाना नहीं चाहता हूँ। वैज्ञानिक क्या कह रहा है, ब्रह्मचारी कहता है, क्या मैं मृत्यु से विजय होना चाहता हूँ, क्योंकि वह मृत्यु से क्यों विजय होना चाहता है? क्योंकि ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो ब्रह्मचर्यवत हो जाता है। जिसका ब्रह्मचर्य ही मानो देखो, ब्रह्म में जिसका मिलान हो जाता है, ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जिसका मुनिवरों! देखो, ब्रह्म से जिसकी सुगठिता हो जाती है अहा! ब्रह्म से सहकारिता हो जाती है, ब्रह्म से उसका मिलन हो जाता है, बेटा! वही तो मानव संसार में बेटा! मृत्यु से पार हो सकेगा।

मननशील ही मानव

मेंरे प्यारे! ऋषिवर! आचार्यों जनों ने बहुत सुन्दर शब्दों मे कहा है, ऋषि मुनियों ने कहा है, मुझे तो बेटा! स्मरण आता रहता है, जब महाराजा इन्द्र बेटा! देखो, महाराजा प्रजापति आश्रम में पंहुचे थे, वहाँ उन्होंने बेटा! तप किया, कैसा तप किया, ब्रह्मचर्य अहा! आचार्य ने कहा

हे इन्द्र! तुम बत्तीस वर्ष, मेरे आश्रम में तप करो, कहा जाता है, इन्द्र ने इसी प्रकार देखो, एक सौ एक वर्ष की तपस्या की, तपस्या के पश्चात ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए देखो, व्रत हो गएं। इसीलिए आज हमें विचारना है, क्या हम स्वयं तपस्वी बनें, विचारवान बनें और देखो, मृत्यु से विजय होने का प्रयास करना है। देखो, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए, सदैव मानव को तत्पर रहना चाहिए। बेटा! यह तो मैंने बहुत पूर्व काल में, अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा था कि मानव को विचारना है, क्या हम सदैव संसार में क्यों आते हैं? विचार विनिमय करने के लिए आते हैं मानव बनने के लिए आते हैं, देवता बनने के लिए आते हैं, बेटा! मुनिवरों! देखो, देवता बनने के लिए और मानव बनने के लिए मुनिवरों! देखो, मननशील को मानव कहते हैं। और देववत उसे कहा हैं, देवता उसे कहा जाता है, बेटा! जो अपनी प्रवृत्तियों पर बेटा! संयम कर लेता है। अपनी इन्द्रियों का दमन कर लेता है, कैसा दमन? क्या उसकी इन्द्रियाँ बिखरी हुई नहीं होती। वे देवता कहलाया जाता है, और जो मननशील होता है, उसको मानव कहा जाता है।

अज्ञानता में कल्पना

इसीलिए बेटा! मैं अधिक विचार देने नहीं आया हूँ, केवल सूक्ष्म सा परिचय देने चला आता हूँ। सूक्ष्म सा मैंने यह परिचय दिया है, आज मानव को मृत्यु से पार होना है, बेटा! मृत्यु है क्या? विचारना यह है प्रत्येक मानव को बेटा! मृत्यु वह होती है, जो मुनिवरों! देखो, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के सदैव बेटा! इनमें भी यहीं प्रवृत्तियाँ रमण करती रहती हैं। वही मानव संसार में बेटा! मृत्यु को प्राप्त होते हैं, और जो इनके उपराम इनकी प्रवृत्तियाँ हो जाती है। उनको बेटा! मृत्यु नहीं छुआ करती है, वह मृत्यु को अपने नीचे दमन कर लेते हैं, और वह निगल जाते हैं, स्वयं निगल जाते हैं, मृत्यु को और मुनिवरों! मृत्यु उनको नहीं छुआ करती है। यह है बेटा! आज का हमारा वाक आज मैं अधिक चर्चा करने नहीं आया, केवल सूक्ष्म सा वाक मैंने तुम्हे प्रगट कराया है,

क्या, आज हमें मृत्यु से पार होना है, महाराज महर्षि पिप्लाद आदि आचार्यों ने बेटा! जो विवरण दिएं हैं, वह मैंने संक्षिप्त में परिचय कराते हुए मैंने कहा है, महाराज रेवक मुनि ने कहा हे ज्ञानश्रुति! आज तुम्हे ब्रह्मवेत्ता बनना है। तो मेरा जो देवता है वह मृत्यु है, आज मृत्यु से तुम्हे विजय होना है। तो आज तुम देखो, मृत्यु के स्वरूप को जान लो, कि मृत्यु है क्या? संसार में किसी वस्तु का विनाश नहीं होता, क्योंकि अज्ञानता जो मानव संसार में मानो देखो, संसार में जितना भी कष्ट है, एक मेरी प्यारी माता सदैव मानो कष्ट में रहती है, कहीं देखो, पुत्र का वियोग है, कही पति का वियोग है, नाना प्रकार के वियोग में मेरी प्यारी माता संलग्न रहती है। क्योंकि उसमें अभी ज्ञान नहीं है, अज्ञानता है, **क्योंकि अज्ञानता में कल्पना करता है, मानव और जब अज्ञान नहीं होता तो मुनिवरों! मानव कल्पना से रहित हो जाता है**। उस मानव के द्वारा कल्पना नहीं रह पाती।

परमात्मा का विज्ञान

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कह रहा है? क्या हम सदैव उस महान आनन्दमयी उस महान प्रभु को जानने वाले बनें और उसका चिन्तन करने वाले बनें। परन्तु देखो, अपने को तपस्वी बनाएं, उज्ज्वल बनाएं, और मृत्यु से पार होने का प्रायस करते चले जाएं, मेरे प्यारे! ऋषिवर! वही मानव मृत्यु से पार होता है। जो मानव अपने कर्तव्य में संलग्न रहता है, कर्तव्य का पालन करता है, कर्तव्यवादी को बेटा! भय नहीं होता, कर्तव्यवादी की मृत्यु नहीं होती। मुनिवरों! देखो, जो अपने अपने कार्य में संलग्न होता है, मेरी पवित्र माता, जो अपना, उसे आत्म विश्वास होता है, क्या तुझे संसार में कणाद और गौतम को जन्म देना है, मानो देखो, यहाँ व्यास और पतञ्जलि को जन्म देना है, देखो, कृष्ण और भगवान राम को जन्म देना है। जिससे यह संसार मानो वैज्ञानिकता में परणित हो जाए, आध्यात्मिक विज्ञान और दोनों में पारंगत होते हुए,

हम इस संसार सागर से पार हो जाए, वह मानव के लिए कितना लाभप्रद हैं, कितना लाभ देते हैं, क्या वह जो पृथ्वी विष उगलती है उसको बेटा! देखो, समुद्र के प्राणी अपने में शोषण कर लेते हैं, अपने में ग्रहण कर लेते हैं, मानव जब क्रोध करता है, नाना प्रकार का विष उगलता है, उस विष को बेटा! देखो, इस पृथ्वी के विचरण करने वाले बेटा! सर्पराज जैसे मुनिवरों! और भी विषैले प्राणी, उस विष को अपने में धारण कर लेते हैं। हे मानव! यह नाना प्रकार की योनि, तेरे लिए कितनी लाभदायक हैं, और यह प्रभु ने एक दूसरे प्राणी के कितना निकटतम यह जीवन बनाया है, इसके ऊपर भी तो विचार विनिमय करना है, यह भी अनुसन्धान करना है कि परमात्मा का विज्ञान कितना महान है, क्या, परमात्मा के विज्ञान से हम जब विचार विनिमय करेंगे, क्या हमें यह वास्तव में अनुभव होगा कि हम वास्तव में देखो, परमात्मा की सृष्टि में हैं, परमात्मा के राष्ट्र में हैं, अपने को, हम जब प्रकाश में ही दृष्टिपात करते हैं। तो बेटा! देखो, हमारा जीवन प्रकाश ही प्रकाश में रमण करने लगता है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक क्या कह रहा है, हम वास्तव में उस महामना प्रभु की याचना करते हुए जो संसार में देखो, माता हो, जन्म देने वाली हो, वसुन्धरा है, जिसके गर्भ में बेटा! हम सब वशीभूत हो रहे हैं। उस माता वसुन्धरा के लिए हम सदैव याचना करते रहें, प्रभु का बेटा! गुणगान गाते रहें, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाए बेटा! कल प्रगट करूंगा। मुनिवरों! देखो, महर्षि रेवक मुनि की चर्चा दोनो का देखो, ज्ञान और विज्ञान की विवेचना चलती रही, क्योंकि मृत्यु ही, महर्षि रेवक मुनि का देवता मृत्यु था। अहा! मृत्यु के ऊपर दोंनो का विचार विनिमय चलता रहा।

आत्मा का भोजन

बेटा! यह आज का वाक अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, कल समय मिलेगा तो आध्यात्मिकवाद पर विवेचना कल प्रगट कर सकेंगे। आज का वाक यह हमारा

समाप्त होने जा रहा है, आज के वाक्यों का अभिप्राय ये कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्यांए, प्रत्येक ऋषि मण्डल, मुनिवरों! देखो, परमात्मा के राष्ट्र में आए हैं, परमात्मा की उपासना करना, उसको अपना देव स्वीकार करना, मानो उसके ज्ञान और विज्ञान को विचार विनिमय करना, बेटा! यह हमारा सबसे उत्तम कर्तव्य है। अपने उदर की पूर्ति भी हमें करनी है, उसे भी करना चाहिए, परन्तु देखो, वह आत्मा का जो भोजन है, ज्ञान है, विवेक है, उसके ऊपर भी मानव का अध्ययन होना चाहिए। यह है बेटा! आज का हमारा वाक अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट कर सकूंगा ।

17 ## २० ०९ १९६९ मृत्यु का अभाव

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस प्रवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं, और उसका ज्ञान और विज्ञान भी प्रायः अनन्तमयी माना गया है क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए हैं, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ, जो उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके, क्योंकि वे सीमा में आने वाले नहीं हैं, वे प्रायः अनन्तता में सदैव रमण करते रहते हैं। और वह अनन्तवान हैं, इसीलिए हम ये कहा करते हैं कि हम उस परमपिता परमात्मा की महती, अथवा उसके गुणों का गुणगान गाना हमारा कर्तव्य है। क्योंकि उस परमपिता परमात्मा का जो अनन्तमयी प्रकाश है, अथवा उसकी जो अनन्तमयी रचना है, वह इतनी अनन्तमयी है, क्या उसके ऊपर सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक, नाना प्रकार का अन्वेषण चलता रहा है। और मानव अपने में विचार विनिमय करता रहा है, कहीं वह नाना प्रकार के यन्त्रों में,

वह प्रवेश हो जाता है। कहीं प्राण और अपान के द्वारा एकाग्रता का अव्रत करता हुआ, परमात्मा का दर्शन करना चाहता है। परन्तु कहीं वह, यह विचारता है कि मेरी मृत्यु नहीं आनी चाहिए, मैं मृत्युञ्जय बनूं, तो उस परमपिता परमात्मा की महती को जानता रहूँ। एक मानव यह विचार विनिमय कर रहा है, क्या, मैं आत्मा के लोक को जानना चाहता हूँ कि आत्मा किस लोक में वास करता है।

ब्रह्माण्ड में अनुसन्धान

तो बेटा! नाना प्रकार का विचार विनिमय मानव करता रहा है, कहीं मानो नाना प्रकार के यन्त्रों के द्वारा अग्नि की धाराओं पर सर्वत्रता को अपने को दृष्टिपात करना चाहता है। कहीं तो उस परमपिता परमात्मा का जो अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है, उसके ऊपर विचार विनिमय करता है, तो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की माला बना लेता है, और माला बना करके उसमें एक दूसरे का समन्वय करने का प्रयास करता है, और अपना यातायात बनाने के लिए सदैव तत्पर रहा है। तो बेटा! यह सृष्टि के प्रारम्भ से यह क्रियाकलाप चला आ रहा है, और मानव उसके ऊपर विचार विनिमय करता रहा है, कहीं मानो देखो, अपनी जितेन्द्रियों को अपने इन्द्रियों में जितेन्द्रियता का साहस परणित करने लगता है, कहीं मानो देखो, मनस्तव आत्मां पुरूकाशा ब्रहे देवतवाम् आत्मा के प्रकाश में एक मनस्तव के द्वारा वे एकाग्र करता हुआ, बुद्धि को माध्यम बनाता हुआ, और वह चित्त के मण्डल में, बेटा! नाना प्रकार के संस्कारों को, बेटा! उद्बुद्ध करता रहता है। तो यह सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके, वर्तमान के काल तक, नाना प्रकार का अन्वेषण होता रहा है, कहीं मानो देखो, विज्ञान अपनी आभा में रमण करता रहता है, कहीं मानो देखो, आध्यात्मिकवाद में प्रवेश हो करके, परमात्मा का दर्शन करना चाहता है। तो यह जो नाना प्रकार का एक विचार विनिमय सृष्टि के प्रारम्भ से हो रहा है, तो इसके ऊपर बेटा! हमें अपने में विचार विनिमय करना चाहिए और उस परमपिता परमात्मा का जो यह अनन्तमयी यह ब्रह्माण्ड है, इस ब्रह्माण्ड में हम अनुसन्धान करते रहें, और विचार

विनिमय करते हुए, अपने मनस्तव की शान्ति के लिए सदैव मृत्युञ्जयी बनने के लिए सदैव तत्पर रहा है।

मृत्युञ्जय

आओ, बेटा! तुम्हें एक ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ, जिन वाक्यों को मैंने तुम्हे कई कालों में वर्णन करते हुए कहा है, क्या मानव, अपने को मृत्युञ्जय बनाना चाहता है, कहीं वह याग के माध्यम से और याग भी बेटा! कई प्रकार के यागों का अपने में अन्वेषण करता रहा है। कहीं मुनिवरों! देखो, अग्निष्टोम याग के द्वारा, कही अजामेध याग के द्वारा, कही वाजपेयी याग, नाना प्रकार के यागों का अपने में चयन करता रहता है। कहीं अश्वमेध यागों का वर्णन करता रहता है, तो मूल में यह कि संसार में, मानव अपने में देखो, अपनेपन को ही दृष्टिपात करता रहता है, ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ने वाला, अपने में मृत्युञ्जय बनना चाहता है। तो आओ, बेटा! देखो, मैं तुम्हें मृत्युञ्जय तो बनाना नहीं चाहूँगा, केवल विचार विनिमय यह कि ऋषि मुनियों का जो अपना विचार है, ऋषि मुनियों की जो अपनी धाराएं हैं, मनन और चिन्तन करने की वह बड़ी विशुद्ध रूप में रही हैं और वह अपने को कहां कहां ले जाते रहें हैं, इसके ऊपर बेटा! अपना मन्तव्य अपना कुछ सूक्ष्म सा प्रगट कराना चाहता हूँ।

आओ, मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में, बेटा! महात्मा जमदग्नि मुनि के यहाँ, एक सभा हुई, और वह सभा इसीलिए, विचार विनिमय में करने के लिए क्या, यह मृत्यु क्या है? जो प्रत्येक मानव मृत्यु के ऊपर बेटा! अपना विचार विनिमय करता रहा है, यह मृत्यु संसार को रूला देती है, और मानो मृत्युञ्जय बनना चाहता है, परन्तु मृत्यु उसके पश्चात भी रूलाने वाली है, उसे रुद्र कहते हैं। क्योंकि रुद्र भी उसी को कहते हैं, जो रूलाने वाला है। तो मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहा है, महात्मा जमदग्नि के यहाँ, बेटा! पारेत्वर ऋषि महाराज की अध्यक्षता में, वह सभा हुई थी और उस सभा में मुनिवरों! देखो, नाना ऋषिवर, अपने में विचार विनिमय करने लगे, जिसमें बेटा! देखो, चाक्राणी गार्गी भी विद्यमान

थी और महर्षि प्रवाहण और महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, सोमकेतु और देखो, भारद्वाज मानो देखो, ब्रह्मचारी कवन्धी और ब्रह्मचारी सुकेता और भी नाना जैसे देवर्षि नारद और देखो, महर्षि पिप्लाद मुनि इत्यादियों को एक समाज एकत्रित हुआ, और इस एकत्रित हुए समाज में, बेटा! देखो, महर्षियों ने यह अपना वर्णन किया, कि महर्षि वैशम्पायन भी विद्यमान थे। तो मेरे पुत्रों! देखो, यह एक प्रसंग, उन्होंने एक वेद का मन्त्र, महर्षि ने अपना एक वेदमन्त्र का उद्गीत गाया, और महात्मा जमदग्नि ने यह कहा, मृत्युंजं ब्रह्मा कृतं देवत्वं ब्रव्हा वसुन्धरं देवतवम् ब्रह्मा लोकाः मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने यह कहा कि प्रभु! एक वेद मन्त्र का उद्गीत गाने के लिए मैं उपस्थित हुआ हूँ, और मैंने यह वेदमन्त्र गाया है और भी इस प्रकार के अनन्य वेदमन्त्र है, यह वेदमन्त्र यह प्रश्न करता है कि संसार में मृत्यु क्या है? बेटा! मृत्यु के सम्बन्ध में ये प्रसंग आया, कि मृत्यु है क्या? जो संसार में मानो देखो, एक दूसरे को रूलाती रहती है, यह अज्ञान में अवृत्ति है क्या है?

तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि मुनियों का एक वेदमन्त्र के ऊपर विचार विनिमय होने लगा, तो ऋषि मुनि अपने में मौन हो गएं, परन्तु चाक्राणी गार्गी उपस्थित हुई और उन्होंने कहा हे ब्रह्मवेत्ताओं! यदि तुम्हारी आज्ञा हो, तो मैं अपना मन्तव्य प्रगट करूं। मेरे प्यारे! महात्मा अश्वल ने कहा, कि अवश्य करो। तो मेरे प्यारे! देखो, चाक्राणी ने कहा, कि हे प्रभु! मेरे विचार में तो यह आता है, कि शरीर और आत्मा का दोनों का पृथक पृथक हो जाना ही संसार में मृत्यु मानी जाती है। मेरे प्यारे! आत्मा इस शरीर को, पञ्च महाभूतों के लोक को त्याग देता है, और यह अमृतं चेतना है, यह अपने मानो कर्म बन्धन को ले करके, मानो शरीर को त्याग देता है, इसका नाम मृत्यु है। इतने में बेटा! महर्षि अमृतं देखो, पिप्लाद जी ने यह कहा कि हे देवी! यह तुम्हारा वाक तो बड़ा प्रिय है, परन्तु यह मृत्यु शब्द नहीं बनता है, क्योंकि मृत्यु यदि शरीर भी, ज्यों का त्यों है और आत्मा भी ज्यों की त्यों है, एक दूसरे का पृथक पृथक

हो जाना, मृत्यु नहीं बनता। मेरे प्यारे! चाक्राणी ने कहा प्रभु! मेरे विचार में तो ऐसा ही आता है। तो अपने में मौन हो गई, और इतने में महात्मा अश्वल ने यह कहा, कि वास्तव में इसका नाम मृत्यु नहीं है। उन्होंने कहा, तो महाराज! मृत्यु क्या है? तो उन्होंने पिप्लाद मुनि से यह कहा, कि प्रभु! आप अपना कुछ मन्तव्य दीजिए। तो उस समय महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज उपस्थित हुए, पिप्लाद जी ने कहा, कि संसार में, मेरा विचार तो ऐसा है, इस प्रकार का वेदमन्त्र कहता है, यम भवं ब्रह्मा मृतं ब्रहे अभावं असुतम् ब्रहे कृता, वेद का ऋषि कहता है, मेरे विचार में तो यह आता है कि संसार में तो मृत्यु का अभाव है, मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं होती।

संसार में रूदन

मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने यह निर्णय दिया, तो महर्षि प्रवाहण जी उपस्थित हो करके बोले, क्या हे प्रभु! जब यह मृत्यु नहीं है, तो संसार रूदन क्यों कर रहा है? यह एक दूसरा मानव, मानव में वशीभूत हो करके ही मानो देखो, अपनी अजब्रहे प्रकाशाम् भूतं ब्रह्मा वर्ण यह मानो अपने में प्रकाश को नहीं दृष्टिपात कर रहा है। तो पिप्लाद मुनि ने एक वेदमन्त्र का उद्गीत गाया और वह वेदमन्त्र से उच्चारण करने लगे अमब्रहे देवम्ब्रहा वाचन्नमं अज्ञानाम भूतं कृत्ति देवाः क्या हे ऋषियों! मेरे विचार में, ये आता है, संसार में मृत्यु, अज्ञान को कहते हैं, अन्धकार को कहते हैं। जहाँ अन्धकार है, अज्ञान है, वहीं मृत्यु माना गया है। शरीर को त्यागने का नाम मृत्यु नहीं है। क्योंकि जिस वस्तु का निर्माण होता है, उसका विच्छेद अवश्य होता है, क्योंकि विच्छेद का नाम मृत्यु नहीं कहा जाएगा, मृत्यु नाम अज्ञान का है। जो उसके भरण में मानो देखो, हम भृ हो जाते हैं, तो वह अमृतं ब्रह्मा मानो देखो, उसका नाम अज्ञान है, अज्ञान को जहाँ त्यागा, ज्ञान में प्रकाश हुआ, और प्रकाश का नाम ही संसार में जीवन माना गया है। जब मानव अपने में यह ग्रहण कर लेता है, क्या प्रभु के राष्ट्र में मृत्यु नहीं होती, प्रभु के राष्ट्र में अन्धकार नहीं होता, आलस्य नहीं होता, प्रमाद नहीं होता, जब राष्ट्र में

प्रमादम् ब्रव्हे प्रभु के राष्ट्र में जब आलस्य और प्रमाद नहीं हैं, वहाँ अन्धकार रात्रि भी नहीं हैं, और जहाँ रात्रि नहीं है, वहाँ सदैव प्रकाश रहता है, प्रकाश का नाम जीवन माना गया है। तो मेरे पुत्रों! ऋषि ने इस प्रकार अपना वाक प्रगट किया, तो ऋषिवर मौन हो गएं, अपने में विचार विनिमय करने लगे, परन्तु प्रश्नों की बौछार भी करने लगे। अश्वल ने कहा कि हे प्रभु! यह तो हमने स्वीकार कर लिया, परन्तु यह विचारों में नही आ रहा है। उन्होंने कहा कि विचारों में तो आना ही नही हैं, जब तक अज्ञान रहेगा और जब ज्ञान और ज्ञान रूपी प्रकाश का उदय हो जाता है, और विवेक की, उसकी पुट लग जाती है, तो यह हमारे मानो क्रियाकलापों में आना प्रारम्भ हो जाता है। जब बेटा! ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया।

महर्षि पिप्लाद मुनि की पत्नी की व्याकुलता

तो मेरे प्यारे! सन्ध्या का काल हो गया, ऋषि मुनि सब अपनी अपनी सन्ध्या में मानो विद्यमान हो गएं, वे ध्यानावस्थित हो गएं और पिप्लाद मुनि ने यह विचारा, कि मुझे बहुत समय हो गएं हैं, गृह को त्यागे हुए, मैं अपने गृह में अपना वास करूंगा। रात्रि काल में तो बेटा! महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए जैसे अपने गृह में उन्होंने प्रवेश किया तो मुनिवरों! देखो, उनकी पत्नी व्याकुल थी उन्होंने कहा देवी! तुम व्याकुल क्यों हो रही हो, शंकुतका! उन्होंने कहा हे प्रभु! मैं इसीलिए व्याकुल हो रही हूँ, क्योंकि मेरा एक सात वर्षीय पुत्र था, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया, मेरे प्यारे! महर्षि पिप्लाद मुनि बोले, कि देवी! तुम्हें यह प्रतीत है, कि मैं ब्रह्मवेत्ताओं के समाज में से, मेरा आगमन हो रहा है, और मैं यह निर्णय करता रहता हूँ, कि मृत्यु संसार में कोई वस्तु नहीं है, और तुम मृत्युञ्जय बनने के लिए, मानो मैं तुम्हे उपदेश देता रहता हूँ, और तुम उसके पश्चात भी तुम मृत्यु को ही पुकार रही हो। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि देवी ने कहा हे प्रभु! यह तो मैंने स्वीकार कर लिया कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं आप का यह निर्णय है। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि जब अमृतं ब्रह्मा देखो, यह जो मेरा शरीर है, यह

शरीर मङ्गलम् ब्रह्मे वर्णसुता मानो यह अमृत को नहीं है, तो यह शरीर रूप कहां चला जाता है? जब आत्म ब्रह्मा तो वेद का ऋषि कहने लगा हे देवी! संसार में यह जो तुम्हारा शरीर है, यह जब कहां चला जाता है? कहां रहता है? मानो देखो, परमाणुओं का यह संघात है, परमाणुओं से इसका निर्माण होता है, और वह निर्माणवेत्ता निर्माण करता रहता है। परन्तु देखो, यह परमाणु जैसे देखो, जरायुज होता है, सूक्ष्म शरीर होता है, परन्तु वह युवा होने लगता है। यह मानो पञ्च महाभूतों के जो परमाणु हैं, यह अपनी अपनी आभा में रत्त हो करके, युवातव में प्राप्त हो जाते हैं। परन्तु उसी मे यह रत्त रहने वाला जगत है।

देवताओं के सहयोग से शरीर

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा प्रभु! यह भी मैंने स्वीकार कर लिया। परन्तु जब यह परमाणुवाद नहीं होता, इस प्रकार का मानो शरीर नहीं होता, तो मानो यह परमाणु कहां रहता है, जिन परमाणुओं का यह संघात है? ऋषि ने कहा हे देवी! यही परमाणुवाद माता के गर्भस्थल में विद्यमान हैं। मानो माता के गर्भ में एक बिन्दु है, बिन्दु में शिशु है, और वह जो शिशु है मानो देखो, जब वह माता के गर्भस्थल में प्रवेश करता है। तो देवताओं में एक जागरूकता प्रगट हो जाती है, और देवता अपनी अपनी देवनगरियों से अपना साकल्य ले करके, शिशु की रक्षा करते रहते हैं। क्या, जैसे मानो तुम्हे प्रतीत है, चन्द्रमा अमृत देता है, सूर्य प्रकाश देता है, वायु प्राण देता है, मानो देखो, अन्तरिक्ष अवकाश में रहता है। अमृतं ब्रह्मा देखो, जो पृथ्वी गुरूतव देना प्रारम्भ करती है, अग्नि उष्ण बनाने लगती है, तो इसी प्रकार मानो यह जो पञ्च महाभूतों का यह जो लोक है, इस लोक में शिशु विद्यमान रहता है, और देवताजन उसकी रक्षा करने के लिए तत्पर हो जाते हैं, रक्षा करते रहते हैं। वह अपने शरीरों को प्राप्त होता रहता है।

बुद्धियों के चार प्रकार

तो मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने यह कहा और निर्माण करने वाला निर्माण करता है, जब निर्माण करने

वाला निर्माण करता है, तो बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार, दौ सौ दो नाड़ियोँ का निर्माण करता है। मेरी भोली माता का यह प्रतीत नहीं, कौन निर्माण कर रहा है, बेटा! कहीं मानो देखो, बुद्धि का निर्माण है। मनस्तव है, और यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु होने से उससे सूक्ष्म बुद्धि है। मेरे प्यारे! देखो, मनस्तव, बुद्धि के चार प्रकार माने गएं हैं अवान्तर भेदन माने गएं हैं परन्तु चार देखो, मुख्य रूप से बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी, मेरे प्यारे! देखो, बुद्धि कैसे यह दृष्टा बनी हुई है। मेधा, जब उसका प्रयोग करती है, उसी के अनुसार जीवन बनता है, ऋतम्भरा, जो जान करके मौन हो जाती है, और प्रज्ञा उसे कहते हैं। जहाँ परमात्मा का उसे दर्शन होता है। विवेक की जागरूकता, प्रबलता को प्राप्त होने लगती है। तो इस प्रकार मानो यह चार प्रकार की बुद्धियों का वर्णन है। कहीं मानो देखो, हृदय भी दो प्रकार के निर्माणित हैं, एक शरीर के मध्य में है, और द्वितीय जो हृदय है वह लघु मस्तिष्क में रहता है, तो मानो देखो, यह परमपिता परमात्मा का रचाया हुआ, यह मानवीय शरीर है। जहाँ देवता अपने अपने क्रियाकलापों में सदैव तत्पर रहते हैं, और उन्हीं क्रियाकलापों में मानव अपने में रत्त हो जाता है। तो हे मेरे अमृतं हे देवी! तुम्हें यह प्रतीत है, क्या जो भी मानो देखो, क्रियाकलाप कर रहा है, नाना प्रकार के मस्तिष्कों का निर्माण करता है, जैसे लघु मस्तिष्क है, रेण मस्तिष्क है, सम्भूति मस्तिष्क है, जहाँ वह लोक लोकान्तरों का दर्शन करता हुआ परमात्मा के ब्रह्माण्ड को जानता है। तो इस प्रकार देखो, अपने में विज्ञानवेत्ता बन करके, एक अणु दूसरे अणु में प्रवेश होता हुआ, दृष्टिपात करता है।

पिंड का निर्माण

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार यह परमात्मा की रचना का यह निमित्त है, इसीलिए वह रचयिता है, मेरी भोली माता तेरे गर्भस्थल में निर्माण हो रहा है। परन्तु तुझे निर्माणवेत्ता का प्रतीक नहीं है, कौन निर्माण कर रहा है, कैसे निर्माण हो रहा है, अमृत कौन दे रहा है, प्रकाश कहां से आ रहा है, गुरूतव कहां से आ रहा है, देखो, पिण्ड का

निर्माण होता है। मेरे प्यारे! देखो, यह दस प्राण है, प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान और नाग, देवदत, धनञ्जय, कुरू और कृकल यह दस प्राण माने गएं हैं। इन्हीं प्राणों के आधार पर यह शरीर मानो क्रियाशीलता में परणित हो रहा है। हे माँ! तुझे यह प्रतीत नहीं है, कौन निर्माणवेत्ता है, वह प्रभु तेरे कितना निकट है, तेरे गर्भस्थल में निर्माण कर रहा है, परन्तु निर्माणवेत्ता का कोई प्रतीत नहीं होता। तो मेरे प्यारे! देखो, उस परमपिता परमात्मा की महती में मैं विशेष जाना नहीं चाहता हूँ, विचार विनिमय क्या, जब पिप्लाद मुनि ने अपना यह निर्णय दिया, तो शंकुतका ने कहा प्रभु! यह भी मेरे विचार में आ गया है। परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ, क्या मानो माता के गर्भस्थल में शिशु भी नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहां रहता है, भगवन! ? तो उस समय उन्होंने कहा हे देवी! जब माता का गर्भाशय नहीं होता, तो यही परमाणुवाद मानो देखो, कुछ वीरतव के रूप में होता है। कुछ वीरांगना के रूप में होता है। मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने अपना मन्तव्य देते हुए कहा, क्या वीरांगना जब इनकी रक्षा करती है, परमाणु की तो वह वीरतव वीरांगना ब्रव्हे व्रतम् देखो, वीरंगातव को प्राप्त हो करके और अपने में मानो निर्भय सदन बना लेती है।

अहिंसामय जीवन

विचार विनिमय क्या बेटा! मुझे चाक्राणी गार्गी का जीवन स्मरण आता रहता है, जब वे वेदों का गान गाने लगती, तो बेटा! देखो, सिंहराज और सर्पराज उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे। कितना अहिंसामय जीवन बन जाता है, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य ही, संसार में ब्रह्म और चरी के दो शब्द होते है। ब्रह्म कहते है परमात्मा को और चरी कहते हैं प्रकृति को, जो इन दोनों को अङ्गों और उपांगो से जान करके इसी के अनुसार मानो अपने जीवन में क्रियाकलाप बना लेता है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह महानता को प्राप्त हो जाता है, और वह ब्रह्मचरिष्यामि बन

करके ब्रह्म को प्राप्त होने लगता है।

विष्णु

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार मेधाम् भूत देखो, वह वीरांगना कहलाती है मेरे प्यारे! इन्हीं परमाणुओं की रक्षा करने वाला ब्रह्मचारी पितर कहलाता है, मानो वह ब्रह्मचरिष्यामि जो देवताओं की सभा में सुशोभनीय हो जाता है। वे देवतव को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे! जो पितरों से भी ऊर्ध्वा गति में रमण करने लगता है, तो विचार आता है मुनिवरों! देखो, वह वीरतव को प्राप्त होता हुआ, वह वीरतव में परमाणु विद्यमान होते हैं। मेरे प्यारे! उनकी रक्षा करने वाला देवता बन जाता है, और देववत को बन करके आत्मा को विष्णु बनाता है, और विष्णु कैसे बनाता है? मैंने तुम्हे कई काल में वर्णन करते हुए कहा है कि विष्णु नाम बेटा! परमात्मा का है। विष्णु आत्मा को कहते हैं, आत्मां भूतम विष्णुं ब्रह्मा देवाः। मेरे प्यारे! जैसे यज्ञ का नाम विष्णु है, इसी प्रकार आत्मा का नाम भी विष्णु है। जब यह मानो देखो, अक्षय क्षीर सागर में विष्णु विद्यमान होता है, तो नारद अपनी वीणा को ले करके शान्तम् ब्रहे देखो, वीणा में ध्वनि करने लगता है। गन्धर्व गान गाने लगता है।

अक्षय क्षीर सागर

तो वैदिक साहित्य में आया है, क्या मुनिवरों! देखो, नारद नाम मन का है, क्योंकि मन अपनी वीणा को ले करके चञ्चल रूपी वीणा को ले करके वह चञ्चलता को त्याग देता है। स्वरों में परणित हो जाता है और गन्धर्व नाम बुद्धि का है, यह अपना गान गाने लगती है, और मुनिवरों! देखो, वह महान बन करके अक्षय क्षीर सागर में रहता है अक्षय क्षीर नाम ज्ञान का विवेक का है उसमें आत्मा प्रवेश कर जाता है अष्ट चक्र और नौ द्वारों के माध्यम से यह सर्वत्रता को जान करके ब्रह्माण्ड को बेटा! अपना खिलवाड़ बना लेता है और बह्माण्ड का दर्शन करने लगता है। मेरे प्यारे! वह योगेश्वर बन करके ब्रह्मणं ब्रह्मा वह विष्णु की उपधियों को प्राप्त हो जाता है, तो विचार आता रहता है, वह विष्णु आत्मा जिसके चरणों में लक्ष्मी ओत प्रोत

होती है और वह अक्षय में ज्ञान के सागर में विवेक में रत्त हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, आत्मा विष्णु है, इसीलिए देवी! परमाणुओं की रक्षा करने वाला, अपने में वीरतव को प्राप्त हो करके अपनी आभा को परणित हो जाता है। मेरे पुत्रों! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार अपना उद्गीत गाया, तो देवी ने नतमस्तिष्क हो करके कहा प्रभु! यह तो मैंने जान लिया, अच्छी प्रकार परन्तु मेरा कुछ प्रश्न बना रहा, उन्होंने कहा देवी! उच्चारण करो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना और चाहती हूँ, क्या जब यह वीरांगना और वीरतव भी नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहां रहता है?

अन्न के सात प्रकार

भगवन! उन्होंने कहा देवी! जब वीरतव और वीरांगनातव नहीं होता, तो मानो यही परमाणुवाद अन्न में विद्यमान रहता है, जब सृष्टि के पिता ने देखो, सृष्टि का सृजन किया, तो सात प्रकार के अन्न को उन्होंने उत्पन्न किया, सबसे प्रथम अन्न का नामं ब्रह्मे बेटा! एक ही पौधा है, उस पर दो प्रकार का अन्न विद्यमान है। एक अन्न को मानव पान कर रहा है, और दूसरे अन्न को मुनिवरों! देखो, पशु पान कर रहा है। पशु पान करता है, तो वह दुग्ध देता है, पय देता है, और मानव पान करता है, तो ओज और तेज की उत्पति करता है। मेरे पुत्रों! देखो, कैसी प्रभु की रचना है अरे, एक ही पौधा है, उस पर दो प्रकार का अन्न विद्यमान है, एक अन्न को मेरे प्यारे! माता भोजनालय में तपाती है, एक अन्न को गो नाम का पशु पान कर रहा है। वह दुग्ध दे रहा है, पय दे रहा है, यह कैसा मेरे प्यारे! प्रभु का ब्रह्माण्ड है बेटा! मेरे प्यारे! देखो, मेरी प्यारी माता गायत्री छन्दों का पठन पाठन करती हुई, जब अपने पुत्र को भोज्य कराती है, तो उसकी मनोनीत इच्छा यह होती है, क्या अन्न में मेरे परमाणु निहित हो जाएं, अन्न में मेरे हृदय की तरंगे चली जाएं। क्या मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता बन जाएं, ज्ञानी बन जाएं, मृत्युञ्जय बन जाएं, ऐसी माता की पवित्र अवृत्ति भावना होती है। मेरे प्यारे! देखो, मानव अपने में विचारता रहता है, यह अन्नाद कहलाता है, तो यह दो प्रकार का अन्न है, एक को पशु पान कर रहा है,

एक को मानव पान कर रहा है। मेरे प्यारे! तीसरा जो अन्न है, उसे हूत कहते हैं, आहुति देना यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है, नाना प्रकार का साकल्य एकत्रित करता हुआ, श्रद्धामयी घृत को ले करके बेटा! वह हूत कर रहा है, और अग्नि के मुखारबिन्द में वह कहता है, प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय स्वाहाः, उदानाय स्वाहाः, समानाय स्वाहाः कह करके बेटा! उसमें हूत कर रहा है। क्योंकि प्राण ही तो भोगतव्य है, प्राण ही तो आहार करने वाला है। प्राण ही मेरे प्यारे! देखो, उसे क्षुधा की वृत्तियां प्राप्त हो जाती हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में कहता है, हे दिव्याम् भतम् ब्रह्मा हे दिव्या! आओ, हम देवताओं को अग्नि के मुखारबिन्द में अग्नि देवताओं का दूत है, अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है, और अग्नि में हम हूत करने वाले बनते हैं। जिससे देवता प्रसन्न हो जाएं, और यह पृथ्वी नाना प्रकार के व्यंजनों वाली बन जाएं। नाना प्रकार का अन्नाद देने लगें, क्योंकि जब देवता प्रसन्न होंगे, तो मानो देखो, समुद्रों से जलों का उत्थान होगा, जल से मेघ मण्डलों की उत्पति होगी, और यही जल से ही इन्द्र अपना प्रसन्न हो करके अपनी शचि की आज्ञा पा करके, बेटा! देखो, अपने प्राण रूपी वज्र से वत्रासुर का विनाश करके, धीमी धीमी वृष्टि कराता है, और वहीं मुनिवरों! नाना प्रकार के अन्न का मूल बन जाता है। तो विचार आता है ऋषि कहता है, हे देवी! ब्रह्मणा देखो, यह तीसरे प्रकार का अन्न है। जिसको मानो देखो, अग्नम् ब्रहे अग्नि के मुखारबिन्द में हूत करना वायु मण्डल को पवित्र बनाना और देवता उससे प्रसन्न हो करके प्रदूषण को समाप्त कर देना है।

मोक्ष की पगडण्डी

तो मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया, उन्होंने कहा यह तीन प्रकार का अन्न और चतुर्थ अन्न मानो देखो, प्रहूत माना गया है। हमारे यहाँ जिस समय यह विधान था, भगवान मनु ने राष्ट्रीय समाज का निर्माण किया और विभाजन किया, समाज का तो उन्होंने पुरोहित का वर्णन करते हुए कहा है, क्या प्रहूत अवश्य

होना चाहिए। प्रत्येक नगर में प्रत्येक गृह में मानो देखो, पुरोहित अपना पराविद्या का ज्ञान दे करके गृह को ऊँचा बनाएं। मेरे प्यारे! गार्हपथ्य नाम की अग्नि का चयन हो जाएं। इसी प्रकार उन्होंने कहा कि आं भूतं ब्रह्मे वाचन्नमं ब्रह्मा कृतो देवत्वाम् ब्रहो मेरे प्यारे! ऋषि कहता है, क्या मुनिवरों! भगवान मनु ने यह वर्णन किया क्या हमें अपने में पुरोहितो की रक्षा करनी चाहिए। पुरोहित कहते हैं बुद्धिमान को जो पराविद्या के देने वाला है, जिससे राष्ट्र और समाज का कल्याण हो जाएं, जैसे बेटा! देखो, विश्वामित्र ने त्रेता के काल में धनुर्याग किया था, और धनुर्याग में दौ सौ पिच्चासी ब्रह्मचारी अध्ययन करते थे, और अध्ययन करके चारों राजकुमारों को ले करके धनुर्विद्या का उन्होंने अभ्यस्त करा करके क्योंकि धनुर्यागाम् भूतम् ब्रह्मे मेरे प्यारे! देखो, उसी से राष्ट्र ऊँचा बनता है। समाज ऊँचा बनता है। तो वह पुरोहित कहलाते हैं, जो निष्पक्ष अपने क्रियाकलापों में रत्त रहते हैं, तो मेरे प्यारे! देखो, वह ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया अमृतं देखो, चौथा जो अन्न है, वह प्रहूत है, प्रहूत और हूत और दो प्रकार का अन्न मानो एक पशु का अन्न है, यह चार प्रकार के अन्न देखो, सबका साझा अन्न कहलाता है। यह सबका साझा अन्न है, इसमें पशु भी प्राणी भी सब इस अन्न को पान करके प्रसन्न होते हैं। तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा यह चार प्रकार का अन्न है और तीन प्रकार का अन्न आत्म कल्याण के लिए होता है, मेरे प्यारे! देखो, मन, कर्म, वचन मंगलं ब्रह्माकृतं देखो, सबसे प्रथम वह अपने में मानो देखो, वचनम् ब्रव्हा कृतं देवत्वां मेरे प्यारे! देखो, तीन प्रकार का जो अन्न है, तो मेरे प्यारे! देखो, नेत्रों से पान किया जाता है। जो श्रोत्रों से पान किया जाता है। जो मेरे प्यारे! देखो, वह अमृतं घ्राण के द्वारा पान किया जाता है, तो यह सात प्रकार का अन्न बेटा! अपने आत्म कल्याण के लिए है, अरे, मानो देखो, मन जब ऊर्ध्वा में चिन्तन करने लगेगा, तो यह आत्मा का भोजन बन करके रहेगा, जब नेत्रों से सुदृष्टिपान करने लगोगे। तो मेरे प्यारे! देखो, मृत्यु से पार हो जाएंगे, और जब तुम घ्राणेन्द्रियों को तुम पवित्र शब्दों

को अध्ययन में लाओंगे, श्रवण करोगे, तो तुम्हारी देखो, यह श्रोत्र इन्द्रियाँ भी मृत्यु से पार हो जाएगी, और तुम मानो इसी प्रकार घ्राण के द्वार सुगन्ध लेना प्रारम्भ करोगे, तो वह भी मृत्यु से पार हो करके साकल्य को एकत्रित करके जब तुम हृदय रूपी यज्ञशाला में याग का प्रारम्भ हो जाएगा। तो तुम्हारा हृदय पवित्र हो जाएगा, और हृदय का सम्बन्ध है, परमपिता परमात्मा से हृदय से जब समन्वय हो जाता है। तो मेरे प्यारे! देखो, तो मानो देखो, मानव अपनी हृदय अग्मयता को प्राप्त होने लगता है, तो बेटा! यह तीन प्रकार का भोजन जिससे आत्मा पवित्र बनता है, वह घ्राण के द्वारा, श्रोत्र के द्वारा और मन के द्वारा मन देखो, जब विषय विचार तुम्हारा जीवन एक महानता में परणित हो जाएगा, क्योंकि मन कर्म और विचार इन तीनों देखो, तीनों का साकल्य बना करके हृदय रूपी यज्ञशाला में जब याग अपने में जान जाते हो, तो योगी बन जाओगे, परमात्मा का दर्शन करने लगोगे, परमात्मा की सृष्टि को सदैव निहारने लगोगे तो बेटा! देखो, यह सात प्रकार का अन्न सृष्टि के पिता ने परमपिता परमात्मा ने यह सृष्टि के सृजन हार ने सात प्रकार के अन्न को सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया। जिससे बेटा! मानव जब अन्नों को जान लेता है, और निष्ठावान बनता है, तो यही अन्न मानव को देवलोक में पंहुचा देते हैं। यही मानो देखो, मोक्ष की पगडण्डी को ग्रहण करा देते हैं, तो विचार आता रहता है कि हम सात प्रकार के अन्न के ऊपर, हम अपना विचार विनिमय प्रारम्भ करें। इस सात प्रकार के अन्न को जो मानव जानता है, वह उसको देखो, दूषित परमाणु नहीं निगलता है, उसे प्रदूषण उसके निकट नहीं आता है। वह हृदय अग्मयता को प्राप्त हो करके अपने हृदय में ही मग्न हो करके परमात्मा के हृदय से अपने हृदय का मिलान कर लेता है।

परमाणु का परमाणु में विलय

तो मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार, जब ऋषि ने अपना वर्णन किया, तो देवी मौन हो गई, और देवी ने अन्त में एक प्रश्न किया, कि हे प्रभु! मैं यह और जानना चाहती हूँ,

कि जब यह अन्न भी नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहां रहता है? मेरे प्यारे! देखो, शंकुतका के इन वाक्यों को पान करने के पश्चात ऋषि कहते हैं, हे देवी! जब मानो देखो, यह सात प्रकार का अन्न भी नहीं होता तो यही परमाणु देखो, पञ्च महाभूतों में रत्त रहते हैं। हे देवी! जब यह आत्मा इस शरीर को त्यागता है, तो अग्नि के परमाणु अग्नि में सिमट जाते हैं, जल के परमाणु जल में सिमट जाते हैं, अग्नि के और अमृतं और अवृतम देखो, पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में रत्त हो जाते हैं, और मानो देखो, वायु, वायु में और अन्तरिक्ष, अन्तरिक्ष में और यह आत्मा अपने चित्त के मण्डल को ले करके चला जाता है। हे देवी! संसार में मैं यह जानना चाहता रहता हूँ, जब इस प्रकार मानो देखो, यह आत्मा का विनाश नहीं होता, और शरीर के जिन तत्त्वों से शरीर का निर्माण हुआ है, उसका भी अक्षय नहीं होता, तो देवी! संसार में मृत्यु क्या है? मेरे प्यारे! चाक्राणं ब्रह्मा देवत्वाम् ब्रह्मा शकुंतका ने कहा प्रभु! आपको धन्य है, आपने मेरे अज्ञान को दूरी कर दिया है। उन्होंने कहा देवी! जब तक मानव इस आत्मा के साथ में जब तक संस्कारों का समूह है, जब तक आवागमन बना रहेगा, जब तक चित्त के मण्डल में संस्कार विद्यमान है, संस्कारों से विहीन होना ही मोक्ष का मार्ग है, और अमृतम् ब्रह्मा देखो, यह जो शरीर है, पञ्च महाभौतिक वाला इस शरीर यह पञ्चमहाभूतों का देवतव यह अपने अपने रूपों में परणित हो जाती है। मेरे प्यारे! देवी ने कहा प्रभु! धन्य है। आप ने मेरे अज्ञान को दूरी कर दिया है, मैं किस अन्धकार में थी, प्रभु! तो मेरे प्यारे! ऋषि मौन हो गएं, जब ऋषि अमृतं देखो, देवी भी मौन होने लगी। तो याज्ञवल्क्य ब्रह्मा व्रतम देखो, वह असुतम देवों अब्रीहि कृतम् देवाः ऋषि ने कहा, पिप्लाद ने देवी! मृत्यु भी है। जब देवी ने यह कहा कि मृत्यु नहीं है, तो उन्होंने कहा मृत्यु भी है। उन्होंने कहा मृत्यु क्या है? भगवन!

मृत्यु की मृत्यु

मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने कहा कि जैसे राजा जनक की सभा में अर्द्धभाग ने ब्रह्मा देखो, याज्ञवल्क्य मुनि

से यह प्रश्न किया क्या मृत्यु की मृत्यु क्या है? संसार में, तो उन्होंने कहा था हे अर्द्धभाग! मत कहो हे अर्द्धभाग! मृत्यु की मृत्यु नहीं होती अरे, मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है, जो ब्रह्म का नहीं जानता वह मृत्युञ्जय नहीं हो सकता। मेरे प्यारे! ऋषि ने यह कहा कि मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है अरे, ब्रह्म को जानने वाले की संसार में मृत्यु नहीं हुआ करती, मेरे प्यारे! देखो, ऋषि अपने में मौन हो गया और उन्होंने कहा देवी! मृत्यु का यह विश्लेषण दिया, क्या मृत्यु की मृत्यु क्या है, ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा कि मृत्यु की मृत्यु ब्रह्म है, क्योंकि ब्रह्म को जो जान लेता है, ब्रह्म के राष्ट्र में बेटा! देखो, जो ब्रह्म के राष्ट्र में पंहुच जाता है। ब्रह्म के राष्ट्र में आलस्य नहीं होता प्रमाद नहीं होता, और रात्रि नहीं होती, जहाँ आलस्य, प्रमाद और रात्रि नहीं होती वहाँ सदैव प्रकाश रहता है और जहाँ प्रकाश रहता है, वहाँ मृत्यु नहीं हुआ करती।

तो मेरे प्यारे! देखो, इतना वाक उच्चारण करके ऋषि मौन हो गएं। देवी ने चरणों को स्पर्श किया और कहा धन्य है प्रभु! आप ने मेरे अज्ञान को समाप्त किया है, आप तो महान ज्ञानी हैं, पवित्र हैं, मैं कितनी सौभाग्यशाली हूँ, हे प्रभु! यह आप जैसे सखा मुझे प्राप्त हुएं हैं। जो ब्रह्म ज्ञान में मुझे ले जाते हैं, तो मेरे प्यारे! देखो, आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसा हम पिप्लाद मुनि के आश्रम में विद्यमान हो और वहाँ अपनी वार्त्ताएं प्रगट कर रहे हों तो बेटा! विचार विनिमय क्या, वेद के ऋषि ने इस प्रकार अपना मन्तव्य दिया उन्होंने कहा, कि मृत्यु का अभाव है, और मृत्यु मानो देखो, अपने में कोई वस्तु नहीं है, यह अज्ञान का नाम मृत्यु, अज्ञान को त्यागों और मृत्यु से पार हो जाओ। मृत्युञ्जय बन जाओं। तो बेटा! यह महात्मा ने अपना निर्णय दिया, अपनी देवी से, मेरे प्यारे! देखो, पिप्लाद मुनि ने कहा देवी! मैं इस प्रकार का अपना मन्तव्य देता रहता हूँ। अपने विचार देता रहता हूँ, विचारों पर आधारित, जब मानव अपने जीवन को बना लेता है, तो वह परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। तो वह प्रकाश में चला जाता है। तो यह आज का वाक्, मैं अब अपने वाक्यों को

विराम देने जा रहा हूँ। आज के विचारों का अभिप्राय यह, कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए, परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जाएं और वेदज्ञं ब्रह्मा प्रकाशाम् मानो हम प्रकाश में सदैव रत्त हो जाएं। तो बेटा! यह आज का वाक अब सम्पन्न होने जा रहा है, कल समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे, आज का वाक समाप्त अब वेदों का पठन पाठन। ओ३म् देवाः आभ्याम् मनु गायन्त्वा रथम् आपाः३म्।

18 ३० १० १९६९ संस्कृत में पूर्ण प्रवचन

आभा जनाति गन्धने क्रत प्रवे असुतश्वतं।

आभा नु देवो नमामि भाग भद्रं भू गवौ चमा।

यम रुद्र भागा वेतु यमा।

गाता नु दन्नमाः यस्वेषु भद्रच्वं मनुः।

यम भागा प्रजापतप्रव्हे अस्सतं, आधानि लोकान चने व्रत्व्यानि देवो।

नमामि भागाः वेतु नरैवश्वते भगनन जनन, माध भवत्यो नमामि देवो, ऐषणा गतेषणा शन्नेषणा प्रतच्वते कृतं बलेच्वतं, आभा नु देवं गुरुवश्वते अभुरन्धनं माताः।

येन गाता, येन भागा, रूद्रे नारीन्द्रो अश्वी बृहस्पति रधिपति अच्वतं माधवेत्तो माधवर्णं देवो नमामि दधिमा सम भगा यान।

यो क्रान्ति अन्वेषं यनो क्रान्ति यनरेषं भविते नरै यश्वते आभान्ति मदभे प्रवर्तत्रतं अभिवन्धना, भागा येना यन्तना सर्वे आत्मा भूक्षाणि प्रथे सुतथे वेत्ति रूवाश्वतं मेधातिवध्यं नमाहाम्

अश्वातं माता नु भद्रं लक्षण प्रवे प्रदत्र प्रवेनामि अच्यन्तरेधो नरा यौ गतं मानवेत्तो मन्वेशरण अग्रे तां हनु मातरं मनये स्वरध्यं आभा नु देवो नमामि नमामि देवो नमामि ।

यम, या अति प्राणी अनन्थन, पिता रयेश्यन वृत्तो नरष्याणि अभि वेचनानि, प्रचन्तो कृन्त मित्राणि गच्छवे, अभि मान्थानि देवाः, सम भवितान नमा वसतवे, वचा कृति अनुभोक्षणि मम वेत्तो हृदाः, यत सत तपो प्रणाणि, अनुबन्धनं आत्मा भद्रेषु सम्भव, यतिनामा ग्रतं नेम वाचो

कृतप्रवे सम्भूतानि, येन खाने अन्तं वेपुरा रनझनवते खानि दम्भादच्युते न अक्राणि एकतानि कस्ते सम्भो नारायाणास्ते, कच्छं प्रवे अप्रोथान नमः अस्सुति देवाः, मम वाणी मम वानति, मम वेचां अप्रोतानि अन्तनं गृहे रुद्रो चित्राणि अम्ब्रहो, सम्भवेत्तानि ब्रह्मा खानी अस्सुतं, येन मारं प्रवे सुतानि मारकान्तं, प्रव्हे कान्दानि कच्चुते अस्ति सु भागान्ते, अनुवाचन्ते प्रुहू सम्भोगाना अच्चुते संगतानि वेतनाया वेतनाया प्रुहू असि अस्सुति धोनान धनुरस्तः यम पाया यम पायानि प्रातार अच्चति कामा प्रव्हे अणु मुद्राणि कामवेतु सम्धेनु नारायस्ते कण्ठनं मेघा अधुने अस्सुतिं गच्छं दघ्वे लो अक्रतं वेतनोति कामाः, येन कामी तपा, येन कामी तपा तपं वृणेसुतं इन्द्रयाणि गच्छते याचणोति देवं मां वेतु चक्षु आप्राति वेतनामा श्रोत्राः, यज्ञत्ते कामा ब्रव्हा नमो आपान्ति देवँ नमो अकृति गृणामि देवनाति ब्रह्मणा वाणी रुद्रो सुत्रप्रवे कृति ओषणाणा इदं प्रवेष्टनां, येतनानि कोतं प्रवे कोतमं असि अस्ति येतनानि गृहणानि अप्रहो भागान्ति मन्थनं विप्रोति आत्माः, येन आतान कनिष्टं प्राणाये उदानाये समनच्प्रव्हे आप्राति देवं ग्रणे तयेयं तच्छं ब्रह्मी अस्तो, सामवेति वातनारं ब्रव्हे कृति घोषनाति येनां प्रव्हे आत्मनोति कामा वञ्चतं देवो भागा, यौ राधान यौ राधानि यम भागां प्रोक्षाणि वेतनाति आकृते देवं धनञ्जय रुद्रो कामाः, नाग प्राणान चतुर्भे अस्सुति उप प्राणान्तवे कृतं मानवेतु ब्रह्मणाति धनञ्जय रुद्रो का वसते कुरू विञ्छचित्रा नमो आपाति देवो भागान्ति रसतं येन देवं यमाचार्य, यमाचार्य अच्चुतं चारी सम्भो ध्राणं मेघनातो चलेजं तम मेयानि आक्राति देवाः धनञ्जय कूरता कुरुताणां वेक्षाणं उप प्राणाय वेतु ब्रह्म अम्बृदानि अन्तं येषाणश्चिते याचनाति यज्ञ भूषणानि वेतु भागा वेतमानं आभां पोणि अस्ते ब्रह्मचरिष्याणि गतो भागा अस्ते देवं मया, येन गातं येन वध्यं येन वद्राणि गुरोरक्षित रम्भ्रणानि आचार्य देवोः राजन नमा कृतं ब्रेष्णानि अन्वोतानि प्रजं वोक्षाना धेनाति अञ्झनं आचे कृतानि सम्प्रोक्षे वाता मयं भू कृति अनुवाचे देवं तस्मो लोहा वृत्ति अभ्यानं, येन देवं येन काया, येन देवं येन काया, येन काति येन कच्चतं येन प्राणोस्तं, का स्वाति प्राणी वेधनं

यौ गुरुतानि यच्चतं येधो सम्भवे नाति यम राजन्यो यमा कृष्टं मोधनाति येन सूत्रा कष्टतो चनोनारा क्या दां ऋषि नष्टं आत्मोति कर्मणे वाचं अस्तं, येन देवं येन कामानि येन कण्ठं ब्रह्मा आप्रोति देवं बने अस्ति, दधीचिनः अप्राणि ऋषि रोक्तानि अप्रते धागास्तेम त पुत्री नमो आप्राणि देवो दधि मस्ते कामा जन्यं कामा जन्नदं आपान्ति, देवो दधि अस्ते सम गतानि वेदनाति कामा, येन भागं येन ब्रह्मो लब्धति, येन ब्रह्मा लब्धति आस्वाति लोकां प्रणवस्ते च आत्मानि खानि वन्दनं ब्रह्मे व्याप्नोति क्रस्सुतं, रुद्रोनु भागा वेस्मानि यद्यतं देवो प्रणाम मां ववेचु प्रभो समं जमदग्न प्रह्मो आस्तानि, जमदग्नि आप्राण अस्तनि नूदारे गोत्राणि वत्रं माद भागा प्रोक्षां तदस्तं नेत्रोति हृदं मे नादास्तं याग लोकाराणां प्रह्मो आप्राति ऋषि वज्रदं मेधमाति प्रभो आत्मानि देवो ब्राह्मणाः येन ब्राह्मणा येन ब्राह्मणा या प्राणी अस्त्रे मे कोऽपि व्याख्यानं मधो आचापि नेहु मत्कम निचप्रहे अप्रतो माधान निमित्त हि नमामि नमो असतो सु प्रजो प्राणाय रक्षतं मेधवाति रत्तं, येन गाथा येन बृद्धं मानवेतु ब्रह्मणा मानवेतु ब्रह्मणा गाथां प्रव्हे अस्तु सम्भो मा आप्राति यस्ते यस्सुता नाना जन्म जन्म जन्म जन्म जननाति जन्नति जन्ना ग्रोवानं मे अस्तं न क्रोति न वृणाय।

अस्तवे देवं बल्भे अप्राति मनो गच्छं प्रव्हे सम्भवावे नमाः, यम यतो यम वेथानि यतेषां भावान येतानि आस्वाति देवो मयाः, ये वधन्नं वचनामि चरणामृतो पावनाति पग वरन धन मेधो प्राणास्ते अग्नि रेतं मेधा संधनं प्रेषाणि फलो शाशतं, यतोति राम नामं भारद्वाज गोत्रो प्राणस्तुति आस्वाति आचारिषं ब्रव्हे प्रशं मेघो शान्तानं ब्रहे असतो मेधो व्राणान्ते चाक्राणी वेदनोति गोत्राणि नुदनस्ते वेदचाते देवं ब्रोक्षाणं प्रव्हे प्रति भोक्षाणि अत्तनं, मेधा चरोति अध्ययनं नुदारो गोत्राणि अस्सुतं पुत्रों! भामा अच्चुतो ओषणाणि देवो व्रतानि रेवो श्वञ्धनं मृगवाचो कृति घोषणानि देवं भोगामृतं, अमृतो अमृतो पागाञ्च पृहि, अमृतो भोक्षाणि चाविडतूणं आभा देवं दिमं ब्रह्मणे वाचो ब्रह्मणा अमृताः, ब्रह्मणा अमृता वेतनाति, अस्सुति रोधनानि

येन देवं मृता भूषणा पिप्स्त्मत्या क्राति

यमो गातं यमो व्रतं यमो भागा यमो सन्धनं मेधो प्रदं मया स्वस्ते देवो भया गास्तं मेधान्ति ब्रणा देवानि उत्तनं देवोन ब्रह्मणे लोका प्रवे अस्ति सुप्रजा

ये चेरेति ये चरन्ति, ये चरन्ति ये कामा। येन भागं येन भद्रं भविष्वाणि देवं मया। यातनोति कर्मणा देव ब्रवेणं नमो अपृत्ते।

अच्छा भगवन्! आज्ञा

अनु गच्छं, इन्द्राय जवो राष्ट्रं, देवे कर्माणि पुत्राति, यज्ञाय इच्छाहे, सन्धानं मेधाञ्छ इच्छो प्रव्हे अपृत्तिं विधुनायचते, इच्छो प्राणां आत्मदा स्तुति सुप्रजा, गुरुवद ब्रवे आशास्ति संगमानाय वेतनोति ब्रणास्ते यमाति वेतनो ब्रह्मणे गच्छप्प्रव्हे आभा विप्राणि अशुद्धेनेशन्नं ले लल्ललं वस्तुति विप्रा जप्प्रहे न गृताणि, चित्त ब्रोणा विद्ध मे आत्मानम्

...हास्य..

ये बल्लभा ब्रव्हेत्तं आक्राणि थानि गच्छनं विश्वाय आत्मा भोगा वैष्टं मनु वाचा कृताः

छदवैष्टं अभु नावास्यते अणु गतं मिस्सुते तनु वर्थानं आनन्दविष्टं तनुतानि खत्यते यस्वाति यम आतानं प्रश्ना उत्तराणि गच्छते विश्वतां नमाः वेतु नमे अस्ते व्याप्नोति कर्मणे आतान थन धनु प्राणाय अस्वताय देवोये भागाय अस्ते नमो वाञ्चानि, यम भवाणां आस्ते यस्तानि क्रोतु न रूढ़ि अम प्रव्हे काञ्छन्थे माधवेत्तो आधाम्मे आत्वति दम्भाये कच्चुते अनुवाचाये कस्सुतं देवो माया सुतम्

..हास्य..

दण्डभो रायास्ति मेधो वञ्चतः अणु गोतानि मां वेतु प्रभु सम्भवेति मन्नताय नमो आगाम प्रवे गच्छन ने आभावे विप्रायः देवो न्यूनामन यत्वते सम्भव नामायस्तं लोकाञ्चे मनो वाददं यम पुणगां मनु वाचे प्रभो मन्थनं मेघो वञ्छे प्राणाय अनु गाथां नमो अत्ति रुद्रो भागा

इति यञ्छनं इच्छामि

यमो समेतानि समे समे कृतं, समे समे कृतं अनु वाचे अनुवाक्याये व्याख्यानि द्वितीय कालात प्रवृत्ति हिम्,

अति नराये रथी मोम वाचे कर्णां मदेचानं प्रश्नाय उत्तराय समय वाकान्ति समय समाप्तानि गच्छनं मेघो वातान्नमे वस्तु शुभ क्राणं व्याख्याति दुर्लभां मोले चानि कच्छति मामः, देवेभ्यो नाधा प्रव्हे अनु वाच्या अनु वाच्चानि वनु पशने पश्यन्ति रुद्रो अणवेतन अनिमोध अत्तते तेनेनाति नमं आप्राणि गछेवानं ततां प्रवेशनं अच्वते यशनानि गतुभो तन्नच प्रावो असवते देवो नमानि, न अच्वते न रूढ़ि धृत्तं प्रवच्चे।

अच्छा ऋषि, आत्म इच्छं ब्रह्मण ऋषि

19 २८ ११ १९६९ महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि का शतपथ

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, वह जो परम्परा में, ऐसा सद् विचार किया गया है, क्या हम उस परमपिता परमात्मा की जो चेतनत्त है, उसको हम अपने हृदय में धारण करते चले जाँए, क्योंकि हमारा जो हृदय है, वही ज्योतिवत है, क्योंकि उसमे सदैव प्रकाश रमण करता रहता है। जितने भी महापुरूष होते हैं, उनकी जो प्रतिभा है, वह सब हृदय में ही स्थित रहती है। जब हम यह विचार विनिमय करते हैं, कि हृदय ही, वह स्थान है, जहाँ मानव, मन की या आत्मा से एकत्रित कर लेता है और मानव का जीवन उससे सुगठित हो जाता है, क्योंकि मानव स्थिर हो जाने के पश्चात, वह परमपिता परमात्मा जो आनन्दमयी है, आनन्द का जो अनुपम स्रोत है, हमें परमपिता परमात्मा के ज्ञान को और उसकी महिमा को अच्छी प्रकार अपने में ज्ञानवत अपने में धारण कर सकते हैं।

तप से सुन्दरता

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं कोई अधिक विवेचना देने नहीं आया हूँ, आज का हमारा वेद पाठ, बेटा! क्या उच्चारण कर रहा था, मानव के लिए उच्चारण कर रहा था, हे मानव! तू तपस्वी बन। क्योंकि बिना तप के मानव का जीवन सुन्दर नहीं बनता। मानव जब तपायमान हो

जाता है, तप जाता है, तपने के पश्चात बेटा! उस मानव से सुगन्धि का जन्म होता है। आज हमें विचार विनिमय यह भी कर लेना चाहिए, कि संसार में प्रत्येक वस्तु तपती है, क्योंकि बिना तप के मानव शक्तिवान नही होता है, कोई भी वस्तु शक्तिवत नहीं हो पाती बेटा! पृथ्वी से लेकर अन्तरिक्ष तक, प्रत्येक वस्तु तपती है। प्रत्येक परमाणु तपता है, मुनिवरों! मानव ही तपा करते हैं, जिससे बेटा! वैज्ञानिक अपने में सफलता को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना है, कि हम तपस्वी बनें, क्योंकि हमारे यहाँ जब बेटा! यह सूर्य तपा करता है, तो नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होने लगता है, सूर्य के तपायमान होने पर ही बेटा! समुद्रों में से जलों का उत्थान होता है, जल से मेघों की उत्पति होती है, और मेघों से विद्युत की उत्पति हुआ करती है और विद्युत ही बेटा! देखो, वायु का और विद्युत का दोनो का समन्वय हो जाने से वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। इसी वृष्टि से बेटा! इस माँ वसुन्धरा के गर्भ में, पृथ्वी माता के गर्भ में बेटा! नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म हो जाता है, और एक वनस्पति ही नहीं, नाना प्रकार के बेटा! खनिज है, इनकी उत्पति भी बेटा! इन्ही के द्वार से उत्पन्न होती है। हमारे यहाँ ऐसा माना गया है बेटा! ग्रीष्म ऋतु जब आती है, ग्रीष्म ऋतु में सूर्य से एक वैष्णौ नाम की किरण की उत्पति होती है, वैष्णौ नाम की जो किरण है, उसका जब मिलान पृथ्वी से हुआ करता है तो बेटा! वह पृथ्वी, जिस स्थान में उस वैष्णो किरण का प्रहार होता है, मुनिवरों! देखो, जिस स्थान से सम्बन्ध और सूक्ष्म सूक्ष्म धातुओं का माता पृथ्वी के गर्भ में बेटा! उनका जन्म होता है। मानो उसी के द्वार से, हम जब माता वसुन्धरा के द्वार पर विचार विनिमय करने लगते हैं, जिससे बेटा! हम सब वशीभूत हो रहे हैं, उसी का नाम तो वसुन्धरा है। परन्तु वसुन्धरा तो माता को भी कहते हैं, क्योंकि उसके गर्भ में हम वास्तव में बसा करते हैं, परन्तु जहाँ यह विचार आता है, क्या हम यहाँ तृप्त हैं, मुनिवरों! देखो, वह जो माता वसुन्धरा है, जिसके ऊपर हम सब वशीभूत हैं, यह पृथ्वी

है, परन्तु ऐसा ही नहीं कहा है, वेद ने, वेद ने तो और भी ऊँचा कहा है। उन्होंने कहा जितना प्रत्यक्ष व्यवस्था में यह कहा वेद का आचार्य कहता है क्या यह पृथ्वी मण्डल ही नहीं परन्तु नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को भी वसुन्धरम् रत्त रहते हैं क्योंकि उसमें हम सब बसते हैं बेटा! बसने का अभिप्राय यह क्या जहाँ प्राणी विराजमान होते हैं, आहार और व्यवहार में परणित करने वाले हों और वही तो मुनिवरों! मीमांसा हमारे आचार्यों ने वर्णन की है। आज मैं इस सम्बन्ध में अधिक विवेचना नहीं दे सकूंगा, क्योंकि मैं तुम्हे संक्षिप्त परिचय करा रहा हूँ, कि मैंने संसार मे पूर्व भी प्रगट कराया है। क्योंकि वह जो तप का विषय है। यह मुझे बहुत ही प्रिय लगा करता है, मेरा हृदय तो गद् गद् होने लगता है, जब हम बेटा! तप की मीमांसा और तप की महिमा का वर्णन किया करते हैं।

माता का तप

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, मेरी प्यारी माता तपा करती है, जब वह ब्रह्मचर्य से तपा करती है, तपने के पश्चात ही माता ममतामयी बन जाती है। मुनिवरों! यदि माता नहीं तपती तो आनन्दमयी अहा! ब्रहे आनन्दमयी बन नहीं पा सकती, क्योंकि उसका जीवन इतना तृप्त नहीं हो पा सकता था, परन्तु देखो, उसे माता को माता तपी है। ब्रह्मचर्य से तपी है अहा! मुनिवरों! जब वह ब्रह्मचर्य से तपा करती है, तपने के पश्चात मुनिवरों! सुन्दर सुन्दर पुत्र का जन्म होता है। इसी जन्म से माता या ममता, ममतामयी बन जाती है, माता बन जाती है, इसी प्रकार देखो, आनन्द की वृष्टि कराने वाली बन जाती है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! एक आचार्य, आचार्य के कुल में बेटा! ब्रह्मचारी अध्ययन करता है, और अध्ययन करता हुआ वह ब्रह्मचारी अहा! ओजस्वी, तेजस्वी बन जाता है। परन्तु मुनिवरों! जब तक वह ब्रह्मचर्यतव नहीं, बन तपता, जब तक मुनिवरों! वह ब्रह्मचारी नहीं कहलाता विद्यार्थीवत भी नहीं कहलाया जाता। परन्तु जब यह तप जाता है, तप जाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, वह एक समय वह आता है, क्या वह स्वयं आचार्य बन जाता है। तो बेटा! आचार्य क्यों बना? क्योंकि

वह तपा है, तपने का जो परिणाम है, वह बहुत ही सुन्दर होता है, एक महापुरूष तपा करता है, बेटा! उसका जो तप है, मानो वही तो उसको महापुरूष कहलाता है, अन्यथा उसको बेटा! कौन तपस्वी उच्चारण कर सकता था।

भगवान कृष्ण

मुझे स्मरण आता रहता है, भगवान कृष्ण का जीवन, जिनके जीवन में बेटा! सदैव अग्नि प्रदीप्त होती थी। ज्ञान की प्रतिभा उत्पन्न होती रहती थी, सदैव वह विनोद करते रहते थे, परन्तु वह विनोद भी किसका करते थे? ज्ञान और विज्ञान से उनका विनोद रहता था। बेटा! ज्ञान और विज्ञान की प्रतिभा में उस मानव का विनोद रहता है, वह मानव कितना सौभाग्यशाली है। बेटा! वह कितना महापुरूष बन सकता है, मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचार देते हुए कहा था, क्या भगवान कृष्ण षोडश कलाओं को जानने वाले थे, परन्तु षोडश कला को वह जाना करते थे, क्योंकि षोडश कलाओं को जानने के पश्चात मानव के उनके जानने पर जो वह ज्ञान और विज्ञान में पारायण न हो सके, क्योंकि संसार में बेटा! देखो, इन्द्रियों के विषयों को और उनकी प्रतिभाओं को जानना ही मानववत कहलाया गया है। बेटा! जैसे मैंने पूर्व काल में कलाओं का वर्णन कराया था, जैसे देखो, प्राचीदिक है और दक्षिणी दिक, प्रतीची दिक मुनिवरों! देखो, उदीची दिक मुनिवरों! देखो, चार कलाओं में प्रविष्ट किया, उसके पश्चात पृथ्वी है, समुद्र है, अन्तरिक्ष है, वायु है, यह चार कलाएं कहलाई जाती है। जिसमें बेटा! सूर्य, चन्द्र है, विद्युत है, अग्नि है, जिसको मुनिवरों! देखो, यह चार प्रतिभाएं पूर्ण हो जाती है, ये बारह कलाओं का तारतम्य बन जाता है। इसी प्रकार मन, चक्षु, घ्राण, और श्रोत्र मुनिवरों! देखो, ये चार कलांए मुनिवरों! देखो, यह चार कलाएं, ये षोडश कलाएं कहलाई जाती है, और जो मानव इनको जान लेता है, उस मानव की प्रतिभा बेटा! ज्ञान और विज्ञान से सुगठित हो जाती है। इसी प्रकार इनकी मीमांसा आगे करते हुए कहा है, मुनिवरों! देखो, दस प्राण

हैं, और उन प्राणों की जो पञ्च तन्मात्राएं है, उन प्रतिभाओं को जानना मुनिवरों! प्राण कृति है। उनकी प्रतिभा को जाने लेने के पश्चात ही मुनिवरों! देखो, जगत प्रतिभाशाली कहलाया गया है।

तप की मीमांसा

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं तो इस सम्बन्ध में कोई अधिक विवेचना नहीं देना चाहता हूँ, केवल यह कि मानव को तपना चाहिए। तपने के पश्चात ही महापुरूष बना करते हैं, बिना तप के बेटा! संसार में कोई महापुरूष नहीं बन पाता, क्योंकि बिना तप के वनस्पति उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि बिना तप के समुद्रों से जलो का उत्थान नहीं होता। बिना तप के बेटा! मानव से देवता नहीं बन पाता। दैत्य, मानव नहीं बन पाता, परन्तु देखो, यहाँ तो महान बनना है। देववत बनना है, परन्तु तप किया जाए। बिना तप के हमारा जीवन संसार में उन्नत नहीं बन पाता। हमारे यहाँ विचार आता है कि बेटा! तप किसे कहा जाता है? क्योंकि हमारे यहाँ बहुत परम्परा से ऐसा माना है, क्योंकि तप की मीमांसा क्या है? जिसके ऊपर तप किया जाए, यह तप है क्या? क्योंकि हमारे यहाँ नाना प्रकार की भ्रांतियां मानव के मस्तिष्को में उत्पन्न होती रहती है। जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे कई काल में प्रगट कराते हुए कहा है, इन्होंने कई काल में प्रगट कराते हुए ऐसा कहा है, क्या संसार में ... मानो यह धर्म है, अधर्म है, ऋत है, सत है, हूत है, प्रहूत है, परन्तु यह है क्या? तो विचार विनिमय होता रहा। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इसके ऊपर अधिक टिप्पणी नहीं दे सकूंगा, विचार केवल यह कि हमारे यहाँ तप किसे कहा जाता है? मैं तप की विवेचना करने जा रहा था।

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि का तप

बेटा! एक समय त्रेता के काल में मुनिवरों! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विराजमान थे, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज में मस्तिष्क यह वाक आया, अध्ययनशाली रहते थे, विचार विनिमय करते रहते थे और धर्म में उनका जीवन सदैव रमण करता रहता था।

परन्तु एक समय उनके मस्तिष्क में एक विचार आया क्या तुझे तपना चाहिए, क्योंकि अध्ययन से ही मानव में तप की प्रतिभा उत्पन्न होती है। मुनिवरों! जब तप के लिए, उन्होंने विचार विनिमय किया, तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यह विचारा, कि तपना कैसे चाहिए? क्योंकि तप तो बहुत ही सुन्दर है, तपने के लिए हमें क्या करना चाहिए। मुनिवरों! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यह कहा कि यदि हम मन के ऊपर अपना विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर देते हैं। तो यह मन मानो मन की एक एक ऐसी ग्रन्थि है, मन के द्वारा ऐसी ऐसी सुन्दर सुन्दर ग्रन्थियाँ हैं, क्या वह देखो, किसी से भी हमें ज्ञान हो सकता है। परन्तु ज्ञान की जो प्रतिभा है, हम किसी काल में हो, किसी भी स्थान में हो, वहाँ वह प्रतिभा हमें प्राप्त हो सकती है। जैसे मुनिवरों! जैसा मानव कहीं का कहीं विराजामन होता है, परन्तु उसकी जो आनन्दमयी जो प्राण की धाराएं होती है, जो मानव को कहीं का कहीं धारण करा देती हैं। जैसे आचार्यों ने बेटा! वर्णन करते हुए कहा है, मैं भी इसको वर्णन करने के लिए आचार्यों ने कहा है, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! अपने स्थान को त्याग दिया। विचार विनिमय किया, कि हमें तपना चाहिए। तप है क्या? क्योंकि विचार तो यह आता है, तप है क्या क्योंकि देखो, वह अपने गृह में प्रविष्ट हुए, क्योंकि महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज की दो पत्नीयां थी, एक पत्नी का नाम कात्यायनी था, दूसरी का नाम मुनिवरों! देखो, मैत्रेयी था। कात्यायनी और मैत्रेयी दो ही तो पत्नी, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के आश्रम में प्रविष्ट होती थी,

कात्यायनी

सबसे प्रथम वह कात्यायनी के द्वारा पंहुचे, महारानी कात्यायनी ने मुनिवरों! ऋषि का आदर किया चरणों को स्पर्श करके सुन्दर आसन दिया विराजमान हो गएं। ऋषि को कहा कहिए भगवन! आप आनन्द हैं, आपका जीवन तो कुशल है? उन्होंने कहा देवी! सब सुन्दर है, क्या ब्रह्मचारियों की कैसी दशा है? उन्होंने कहा देवी! बहुत ही सुन्दर है। मुनिवरों! देखो, विराजमान हो करके

कात्यायनी ने कहा कहिए भगवन! आप कैसे है देव! मानो ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसा आपके आने से आपकी जो आन्तरिक जो प्रतिभा है, एक शान्त सी मुझे प्रतीत होती है। यह क्या कारण है? उन्होंने कहा देवी! मैं यही तो जानने के लिए आया हूँ, क्या मेरे आन्तरिक जो भावना है, वह सान्त्वना को प्राप्त हो रही है महारानी कात्यानी ने कहा भगवन! मुझे निर्णय कराईए मैं इसको निर्णय चाहती हूँ। आपके द्वारा उन्होंने कहा देवी! मेरा जो आन्तरिक विचार है, आन्तरिक जो प्रतिभा है, वह इसीलिए शान्त है, क्योंकि मेरा आन्तरिक विचार कहता है कि मुझे तपस्वी बनना चाहिए। इसीलिए मैं तप के लिए, तपने के लिए, मैं आपके समीप आया हूँ। कात्यायनी ने कहा प्रभु! यह तो मेरा सौभाग्य है, क्योंकि जिस पत्नी का मानो देखो, पति तपस्वी बन जाएं, उस पत्नी का कोई बड़ा ही सौभाग्य है। मानो वह तो सौभाग्यवती है, प्रभु! मैं तो आपकी प्रतिभा से प्रभावित हूँ। हे भगवन! आप अवश्य ही तप के लिए प्रस्थान कीजिए। गृह को त्याग दीजिए। हमें तो आप जिस दशा में त्याग करके जाएंगे, उसी दशा में दृष्टिपात कर लेना, अन्यथा देखो, यह भी आवश्यक नहीं कि जिस दशा में आप हमें दृष्टिपात करो, परन्तु हमारा ज्ञानमयी जीवन हो सकता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह वाक कात्यायनी ने कहा, तो ऋषि का हृदय गद् गद् हो गया। देवी से कहा हे देवी! तुम्हे धन्य है आज तुम्हारे जीवन को धन्य है।

मैत्रेयी

मानो देखो, यह उच्चारण करके गृह को त्याग दिया, नमः करते हुए बेटा! देखो, वह मैत्रेयी के समीप जा पंहुचे, मैत्रेयी ने सुन्दर आसन दिया, विराजमान हो करके चरणों को स्पर्श किया मैत्रेयी ने कहा कहिए भगवन! आपका हृदय कैसे सान्त्वना को प्राप्त हो रहा है। मैं नहीं जानती, क्योंकि मैं आपके हृदय को जानती हूँ, क्योंकि जब आप ज्ञान में परिपक्व होते हैं, आपकी आन्तरिक विचार प्रफुल्लित होता है, बाह्य विचार भी आपका बहुत सुन्दर होता है, मुख मण्डल पर एक महान ज्योति होती है। उस ज्योति को मैं दृष्टिपात नहीं कर रही हूँ, भगवन! मुझे

दृष्टिपात कराईए। क्या मैं उस ज्योति को, मैं आपके समक्ष दृष्टिपात कर सकूं।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! देवी के इस वाक को जान करके ही महर्षि याज्ञवल्क्य बोले देवी! अप्रतम ब्रह्मे तपाः ऋषि कहता है, क्या मैंने दर्शनों का अध्ययन किया है। दर्शन कहता है, कि हे याज्ञवल्क्य! तू तपस्वी बन, परन्तु यहाँ वेद का ऋषि कहता है, कि तपस्वी बनूं, तो देवी मेरी इच्छा ऐसी है, क्या मैं तप के लिए अपने गृह को त्याग रहा हूँ, तो मुनिवरों! देखो, उस समय मैत्रेयी ने कहा प्रभु! आप मानो जो इस गृह को त्याग रहे हो। मेरे आङ्गन में नहीं आता, क्योंकि आप पत्नी के सहकारी नहीं रहे, क्योंकि पत्नी का कोई एकेश्वर होता है, एकेश्वर के तुल्य होता है, अहा! यदि पत्नी का एकेश्वर ही उसके द्वार से चला जाता है। तो संसार में पत्नी का क्या रह जाता है। मुनिवरों! देखो, यह वाक जब उन्होंने स्मरण कराई, तो उस समय याज्ञवल्क्य मुनि बोले देवी! तुम इन वाक्यों को उच्चारण करते हुए लज्जा नही आती, क्योंकि तुम बुद्धिमत्ता हो, आज तुम क्या वाक उच्चारण कर रही हो, पत्नी का एकेश्वर पति ईश्वर नहीं होता, यह तुम्हे केवल विडम्बना है, हृदय की विडम्बना में तुम चली जा रही हो, यह तुम्हारे लिए वाक नहीं है। जब यह वाक उन्होंने श्रवण किया तो देवी ने कहा प्रभु! मेरे विचार में यही है, उन्होंने कहा कदापि नहीं, देवी! आज तुम्हे यह विचार होना चाहिए। संसार में जितना भी आनन्द है, वह सब केवल अपने में होता है, आज कोई मानव किसी को अपना पुत्र बनाता है, परन्तु वह पुत्र अपने लिए होता है, पुत्र के लिए कोई भी पुत्र नहीं होता। संसार में देवी! तुम्हे ज्ञान है, आज पति और पत्नी है, मानो देखो, तू मेरे लिए पत्नी है, परन्तु आज तू पति के लिए पत्नी है, क्योंकि पत्नी के लिए पत्नी कदापि नहीं हो पाती। आज तुम्हे कौन से वाक उच्चारण करो, तुम्हे इसका ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि जब तुम्हारी प्रतिभा मुझे अकृतियों में प्राप्त हो रही है। आज मैं इनको जान नहीं पा रहा हूँ, क्या पति संसार में वायु नहीं दे सकता, अग्नि नहीं दे सकता, अन्तरिक्ष नहीं दे सकता, हृदय नहीं

दे सकता। हे देवी! संसार में और क्या दे सकता है पति, यह तुम क्या वाक उच्चारण कर रही हो, देखो, तुम आज कृतम् देखो, ब्रह्मा आपनाति ब्रह्मा आज ब्रह्मनिष्ठ हो करके दृष्टिपात करों, कि संसार में सत्य क्या है? परन्तु जब संसार में सत्य की प्रतिभा में जाओगे, उस समय तुम्हे यह प्रतीत होगा कि ऋत और सत किसे कहते हैं? क्योंकि यही तो मानव की प्रतिभा है। आज तुमने जो वाक उच्चारण किए सुन्दर प्रतीत नहीं होते। क्योंकि गृह मानव के लिए होता है, गृह पति के लिए भी होता है परन्तु गृह, गृह के लिए नहीं होता, राजा देखो, राज के लिए होता है, राष्ट्र के लिए, राष्ट्र कदापि नहीं होता। देवी! इसीलिए संसार में यह तो व्यापार है, संसार का व्यापार चलता रहता है। परन्तु संसार में बिना तप के मानव का जीवन अधूरेपन में कहलाया गया है। देवी! यह तुमने किसी काल में विचारा नहीं होगा,

हिंसा का प्रारम्भ

परन्तु देखो, ऋषि पत्नी मौन हो गई। निरूतर हो गई, उन्होंने कहा प्रभु! वास्तव में मैं निरूतर हो गई हूँ, आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा ही कीजिए, आज मुझे यह ज्ञान हुआ है कि मैं तो कितनी अज्ञानता में थी, उन्होंने कहा तो देवी! अब मैं गृह को त्याग रहा हूँ। परन्तु मैं तुम्हारा कात्यायनी का दोनो का बंटवारा करता जाऊँ, और तुम्हारे द्वारा जो द्रव्य है। उन्होंने कहा हे भगवन! हे स्वामी! उसके बंटवारे की हमें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि देखो, आप जिस दशा में हमें त्याग करके जाएंगे, उसी दशा में दृष्टिपात कर लेना। क्योंकि हम भी स्वयं तपस्वी बनेंगे, गायत्राणी छन्दों का पठन पाठन करेंगे, भगवन! अहा! हम अज्ञानी नहीं हैं, अकृत नहीं है, क्योंकि आपके हृदय की जो वेदना है, उसको शान्त करना भगवन! संसार में हिंसा कहलाई गई है। क्योंकि हिंसा का प्रारम्भ मानव का जब हिंसा का प्रारम्भ होता है, प्रादुर्भाव होता है, तो प्रभु! वह हृदय से ही होता है, जब मानव के हृदय में हिंसा हो जाती है। हृदय के विचारों को नष्ट कर दिया जाता है, तो वह एक हिंसा होती है। परन्तु देखो, हृदय के विचारों को अहा! मुनिवरों! देखो, व्यापार में लाना यही तो मानव का अहिंसा

परमोधर्म विचार होता है। भगवन! तो मुनिवरों! दोनों के विचारों में सुगठितवाद आ गई, वाद आ करके, उन्होंने कहा अच्छा देवी! मैं गृह को त्याग रहा हूँ। उन्होंने कहा भगवन! बहुत सुन्दर, किसी प्रकार की विडम्बना हमारे हृदय में नहीं आ पाएगी, क्योंकि तुम तपस्वी बनोगे, क्योंकि माता अप्रहे अकृतं मानो देखो, मुदगल गोत्र में उत्पन्न होने वाले रेणकेतु हमारे द्वार पर आती है। वह कितना ऊँची है, देखो, चाक्राणी गार्गी भी हमारे समीप आती है, हम उसका आश्रय ले करके अपने गृह को पवित्र बनायेंगे। तो मुनिवरों! देखो, वह महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! गृह को त्याग दिया, ऐसा हमारे यहाँ आया है, परम्परागतों में स्वीकार किया गया है।

अन्न से तप

महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने यह विचारा, कि मैं तपस्वी कैसे बनूंगा? क्योंकि मैंने तप की मीमांसा को ही जानना है, कि तप है क्या? तो मुनिवरों! उन्होंने अपने मन में यह विचारा कि बिना अन्न के संसार में तप नहीं होगा, जब मानव का अन्न पवित्र नहीं होगा, मानव तपमय नहीं होगा, निर्दोष नही होगा, तो मानव का अन्तःकरण भी निर्दोष किसी काल में बन नहीं पाता। इसीलिए मेरा विचार तो यह कहता है, कि अन्न पवित्र होना चाहिए। मुनिवरों! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने भयंकर वन में गमन किया और अकृतं और आचार्य ने बेटा! देखो, जब शिलस्थ अन्न क्षेत्र में से, कृषक अन्न को अपने गृह में ले जाते थे, जो अन्न पृथ्वी में रह जाता था, उस अन्न को महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज उसको चुनते थे, उसको चुन करके मानो देखो, उस अन्न का पान करते थे, आचार्य कहता है, ऋषि कहता है, मुनिवरों! देखो, उस अन्न क्योंकि उस अन्न में किसी प्रकार का दोष नहीं होता, वह महान पवित्र होता है, क्योंकि देखो, कृषक को भी इसका ज्ञान नहीं हो पाता। अहा! वह किसी का अस्वत किसी के अन्न को मानो कष्ट देने वाला अन्न नहीं होता।

सत का पथिक

मेरे प्यारे! ऋषिवर! महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज

ने लगभग बारह वर्ष तक बेटा! देखो, उसी अन्न का पान किया, उस अन्न का पान करने के पश्चात बारह वर्ष की तपस्या के पश्चात महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने बेटा! एक पोथी का निर्माण किया, जिस पोथी को हमारे यहाँ शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है। बेटा! क्योंकि सत के पथिक क्योंकि वही मानव ऊँचा ब्राह्मण होता है, जो सत का पथिक होता है, बेटा! तुम्हे स्मरण होगा, जब जाबाला पुत्र सत्यकाम मुनिवरों! महर्षि गौतम आश्रम में पंहुचे थे, उस समय वहाँ भी जब यह विवेचना आने लगी, कि जाबाला के पुत्र से महर्षि गौतम ने कहा क्या, पुत्र! तुम्हारा गोत्र क्या है? उन्होंने कहा प्रभु! मैं माता से इसको निर्णय करके आता हूँ। माता ने कहा हे पुत्र! मैंने नाना ऋषियों की सेवा की है, मैं नही जानती, कि तुम्हारा गोत्र क्या है? मेरे प्यारे! ऋषिवर! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज का भी यही था, अहा! देखो, जाबाला पुत्र सत्यकाम जब गौतम द्वार पर पंहुचा, तो गौतम जी से कहा भगवन! मेरी माता ने ऐसा कहा है, अहा! ऋषि का हृदय मग्न हो गया, तो वह मन मग्न हो गया, क्या यह बालक तो ब्राह्मण है, क्योंकि ब्राह्मण वही होता है, बेटा! जो सत का पथिक हो। उच्चारण करने में उसे शङ्का लज्जा भी नहीं रह पाती, क्योंकि शङ्काओं, लज्जाओं से जो रहित हो जाता है, वही तो ब्राह्मण कहलाया गया है। वही बेटा! देखो, सत का पथिक होता है, क्योंकि सत का पथिक, जो हृदय की वेदना को जानता है, बेटा! क्योंकि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अहा! उस समय एक पोथी का निर्माण किया, उस पोथी का नाम शतपथ ब्राह्मण कहा जाता है, उस शतपथ ब्राह्मण नाम की पोथी में, सबसे प्रथम अपनी भूमिका दी, अपने विचार देना प्रारम्भ किया है। उन्होंने देखो, अपनी प्रतिभा को दिग्दर्शन कराया है। अपने विचार देना प्रारम्भ किया है उन्होंने अपनी मानो देखो, अपनी प्रतिभा का दिग्दर्शन कराया है। जिससे मानव को यह विचार विनिमय हो जाता है कि महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जीवन को कितना

मन्थन किया है।

दैत्यों और देवताओं का संग्राम

कहा जाता है, कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा क्या मुनिवरों! देखो, एक समय दैत्यों का और देवताओं का संग्राम हुआ दैत्य और देवताओं के संग्राम में मुनिवरों! देखो, अहा! दैत्यों का देवताओं ने विजय कर लिया जब देवता आनन्दपूर्वक बेटा! उन्होंने दैत्यों को उन्होंने अपने आधीन बना लिया अहा! विराजमान हो गएं कहा जाता है, देवताओं की सभा में बेटा! एक वृख का जन्म हुआ, मानो देखो, उस वृख के मुखारिबन्दु से एक ध्वनि का जन्म होता था, उस ध्वनि को जो भी श्रवण पान करता था, बेटा! वही देवता बन जाता था। जब यह संसार देवता बनने लगा उस समय बेटा! दैत्यों ने मानो शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज इत्यादियों ने एक सभा की, उस सभा में अपना सभापतितव महाराज विरोचन को दिया और महाराज विरोचन से कहा कि आप हमारे देवता हैं। आप मानो हमारे सभापति हैं। आप निर्णय कराईए, कि देवताओं की सभा में वृख का जन्म हुआ है, अहा! जो उस ध्वनि को श्रवण कर लेता है, वही देवता बन जाता है। भगवन! मेरे विचार में यह नही आता, कि दैत्यों का क्या बनेगा संसार में? क्योंकि जब देवता ही प्रबल होते चले जाएंगे। उस समय उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, इसका निर्णय किया जाए। विचार विनिमय किया जा सकता है, तो मुनिवरों! देखो, उनका विचार विनिमय होना प्रारम्भ हुआ, उन्होंने कहा, विरोचन जी ने भई! मेरे विचार में तो यह आता है, क्या इस वृख को क्यों नही छल लेना चाहिए, आज जो छलने के योग्य है उन्होंने कहा कि भई! छला जाएं।

अब मुनिवरों! देखो, छलने के लिए शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज मानो यह तीन दैत्य चुने गएं, कि जाओ, वृख को छल लो, अब मुनिवरों! देखो, वृख को जब छलने के लिए देवताओं ने विचार बनाएं, विचार बनाते ही कहा जाता है, कि वृख को यह ज्ञान हो गया था, कि आज तू दैत्यों के द्वारा छला जाएगा, उसने बेटा! उस ध्वनि को रेणुका को अर्पित कर दी। रेणुका ने उस ध्वनि को अपने में वशीभूत

कर लिया, क्योंकि दैत्य बनने के पश्चात मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब दैत्यों ने वृख को छल लिया छल करके बेटा! वह अपने गृह में मानो दैत्यों की सभा में उसको प्रतिष्ठित किया अहा! मुनिवरों! विरोचन ने जब उस वृख का निरीक्षण किया, मन्थन किया गया, तो कहा जाता है कि उसमें वह ध्वनि नही थी, जिससे यह संसार देवता बनता था, अहा! विरोचन जी ने कहा अरे, दैत्यों इसमें तो वह ध्वनि नहीं है, जिससे यह संसार देवता बनता था, विरोचन जी से कहा शुम्भ, निशुम्भ जी ने कि महाराज! वह ध्वनि कहां गई? उन्होंने कहा कि वह ध्वनि तो रेणुका के समीप चली गई, जाओ, रेणुका को छल करके लाओ। कहा जाता है बेटा! रेणुका को छलने के लिए वही शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज तीनों दैत्यों ने जा करके बेटा! देखो, वहाँ रेणुका पर आक्रमण कर दिया, रेणुका को भी यह ज्ञान हो गया था, कि आज तू दैत्यों के द्वारा छली जाएगी। मुनिवरों! यह कहा जाता है क्या वह ध्वनि मानो देखो, उसने अग्नि को अर्पित कर दी, अग्नि ने उस ध्वनि को अपने में वशीभूत कर लिया, कहा जाता है जब रेणुका को उन्होंने छला, जब छल लेने के पश्चात, जब दैत्यों की सभा में विरोचन जी ने मन्थन किया तो मुनिवरों! वह ध्वनि नहीं रही। उन्होंने कहा महाराज! वह ध्वनि तो नहीं रही, तो शुम्भ निशुम्भ ने कहा कि महाराज! वह ध्वनि कहां गई? क्या वह, तो अग्नि के द्वार पर चली गई है, मुनिवरों! कहा जाता है वही शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज ने उस महान देखो, उस अग्नि के छलने के लिए विचार विनिमय किया, अहा! मुनिवरों! जा करके अग्नि को छलने लगे, जब अग्नि को छला गया, तो अग्नि को पूर्व ही ज्ञान हो गया था, कि तू दैत्यों के द्वारा छेदनय हो जाएगी। उसी समय बेटा! वह मानो देखो, वह ध्वनि यज्ञ के दस पात्रों में समाहित कर दी, बेटा! वह ध्वनि तो यज्ञ के दस पात्रों में समाहित हो गई। अहा! ऋषि ने कहा है, याज्ञवल्क्य जी ने कहा है, जब उनको छला गया, मन्थन किया गया, तो विरोचन ने कहा, कि भई! उनमें तो वह ध्वनि नहीं रही। उन्होंने कहा कि महाराज! वह ध्वनि कहां गई? क्या, वह तो यज्ञ के दस

पात्रों में समाहित हो गई है। उन्होंने कहा महाराज! अब यज्ञ के दस पात्रों से, हम कैसे पा सकेंगे? उन्होंने कहा उसको तुम निकास नहीं सकोगे। क्योंकि कोई भी मानो जो ध्वनि है, वह यज्ञ के दस पात्रों में जब समाहित हो जाती है। तो उसको कोई नहीं निकास सकता।

कथानक का अभिप्राय

तो वेद का आचार्य कहता है, याज्ञवल्क्य जी ने कहा है बेटा! वृख क्या है? मानो उन्होंने कहा है, क्या यह जो वृख है, यही तो मन की पवित्र दशा कहलाई गई है। क्योंकि मन को हमारे यहाँ वृख कहा गया है, बेटा! जब यह मन देववत होता है। पवित्र होता है इससे बेटा! ध्वनि का जन्म होता है, यह ध्वनि को हमारें यहाँ धर्म कहा गया है, बेटा! उसी ध्वनि को धर्म कहते हैं, वह ध्वनि जब उत्पन्न होती है, तो संसार देवता बनने लगता है, कहा जाता है जब मन को दैत्यों ने छला तो बेटा! देखो, वही ध्वनि रेणुका के द्वारा चली गई, रेणुका नाम बुद्धि का है, अहा! अब दैत्यों ने बेटा! रेणुका को भी छल लिया, उसको भी छेदनय कर दिया कहा जाता है। जब अग्नि में प्रविष्ट हो गई, अग्नि में जब धर्म चला गया, तो क्योंकि अग्नि नाम वाणी का है, व्यष्टि से समष्टि में यह परणित किया गया है। यह जो विवेचना की गई है, क्या वाणी का व्यष्टि, समष्टि का रूप बन जाता है। मानो देखो, उसका बाह्य रूप देखो, समष्टि जो रूप है, अग्नि का स्वरूप माना गया है, कहा जाता है, क्या वह जो अग्नि में अग्नि को अर्पित कर दिया था। मुनिवरों! देखो, वह भी छेदनय कर दिया उसको भी छल लिया, यज्ञ के दस पात्र क्या है? बेटा! आचार्य कहता है क्या, पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ कहलाई गई हैं, बेटा! हमारा जो मानव शरीर है, यह एक प्रकार की बेटा! यज्ञवेदी है। इसमें नित्यप्रति अपना यज्ञ होता रहता है, कैसा सुन्दर यज्ञ करता है मानव, बेटा! देखो, मेरे प्यारे! मानव जब विचार विनिमय करते हैं। प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों की, जब सामग्री बनाते है। और मुनिवरों! ज्ञान रूपी यज्ञशाला में, उन विचारों को भरण कर देते हैं, तो बेटा! वह सबसे उत्तम संसार में यज्ञ

कहलाया गया है।

मानव इन्द्रियों में धर्म

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें यज्ञ कर्म करना है, हमें अपने मानव शरीर को जानना है, मेरे प्यारे! ऋषियों ने बड़ी सुन्दर विवेचना की है, आचार्यों ने कहा है कि मानव धर्म को जानना चाहता है, कि धर्म कहां रहता है? धर्म बेटा! रूढ़िवाद में नहीं होता, धर्म मानो धर्म होता है। क्योंकि धर्म तो मानव की इन्द्रियों में समाहित होता है, बेटा! आज धर्म की आवश्यकता है, मानव के नेत्रों में धर्म रहता है, हमारे आचार्यों ने कहा है आज जो धर्म को जानना चाहता है, क्योंकि प्रत्येक मानव धर्म को जानना चाहता है, धर्म है क्या? बेटा! व्यापकता का नाम धर्म है, और सङ्कीर्णता का नाम अधर्म माना गया है, बेटा! जैसा आचार्य ने कहा है, एक मानव है, एक मानव के नेत्र हैं, मानो नेत्रों से हम आज किसी सुन्दरी के दर्शनों को दृष्टिपात कर रहें हैं। यदि सुन्दरी के दर्शनों को पान करते हुए, उसके विचार बन जाते हैं, कि यह कितनी सुन्दरी है, यही पाप हो जाता है, यदि विचार आता है अरे, सुन्दरवत है, इसका रचाने वाला कौन है? कौन इसका वैज्ञानिक है? इसका विज्ञान का स्रोत कौन है, बेटा! वही ब्रह्म आता है, मानो देखो, अहा! जो ब्रह्म चेतना पर विचार विनिमय हो जाता है, वही तो इसका धर्म माना गया है। बेटा! क्योंकि व्यापकता में देखो, उसके विचार जब परणित हो जाते है।

व्यापकवाद में धर्म

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना चाहिए। कि जितना भी व्यापकवाद है, उसमें धर्म होता है और जितना मानो उसके द्वारा सङ्कीर्णवाद रहता है, उतना ही अधर्म है, उतना ही मानव के सम्मुख देखो, बेटा! मृत्यु आती रहती है। बारम्बार मृत्यु उसको नष्ट भ्रष्ट करती रहती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब हम अहा! विचार विनिमय करते हैं, कि हमें धर्म को जानना है, धर्म नाम व्यापकता का है, मानव के विचारों को व्यापक बनाना है, अपने विचारों को जब व्यापक बना लिया जाता है, व्यापक विचार उस काल में होते हैं बेटा! जब मानव को

प्रत्येक इन्द्रियों का ज्ञान होता है, इस यज्ञशाला में एक यह यज्ञवेदी है, जो उस परब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में इसको बेटा! उत्पन्न किया था, इसको रचा था, मानो इस वेदी को रचा था, विचारों की वेदी को रचा था, इन सब इन्द्रियों को रचा था, बेटा! इन्द्रियों को जानना यज्ञवेदी के दस पात्र है। पात्रों को जानना और उन जान करके, बेटा! उन पात्रों के विषयों की सामग्री बनाना, इसका हृदय स्थल, यह यज्ञवेदी है। हृदय रूपी जो यज्ञशाला है, इसमें बेटा! अग्नि, ज्ञान रूपी अग्नि को प्रदीप्त करके बेटा! इसमें आहुति दे देता है। उस मानव का जीवन बेटा! यौगिकतर बन जाता है। यौगिकवत बन जाता है, उस मानव की बेटा! देखो, एक प्रतिभा, एक महानता में परणित हो जाती है। आचार्य कहता है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! यह तो हमारी यज्ञवेदी है, इनमें शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज कौन है? जो मानो मन को भी छलते हैं, बुद्धि को भी छला करते हैं, और यज्ञ के दस पात्र है, उस पर आक्रमण करने के लिए तत्पर रहते हैं। बेटा! वही तो मानव के शरीर में दैत्य हैं, जिनको काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह कहा जाता है, बेटा! क्योंकि यही तो दैत्य बने हैं, और इन दैत्यों पर ही तो विजय पाना है। मानव को, मानव का शरीर भी, उसी काल में उन्नत होता है, **आज मानव अपने मानव शरीर की मीमांसा नही कर सकता, वो ब्रह्म की मीमांसा भी नहीं कर पा सकता।** बेटा! क्योंकि ब्रह्म की मीमांसा इतनी महान है, क्या मानव के जीवन से भी महान कहलाई गई है, बेटा! मेरे प्यारे! ऋषिवर! मेरे प्यारे! महानन्द जी! यह कहा करते हैं, क्या हम परमात्मा को जानना चाहते हैं, मानो जो बेटा! संसार में अपने मानव शरीर को नहीं जानता, मेरा शरीर क्या है? मेरे शरीर में कितने देवता है, कितने दैत्य हैं, शुम्भ कौन है? निशुम्भ कौन है? रक्तबीज कौन है? मानो देखो, विरोचन कौन है? हमारे यहाँ एक वाक आ गया है मुनिवरों! रक्तबीज नाम तृष्णा को कहा गया है, एक तृष्णा मानव की देखो, मानव में इतनी तृष्णा उत्पन्न हो जाती है, कामना उत्पन्न होती रहती है। उन कामनाओं को दमन करना बेटा! रक्तबीज को दमन करना

है। मुनिवरों! देखो, उसे मानो अपनेपन में समाप्त कर देना है।

अभिमान

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं आज अधिक मीमांसा करने नही आया हूँ अधिक विवेचना नहीं करने आया हूँ। बेटा! यह वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है, कि हम अपने मानववत को जानने को, सदैव सफल होते चले जाएं। क्योंकि अपने मानव जीवन को जानना ही तो एक महानता कहलाई गई है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, अभिमान मानव को आता है, अभिमान मुनिवरों! देखो, यह शुम्भ का कार्य करता है, निशुम्भ है, जो मानो देखो, बेटा! क्रोध का कार्य किया करता है, शुम्भ, निशुम्भ और रक्तबीज और इत्यादि मुनिवरों! देखो, उनके द्वार से जब अभिमान की उत्पति होती है। उसी को तो विरोचन कहा जाता है, मुनिवरों! देखो, इन सभी विषयों को जानना, इन विषयों की सामग्री बनाना, इन विषयों को इन्द्रियों से दूरी कर देना, बेटा! मानववत कहलाया गया है। यही मुनिवरों! देखो, हम अपने मानववत को स्वीकार करके उन्नत बना सकते है। परमात्मा को जान सकते हैं।

स्वयं का ज्ञाता

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह हमारा वाक क्या कह रहा है, क्या वाक उच्चारण कर रहा है, आज हम संसार में वैज्ञानिक बनना चाहते हैं, मैंने बहुत पूर्व काल में, अपने वाक्यों को प्रगट करते हुए कहा था, मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने एक समय उच्चारण करते हुए कहा था, कि गुरुदेव तो सदैव आत्मा, परमात्मा की मानो चर्चा करते रहते हैं, आज का संसार कहीं चन्द्रमा में जा रहा है, कहीं बुध में जाने के लिए तत्पर हो रहा है, कहीं शुक्र में जाने के लिए तत्पर हो रहा है। मैंने अपने प्यारे महानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था, बेटा! यह संसार मुनिवरों! देखो, चन्द्रमा में चला जाए, मङ्गल में चला जाए। बुध में चला जाए शुक्र में चला जाए, चन्द्रमा में चला जाए। और भी नाना प्रकार के मण्डलों में भ्रमण करने लगे, परन्तु जब तक मानव अपने जीवन को नहीं जानेगा, तब तक बेटा!

इनमें जाने से कुछ नहीं बनता।

तप से निर्माण

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैंने कल के वाक्यों में तुम्हें वर्णन कराते हुए कहा था, कि मानव के द्वारा तो चरित्र की आवश्यकता है, मानव के द्वारा तो बेटा! निर्माण की आवश्यकता है, और निर्माण बिना ज्ञान और विवेक से कदापि नहीं उत्पन्न होता। बेटा! बिना तप के मानव का निर्माण नहीं होता। एक वैज्ञानिक, एक विज्ञानवेत्ता भी अपनी भौतिकशाला में तपा करता है, और वह तपने के पश्चात ही उसमें मानवीय प्रतिभा उत्पन्न होने लगती है, जिसको बेटा! आज हम, यह अपने में अनुभव करने लगते हैं, कि हमारा जीवन क्या है? आज हम तपस्वी बनना चाहते हैं, बेटा! तप किसे कहते हैं? इन्द्रियों को तपाना और कहां तपाना? क्योंकि प्रत्येक इन्दिय के विषय को जानने का नाम ही तप कहलाया गया है। बेटा! क्योंकि प्रत्येक इन्द्रिय के विषयों को जानना देखो, हमारे नेत्रों का विषय है, अहा! घ्राण का विषय है, वाणी का विषय है, श्रोत्रों का विषय है, त्वचा का विषय है, उपस्थ का विषय है, गुह्या का विषय है, पदों, हस्तो का विषय है, प्रत्येक विषय को जानना ही एक इन्द्रिय को विषय को जान करके, उनकी सामग्री बनाना, सामग्री बना करके यज्ञशाला में उनकी आहुति देना बेटा! हूत कर देना, ज्ञान रूपी अग्नि में, यही मानव का बेटा! यौगिकवत हो जाना है। बेटा! यही तो मानव का तप है, क्योंकि बिना तप के मानो संसार में बेटा! उसको अप्रति नहीं होता।

महर्षि कपिल मुनि महाराज

मैंने बहुत पूर्व काल में मुझे स्मरण आता रहता है। बेटा! जब महर्षि कपिल मुनि महाराज को देखो, प्राण और मन के ऊपर लेखनी बद्ध होने लगी, जब बद्ध होने लगी, तो महर्षि कपिल जी ने अपने गुरु से कहा प्रभु! मुझे तो विचार नहीं आता, कि प्रभु क्या है? उन्होंने कहा हे पुत्र! क्या इस बुद्धि से प्रभु नहीं जाना जाता, यह बुद्धि तो सांसारिक बुद्धि है, बाह्य बुद्धि है मानो वाणी से इस प्रभु का ज्ञान नहीं होता, वह तो अनुभव का विषय है उन्होंने

कहा कि तुम तपस्वी बनों, कहते है, कपिल मुनि महाराज ने जब तप किया, तो बेटा! तप के मानो जो विचार आता है, कि वास्तव में कोई चेतना है, संसार में, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं भी कुछ अधिक गम्भीरता में नहीं जाना चाहता हूँ। अपने विषय को मैं बहुत गम्भीर नहीं बनाना चाहता हूँ।

वाक यह उच्चारण करने का अभिप्राय यह है, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, अपने प्रति लेखनीबद्ध करते हुए अपने विचारों में कहा है कि मानव को सत का पथिक बनना है, और सत के पथिक के लिए इन्द्रियों के विषयों को जानना है। और जान करके हम इस संसार सागर से पार हो सकते हैं, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय ये, कि संसार में प्रत्येक वस्तु तपा करती है बेटा! मेरी प्यारी माता तपती है, ब्रह्मचारिणी बन करके तपती है, उस समय वह एक रस हो करके माता कहलाती है। ब्रह्मचारी गुरु के कुल में तपता है, परन्तु तपने के पश्चात वह भी आचार्य बन जाता है, सूर्य तपता है, तपने से ही सूर्य कहलाया गया है, मुनिवरों! समुद्रों का एक छाप होता है, मुनिवरों! पृथ्वी तपा करती है, नाना प्रकार की सुगन्धि युक्त, औषधियों को प्रदान करती है, और नाना प्रकार के खाद, खनिज भी उसी के द्वार से उत्पन्न होते हैं, यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह समाप्त होने जा रहा है, आज के वाक्यों का अभिप्राय ये, कि आज हम स्वयं तपस्वी बनें। और तप को विचारे, कि तप है क्या क्योंकि हमारा आहार, व्यवहार पवित्र हो, इन्द्रियों का विषय उसको जानना ही हमारा तप है। यह है आज का हमारा वाक्, अब मुझे समय मिलेगा, तो शेष चर्चाएं कल प्रगट कर सकूंगा। आज के इन वाक्यों का अभिप्राय क्या है, कि हम प्रभु की महिमा को जानने वाले बने और उसकी प्रतिभा को जान करके हम संसार सागर से हो जाएं बेटा! यह आज वाक अब समाप्त अब वेदों का पाठ होगा बेटा! । ओ३म् ब्रह्म भविता मानं गायन्ता व्यापकं रयीणां । ओ३म् शन्ना गतं रयीणां भद्रा घृतां देवं मां । ओ३म् देवं

मयाः सर्वं भद्रा ब्रह्मणा।

20 १० ०३ १९७० संस्कार की प्रतिभा

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर पद्धति का वर्णन होता रहता है, जिस पद्धति में सदैव नवीन वाक रहता है।

वैदिक पद्धति

परन्तु उसमें वृद्धपन नही आता, क्योंकि जिस पद्धति में मानव के जीवन की प्रतिभा आती हो वह पद्धति हमारे यहाँ सर्वोपरि और महान और पवित्र मानी गई है। हमारे आचार्य जनों ने इस सम्बन्ध में अपनी भिन्न भिन्न प्रकार की विवेचनाएं की हैं। आज बेटा! उन विवेचनाओं को तो करने नही जा रहा हूँ, केवल आज का जो हमारा विचार है, उसके ऊपर हमे अनुसन्धान और अपने में विचारधारा दोनो का समन्वय कर देना है। जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं कि हमारी वैदिक पद्धति जो विचारणीय है, जिसका परम्परागतों से ही, अनुसन्धान प्रायः होता रहा है, आज का आचार्यों ने ऋषि मुनियों ने उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचारा, मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे कुछ प्रेरित कर रहे हैं, परन्तु उस सम्बन्ध में भी अभी अभी विचार विनिमय हो सकता है।

चेतना का स्रोत

आज का जो हमारा इस चेतना के सम्बन्ध में विवेचना होती चली जा रही थी, यह जितना जगत हमें प्रतीत हो रहा है, यह एक चेतना में चेतनित हो रहा है। उसी की चेतना के आधार पर मानव अपनी क्रिया में सफलवत को प्राप्त होता चला जा रहा है, यह विचार विनिमय किया जाता है कि यह जो चेतना है, मानव में किसी भी प्रकार की चेतना है, उस चेतना का स्रोत्र क्या है? उस चेतना की जो मौलिकता है, वह क्या है? तो उसके ऊपर वास्तव में हमारा विचार विनिमय तो होना ही चाहिए कि उस चेतना का जो स्रोत है, वह आनन्दवत है,

प्रकृतिवत है, ब्रह्मवत है, इसका चेतना को स्रोत क्या है? तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे विचारों में यह आता चला जा रहा है, क्या इस चेतना का जो स्रोत वह परब्रह्म है। जिसके गर्भ में यह सर्व विश्व रमण कर रहा है, भ्रमण कर रहा है, आज हमें उस परब्रह्म की चेतना में विचार विनिमय करना चाहिए कि वह कितना चेतनित है, उसकी जो चेतना है, वह कितनी बलवती है, और मानव को किस प्रकार क्रियाशील बनाती है।

ममता और मय

आज हमें विचार विनिमय करना चाहिए। एक मानव अपने पन में अभिमान में परणित हो जाता है क्या मैं संसार का कार्य कर रहा हूँ, मानो यह मैं कर रहा हूँ, ममता अपने में अप्रतं प्रकृति सुप्रजा वेद का आचार्य कहता है, क्या यह जो मैं और ममता ममतसुतं जो मानव के हृदय में मय की प्रतिभा आ जाती है, मैं का जो स्रोत आ जाता है। यह मानव को चेतनावत चेतनित को वह चेतनित हो रहा है, अपनेपन में मानव अभिमानित हो करके बेटा! जो मानव के जीवन की जो चेतना है, वह समाप्त होने लगती है। इसी से हमें विचार विनिमय कर लेना चाहिए। कि हम अपनेपन में कितने स्वाभिमानित बनना है, कितना हमें गम्भीरता में जाना है, हम कितने विचारणीयशील बनें क्योंकि हमारा जो विचार है, यह विचार ही तो हमारे अन्तःकरण को उज्ज्वल बनाता है। शुद्ध और पवित्र बनाता है।

महर्षि जमदग्नि आश्रम में सभा

मुझे प्रायः संसार का हमें बेटा! संसार की बहुत सी वार्त्ताएं प्रगट आती रहती हैं। विचार आता है हमारे यहाँ बेटा! एक समय जगदग्नि आश्रम में एक सभा हुई, परन्तु जब महर्षि जमदग्नि आश्रम में यह विचार विनिमय यह होने वाला था कि मानव का आवागमन कैसे बनता है। आवागमन की प्रतिभा कैसे आती है, मानो देखो, महर्षि जमदग्नि आश्रम में बेटा! देखो, महर्षि भारद्वाज महर्षि पिप्लाद और भी आदि जैसे महर्षि रेवक आदि मुनिवर, अश्विनी कुमार, महात्मा दधीचि भी उस सभा में विराजमान

थे। परन्तु विचार विनिमय यह होने ही वाला था कि मानव का आवागमन कैसे बनता है। तो महर्षि पिप्लाद मुनि महाराज ने यह कहा कि सबसे प्रथम सभा में सभापति ही बनना चाहिए।

संसार में आवागमन

तो बेटा! महर्षि भारद्वाज को सभा का सभापतितव बनाया गया, सभापति जी से यह प्रश्न किए गएं, कि महाराज! संसार में आवागमन कैसे बनता है। आवागमन क्यों होता है, क्योंकि आना जाना कैसे है। जो संसार में मृत्यु को भी कल्पना कहा है, मृत्यु भी कल्पना है, और मानव का जो शरीर हैं, हमें दृष्टिपात आ रहा है, यह भी स्वप्न प्रतीत हो रहा है। यदि मानव की नाना प्रकार की प्रतिभा हैं, उसमें हमें कौन सा ऐसा अङ्कुर हैं। जो मानव के द्वारा हमारे भद्र समाज में आवागमन का एक अङ्कुर उत्पन्न होता रहता है। बेटा! इसके सम्बन्ध में महर्षि भारद्वाज ने कहा, क्या इसके ऊपर विचार विनिमय किया जाए। क्योंकि बहुत से वाक विचार के होते हैं। गम्भीरता के होते हैं। जिसका आत्मा से सम्बन्ध होता है, मानो जिसका एक महान प्रतिभा से सम्बन्ध होता है। तो परमात्मा से जितनी चेतना से चेतनित होता रहता है, इसीलिए प्रत्येक वाक का शोधन करना हमारा सभी का कर्तव्य होता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह विचार विनिमय होने लगे तो महर्षि जमदग्नि जी ने एक वाक कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि आवागमन जो बनता है, यह मानव के संस्कारों से बनता है। क्योंकि संस्कार मानव के अन्तःकरण में विराजमान रहते हैं। इसीलिए उन संस्कारों से आवागमन की प्रतिभा बन जाती है। आवागमन दो ही वस्तु संसार में एक ऐसी मानी गई हैं, जिसके ऊपर संसार का बेटा! सर्वत्र जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है, प्रतिभा है, वह सभी इसी के ऊपर निर्धारित रहती है। क्योंकि एक मानव आता है।

जैसे आवागमन में रमण करने वाला जैसे सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है, सांयकाल को अस्त हो जाता है, सांय काल को अन्धकार आ जाता है। रात्रि छा जाती

है, तो रात्रि का आवागमन बन जाता है, क्योंकि सूर्य की प्रतिभा का रूपान्तर होते ही बेटा! देखो, रात्रि छा जाती है, और रात्रि के छा जाने के पश्चात सूर्य उदय हो जाता है। सूर्य की प्रतिभा प्रारम्भ हो जाती है, सूर्य का आवागमन हो जाता है।

इसी प्रकार बेटा! देखो, मानव के जीवन की जो प्रतिभा है, मानव का जो आवागमन है, यह भी इसी प्रकार बन जाता है। वह जो मानव का अन्तःकरण कहलाया गया है, उस अन्तःकरण में नाना प्रकार के संस्कार होते हैं, उन्ही संस्कारों के आधार पर बेटा! मानव का आवागमन बन जाता है। आवागमन हो जाता है, क्योंकि संस्कार ही संसार में लाते हैं, बिना संस्कार के मानव का मिलान नही होता, बिना संस्कारों के मानव के जीवन की प्रतिभा का भी प्रतिष्ठित नही होता, क्योंकि वह अपनी प्रतिभा में जब ही प्रतिष्ठित होता है, जब बेटा! उसका कोई न कोई संस्कार होता है। प्रायः संसार में मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने कई काल में इन वाक्यों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि आधुनिक काल का तो समाज आवागमन की प्रतिभा को तो स्वीकार नही करता है।

संस्कार

परन्तु हमने अपने विचारों में वैदिक विचारों में यह कहा जाता है कि आवागमन तो बनता ही संस्कारों से है, यदि मानव के द्वारा जीवात्मा के समक्ष कोई भी संस्कार नही होगा, परमाणुओं का संस्कार मुनिवरों! देखो, यहाँ मन की प्रतिभा का जो संस्कार है, वह नही होगा तो संसार में आवागमन भी नही बनेगा। इसीलिए हमारे आचार्यों ने बेटा! जब प्रजा का समाज का विधान बनाया तो बेटा! देखो, संस्कारों को रचा, मानो संस्कारों में मानव को सुगठित कर दिया, उसमें कटिबद्ध कर दिया क्या हे मानव! तू संस्कारों में अपनी प्रतिभा को लाने का प्रयास कर। तो मुनिवरों! देखो, इसीलिए आचार्यों ने हमारे यहाँ आज से नही बेटा! परम्परागतों से ही, भगवान मनु के काल से पूर्व ही मानो सोलह संस्कारों की प्रतिभा प्रारम्भ होती चली आई है। उसका अनुसरण हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने

प्रचलित रहा है। परम्परा के आधारित समाज में भी ऐसा ही होता चला आया है, क्या प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को बेटा! संस्कारों में कटिबद्ध हो जाता है। बेटा! देखो, केवल मानवीय केवल मनों की ही नही केवल सभी प्राणी मात्र बेटा! संस्कारों में सुगठित हो जाता है। बिना संस्कारों के मानव का मिलान किसी काल में नही बनता, न जन्म बनता है, इस संसार में जो भी बनती है, और न बेटा! एक दूसरे मानव से वार्ता करने का ही कोई सौभाग्यवत प्राप्त होता है। परन्तु जब हम यह विचार विनिमय करने लगते हैं हमारा जो संस्कार है, मुझे तो सोलह संस्कारों में बेटा! देखो, यह मानव की प्रक्रिया प्रारम्भ होती चली आई है। इन्हीं संस्कारों का अभिप्राय यह है क्या एक दूसरे का मिलान है कि संस्कार का अभिप्राय यही होता है। मानव के बाह्य प्रवृत्ति और आन्तरिक प्रवृत्ति बन कर इन दोनो का मिलान हो जाता है, उसी समय बेटा! संस्कारों की उपलब्धि हुआ करती है।

एक मानव संस्कार में देखो, सब वस्तुओं को दृष्टिपात कर रहा है, वह प्राकृतिक सौन्दर्य है, अथवा वह ईश्वरीय रचना है, उस रचना के ऊपर अनुसन्धान करता रहता है। विचारता रहता है, जब तक मुनिवरों! देखो, मन का बाह्य प्रवृत्तियों से विचारता रहता है, मन की प्रवृत्ति वह आन्तरिक प्रवृत्ति से जब मिलान हो जाता है। उसी समय बेटा! देखो, संस्कार बन जाता है, परिपक्व हो जाता है, जैसे मुनिवरों! देखो, कलाकार किसी वस्तु को बनाता है, एक कुम्भा एक मानव देखो, घड़े को बनाता है, बनाने के पश्चात जल का और मानो देखो, रज का दोनो का संस्कार कर देता है। वह इतना उज्ज्वल संस्कार अग्नि में परणित कर देता है। तो बेटा! वह जो अग्नि है, वह उस संस्कार को परिपक्व बना देती है, संस्कार को उज्ज्वल बना देती है, मानो देखो, उसमें पिछड़ा पन नही होता, नष्ट नही कर सकता, तो मुनिवरों! देखो, जो हमारे अन्तःकरण में संस्कार विराजामन हो जाते हैं। वह संस्कार मुनिवरों! देखो, पुनः पुनः स्मरण करने से जैसे अग्नि में घड़े में ही देखो, घड़ा परिपक्व हो जाता है, कुम्भाकार का बनाया

हुआ, इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, स्मरण शक्ति जितनी भी की जाती है उसको पुनरावृत्ति की जाती है उतना ही बेटा! अन्तःकरण में संस्कार की प्रबलता बेटा! उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार हमारे यहाँ विचार आता है कि संस्कारों की जो उपलब्धि है, मानो वह उसको अग्नि भी नष्ट नही कर सकती जल भी समाप्त नही कर सकता। क्योंकि वह आवागमन का एक मूल कारण बना है, मूल स्रोत बना है, इसीलिए हमारे यहाँ उसकी प्रतिभा एक महानता में परणित की गई है, तो आचार्यों जनों ने यहाँ महर्षि जमदग्नि जी ने और महर्षि भारद्वाज दोनो की विचारधारा के अनुसार हम यह उच्चारण कर सकते हैं, उन्होंने जो संस्कारों के सम्बन्ध में अपना विचार व्यक्त किया है, वह वास्तव में महान और सुन्दरवत है, और वैज्ञानिक रूपों से परणित किया गया है। क्योंकि इसी में विज्ञान होता है, एक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है, परन्तु वह वैज्ञानिक, उन्होंने कोई वस्तु को दृष्टिपात किया, परन्तु उसको जब अपने आसन पर विराजमान हो जाता है। उसकी पुनरावृत्ति भी करता है पुनरावृत्ति भी करता हुआ बेटा! वह संस्कार इसमें बलवती बन जाते हैं, इतने प्रबल बन जाते हैं, क्या वह मानव और भी वैज्ञानिक में परायाणवत होना उसके लिए स्वाभाविकतव हो जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! एक ब्राह्मण है, परन्तु वह शास्त्रोक्त वाक उच्चारण करने के लिए तत्पर रहता है, शास्त्रों की चर्चा विवेचना करता रहता है, उसकी पुनरूक्ति करता रहता है। तो विद्या उसके कण्ठ में प्रवाहित हो जाती है, अन्तः देखो, और देखो, बाह्य दोनों प्रवृत्तियों में मानो एक संस्कार की उपलब्धि उत्पन्न हो जाती है। उसको बेटा! वह जो संस्कार है, वह उत्पन्न हो जाते हैं, मानव सुन्दर रूप उसके समीप आना प्रारम्भ हो जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! सोलह संस्कारों में मानो देखो, जिसको हम महा प्रवेति देखो, सुन्दर समय गच्छतम् ब्रह्मा मानो सूक्ष्म ब्रह्मे व्यापा प्रति कामना ऐसा आचार्यों ने हमारे यहाँ माना है कि जब हम जब मानो देखो, संस्कार के ऊपर आते हैं, एक बाल्यकाल में संस्कार होता है, उनको

हम मानो देखो, नाना रूपों में उत्पन्न किया करते हैं, और भी संस्कार होते हैं, परन्तु सबसे मुख्य जो संस्कार होता है वह ब्रह्मचर्य आश्रम में परणित होता है, आचार्य कुल में परणित होता है, उसके पश्चात आचार्य कुल से जब वह पृथक होता है, उसके पश्चात वह गृह आश्रम में प्रविष्ट हो जाता है। गृह आश्रम में प्रविष्ट हो जाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, वह गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपनाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। मानो देखो, कन्या ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मचारी जब दोनो अपने पथ प्रदर्शक को ग्रहण करने लगते हैं, उसमें बेटा! उनकी प्रतिभा उनके समीप होती है। दोनो का कर्तव्य दोनों की प्रतिभा बन करके महानता में परणित हो जाती है, हमारे यहाँ आचार्यों ने कहा है, प्रभु ने विधाता ने उस मेरे प्यारे! देव ने माता के गर्भस्थल में ही दोनो की प्रतिभा को एक दूसरे की समीप बनाना उनके सौभाग्यवत हो गया था, मानो देखो, इसी प्रकार जब हम यह विचारने लगते हैं, जब उनका दोनो का संस्कार किसी काल का था, अथवा प्रारम्भ में हुआ था तो मुनिवरों! देखो, इसमें भी हमारे आचार्यों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, सन्धनं विचारं गच्छंतम् रुद्रा क्योंकि हमारे यहाँ ऐसा आचार्यों ने स्वीकार किया है कि माता के गर्भस्थल में क्या उनके पूर्व के भी संस्कार होते हैं, वर्तमान काल के भी संस्कार होते हैं, उन संस्कारों के आधार पर मुनिवरों! देखो, दोनो का शुभ संस्कार बन जाता है। उन दोनो में एक दूसरे में सुगठित प्रीति बन जाती है, उसी प्रीति के आधार पर बेटा! उनका संगम एक महान और सुगठित और विचारणीय संसार में एक महानता को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानो जो मेरी पुत्री है, मानो उसके गर्भ से न प्रतीत कैसे ऊँचे संस्कारों वाले बालक का जन्म हो जाता है। परन्तु वह भी एक संस्कार होता है, मानो जितना भी यह संसार तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है बेटा! यह करोड़ो जन्मों का संस्कार है। मानव का मानव से मिलान होता है, पति पत्नी का मिलान होता है, मेरे प्यारे! देखो, कहीं कहीं पर मार्ग में मिलान हो जाता है, उन संस्कारों का मानो देखो, एक समूह माना गया है। यदि कोई यह

कहे कि संस्कार ही कोई वस्तु नही होता, न आवागमन ही कोई वस्तु नहीं होता है, आवागमन न आत्मा का होता है, न शरीर का होता है, आवागमन केवल मानव के संस्कारों का होता है।

संस्कार और विचार

जो मानव में विचार बन जाते हैं, एक मानव विचार बनाता रहता है, क्या मैं मृगराज की योनि में प्रवष्टि होने जा रहा हूँ, तो मुनिवरों! देखो, उसे मृगराज की योनि प्राप्त हो जाती है। मानो उसका एक विचार ही तो बना है, इन्हीं विचारों का अन्तःकरण में जा करके संस्कार बना, इन संस्कारों के आधार पर मानव का बेटा! देखो, मानव का यहाँ समूह परमाणुओं का समूह उसके आधार पर बन जाता है। मुझे एक समय स्मरण आता रहता है स्मरण आता रहता है बेटा! यह तुमने भी श्रवण किया होगा महर्षि पापड़ी ऋषि महाराज जब मुनिवरों! बाल्यकाल में थे बाल्यकाल में संस्कार बना कि मैं यदि आगे जन्म लेने वाला बनूं तो मृगराज की योनि में प्रविष्ट हो जाऊं मानो देखो, यह विचार उनके मस्तिष्क में प्रायः आ रहा था क्या मैं मृगराज बनूं जो मार्ग में भ्रमण करता रहता है निर्द्वन्द्व हो करके विचरण करता रहता है अहा! और प्राणी सब उससे भयभीत रहते हैं, इस प्रकार की विचारधारा बाल्यकाल में ही आ गई यह विचार मुनिवरों! देखो, उसके अन्तःकरण में परिपक्व बन गयें। परिपक्व बन जाने के पश्चात मुनिवरों! देखो, महर्षि पापड़ी मुनि महाराज दो सौ चौरासी वर्ष के जब हुए तो मुनिवरों! देखो, मृत्यु को प्राप्त हो गएं, शरीर को त्याग दिया गया, तो मुनिवरों! देखो, सबसे प्रथम वही संस्कारों का आवागमन बन गया, क्योंकि उसे मृगराज की योनि प्राप्त हो गई। मृगराज की योनि प्राप्त होने के पश्चात बेटा! उसे वह काल स्मरण रहा था कि उसने उस जन्म में बाल्यकाल में यह स्मरण किया था, क्या मुझे मृगराज की योनि प्राप्त हो जाए, तो आज मुझे वास्तव में यह मृगराज की योनि प्राप्त हुई। तो मुनिवरों! वह हिंसक था तो मुनिवरों! **अब तक जो योनि मानव को प्राप्त हो जाती है, प्राणी को वही मुनिवरों! देखो, वह**

इसीलिए हो जाती है कि आत्मा को वह योनि ही प्रिय बन गई।

संस्कार और सङ्कल्प

तो मुनिवरों! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह है कि मानव का संस्कार है क्योंकि संस्कार उस काल में बनता है जब विचारों को देखो, पुनः स्मरण किया जाता है पुनरूक्ति की जाती है इसी प्रकार आज मैं यह देखो, वाक क्यों उच्चारण कर रहा हूँ। मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने एक सुन्दर प्रेरणा दी है। उसी प्रेरणा के आधार पर आज हम अपने विचारों को व्यक्त करने जा रहे हैं। आज मेरे प्यारे! महानन्द जी! हमारे समीप विराजमान हैं, न प्रतीत कितने काल पूर्व ही यह विचार बना कि हम वास्तव में शिष्यं ब्रह्मे कामं ब्रह्मे अस्ति सुप्रजा अस्तं ब्रह्मे विचार बना कि वास्तव में हम एक दुसरे के कितने निकट रहेंगे, तो बेटा! वह निकटता जन्म जन्मान्तरों के ऊपर मानव का कार्य करने लगती है। इसी प्रकार आज मैं बेटा! देखो, संस्कार की विवेचना करता चला जा रहा था, वह संस्कार क्या हैं? मानो देखो, संस्कार के ऊपर यह वाक प्रारम्भ होता चला जा रहा था कि मुनिवरों! देखो, संस्कार का अभिप्राय है, मानव का सङ्कल्प, क्योंकि सङ्कल्प होता है, मानव के विचारों में, मानव की प्रतिभा में, मानव के अन्तःकरण में सङ्कल्प संस्कार विराजमान हो जाते हैं। वह संस्कार क्या होता है? उसी को हमारे यहाँ सङ्कल्प कहा जाता है, क्योंकि यह इतना प्रमाण तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है, बेटा! सूर्य अपने समय पर उदय होता है, चन्द्रमा अपने समय पर उदय होता है, समाप्त हो जाता है, रात्रि आती है, दिवस आता रहता है, परन्तु अन्धकार और प्रकाश आता रहता है यह सब क्या है? यह सब प्रभु का सङ्कल्प है, इसी प्रकार बेटा! देखो, इतना भी यह संस्कार होते हैं, यह एक सङ्कल्प होता है, वह सङ्कल्प जैसा सङ्कल्प मानव करता रहता है। अन्तःकरण में उसी प्रकार की विचारधारा उसी प्रकार के मुनिवरों! देखो, जो चित्त नाम की भूमि है। उसमें बेटा! वह संस्कार विराजमान हो जाते हैं। बीज रूप बन करके उसमें परणित हो जाते हैं, इसी प्रकार आज हम यह

विचारते चले जाएं, जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने अभी अभी प्रगट कराया, मुझे प्रेरणा दी है, क्या जहाँ हमारी आकाशं ब्रह्मे वाणी ब्रहे मुनिवरों! देखो, जहाँ वाणी का प्रसारण हो रहा है, और हम संस्कारों उपलब्ध ब्रहे मुनिवरों! देखो, संस्कार के सम्बन्ध में इसीलिए मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे प्रेरणा देते चले जा रहे हैं। वह संस्कार मुनिवरों! देखो, जो एक पति और पत्नी का होता है, मानो एक ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी का होता है वह दोनो ही मुनिवरों! देखो, गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपनाने के लिए इस संसार में आते हैं गृहपथ्य नाम की अग्नि क्या होती है? क्या मुनिवरों! बेटा! गृहपथ्य मानो गृह कहते हैं देखो, जहाँ हम वास करते हैं, पथ्य करते हैं कि वहाँ एक सुन्दर पथ है, जिस गृह में हम आयें हैं, क्या जिस आसन पर आयें हैं। उस आसन पर हमारे कर्तव्य होते हैं, उन कर्तव्यों का पालन करना हमारा कर्तव्य होता है। वही हमारा तप होता है। जैसा मुनिवरों! यमाचार्य ने नाचिकेता को विवेचना करते हुए कहा था, क्या वह जो तीन प्रकार की अग्नि है, सबसे प्रथम अग्नि जो गार्हपथ्य नाम की अग्नि, जिसमें मानव ब्रह्मचर्यवत को धारण करता है, अपने सुक्रत की रक्षा करता है, इसी प्रकार आगे चल करके वह देखो, गृहपथ्य नाम की अग्नि का पथिक बन जाता है। गृहपथ्य नाम की अग्नि वह होती है, जिसमें धर्म मर्यादा सभी की रक्षा करना उसका कर्तव्य हो जाता है। बेटा! विचार उसके मस्तिष्क में एक महान व्यापकवाद की प्रतिभा आ जाना ही एक स्वाभाविक हो जाता है।

संस्कार और धर्म

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम यह विचार विनिमय करते चले जाएं कि हमारा जो विचार है, मानो देखो, उसमें कितना व्यापकवाद आ जाना है, व्यापकवाद को हमारे यहाँ धर्म कहा गया है। उसी को पथ कहा गया है, आज हमें उस पथ को अपना लेना चाहिए, जिस पथ का हमें पथिक बनना है, और कौन से पथ का पथिक बनना है, बेटा! व्यापकवाद का। क्योंकि पति पत्नी को दोनो को कितना व्यापकवाद में जाना है। कितना धर्म

कितनी मानवीयता उनके समीप आ पंहुची है, बेटा! देखो, धर्मस्थल में धारा प्रव्हे अकृत होना देखो, यहाँ समान और गौतम जैसे महापुरूषों को जन्म देने का उनका एक स्वाभाविक कर्म बन जाता है। मानो देखो, क्योंकि उससे धर्म की रक्षा होती है, जहाँ मेरी प्यारी माताओं के गर्भ से ऊँचे ऊँचे बालक मुनिवरों! संस्कारित बालकों का जितना जन्म होता है, उतना यह संसार स्वर्गवत बनता चला जाता है।

हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, नाना प्रकार की आयुर्वेद के आधार पर बेटा! नाना प्रकार की औषधियों का निदान आता रहता है, परन्तु गृहाश्रम में आते ही नाना प्रकार की औषधियों का मिलान है। नाना प्रकार की और भी विचारधारा होती है। जिनसे मानव को सुगठित रहना है, मानो देखो, उन विचारधाराओं को अपनाते हुए हमे इस संसार में मानो गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपनाना है, अग्नि कहते हैं, ज्ञान को अग्नि कहते हैं। विवेक को, अग्नि नाम बेटा! देखो, मानव की व्यापकता का नाम अग्नि कहलाया गया है। जैसे अग्नि बेटा! कण कण में ओत प्रोत हो रही है अहा! देखो, अग्नि ही विद्युत रूप से भी रमण कर रही है, अग्नि मानो मेरे प्यारी माता इस अग्नि के द्वारा बेटा! देखो, अन्न को तपाती है। वह भी अग्नि ही होती है, और वह भी अग्नि है, जो यज्ञशाला में प्रदीप्त होती है, यज्ञशाला में सामग्री को वशीभूत कर देती है, और मुनिवरों! देखो, वह सूक्ष्म रूप बना देती है, सूक्ष्म रूप बना करके व्यापक रूप बना करके बेटा! वायुमण्डल को पवित्र बना देती है। इसी प्रकार हमें विचारना है, क्या वह जो गृहपथ्य नाम कर अग्नि है, उसे अपनाना है, अपनाने के पश्चात हमे व्यापक बनना है, इतना सूक्ष्म अपने विचारों को बनाना है। क्या जैसे अग्नि में आहुति देने के पश्चात बेटा! देखो, नाना प्रकार का साकल्य और समिधा का सूक्ष्म रूप बन जाता है। सूक्ष्म रूप बन करके व्यापक रूप बन गया जितना भी सूक्ष्म होता है, उतना व्यापक होता है, और जितना व्यापक होता है, उतना ही धर्म से सुगठित होता है, और जितना धर्म से सुगठित होता है, उतना

विचार सुन्दर होता है, और जितना विचार सुन्दर होता है, उतने ही बेटा! देखो, हमारे अन्तःकरण में सुन्दर संस्कार उत्पन्न होते हैं। तो हमें यह विचार विनिमय करना है कि हम वास्तव में अपनी विचारधारा को कहाँ ले जाएं, क्या हम अपने जीवन को मानो देखो, इस अग्नि को अपनाते चले जाएं, वह अग्नि होती इस वेदी पर हम विराजमान हो जाते हैं। उस अद्भुत वेदी में अग्नि वह प्रदीप्त होने वाली है, वह सर्वत्र अग्नि में हम जब परणित हो जाते हैं, और वेदी में परणित होते हुए मानो एक सुन्दर साकल्य को अपनाते हैं, सुन्दरवत को अपनाते हैं, मानो देखो, सुन्दरवत को अपनाना हमारा स्वभाव बन जाता है। यह हमारा स्वभाव है, परन्तु मन की प्रतिभा उस महान पवित्रवत में परणित हो जाती है, जहाँ संस्कारों की उपलब्धि होने लगती है, उस मानव का संस्कारों के आधार पर गमन की प्रतिभा बनती है। उसी से नाना प्रकार के कष्टदायक इत्यादि देखो, यह सभी कुछ हमारे संस्कारों से उपलब्ध हुआ करते हैं, उसी से हमारे जीवन का एक भोगतव्य बना करता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा यह वाक क्या कह रहा है, क्या हम वास्तव में जिस भी आसन पर रहें, ब्रह्मचर्य में रहें, अथवा गृह आश्रम में प्रविष्टि हों, हमें स्वयं प्रीति से ही संसार में रहना है, और प्रभु की महिमा को विचारना है। क्योंकि हमे तो हमारी संसार में कोई वस्तु नही हैं, आज कोई मानव यह अभिमान करने लगता है। दम्भ और पाखण्ड में परणित हो जाता है, क्या मैं यह जानता हूँ, क्या प्रभु के राष्ट्र में प्रभु के विज्ञान में हम बेटा! कुछ भी नही जानते हैं। क्योंकि जब यह विचार मानव के द्वारा होता है, तो मानव में दम्भ नही आता, पाखण्ड भी नहीं आता, परन्तु दम्भ और पाखण्ड उस काल में आता है। जब मानव अपने पन में यह अभिमानित हो जाता है। क्या मैंने यह सर्वश किया है, क्या मानो जब मैं की प्रतिभा आ जाती है, उसी समय बेटा! मानव में अभिमान हो जाता है, और वह अभिमान मानव के जीवन का एक विनाश बन जाता है। विनाश की एक प्रतिभा बन जाती है। वह एक विनाश भरे संस्कारों को जन्म देता रहता

है, उसी से बेटा! हमारे यहाँ बड़े बड़े पाण्डितव भी बेटा! आवागमन के संस्कारों के बन्धनों में बेटा! बन्धित हो गएं हैं। मुझे स्मरण आता रहता है हमने बेटा! अभी अभी मानो देखो, महर्षि पापड़ी मुनि की चर्चा प्रगट की और भी यहाँ नाना प्रकार की चर्चा इस प्रकार की आती रहती हैं जिससे यहाँ आवागमन की प्रतिभा बना करती है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मुझे कुछ विशेष चर्चा प्रगट नही करनी है, केवल जो आज का हमारा वैदिक पठन पाठन की प्रक्रिया हमें प्रेरित करती चली जा रही थी, उसके आधार पर हम कुछ अपने विचार व्यक्त करने जा रहे हैं। और वह केवल विचार क्या कि हम वास्तव मे यह विचारते चलें जाएं कि हम जिस भी आसन पर रहते हैं, उसी आसन पर हमें अपने जीवन को व्यापक बनाना है, विचारों को व्यापकवाद में ले जाना है, हमें अपने व्यवहार में इतना कुशल रहना है, हमें अपने व्यवहार की प्रतिभा को विचारना है, क्योंकि यह जो जगत जितना भी मुझे दृष्टिपात आ रहा है, बेटा! यह सदैव ही प्रभु की चेतना में चेतनित हो रहा है, उसी के आधार पर हम अपने जीवन को आगें ले जाते चले जाएं और यहाँ कणाद और गौतम और मुनिवरों! देखो, और भी महान से महान राम और कृष्ण जैसे महान पुरूषों को जन्म देते हुए बेटा! हम संसार में अग्रणीय बनते चले जाएं। हम तप और महिमा के आधार पर रमण करते चले जाएं।

पति पत्नी का संस्कार

एक मेरी प्यारी माता है, वह अपने संस्कार के पश्चात उसका कितना उज्ज्वल तप बन जाता है, क्या वह अपने व्यवहार में कितनी सफलवत को प्राप्त होने के लिए तत्पर हो जाती है। यह हमारे ही यहाँ एक विचारना है, क्योंकि हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! एक पद्धति बनाई है। वह पद्धति विज्ञान के आधार पर है, मानो एक महानता के आधार पर है क्योंकि महानता के आधार पर हमें अपने जीवन को और महानता को विचारना है, जिससे बेटा!

देखो, जीवन की प्रतिभा सुन्दर से सुन्दर बनती चली जाएं।

गार्हपथ्य अग्नि

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं तुम्हें कहाँ तक ले जाता चला गया, वाक यह प्रारम्भ हो रहा था क्या हम वास्तवत में देखो, तीन प्रकार की अग्नि की पूजा करते हैं। जीवन में सबसे प्रथम जो गार्हपथ्य नाम की अग्नि कहलाती है, अहा! जो ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रविष्ट होती है, हम ब्रह्मचर्य आश्रम में गुरु के द्वारा ही हम नाना प्रकार के सुक्रत को अपने में धारण करते रहते हैं।

गृहपथ्य अग्नि

इसी प्रकार मुनिवरों! देखो, वह गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपनाते हुए पति और पत्नी दोनों स्नेह पूर्वक अपने गृह में विचरण करते हुए धर्म और मर्यादा के आधार पर क्योंकि उनका जीवन सदैव रहना चाहिए। हमारे ऋषि मुनियों ने बेटा! एक दूसरें में प्रीति जैसे प्रकृति और ब्रह्म का दोनों का मिलान होता है, दोनो एक दूसरें चेतनित हो रहे हैं, क्योंकि ब्रह्म की चेतना बेटा! प्रकृति को प्राप्त नहीं होती। तो प्रकृति में अपनी कोई क्रिया नहीं है, अपनी कोई चेतना नही है, क्योंकि वह चेतना कहीं से उसे प्राप्त होती है, और वह चेतना का जो मूल स्रोत है, वह केवल ब्रह्म कहलाया गया है। इसी प्रकार बेटा! यहाँ देखो, जब गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन किया जाता है, गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करने के लिए उसमें धर्म होता है, अग्नि का अभिप्राय ही धर्म है, अग्नि को ही धर्म कहा गया है।

अग्नि हमारे यहाँ देखो, अग्नि की जो प्रतिभा है, अग्नि की जो मानो मानता है, अग्नि हमारे यहाँ देखो, ज्ञान को कहा गया है, और ज्ञान में बेटा! विवेक भी आता है, मानो उसमें किसी किसी काल में विडम्बना भी आ जाती है। उस काल में देखो, यहाँ केवल व्यापकता का नाम अग्नि कहलाया गया है, मैं अग्नि मीमांसा कर रहा था, अग्नि कहते हैं जिसमें बेटा! व्यापकवाद होता है, मानो देखो, कहीं विद्युत बन करके रहती है, कहीं गृहों में एकत्रित हो

करके भ्रमण करती है, कहीं मुनिवरों! देखो, ऊँचे से ऊँचे कणों को निर्माणित करने वाली यही अग्नि होती है। बेटा! अग्नि के नाना प्रकार के रूप होते है, यही अग्नि बेटा! और भी सूक्ष्मतम में जाते हैं, यही अग्नि बेटा! देखो, ब्राह्मण के मस्तिष्क में अग्नि बन करके रहती है, ब्राह्मण के मस्तिष्क में बन करके रहती है, जिसे हम ज्ञान कहते हैं, विवेक कहते हैं, मानो देखो, योगी के हृदय में मुनिवरों! देखो, यौगिक नाम की अग्नि बन करके रहती है अहा! अग्नि ही बेटा! इस संसार में मानो मानव को प्रदीप्त करने वाली है। अग्नि ही बेटा! सूर्य के क्योंकि सूर्य अग्नि का प्रतिनिधि माना गया है, यदि सूर्य से अग्नि का प्रवाह ही संसार में नही आयेगा, तो बेटा! देखो, यह संसार अन्धकार में चला जाएगा, इसी प्रकार मानो यह अग्नि का प्रवाह कहाँ से आता है। इसका स्रोत क्या है, मानो देखो, इसी अग्नि का जो स्रोत है, वही परब्रह्म मानो चेतनावादी चेतनित कर रहा है। संसार को वह चेतना का एक महान स्रोत माना गया है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह हमारा वाक क्या कह रहा है, आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय यह है क्या हम और भी गम्भीरता में जाते हैं, तो बेटा! यही अग्नि है जो बेटा! देखो, प्रकृति को मानो इस सुन्दर प्रकृति को चेतनित कर रही है। क्रियाशील बना रही है, लोक लोकान्तरों मे रमण कर रही है, मानो देखो, लोक लोकान्तरों के जो प्राणी हैं, उन प्राणियों के मस्तिष्क में यह ज्ञान रूप से रमण करने वाली है, बेटा! आज हम मानो देखो, यही अग्नि है, जो पति के गृह में मानो देखो, पति अग्नि बन करके भ्रमण करती है। कैसी अग्नि है, कैसी सुन्दरवेदी है, क्या यहाँ देखो, कणाद और गौतम जैसे बालक का जन्म होने वाली सुन्दर वेदी से मानो देखो, यही तो अग्नि है, इस अग्नि के द्वारा देखो, बेटा! देखो, राम और कृष्ण जैसे पवित्र आत्माओं का जन्म होता है, मानो संसार के उद्धारक प्राणियों का जन्म होता है। तो हमें विचारना

है हमें व्यवहार में कितना सफलवत को प्राप्त होना है।

मर्यादा

आज हम धर्म और मानवता को अपनाते हुए मानवीय धारा के आधार पर आज हम अपनी मर्यादा का पालन करते चले जाएं। क्योंकि जिस मानव के संसार में मर्यादा को नष्ट कर दिया है, वह मानव, मानव नही रहता वह पशुवत हो जाता है। इस प्रकार हमें विचार विनिमय करना है, कि मानो मर्यादा के आधार पर अपने जीवन अपने प्रतिभा अपनी मानवीय जाति को अपनाना है। जातीय अभिमान को नही करना है, परन्तु उसको ज्ञान के आधार पर ले कर चलना ही है।

संस्कारों की प्रतिभा

संसार में आयें हैं, तो वास्तव में संस्कारों का जन्म होता है। संसार में आए हैं, मानो देखो, यह संसार भी हमारे संस्कारों का क्षेत्र कहलाया गया है, जहाँ हम संस्कार में आते हैं, अपने संस्कारों को भोगने के लिए आते हैं। मानो एक दूसरें से मिलान करने के लिए आते हैं, एक दूसरे की प्रतिभा को विचार विनिमय करने के लिए आते हैं, बेटा! यहाँ संसार में कोई मानव मानव का विरोध करता है। मानव, मानव को दूरिता में कर रहा है, कोई मानव किसी से द्वेष कर रहा है, यह सब मानव के किसी न किसी जन्मों के संस्कार होते हैं। उन्हीं संस्कारों के आधार पर मानव विरोधी बन जाता है, उन्ही संस्कारों के आधार पर मानव मानव का स्वामी बन जाता है। मानव, मानव मे एकता हो जाती है। सुगठित विचार हो जाते हैं। यह बेटा! सब मानव का संस्कार होता है, मानो देखो, जन्म होता है, वह भी संस्कारों से होता है। आज हम संस्कारों के आधार पर संस्कारों का एक बड़ा महत्वपूर्ण ज्ञान हमारे वैदिक साहित्य में स्वीकार किया गया है। आचार्यों ने महर्षि जमदग्नि मुनि ने तो यही कहा है कि हम सब एकत्रित हुए है, यह सब संस्कारों से ही है, पति पत्नी ही नही, मानो माता पिता भी नही, यह सब जितना भी जगत है, यह सब संस्कारों का क्षेत्र है संस्कारों के क्षेत्र में हम सब

एकत्रित हुए हैं, संस्कारित मानव को प्रगट करने के लिए यह सब संस्कारों का एक महान क्षेत्र है। इसमें आए हैं, हमें देखो, इसीलिए एक दूसरे के संस्कारों को जन्म देना है, विपरीत संस्कारों को जन्म देंगे तो बेटा! हम उस क्षेत्र में चले जाएंगे।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक यह क्या कह रहा है, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं गृहपथ्य नाम की अग्नि को अपनाना है, मानो देखो, एक दूसरे से प्रीति करना है, स्नेह करना है, आज कोई भी हमारे गृह में यह कुटुम्ब बनाया है, संसार में आ करके इस कुटुम्ब को भी महान बनाना है। इस कुटुम्ब में भी हमें सदभावना से धर्म और मर्यादा के साथ में रमण करना है। जिससे हमारा यह कुटुम्ब है, जिससे हमारा यह कुटुम्ब देरी न हो जाए। यह सब संस्कारों से हमारा कुटुम्ब एकत्रित हुआ है, इसी कुटुम्ब में हम विचलित न हो जाएं। यहाँ हम धर्म से अधर्म में न चले जाएं, क्योंकि हम अधर्म करेंगे, तो हमारी अन्तःकरणीय जो विचारधारा है, चित्त की तो प्रतिभा है। चित्त रूपी जो भूमि है, मानो उसमें अशुद्ध संस्कार जन्म लेंगें, जिन संस्कारों से हम नाना प्रकार की जो संस्कार है, उन दोनो हम प्रविष्ट हो जाएंगे। तो हम ऐसा कर्म करें, महान कर्म करें। हमारे यहाँ बेटा! ऋषि मुनियों ने बेटा! संस्कारों की प्रतिभा रची है, सोलह संस्कार हमारे यहाँ वैज्ञानिक रूपों से इतना निदान है, क्योंकि विज्ञान उसमें परणित रहता है।

आवागमन की प्रतिभा

मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम विचार विनिमय करते चले जाएं, सब संस्कार सब परमाणु अन्तरिक्ष में विराजमान रहते हैं, हमारे यहाँ वैज्ञानिकों से जब तुम यह प्रश्न करोगे, क्या तुमने चन्द्रयान बनाया है? मङ्गलयान बनाया है। मानो यह परमाणु कहाँ से आए, मुनिवरों! उत्तर मिलेगा कि वायुमण्डल से मानो देखो, अन्तरिक्ष हमने परमाणुओं से लिया है, कुछ परमाणु मानो पृथ्वी के हैं, कुछ अग्नि के हैं, उन सबका संस्कार हो करके ही बेटा! वायुयान बना करता है। इसी प्रकार पति पत्नी का दोनो

का संस्कार होने के पश्चात बेटा! गृह बनता है, गृह बनता है, मानो देखो, यदि संस्कार नही होगा, तो गृह बनने का संसार में प्रश्न उत्पन्न नही होता, इसीलिए क्योंकि गृह की जो प्रतिभा वह सब संस्कारों से आती है। एक दूसरे के मिलान से आती है, मुनिवरों! विद्यालय उस काल में कहलाते हैं, जहाँ विद्यार्थी होते हैं, गुरुजनों का दोनो का उसमें तन्मय हो जाता है। विचारधरा परणित हो जाती है, उस काल में वह विद्यालय होते हैं, शिक्षालय होते हैं, मानो देखो, वह गुरु के कुल होते हैं, इसी प्रकार जितना भी बेटा! यह संसार है, यह इसी प्रकार का है, संस्कारों का क्षेत्र है, क्योंकि संस्कारों को मिलान करने के लिए उत्पन्न करने के लिए हम संसार में आते हैं। मानो यहाँ से चले जाते हैं, आवागमन की प्रतिभा बेटा! हमारे संस्कारों से बना करती है, यह आज का वाक अब हमारा समाप्त होने जा रहा है, कल समय मिलेगा तो बेटा! शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह क्या जैसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! मुझे प्रेरित कर रहे हैं, मैं सुन्दर अपनी भावना के साथ यह प्रगट कर रहा हूँ। ऊँचे संस्कारों को बाह्य ब्रह्मे जन्मत ब्रहे मुनिवरों! देखो, सुन्दर भावना के साथ अपना कार्य करते हुए इस संसार सागर से मुनिवरों! देखो, पार होते चले जाएं, इसी कामना के साथ आज का हमारा यह वाक समाप्त। अब मैं अब मैं मानो दीर्घ आयु ओजस्वी सब प्रकार से पवित्र कनते रहें बेटा! संसार सागर से पार होते चले जाएं यह आज का हमारा वाक अब समाप्त होने जा रहा है शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करेंगे।

21 ११ ०३ १९७० ब्राह्मण्ड में प्रभु की चेतना

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों पठन पठन किया हमारें यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर पद्धति का प्रायः वर्णन होता रहता है, जिस पद्धति में महानता ओत प्रोत है, और मानव चाहता क्या है? संसार में महानता चाहता है, प्रत्येक

मानव अपने जीवन को उन्नतिशील बनाना चाहता है, और उस महान उज्ज्वल मार्ग का पथिक बनना चाहता है। जिस मार्ग में हमारे ऋषि मुनि मोक्ष अथवा सुखदवत को प्राप्त हो जाते हैं। वह मानव को किस काल में प्राप्त होता है, जब परमपिता परमात्मा की उपासना की जाती है। क्योंकि वह जो चैतन्य है, जिससे यह संसार चेतनित हो रहा है, मानव में किसी प्रकार की भी कम्पनता आती है, वह उस महान देव प्रभु की ही प्रतीत होती है। जब हम इन वाक्यों को गम्भीरता से विचार विनिमय करने लगते हैं, तो हमारा जो हृदय है, वह विशालवत को प्राप्त होने लगता है, और जब इसमें विशालता आने लगती है, तो मानव का हृदय एक मानवीय क्षेत्र में महानता को प्राप्त हो ही जाता है। हमारे यहाँ मन की प्रतिभा मानी जाती है, यह मन हमें अज्ञानता के मार्ग पर कुपथ का दर्शक बना देता हैं तो बेटा! यह कुपथ को अपना लेता है, यदि कुपथ में आत्मा के पीछे मनीराम की प्रतिभा हो जाती है। तो मानव ज्ञानावस्थित हो जाता है, ज्ञान के क्षेत्र में प्रगतिशील हो जाता है उसके पश्चात जब मन आत्मा के पीछे लग जाता है, और जब यह आत्मा का हो जाता है, वह ज्ञान स्वरूप होता है। क्योंकि ज्ञान में वह उसकी प्रतिभा रहती है। जिसका वह भूषण है। आत्मा का जो वास्तविक भूषण है। वह ज्ञान ही तो कहलाया गया है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह जो ज्ञान है, जिस ज्ञान की प्रतिभा को वास्तव में जानना चाहते हैं, वह आनन्दवत में रमण करता रहता है, वह आनन्द का ही तो स्रोत है। क्योंकि ज्ञान ही आनन्द का स्रोत कहलाया गया है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह आत्मा महानवत को प्राप्त होने लगता है, तो मुनिवरों! देखो, यह जो इन्द्रियाँ हैं, इन्द्रियों का स्वभाव बाह्य दृष्टिपात करने का होता है, कहीं नाना प्रकार की सुन्दर और उज्ज्वल नाना प्रकार के मानव के व्यसन उसके जीवन में प्रेरित हो जाते हैं, क्योंकि उसका मूल कारण यह होता है। नाना प्रकार का जो आसक्त प्राणी हो जाता है, वह जो इन्द्रियाँ बाह्य संसार को दृष्टिपात करती है। मन आत्मा को पीछे त्याग देता है,

मुनिवरों! देखो, उस समय मानव नाना प्रकार का देखो, व्यसनगामी बन जाता है। नाना प्रकार के विष उसके समीप उसे व्यापने लगते हैं, नाना प्रकार की उसकी रचना में वह आनन्दवत बनाना था, परन्तु वह आनन्द प्रारम्भ होने लगता है। वह नाना प्रकार के संसार के ऐसे आसन पर आ जाता है, क्या वह बाह्य संसार में लोकेष्णा में परिणित हो जाता है। अपने विषय आसक्त में परणित हो जाता है, परन्तु जो आन्तरिक जगत है। जो आत्मा को महान बनाता है, जीवन को उन्नत बनाता है, बेटा! उससे वह मानव दूरी चला जाता है। दूरी जाने के पश्चात वह संसार के वैभव में ऐसा परणित हो जाता है, क्या उसे संसार की लोक लज्जा भी उसे नही त्यागती, परन्तु वह इतना आगाध उस क्षेत्र में चला जाता है, जहाँ वह आनन्द किसी अगले जन्मों में ही प्राप्त होगा ऐसा जीवन भी उन प्राणियों को प्राप्त हो जाता है। जिन्हें बेटा! देखो, अन्धकार ही अन्धकार प्राप्त होता है, ऐसे लोकों में प्रायः उस मानव का जन्म हो जाता है। परन्तु जब यह विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर देते हैं कि हमारा वास्तव में जीवन कैसा बनना चाहिए प्रत्येक मानव सुखद की कल्पना करता है, और वह अपने मन में चाहता है कि मैं सुख को प्राप्त करना चाहता हूँ, बेटा! वह जो आनन्दमयी जो जीवन है, आनन्दवत जो मेरा स्वामी है, जो मेरी आनन्दमयी माता जो अपने कण्ठ में धारण कर लेती है। आज मुझे उसकी शरण में मुझे जाना है, उसकी लोरियों में जाने के पश्चात बेटा! मेरा जीवन वास्तव में कृतज्ञ कृतज्ञ हो जाता है। मैं जितना सौभाग्यशाली उस काल में बन जाता हूँ, तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम उस आनन्दमयी जो जीवन प्रणाली है, आनन्दवत को प्रदान करने वाली है। हमें उस महामना की गोद में जाना है, जो चैतन्य है, जो मानव को क्रियाशील बना रहा है, क्योंकि मानव यही तो अभिमान होता है, अभिमान की मात्रा में परणित हो जाता है। जब मुनिवरों! देखो, वह बाराह पञ्चम् ब्रह्मे लोकं प्रव कृति रुद्रा जब यह संसार में बेटा! देखो, उन तत्त्वों में अभिमान हो जाता है, उन तत्त्वों एक महान कृतिक उत्पन्न हो जाता है,

और वह अपने पन में यह स्वीकार कर लेता है कि मैं ही करने वाला हूँ। मैं ही तो कार्य करता हूँ, तो बेटा! जब यह अभिमान आ जाता है। क्या मैं संसार को ही नष्ट कर सकता हूँ, मैं संसार को अन्तरिक्ष को ले जा सकता हूँ, परन्तु जब यह अभिमान आता है, तो बेटा! देखो, एक समय कहा जाता है, क्या जब यह संसार का व्यापार प्रारम्भ होने लगा, उस समय बेटा! देखो, देवताओं ने एक विचारधारा आई और वह विचारधारा आई कि मैं प्रबल हूँ। तो मुनिवरों! कहा जाता है क्या इस मानव शरीर से ही मानो देखो, एक देवताओं की सभा में से जो देवता उसकी क्रिया से क्रियाशील हो रहे थे, जिसकी चेतना से चेतनित हो रहा था, यह संसार वह देवता भी उस चेतना से चेतनित हो रहे थे, उसी समय कहा जाता है, क्या इनके मध्य में से एक मानो देखो, शिव रजं ब्रह्मे ज्योति सक्षम ब्रह्मा आचार्य कहता है क्या उस समय महाराज यक्ष एक स्थान पर स्थिर हो गएं और मानो वह जो यक्ष था उसका कितना विशाल स्वरूप जैसे मुनिवरों! देखो, जैसे पिण्डाकार में यह जगत सृष्टि के प्रारम्भ में ही परणित था क्योंकि हमारे यहाँ इस जगत को शिवरणी के रूप में परणित किया गया है, लिंगों में ही तो आनन्दमयी ज्योति है जिसको देवों में यह जो परणित होती है उसको वास्तव में विचार विनिमय करना है वह जो शिव अमृतं आधानतं जो ज्योति मानी गई है उस ज्योति के आधार पर हम संस्कार कर सकते हैं कि वास्तव में जो वह शिव सङ्कल्पमयी जो आनन्दवत ज्योति है, वह मानो देखो, चतुर्थ ब्रह्मे कृतम् ब्रह्मे जो मानो देखो, चतुदर्शी के दिवस में जो मानो देखो, श्री की पूजा करना, एक मानो स्वभाव उत्पन्न सौभाग्य स्वीकार करता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! यह हमारे यहाँ परम्परा से ऐसा आया है, क्योंकि शिवरात्रि जो आती है, शिवरात्रि दिवस में ही बेटा! देखो, पिण्ड का विभाजन हुआ था, क्योंकि पिण्ड का विभाजन उसी काल में होता है। जब चैतन्य की क्रिया में मानो मन की प्रतिष्ठा हो जाती है, और प्राण का इसमें प्रवाह हो जाता है। वह चैतन्य बेटा! क्योंकि प्राण का ही विभाजन मनीराम इसको सिद्धान्त के अनुसार मानो

देखो, वह जो लिंगमयी ज्योति थी, उस ज्योति का विभाजन हो गया, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों में वही पिण्ड मानो लिंगमयी ज्योति मानो देखो, एक संसार में क्रियाशील बन गई। नाना प्रकार के लोक लोकान्तर अपना कार्य उनकी क्रिया प्रारम्भ होने लगी, क्योंकि इसमें क्रिया का जो माध्यम है क्रिया की जो प्रतिभा है वह एक चेतना है, उस चेतना का जो मूल स्रोत है, वह तो चेतना है उस चेतना का जो स्वामी है वह मुनिवरों! देखो, ब्रह्म ही कहलाया गया है, इसीलिए हमें ब्रह्म की प्रतिष्ठा में, अपने को प्रतिष्ठित कर देना चाहिए, जो मानो आनन्द और सुख को चाहता है वह ब्रह्म की प्रतिष्ठा में, जब अपने को प्रतिष्ठित कर देता है बेटा! उसे संसार में आनन्द ही आनन्द ही प्रतीत होने लगता है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम अपने जीवन को, वास्तव में पवित्रवत बनाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ परम सौभाग्य प्राप्त होता रहा है, हम सदैव इनके ऊपर नाना प्रकार का अनुसन्धान करते आए हैं जैसा महर्षि भारद्वाज, महर्षि मुद्गल इत्यादि ऋषियों के शरण में जाने का सौभाग्य भी प्राप्त होता रहा है। परन्तु उन सभाओं में प्रायः विचार विनिमय करने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। परन्तु वास्तव में हम संसार में विचारक बनें, क्योंकि विचारक ही, विचारक का जीवन बेटा! अमोघ होता है, महान होता है, इसीलिए मानव को उन विषैले पदार्थों को नही अपनाना चाहिए। जिनको अपनाने के पश्चात हमारा अन्तरात्मा दुःखित हो जाए, हमारी अन्तरात्मा में, मनी राम में ऐसे संस्कार उत्पन्न हो जाएं जिससे हम जन्म जन्मान्तरों से भोगने का, हम योनी बन जाए ऐसा हमे प्रायः करना नही चाहिए क्योंकि यह तो आत्मा का हनन है हमें आत्मा के हनन में आनन्द प्राप्त नही होता। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं वाक उच्चारण करता करता बेटा! दूरी नही जाना चाहता हूँ केवल वाक यह प्रारम्भ हो रहा था कि हमें यह विचार विनिमय करना है, कि भिन्न भिन्न ज्योति यक्ष जब उत्पन्न हो गया, तो मानो एक देवताओं की सभा में एक महान क्रान्ति आई, उन्होंने विचारा कि यह हे वायु! ये यक्ष अग्नि देवता! तुम जाओ,

और यह यक्ष कौन है इसकी जानकारी करो तो मुनिवरों! देखो, जब अग्नि देव उस यक्ष के समीप जा पंहुचे, तो यक्ष ने कहा कहिए तुम कौन हो? उन्होंने कहा प्रभु! मैं अग्नि हूँ, परन्तु तू कैसी अग्नि है, क्या कार्य है तेरा उन्होंने कहा कि मैं इस संसार को मानो देखो, भस्म कर देती हूँ, इस संसार को मैं मानो देखो, भस्माभूत कर सकती हूँ। मेरे मे वह महानता है। उन्होंने कहा यक्ष में वह जो सत्ता थी, जो ब्रह्म चेतना थी, महान जो चेतना थी वह यक्ष ने अपने में समेट ली, अपने में ओत प्रोत करा दी, अपने में प्रतिष्ठित कर ली, और उस समय अग्नि से कहा हे अग्नि! यह कणक है, इसको तुम एक स्थान से दूसरे स्थान पर पंहुचा दो। परन्तु जब अग्नि ने अपना बलवती स्वभाव से मानो देखो, उसको भस्म करना चाहा तो वह कणक भस्म नही हो सका, जब भस्म नही हो सका, अग्नि मानो वहाँ से मुनिवरों! यक्ष को दृष्टिपात करके, वहाँ से अपने आसन को परणित होने लगी, इन्द्र से कहा प्रभु! मैं नही जानती कि मानो यक्ष यह महान कौन है। क्योंकि यह तो बडा एक अदभुत है, यह अदभुत का मैं वर्णन नही कर सकती, उस समय बेटा! वायु को कहा गया कि कि हे वायु! तुम जाओ, और दृष्टिपात करो यह जानकारी करके आओ, यह महान यक्ष कौन है। यह जो ज्योति जो प्रतीत हो रहा है, उस समय बेटा! देखो, वायु देवता ने अपना प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए मानो देखो, वह उस स्थान में पंहुचे जिस स्थान में जाने के पश्चात अक्रत होने वाला था। यक्ष ने कहा कि हे वायु! तू कौन है? उन्होंने कहा प्रभु! मैं वायु हूँ तुम्हारा कार्य क्या है? प्रभु मैं ऐसी बलवती हूँ, यदि मैं चाहूं, जो यह संसार में तुम्हे स्थूल रूप में दृष्टिपात आ रहा है, इसका कण कण मानो वायुमण्डल में पंहुचा सकती हूँ। उन्होंने कहा मैं जब ही जानूंगा, जब यह कणक है, मेरे सामने वह एक स्थान से दूसरे स्थान में परणित कर दोगी। उस समय बेटा! वायु ने बलवती शक्तिशालीनि मानो उस पर प्रहार किया, तो कणक वहाँ ज्यों का त्यों रहा। परन्तु वायु बड़ी लज्जित हो गई, और लज्जित हो करके मुनिवरों! देखो, वह भ्रमण करती हुई, इन्द्र के समीप

जा पंहुची, और इन्द्र से कहा प्रभु! मैं इस यक्ष को नही जानती आप इसकी जानकारी करके हमें निश्चय कराईए कौन है? तो मुनिवरों! कहा जाता है क्या वह महाराजा इन्द्र ने, इन्द्र ने वहाँ से प्रस्थान किया प्रस्थान करते हुए भ्रमण करते हुए वह इन्द्र जब उनके समीप जाने लगा, तो कहते हैं कि वह यक्ष मुनिवरों! अन्तर्ध्यान हो गया जब वह अर्न्तध्यान हो गया, इन्द्र ने बहुत कुछ जाना, परन्तु इन्द्र अहा! ब्रह्मे कामाः वह इन्द्र भी क्योंकि अभिमानी बन गया था, अभिमानी बन जाने के कारण, अब दूरी जा करके अब यक्ष ने दर्शन दिए, उन्होंने कहा कहिए आप कौन हैं? उन्होंने कहा हे इन्द्र! तुम नहीं जानते हो, मैं वही सत्ता हूँ, मैं वही शक्ति हूँ, मानो मेरे मे मैं वही चेतनित हूँ, जो मानो सब देवताओं में चेतनित रहता हूँ, चेतनित रहता हूँ, इसीलिए तुम्हें यह अभिमान है। मैं करने वाला हूँ, मानो देखो, यह जो चेतना का प्रवाह है, तो उसका मूल कारण, क्योंकि संसार में किसी को अभिमान नही होना चाहिए, इसीलिए मानव में, इस प्रकार अभिमान की मात्रा नही आनी चाहिए, मैं कार्य करता हूँ क्योंकि जो चेतनावादी है, हमें तो उसका धन्यवाद देना है, हमे तो उसकी शरण में जाना है, जो वास्तव में संसार को चेतनित बनाता हैं। अपने में स्वयं चेतनित है, अपने को, संसार को, अपने में प्रतिष्ठित कर लेता है। आज हमे उस परब्रह्म परमात्मा के लिए सदैव याचना करनी है, हमे अपने में बहुत ही बलवती और सुदृढ़ बनना है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! वाक उच्चारण करने का अभिप्राय क्या है? क्या हमें उस महान अपने आनन्दमयी ज्योति को जानना चाहिए, एक मानव सुखी बनना चाहता है, आनन्दवत को प्राप्त करना चाहता है, संसार में कोई नही चाहता मेरी माता वसुन्धरा यह चाहती रहती है, क्या मैं वास्तव में सुखी बनना चाहती हूँ। मेरे प्यारे! समाज और ऋषि मुनि भी यही चाहते रहते हैं कि मैं आनन्द को प्राप्त होता चला जाऊँ, बेटा! आनन्द का जो स्रोत है, वह हमारा जीवन है, आनन्द का जो स्रोत है, उस चेतना में भी वह जो प्रतिष्ठित हो रहा है, कण कण में आज हमें

अपनी प्रतिष्ठा को सु प्रतिष्ठा में परणित कर देना चाहिए, प्रतिष्ठित हो जाना चाहिए। तो बेटा! हम संसार में वास्तव में सुखी बन सकते हैं। अन्यथा संसार में सुखी बनने का कोई कारण नहीं बनता, संसार के नाना प्रकार के जो व्यसन है, यह मानव को गढेले में ले जाते हैं मानव को ऐसे अन्धकार में ले जाते हैं, जहाँ मुनिवरों! देखो, उन्हें अगले जन्मों में अन्धकार ही अन्धकार प्राप्त होता है। प्रकाश का एक लेश मात्र भी प्राप्त नही होता है क्योंकि वह प्रकाश में होते हुए भी प्रकाश को दृष्टिपात नही कर पाते। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें आत्मा की चेतना को जानना है, आत्म चेतना को जानना ही, हमारा यौगिक सत्य कहा गया है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का यह हमारा वाक क्या कह रहा है, हमें वास्तव में विचार विनिमय करना है, हमें विचारशील बनना है, जब हम किसकी चेतना में चेतनित हो रहे हैं, वह जो चेतनावादी है, वह जो परब्रह्म है, परमात्मा है, आनन्द का स्रोत है, आनन्दवत कहलाया गया है, हम सदैव उस महामना देव की महिमा को जानते हुए हम इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वाक यह क्या कह रहा था, वेद की प्रतिभा में, आनन्द के लिए पुकारती चली जा रही थी जहाँ वास्तव में हमारे ज्ञान और आत्मा की प्रतिभा हमें प्राप्त होने लगती है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आओ, आज हम अपने उस आसन पर जाने के लिए तत्पर हो रहे हैं, जहाँ महर्षि जमदग्नि आश्रम में, महर्षि भारद्वाज को सभापति बनाया जाता था, और महर्षि आदि ऋषियों का जैसे मुनिवरों! देखो, काग और देवत इत्यादियों की सभा में, विचार विनिमय होता रहता था। मानो देखो, वह जो विचार विनिमय है, आज हम उस आनन्दवत को जानने के लिए, क्योंकि प्रत्येक बुद्धिमान, विचारक और अपने विचारकों की सभा होती है, उसमें केवल एक अनुसन्धान किया जाता है, विचार विनिमय किया जाता है, वह जो उनका विचार होता है वह कितना अमोघ होता है कितना महान होता है, कितना महानता

को वह प्राप्त होता रहा है।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज के हमारे वाक्यों का अभिप्राय क्या है कि हम वास्तव में अपनी चेतना में चेतनित होते चले जाएं। जब तक हम, इस आनन्दवत को नही जानेंगे, संसार का यह जो वैभव है, यह वास्तव में हमें सुखद नही बनाएंगा यह हमें गढेले के मार्ग पर ले जाता है हमारे यहाँ कोई द्रव्यपति बनना, हमारे लिए कोई महान आश्चर्य नही है, क्योंकि एक धिराज बनना ही आश्चर्य नही है, मानो हमारे यहाँ आध्यात्मिकवेत्ता बनना एक महान आश्चर्य कहलाया गया है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! संसार में महान आत्मा बनने के लिए हमे आत्मवेत्ता बनना है, परमात्मा की चेतना को जानना है जहाँ से यह सब स्रोत आते हैं, और स्रोत उसी में लीन हो जाते हैं, उसी में रमण कर जाते हैं, बेटा! देखो, जैसे हृदय से एक प्रतिष्ठा उत्पन्न होती है।

हमारे यहाँ बेटा! तुम्हें प्रतीत होगा राजा जनक की सभा में महारानी चाक्राणी ने क्या कहा था, माता गार्गी ने केवल यही तो कहा था, ऋषि से क्या हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ क्या यह जो संसार है, जो मुझे दृष्टिपात आ रहा है, यह किसमें ओत प्रोत रहता है। उन्होंने कहा देवी! याज्ञवल्क्य जी कहते हैं, कि हे देवी! यह जो जगत है, जो दृष्टिपात आ रहा है, यह मानो इस पृथ्वी में लय हो जाता है, और यह जो पृथ्वी है, यह मानो जल में प्रतिष्ठित हो जाता है, और देखो, जल है मानो अग्नि में प्रतिष्ठित हो जाता है, और अग्नि वायु में प्रतिष्ठित हो जाता है, और वायु अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाता है, और अन्तरिक्ष मानो यह महतत्व में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह जो महत तत्त्व है वह मानो देखो, गन्धर्व लोकों में प्रतिष्ठित हो जाता है, और गन्धर्व लोक चन्द्र लोकों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, और चन्द्र लोक इन्द्र लोकों में प्रतिष्ठित हो जाते हैं और यह इन्द्र लोक हैं मानो देखो, यह प्रजापति में प्रतिष्ठित हो जाते हैं, प्रजापति में लय हो जाते हैं, और यह जो प्रजापति है, यह मानो ऐसा कहा कि यह यज्ञ में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। यज्ञ में लय हो जाते हैं। और देखो, यज्ञ है यह मुनिवरों! देखो,

श्रद्धा में प्रतिष्ठित हो जाता है, और यह श्रद्धा है, यह बेटा! मानव के हृदय में प्रतिष्ठित रहा करती है हमें विचार विनिमय यह करना है कि वास्तव में, कि वास्तव में हमारा जो हृदय है, इस हृदय की अगम्यवत जो ज्योति है, अगम्यवत जो विचार हैं, उनको हमें जानना है बेटा! हमारे हृदय में ही मुनिवरों! देखो, हृदय में ब्रह्म की चेतना चेतनित रहती है, अहा! हृदय में ही बेटा! देखो, योगीजन, आत्मवेत्ता बेटा! देखो, ध्यानावस्थित हो जाते हैं, इसी के द्वारा, क्योंकि हृदय की प्रक्रिया को जानना ही हमारा जीवन कहलाया गया है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं अधिक वाक प्रगट करने नही आया हूँ, हमारे यहाँ महत की प्रतिभा आज मैंने इसकी भूमिका बनाई है, आगे चलूंगा, तो इसकी भूमिका का, मैं विस्तार प्रगट करता रहूँगा, क्योंकि हृदय में ही अहा! श्रद्धा होती है, दक्षिणा होती है, अहा! उसी में ही बेटा! देखो, यज्ञ होता रहता है, यह जो जितना जगत मुझे प्रतीत हो रहा है, मानो यह जो जगत बाह्य जगत है, आन्तरिक जगत है इसमें जो भी कर्म हो रहा है मानो देखो, वह ब्रह्म के आधार पर बेटा! एक यज्ञ हो रहा है, क्योंकि इसमें आहुति दी जा रही है कही वायु, कहीं अग्नि, मुनिवरों! इसी प्रकार प्रत्येक तत्त्व की सामग्री बना करके, मानव के, प्रत्येक श्वांस के साथ में, बेटा! परमाणुओं का निकास होता रहता है, वह जो परमाणुवाद है, उसी से बेटा! वायुयानों का निर्माण होता है। उसी से विस्तारवादी यन्त्रों का निर्माण, यदि चन्द्र लोक में जाना है, मङ्गल में जाना है बुध में जाना है, सूर्य की प्रतिभा को जानना है, यह सब विचारधारा बेटा! उसी परमाणुवाद में ही यह प्रतिष्ठित होती है, इसीलिए दृष्टिपात आ रही हैं, विचारकों ने कहा है कि वास्तव में इसके ऊपर बहुत विचार विनिमय करने वाले बनें। हमारा जो जीवन है, एक महानता में परणित रहा है, बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! अपनी पूर्व दशा में मानो देखो, जहां बेटा! इस ज्ञान की प्रतिभा जो हृदय का ज्ञान होता है, हृदय की प्रतिष्ठा होती है, बेटा! देखो, मृगराज भी हृदय की प्रतिष्ठा को पान करने

मे मुग्ध हो जाते हैं और बाध्य हो जाते हैं, और वह अपनी हिंसा को त्याग देते हैं। अहिंसा में आ जाते हैं, इसी प्रकार मानव का जो विचार है, परन्तु मानव का जीवन तो वह है, और वही मानव इस संसार में आनन्द और सुख को प्राप्त कर सकता है। आज उसे जानना चाहें कि संसार के जितने भी व्यसन है, क्या इनमें हमें सुख प्राप्त हो जाएगा, कदापि नही प्राप्त होता। यह तो मानव को विनाश के मार्ग पर ले जाते हैं, और जो मानव मानो देखो, त्यागने का प्रयास करता है, प्रयत्नशील रहता है, अपने जीवन को बनाने के लिए बेटा! वह भी सौभाग्यशाली है। मेरे प्यारे! महानन्द जी! एक वाक बहुत सुन्दर कहा करते हैं, यह कहा करते हैं क्या मानव को गिर जाना तो किसी जन्म का निष्कर्म होता है। परन्तु उसमें भी चिन्तन नही रहना, मानो देखो, उस महान अनमति नही रहना, यह मानव का एक प्रबल् एक पाप होता है, वह पाप का भागी बन जाता है। इसीलिए हमे पाप कर्म से बचना है, दूरी होना है, तो वास्तव में हमें देखो, गिर जाना कोई आश्चर्य नही है, हम किसी आसन पर ऊर्ध्व आसन पर चले जाएं, यह हमारा किसी जन्म का अमिट कर्म होता है। परन्तु उसी आसन पर रहना ही हमारा किसी जन्म का इस जन्म का एक पाप हो जाता है। तो वह पाप कर्म नही करना हमें वास्तव में उस मार्ग को अपनाना है, सु पथ को अपनाना है, विचार आता है कि सु पथ है क्या? सु पथ वह है तो आन्तरिक चेतना हमें प्रेरणा देती है, उस प्रेरणा को अपनाना उस प्रेरणा के आधार पर चलना वह ब्रह्म की चेतना की प्रेरणा होती है, इसी के आधार पर हम अपने जीवन को बनाते हैं तो बेटा! हमारा जीवन एक आनन्दवत हो जाता है। सुखदवत को प्राप्त हो जाता है, यह आज का वाक अब हमारा समाप्त अब वेदों का पाठ होगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो, भगवन! प्रभु! वाक तो आपका बहुत ही प्रिय और गम्भीर था, समय सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरूदेवः बेटा! कल समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे अब वेदों का पाठ होगा।

ओ३म् ब्रह्म भूषणा यौ गता मानं आ भा गृवन्धना

मानं देवोभ्यो आभा ऋपा रथं माणाहाम् ओ३म् शन्ना गतं रथे स्वाहा याचमं ब्रह्मा आ भाम् ओ३म् देवं मया सर्वं भद्रा मम् मनाः।

22 १४ ०८ १९७० विचारों को व्यापक बनाएं

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का, गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का, पठन पाठन किया हमारे यहाँ जो पाठयक्रम है, वह परम्परागतों से ही, विचित्र माना गया है, क्योंकि वेदों का जो प्रवाह है, वेदों का जो ज्ञान है, वह महान और प्रकाशवत कहा जाता है। जैसा हमारे यहां, वेदों को प्रकाश कहा है, बेटा! वेद नाम प्रकाश को कहा गया है। जो प्रकाश, संस्कार को प्रकाश में लाता है। मैंने बहुत पूर्व काल में कहा भी है, कि वेदों का जो प्रकाश है, वह महान है, जैसे नेत्रों का देवता सूर्य कहलाया गया है। नेत्रों का सूर्य देवता है। परन्तु वह जो नेत्रों का प्रकाशक बन करके सूर्य प्रातःकालीन में उदय होता है, इसी प्रकार, यह जो वेद रूपी प्रकाश है, ज्ञान रूपी प्रकाश है, ये बेटा! मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाता चला जाता है, जिस प्रकार, सूर्य का प्रकाश, नेत्रों के समक्ष आता है, इसी प्रकार, वेदों का जो ज्ञान है, वेदों की जो प्रतिभा है, वेद रूपी जो प्रकाश है, यह मानव के अन्तःकरण को पवित्र बनाता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कहा है, ऋषि मुनियों ने कहा है, आज हम उस वेद की प्रतिभा को विचार विनिमय करने वाले बनें, जब हम अन्तःकरण में इस पवित्र ज्ञान को अपने में समाहित कर लेते हैं। हमारे में जब यह ज्ञान ओत प्रोत हो जाता है, तो बेटा! वह मानव, मानव नहीं, वह देववत बन जाता है। देवता बन जाता है। प्रकाश स्वरूप बन जाता है।

मुनिवरों! जो इस बाह्य ज्ञान मानो वेद, बेटा! पोथियों में विराजमान नहीं रहता, वेद सदैव बेटा! मानव की अन्तरात्मा में होता है। प्रभु की महानता में परणित रहता है। आज बेटा! कोई मानव यह उच्चारण करने लगता है, कि वेद बेटा! पोथियों में विराजामन है, कदापि नहीं,

वेद तो बेटा! देखो, मानव की प्रतिभा में रहता है। परमपिता परमात्मा के विज्ञान में रहता है, बेटा! उस प्रभु की प्रतिभा को विचार विनिमय करने से ही मानव के हृदय में बेटा! प्रकाश उत्पन्न हो जाता है। एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाती है, मैं पूर्व काल में प्रगट कर चुका हूँ बेटा! कई काल में वर्णन करते हुए कहा है, कि हमारे यहाँ ये त्रि विद्या मानी गई है, जिसे वेद कहते हैं, त्रि विद्या इसी में आती है, वेद नाम तो प्रकाश का है, ज्ञान का है, विज्ञान में परणित करने वाला है। परन्तु उसी से मानो वेद के ही बेटा! क्या त्रि विद्या में परणित किया गया है, जिसको हमारे यहाँ ज्ञान, कर्म और उपासना कहा जाता है। जिसका विश्लेषण करते हुए, बेटा! हमने बहुत पूर्व काल में प्रगट किया था, एक एक मन्त्रार्थ, एक एक ऋचा को ले करके जब मानव, उसकी मीमांसा करने लगता है, तो बेटा! देखो, यह संसार रूपी जो वृक्ष है, परमात्मा का जो रचाया हुआ, जो एक महान, एक सुन्दर वृक्ष है बेटा! इसकी मीमांसा एक ही मन्त्र में, बेटा! परणित हो गई। जिस प्रकार बेटा! देखो, वट वृक्ष होता है, परन्तु उसके सूक्ष्म से अङ्कुर में सर्वत्र वृक्ष विराजमान होता है। इसी प्रकार बेटा! वेद रूपी प्रकाश में संसार का ज्ञान और विज्ञान विराजमान रहता है, जैसे जिस प्रकार बेटा! बट वृक्ष है, मानो सूक्ष्म से अङ्कुर में सर्वत्र वृक्ष विराजमान होता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं इन विषयों में नही जाना चाहता हूँ, आज का वाक बेटा! क्या कह रहा था, आज की वेद की प्रतिभा क्या कह रही थी बेटा! वेद ज्ञान, कर्म, उपासना में परणित किया गया है। परन्तु चतुष में विज्ञान काण्ड माना गया है बेटा! हमारे यहाँ देखो, जहाँ भी आता है, त्रि विद्या का ही वर्णन आता है, आचार्यों ने कहा है महाराजा मुनिवरों! देखो, भुञ्जु ऋषि ने कहा है क्या त्रि विद्या वर्धा ब्रह्मे आत्मा प्रेह कृतानि क्या हे प्रभु! मुझे त्रि विद्या का महान ज्ञाता बना। बेटा! देखो, त्रि विद्या का काम करने वाला हमारे यहाँ इसीलिए जब सन्ध्या में मानव विराजामन होता है। तो तीन आचमन किए जाते हैं, ज्ञान, कर्म, और उपासना के किए जाते हैं, इसी प्रकार

बेटा! मैंने कई काल में प्रगट किया है, मुनिवरों! देखो, यज्ञोपवीत को धारण करते हैं, उसमें भी बेटा! हमारे यहाँ तीन ही प्रकार के प्रतीक माने गएं हैं। अहा! मुनिवरों! देखो, अन्न ब्रहे मानव! के बेटा! जैसे अन्न है, अन्न का वाचक मुनिवरों! देखो, द्विप्प्रव्हा सूक्ष्म रुद्रो भागा मुनिवरों! देखो, अन्न की प्रतिभा मन कहलाया जाता है, और देखो, अन्न की प्रतिभा अब मन कहलाया गया है ब्रह्मे वायु की प्रतिभा प्राण कहलाया गया है वेद की प्रतिभा मुनिवरों! देखो, अग्नि कहलाई गई, जिसको वाणी कहते है मानो के शरीर में भी तीन प्रतीक माने गएं हैं इसी प्रकार जब बेटा! हम विचार विनिमय करते हैं तीन ही प्रकार के पदार्थों पर विचार विनिमय होता है। बेटा! देखो, ब्रह्म आत्मा और प्रकृति इन तीनों पर ही विचार विनिमय होता रहता है, परम्परागतों से होता रहा है और यह होता रहेगा। क्योंकि इसके ऊपर मानव के भिन्न भिन्न प्रकार के विचार चलते रहते हैं, कहीं सांख्यवाद है, तो कहीं वेदान्तवाद है, मानो कहीं वेद वेदान्त वेदो का अन्त ही परणित कर दिया है। कहीं सांख्य ने बेटा! मन और प्राण के ऊपर विश्लेषण किया है, इसी प्रकार कहीं बेटा! शाण्डिल्य ऋषि महाराज ने अपनी प्रतिभा में, मानवीयतव की प्रतिभा, एक महानता में परणित की है। परन्तु देखो, उन विचारों में मैं आज जाना नहीं चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि वेदों को त्रि विद्या कहा जाता है, त्रि विद्या का वर्णन, हमारे यहाँ परम्परागतों से आया है। विज्ञान काण्ड को बेटा! देखो, किसी अद्वन्त पुरूषों ने बेटा! उसको भी वेद ही स्वीकार किया है। परन्तु कोई वाक नहीं है, उसी त्रि विद्या में से चतुष काण्ड भी स्वीकार करने में किसी प्रकार की हानि नहीं होती। वह भी मानवीयवत में परणित ही रहता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं बेटा! वाक उच्चारण करता हुआ दूरी चला गया हूँ। वाक यह प्रारम्भ हो रहा था कि आज का हमारा वेद पाठ क्या कह रहा था वेद पाठ की प्रतिभा क्या कह रही थी बेटा! वेद के प्रारम्भ में ममता ब्रह्म लोकप्प्रव्हा अस्ति सुप्रजा देखो, मुनिवरों! माता

का वर्णन आ रहा था, मम् वाञ्चम ब्रह्मे हे माता! तू मेरे हृदय को उज्ज्वल बना, तुझे वेदों ने श्रद्धामयी कहा है। तुझे गायत्री कहा है, सविता कहा है। हे माँ तू मेरे हृदय को पवित्र बना जिस प्रकार देखो, सुयोग्य माता अपने बालक को कण्ठ में ही पवित्र बना देती है, हे माता! वास्तव में यह संसार की माता एक समय त्याग देती है, परन्तु तू ऐसी भोली पवित्र माता है, तू अपने प्यारे पुत्रों! को कदापि नहीं त्यागती। संसारिक जो माता होती है, जो गर्भ से उत्पन्न करने वाली होती है, एक समय वह अपने पुत्र को त्याग देती हैं, हे माँ ममतामयी! हे सविता! हे माँ! हे माँ कल्याणी! तू मेरा कल्याण कर, क्योंकि तू मुझे त्याग नहीं सकती है आज मैं तेरे द्वार पर आया हूँ, आज तू इस मेरी इस विनय को स्वीकार कर, मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब यह आराधना, साधक करता है, अपने श्रद्धा रूपी वेदी को जागरूक बनाता है, तो बेटा! देखो, उसके हृदय रूपी, उस महान अन्तरात्मा में बेटा! अन्तर्गुफा में, एक श्रद्धा की ज्योति मानव के द्वारा जागरूक हो जाती है। उस श्रद्वा रूपी ज्योति से ही बेटा! संसार में, मानव अपने जीवन को उत्तम बनाता है, सबसे प्रथम मानव यदि साधक बनना चाहता है, तो आज मानो जो अपनी वाणी, अपना मानव जीवन है, उसके ऊपर मानव को श्रद्वा होनी चाहिए। श्रद्धा के साथ बेटा! अग्रणीय बनना चाहिए, विचार विनिमय करना चाहिए, मेरे जीवन का बनेगा क्या? बेटा! देखो, जीवन के ऊपर वह अपना विश्लेषण करता रहता है, विचार विनिमय करता रहता है, अन्त में बेटा! देखो, उस मार्ग को वह प्राप्त कर लेता है, जिस मार्ग पर उसे जाना है। मानो जिस सविता के द्वार पर सविता की गोद में, उसकी लोरियों में परणित होना चाहता है तो बेटा! वह मानव उसी के द्वारा पंहुच जाता है, उसी की लोरियों में अपने को रमण कर देता है। बेटा! जब मानव, अपने को प्रभु को समर्पित कर देता है, उस समय मुनिवरों! देखो, एक मानव का जीवन एक आनन्दवत को प्राप्त हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमारे यहाँ, परम्परागतों से आचार्यों ने बेटा! देखो, जनता में जनार्दन को स्वीकार

किया है, मानो एक ब्रह्म में मानो एक ब्रह्म में समाधिष्ट होता है, जो जनता में जनार्दन को दृष्टिपात करने वाले होते हैं, मानो उस प्रकृति के कण कण में, उस मां सविता का दिग्दर्शन करते हैं। बेटा! वह मानव बड़े सौभाग्यशाली होते हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जो नाना प्रकार की विडम्बना को त्याग देते हैं, अपने उस महान ब्रह्मचरिष्यामि मानो, जो ब्रह्म का दिग्दर्शन करते हैं, बह्म में विचरण करते हैं, ब्रह्म में जिनकी निष्ठा हो जाती है, ब्रह्म में ही उनकी आस्था हो जाती है। बेटा! वह इस संसार सागर से बेटा! पार हो जाते हैं।

प्राणायाम का महत्व

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं साधको की चर्चा करने नहीं जा रहा हूँ, आज मानव यह उच्चारण करता रहता है आज का वायुमण्डल भी पुकार रहा है, बेटा! मानव का जो मन है, वह बड़ा विशाल चञ्चल होता है, मानो वह इतना चञ्चल होता है जैसे विद्युत रमण करती है इसी प्रकार यह मन भी उसी प्रकार की गति वाला कहलाया है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानो देखो, साधक बनना चाहते हैं, उज्ज्वल बनना चाहते हैं तो मन और प्राण की दोनों की क्षमता को जानने का प्रयास करें, बेटा! यह मन क्या है? और प्राण क्या है? क्योंकि दोनो को जाने बिना बेटा! देखो, साधक साधक नही बन पाता। क्योंकि दोनों की प्रतिभा को जानना है, संसार में, यदि मन से कोई शक्तिशाली है, तो बेटा! वह प्राण है। इसीलिए ऋषि मुनियों ने कहा है, हे साधक! तू प्राणायाम कर, क्योंकि प्राणायाम करने से, रेचक और कुम्भक कर, रेचक और कुम्भक करने से अहा! तेरा जो मनीराम है चञ्चल है चञ्चल रूपी वीणा को लिए हुए तेरे मानवीयवत को नष्ट कर रहा है मानो उसको तेरे मानवीय इन्द्रियों को बिखेर रहा है अहा! वह एकत्रित हो जाएगी। मानो वह जो शक्ति है, सविता नाम की शक्ति है, ऋत नाम की शक्ति है, सत नाम की जो प्रतिभा है, बेटा! वह सब उसी में ओत प्रोत, अहा! वह एकत्रित हो करके, एक मानवीय निधि बन जाती है और मानवीय निधि बन करके बेटा! उसी समय मानो

कहते हैं कि यह पुरूष तो बड़ा सुयोग्य है, ब्रह्मचारी है, महान पवित्र है, यह तो महान आत्मा है बेटा! उसी काल में तो कहा जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! जब इन वाक्यों पर विचार विनिमय करना प्रारम्भ देते हैं कि हमारा जो जीवन है, हमारी जो मानवीयता है, इन्ही में तो बेटा! सुगठित रहती है, विचारने के लिए, आज मानव को अपनी प्राण सत्ता को और मन सत्ता को दोनों को जान लेना चाहिए। मैंने बेटा! कल के वाक्यों में अपना विचार विनिमय देते हुए, आज मैं इन वाक्यों पर अधिक जाना नहीं चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है, कि आज हम अपने उस महान जगत में चले जाएं, जहाँ सविता हमे अपनी लोरियों में पान कर लेती है। बेटा! मानव का जीवन है क्या?

व्यापकवाद में मानव

एक समय बेटा! महाराजा भुञ्जु ने महाराज शाण्डिल्य जी से कहा कि महाराज! यह मानव का जीवन है क्या? महाराज! शाण्डिल्य जी ने कहा था हे भगवन्! मानव का जीवन व्यापकवाद है, व्यापकवाद में तो यह मानव कहलाता है, व्यापक क्या है, मानव का जीवन तो व्यापकवाद में रमण करता है, व्यापकवाद उसका भूषण है, व्यापकवाद ही उसका श्रृङ्गार है, व्यापकवाद ही उसका चरित्र माना गया है, व्यापकवाद ही उसका ज्ञान है, व्यापकवाद ही उसका विज्ञान है, व्यापकवाद ही उसका राष्ट्रवाद माना गया है, इसीलिए आज हमें विचार विनिमय करना है, क्या आज हम मानो देखो, जैसा महर्षि शाण्डिल्य जी ने निर्णय किया है। क्या आज हम मानो उस व्यापकता को अपनाने का प्रयास करे बेटा! एक प्यारा प्रमाण देते हुए कहा जैसे एक प्यारा पुत्र है, परन्तु वह माता के गर्भ से उत्पन्न होता है, जब गर्भ में रहता है तो माता के गर्भाशय को यह स्वीकार करता है। क्या यही तेरा जगत है, यही तेरी सृष्टि है, इसी में तुझे रमण करना है जब वह माता के गर्भस्थल से जरायुज से सशक्त होता है मानो वही संसार सागर में आता है, संसार में आता है मानो देखो, वह बालक अहा! बाल्यकाल में अपनी माता की लोरियों का

पान करता है माता अपनी लोरियों का पान कराती रहती है उस समय में बेटा! वह बालक माता को जानने लगता है, पितर को जानने लगता है, उसके पश्चात बेटा! ज्यों ज्यों उसके मानवीय जीवन में विकास आता रहता है, महा प्रकृति आती रहती है, उस समय बेटा! वह ऋणबन्दी संसार बना लेता है। अपना एक ऐसा क्षेत्र बना लेता है, यह मेरा पिता है, यह मेरी माता है, यह मेरा विधाता है, यह मेरी ही मानो भोजई है, यह पत्नी है, ये मेरी पुत्री है, नाना प्रकार एक सुन्दर एक परिवार बना लेता है। बेटा! इसी परिवार के बनाने के पश्चात उसका मानवीय जीवन व्यापकवाद में जा रहा है, यदि वह अपने पितर से कुल को त्याग देता है, माता पिता को त्याग देता है, गुरु के कुल को त्याग करके बेटा! जब आचार्य कुल में चला जाता है, वह विद्या में परणित हो जाता है, वह एक नवीन कुटुम्ब बन गया था। आज एक नवीन कुटुम्ब और बन गया, क्या वह ब्रह्मचारी बेटा! आचार्यों के चरणों में ओत प्रोत होता है, और विद्या को अध्ययन करता है, मानो वह विद्या को अध्ययन करते हुए उस समय गुरु की आज्ञा उसके लिए शिरोमणि हो जाती है, और सहपाठी अपना एक नवीन परिवार बन जाता है, एक नवीन कुटुम्ब बन जाता है, कुटुम्ब बन जाने के पश्चात, बेटा! वह आचार्य कुल में शिक्षा अध्ययन करने के पश्चात वह आचार्य कुल को भी त्याग देता है, बेटा! वही मानव यदि राष्ट्रीय विचारधारा को अपना लेता है, वह राष्ट्रीय मानो राज का वाद उसे परणित कर दिया जाता है, आज इस क्षेत्र का, तुझे यहाँ तेरी ही देख रेख में यह क्षेत्र चलेगा। तो बेटा! वह मानव मानो उसे क्षेत्र को अपना कुटुम्ब बना लेता है, उस क्षेत्र में अपने को रमण करने लगता है, उसको वह स्वीकार करता है, यह मेरा क्षेत्र है मानो देखो, इसमें मुझे कार्य करना है, राष्ट्रीय कार्य करना है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वही, मानव आगे चल करके वही मानो धिराज बन जाता है राजा बन जाता है, उसके मस्तिष्क में और व्यापकवाद छा जाता है, और वह अपने में स्वीकार करने लगता है, क्या मैं धिराज हूँ। मानो देखो, मानो यह जो प्रजा है, यह सब मेरी पुत्र

के तुल्य है, पुत्रियों के तुल्य है मैं इनके पितर के तुल्य हूँ, क्योंकि इनका लालन पालन क्या इनकी रक्षा करना, इनकी मर्यादा को सुरक्षित करना, यह तेरा कर्तव्य है। मानो देखो, दुराचारियों को दण्डित करना, सदाचारियों की रक्षा करना, यह तेरा राष्ट्रीय विचार है। बेटा! इस प्रकार का, विचार उसका बन जाता है कितना विकसित विचार बना है वह यदि दूसरे राष्ट्र में जाता है वहाँ कहीं कहीं से बेटा! सत्य को भी अपने में ग्रहण कर लेता है, सत्य को प्रसारण नहीं करता। वह मानो उसको मिथ्या वस्तु स्वीकार करता है। वह क्यों? क्योंकि वह जानता है यदि जहाँ तूने यथार्थ उच्चारण कर दिया, तेरे राष्ट्रीय हानि हो जाएगी जैसे बेटा! राष्ट्रीय यत्र है, धनुर्वेद की विद्या है, मानो देखो, धनुर्वेद के साथ साथ देखो, जो परमाणु हैं, परमाणु सत्ता है यदि परमाणु सत्ता में द्वितीय राजा के समीप उच्चारण करेंगे, तो बेटा! वह राजा आक्रमण कर सकता है। प्रजा को हानि पंहुचा सकता है, कहीं कहीं बेटा! देखो, हमे मिथ्या प्रतीत होता है, परन्तु उस मिथ्या के गर्भ में सत्यवाद विराजमान होता है, कहीं कहीं मुनिवरों! देखो, सत्य के गर्भ में भी मिथ्या होता है, एक मानव है, परन्तु उस मानव से कहा जाता है हे मानव! तेरे नेत्र हीनम् प्रव्हा कृतम् ब्रह्मे मानो तू अपने में बड़ा अहा! कृतिक है, कृपण है, क्योंकि तू नेत्र हीन है, वह सत्य तो है, परन्तु उस सत्य से लाभ हमें कुछ नहीं हो पाता। इसीलिए सत्य को उच्चारण करना, हमारे लिए एक समय बेटा! हानिकारक भी बन सकता है।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं मानव के जीवन के विषय में उच्चारण कर रहा था, शाण्डिल्य जी ने कहा हे भगवन्! देखो, मानव का जीवन क्या है? व्यापकवाद है। कैसा व्यापक उस मानव का जीवन बन गया है। अपना राष्ट्र, एक परिवार बन गया, कुटुम्ब बन गया मानो देखो, राष्ट्र की प्रजा है अपने पुत्र के तुल्य बन गई है, और मानो देखो, अहा! पुत्रियों के तुल्य जगत बन गया, उसका राष्ट्र बन गया दूसरे राष्ट्रों में भी बेटा! अपने राष्ट्र का विचार विनिमय करता रहता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! अब प्रजा की जितनी भी रक्षा होती है मानो देखो, उसमें सबसे

प्रथम मानो राजा के नियम बनाता है, सबसे प्रथम उसे ऐसा निमय बनाना चाहिए, जिससे राजा के राष्ट्र में सदाचार आता चला जाए। क्योंकि यदि सदाचार को भ्रष्ट करने वाला, जो कार्य होता है, कर्म होता है, राजा के राष्ट्र में बेटा! वह राष्ट्र की परम्परा को नष्ट कर देता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा जिस समय नियम बनाए, कोई भी उद्योग कार्य करे, परन्तु चित्रावली करें अथवा नृत्त का कार्य करें उन कार्य करने वालों के लिए राजा को विचारना है, कि मेरी प्रजा की हानि तो नहीं है इसमें मेरी प्रजा का चरित्र तो अङ्ग भङ्ग नहीं होगा, ऐसे राजा बेटा! धिराज जो होते हैं, वह राष्ट्र को पवित्र बनाते हैं, महान बनाते हैं, पवित्र बनाते चले जाते हैं।

मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने मुझे बेटा! कई काल में प्रगट किया था क्या श्वेत वर्ण वाला जो वस्त्र होता है, उस पर मानो नृत्त होता रहता है, चित्रावलियों को रमण करते रहते हैं, बेटा! यह विज्ञान हमारे यहाँ परम्परा से चला आया है, आज यह कोई नवीन तुम्हारा वाक नहीं है, राजा रावण के काल में और उससे पूर्व काल में भी होता रहता था और बेटा! महाराज अश्वपति के यहां मनु परम्परा में इस प्रकार का विज्ञान परम्परा से रहा है। परन्तु उस काल में यह था आज का तो बेटा! मुझे प्रतीत नहीं है, परन्तु देखो, ऋषि मुनियों के चरित्र ऋषि मुनियों की प्रतिभा उनका त्याग और तपस्या को जनता जनार्दन को बेटा! दिग्दर्शन कराया जाता था। जिससे मानो देखो, प्रजा में एक महानता की प्रतिभा ओत प्रोत होती चली जाए। तो राज जिस समय अपने राष्ट्र का निर्माण करता है, उस समय जो सुयोग्य राजा होता है। वह यह विचारता है कि प्रजा में तुझे कर्तव्यवाद को लाना है, जिस राजा के राष्ट्र में बेटा! कर्तव्य की रक्षा नहीं होती, वह राष्ट्र बेटा! अग्नि के मुखारबिन्द में परणित हो जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैंने कई काल में प्रगट करते हुए कहा था क्या राजा को अपना नियम मानो व्यापकवाद मानव के जीवन में इस प्रकार आता है, क्या वह कर्तव्य का पालन करता है, क्योंकि हमारे यहाँ सबसे प्रथम राष्ट्र के जो नायक हुए है,

वह भगवान मनु जी हुए हैं, भगवान मनु ने बेटा! सबसे प्रथम राष्ट्र कर निर्माण किया था मानो क्यों किया क्योंकि प्रजा अकर्तव्यवादी बन गई थी, और कर्तव्यवाद में लाने के लिए बेटा! राष्ट्र का निर्माण बेटा! होता है, राष्ट्र का चुनाव होता है, राजा को बनाया जाता है, परन्तु देखो, जिस राजा के राष्ट्र में मानो कर्तव्यवाद की रक्षा नहीं, धर्म की रक्षा नहीं होती, धर्म किसे कहा जाता है। यह बेटा! बड़ा विचारणीय विषय रहता है, धर्म उसे कहते हैं, जो मानव का अन्तःकरण जिसको स्वीकार कर लेता है। बेटा! मानव का अन्तःकरण मानो देखो, प्रतिज्ञावादी होता है, एक मानव कुमार्ग पर चलता है, उसका अन्तरात्मा बेटा! उसी समय उसे प्रेरणा देता है। उस प्रेरणा का नाम बेटा! धर्म कहा जाता है। उसकी रक्षा करने का नाम जो बेटा! इस प्रेरणा के अनुकूल प्राणी चलता है, ऋषि मुनि चला करता है, उसके लिए बेटा! राजा की आवश्यकता नहीं होती समाज में, राजा उनके लिए नही होता राजा उनके लिए होता है, जो कर्तव्य का पालन नही करते, धर्म की रक्षा नहीं करते, धर्म उनके द्वारा नहीं होता बेटा! राष्ट्र का नियम उनके लिए हुआ करता है, सदाचारियों के लिए कर्तव्यवादी तो बेटा! इस राष्ट्रवाद से उपरामता को प्राप्त होते रहते हैं। मैंने बेटा! कई काल में प्रगट करते हुए कहा था वह जो धिराज है जो मानो धिराज बन गया है, देखो, एक ब्रह्मचारी का जो माता का गर्भाशय ही उसका जगत था, संसार में आने के पश्चात बेटा! धिराज बन गया। हे माता! तेरा उस पुत्र पर क्या अधिकार रह जाता है, मातेश्वरी ने भी सविता ने भी अपने कर्तव्य का पालन किया, क्योंकि पुत्र सन्तान को उत्पन्न देना, माता का कर्तव्य होता है। वह कर्तव्य होता है, जो सुशील सन्तान को जन्म देने वाली जो माता होती है, वह महान कहलाई जाती है, बेटा! मुझे वह काल क्योंकि संसार में पुत्रों! को जो जन्म दिया जाता है। वह त्याग और तपस्या के साथ दिया जाता है, त्याग और तपस्या में जब माता परणित हो जाती है, तो उस समय बेटा! यहाँ भगवान राम जैसी पवित्र आत्मा को जन्म दे

देती है।

माता कौशल्या का जीवन

मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे वह काल स्मरण आने लगता है, मुनिवरों! देखो, त्रेता के काल का वाक जब त्रेता के काल में बेटा! माता कौशल्या भी महर्षि तत्त्व मुनि महाराज के द्वारा शिक्षा अध्ययन कर रही थी, अध्ययन करते हुए वह वेदों का अध्ययन कर रही थी, दर्शनों का अध्ययन कर रही थी, एक समय अपने पूज्य गुरुदेव से कहा क्योंकि तत्त्व मुनि महाराज कि दौ सौ चौरासी की वायु थी उस समय ऋषि से कहा कि हे भगवन! मेरी इच्छा है, क्या मैं गृह आश्रम में प्रविष्ट होना नहीं चाहती। ऋषि ने कहा पुत्री! जैसी तुम्हारी इच्छा। मुनिवरों! कुछ काल में उन्होने अध्ययन करने के पश्चात कहा भगवन्! मैं गृह आश्रम में प्रविष्ट होना तो चाहती हूँ। परन्तु त्याग और तपस्या के साथ अपने यहाँ एक सन्तान को जन्म देना चाहती हूँ, ऋषि ने कहा पुत्री! जैसी तुम्हारी कामना हो। जैसा तुम्हारा सङ्कल्प हो बेटा! देखो, वह कन्या शिक्षा अध्ययन करने के पश्चात वह अपनी शिक्षा में वह मानो उतीर्ण हो गई। पवित्रवत को प्राप्त को प्राप्त हो गई, उस समय बेटा! रघु के कुल में महाराजा दशरथ के यहाँ उनका संस्कार हुआ। बेटा! संस्कार होने के पश्चात गृह में बड़े त्याग और तपस्या से वह माता कौशल्या बेटा! नित्य प्रति अपने स्वयं कला कौशल करके उसके बदले जो द्रव्य आता था, उसको पान करती थी बेटा! अन्ना ब्रह्मे ऐसा भी श्रवण किया गया है बेटा! क्या जो अनाथ ब्रह्मचारी बालिका होते थे, उनको शिक्षा देती थी, उसके बदले जो द्रव्य आता था, उस अन्न को पान करती थी। बेटा! उनका जीवन मानो कला कौशल में अधिक पारंगत थी, और शिक्षा देने में भी अनाथ बालको शिक्षा देना उनका कर्तव्य रहता था, मेरे प्यारे! ऋषिवर! कहा जाता है, क्या माता कौशल्या बड़े आनन्द पूर्वक अपने जीवन को व्यतीत कर रही थी। राजा दशराथ के तीन संस्कार हुए, परन्तु जब सन्तान न हुई, तो मुनिवरों! उस समय स्मरण है, जब बेटा! देखो, पुत्रेष्टि यज्ञ कराया मानो देखो, उसमें नाना प्रकार की औषधियों का

निदान किया गया, उसी प्रकार का साकल्य बनाया गया वेदी भी उसी प्रकार की बनाई गई मानो देखो, वेदी बनाने के पश्चात साकल्य बनाने के पश्चात समिधा भी बेटा! उस प्रकार की राजा दशरथ को एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पान कराते हुए नाना प्रकार की औषधियों को पान कराया। मानो उसके पश्चात मुनिवरों! देखो, उसके पश्चात यज्ञ कराने के पश्चात मानो देखो, उनके गृह में, वह उनकी पत्नीयाँ बेटा! आत्मा से परिपक्व हो गई, आत्मा उनका भूषण बन गया, मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! माता कौशल्या के गर्भ में जब आत्मा प्रविष्ट हो गई तो उस समय माता कौशल्या स्वयं कला कौशल करती उसके बदले जो द्रव्य आता उसको ग्रहण करती रहती थी। राजा दशरथ को यह प्रतीत हो गया, क्या कौशल्या जी राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं कर रही है, उस समय बेटा! महाराज दशरथ, एक समय माता कौशल्या के द्वार पर आयें, कौशल्या ने बेटा! राजा का बड़ा सुन्दर स्वागत किया चरणों को स्पर्श किया और मुनिवरों! जल के आचमन किए और आसन पर विराजमान हो गई। राजा ने कहा हे देवी! मैंने यह श्रवण किया है, क्या तुम राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं का रही हो, उन्होंने कहा प्रभु! मैं राष्ट्र का अन्न ग्रहण नहीं कर रही हूँ, क्योंकि भगवन! मेरे में सामर्थ्य है, मानो उस सामर्थ्य के साथ साथ मैं अपना कार्य करती रहती हूँ, कला कौशल करती हूँ, उसके बदले जो द्रव्य आता है, उसको मैं ग्रहण करती रहती हूँ। उन्होंने कहा बहुत सुन्दर, परन्तु राष्ट्र का अन्न क्यों नहीं ग्रहण करती, उन्होंने कहा इसीलिए नहीं क्योंकि राष्ट्र का जो अन्न होता है, राष्ट्रीय जो अन्न होता है, वह रजोगुण और तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है। इसीलिए मैं उस अन्न को ग्रहण करना नहीं चाहती हूँ, बेटा! यह वाक जब उन्होंने श्रवण किया तो राजा मौन हो गएं, राजा ने कहा मेरे से इसका कोई उत्तर नहीं है, इसका राजा ने यह विचारा कि मैं वशिष्ठ के द्वारा पंहचू तो मानो उनकी कन्या के तुल्य है। इसे शिक्षा देंगे राष्ट्रीय अन्न ग्रहण करें, क्योंकि यह पुरूषार्थ करती है। मुनिवरों! उस समय कहा ब्रह्मे देखो, राजा दशरथ भ्रमण करते हुए अपने राष्ट्र को

त्याग करके बेटा! वह भयंकर वनों में पंहुचे, वह महर्षि वशिष्ठ मुनि द्वारा वशिष्ठ आश्रम में जब प्रविष्ट हो गएं, माता अरूण्धति और वशिष्ठ मुनि महारजा दोंनो विराजमान थे, वशिष्ठ मुनि ने आसन दिया, राजा विराजमान हो गएं, राजा से कहा ऋषि ने, कहिए राजन्! आज आप कैसे मेरे आश्रम में प्रविष्ट हुए, उन्होंने कहा भगवन! आप दोनों ही मेरे पूज्यनीय हो। क्योंकि गुरु पत्नी और गुरु दोनों ही पूज्यनीय होते हैं, हे प्रभु! मेरे राष्ट्र में मेरे राज गृह में जो राज लक्ष्मी मेरी पत्नी कौशल्या जी है, वह राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं करती। मेरी इच्छा यह है कि वह राष्ट्र का अन्न ग्रहण करें। राष्ट्र का अन्न ग्रहण करने से मेरा जीवन सुन्दर बनेगा। मैं अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करूंगा। मुनिवरों! महर्षि वशिष्ठ ने कहा बहुत सुन्दर हम शिक्षा दे सकते हैं, मेरे प्यारे! ऋषिवर! राजा और ऋषि पत्नी यह तीनों प्राणियों ने अहा! अपने आश्रम से प्रस्थान कर लिया भ्रमण करते हुए बेटा! वह भ्रमण करते हुए वह ब्रह्मे लोकाप्रव्हा राजन्नम् गृह प्रविष्टी सुप्रजा राज गृह में प्रविष्ट हो गए, गृह लक्ष्मी ने मानो कौशल्या ने बेटा! देखो, तीनों उनके पूज्यनीय थे। उन्हे तीन आसन प्रदान कर दिए, और तीनों आसनो पर वह विराजमान हो गएं, उनके चरणों को स्पर्श किया, आर्शीवाद प्राप्त किया। आर्शीवाद के पश्चात ऋषि बोलें हे देवी! मैंने यह श्रवण किया है क्या तुम राष्ट्र का कोई अन्न ग्रहण नहीं कर रही हो, ऋषि पत्नी ने कहा क्या देवी! हमने भी यही श्रवण किया है, उन्होंने कहा हाँ भगवन! मैं राष्ट्र को कोई अन्न ग्रहण कर रही हूँ। क्यों? क्या मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे एक उपदेश दिया था जिस समय मैं जाने लगी और मैं शिक्षा से पूर्ण हो गई। तो मुझे उन्होंने एक प्रमाण दिया था, महाराजा मा ब्रह्मे देखो, अप्रतम् ब्रह्मा तुम्हारे यहाँ यह आपको प्रतीत होगा, आपकी तो जानकारी में होगा।

पण अकाल

यहाँ देखो, जब ब्रह्मे हाथीवान के द्वारा एक ब्रह्मवेत्ता गएं थे, अहा! ब्रह्मवेत्ता चाक्राण ने उस समय अकाल पड़ गया था, पण अकाल था, उस अकाल के कारण अन्न प्राप्त

नहीं हो रहा था, एक हाथीवान मानो उड़दों का पान कर रहा था, मांषों का पान कर रहा था उस समय अहा! मुनिवरों! देखो, हे भगवन्! हे ऋषिवर! पूज्यनीय मेरे देव! उस समय चाक्राण उनके द्वारा पंहुचे, क्योंकि चाक्राण की पत्नी मृत्यु के तुल्य हो गई थी। प्राण जाने लगे थे, और उस समय उन्होंने कहा हे भगवन! मेरे प्राण जा रहें हैं। इस समय मैं क्या करूं, उन्होंने कहा मैं जाता हूँ, दृष्टिपात किया एक हाथीवान मानो देखो, उड़दों का पान कर रहा है, मांषों का पान कर रहा है, उन्होनें कहा यह थोड़ा सा मुझे भी प्रदान करों। मुझे यह माह प्रदान करो, उन्होंने कहा बहुत सुन्दर उन्होंने कहा भगवन! यह मेरे झूठे उड़द हैं, झूठा माह है, इनको आप प्रदान कर सकेंगे, उन्होंने कहा कि हाँ मैं अवश्य स्वीकार करूंगा। उन्होंने कहा बेटा! वह स्वीकार कर लिए हाथीवान ने कहा कि महाराज! मैं जल भी लाऊं, उन्होंने कहा तुम शूद्र हो, जब यह वाक कहा क्या तुम शूद्र हो, हाथीवान बोला कि महाराज! मेरे झूठे माह को तुम पान कर रहे हो, उड़दों को पान कर रहे हो, परन्तु उस समय मैं शूद्र नहीं हूँ। उन्होंने कहा देखो, शूद्र का अभिप्राय यह नहीं मानो शूद्र का अभिप्राय यह है, क्या जो कार्य मैं स्वयं कर सकता हूँ, मानो जितना मेरे में सामर्थ्य है, अहा! देखो, जल बहुत है, जल र्प्याप्त है, और अन्न र्प्याप्त नहीं है, इसीलिए प्राणो की रक्षा करने के लिए झूठे उड़दों में भी दोष नहीं है। परन्तु जहाँ जल की मात्रा मैं उसे स्वयं ला सकता हूँ। उसे मैं तुम्हारे प्रति क्यों मैं अप्रत करने वाला बनूँ, यह वाक बेटा! जब महाराज चाक्राण ने कहा देखो, उस समय चाक्राण के वाक्यों का अभिप्राय यह था कि जब तक मेरे भुज में मेरा शरीर कार्य करता है, जिसका जो वस्तु मुझे प्राप्त हो सकती है। उसे मैं स्वयं कर सकता हूँ, आज मैं दूसरों को अपना सेवक बना करके उस सौभाग्यवत मैं बनना नही चाहता, मानो मैं उसमें अपनी प्रतिष्ठा नहीं चाहता, मानो अपने शरीर का कार्य जब तक स्वयं कर सकता है। उसको सेवक की आवश्यकता नही होती बेटा! मेरे प्यारे! ऋषिवर! चाक्राण ने यह कहा तो देखो, ऋषि कन्या ने मानो उस समय ऋषि

अप्रताम् ब्रह्मे ऋषि के द्वारा कहा माता कौशल्या ने भगवन! इसीलिए मैं राष्ट्र के अन्न को ग्रहण करना नहीं चाहती। क्योंकि जो स्वयं मैं अपने उदर की पूर्ति कर सकती हूँ, इसीलिए मैं राष्ट्रीय अन्न को ग्रहण करना नहीं चाहती और भगवन्! दूसरा यह भी वाक है, क्या मैं अपने गर्भस्थल से ऐसे बालक को जन्म देना चाहती हूँ, जो रघु परम्परा को ऊँचा बनाने वाला हो, रघु परम्परा को महान और पवित्र बनाने वाला हो, इसीलिए भगवन! मैं ऐसे पुत्र को जन्म देना चाहती हूँ। क्योंकि वह जन्म उसी काल में हो सकता है, क्या मैं जब स्वयं त्याग और तपस्या में परणित रहूँगी। कर्मठ रहूंगी, उसी समय मेरे गर्भ से महान पुत्र का जन्म हो सकेगा। हे भगवन्! तृतीय वाक यह कि राष्ट्रीय जो अन्न होता है, इसीलिए मैं ग्रहण करना नहीं चाहती, क्योंकि यह रजोगुण तमोगुण से सना हुआ होता है, यह भगवन! इस अन्न को मैं पान करूंगी, मेरे उदर में रहने वाला जो बालक है, आत्मा है, वह उसी अन्न को पान करेगा, मानो उसके विचार राष्ट्रीय बनेंगे, क्योंकि वह त्याग और तपस्वी नहीं बन सकता, भगवन्!।

तो मुनिवरों! माता कौशल्या ने यह वाक जब ऋषि से कहा, ऋषि और ऋषि पत्नी दोनों मौन हो गएं, और उन्होंने कहा क्या वास्तव में यह कौशल्या तो देवी है, महालक्ष्मी है, बेटा! यह दोनों ने कहा राजन जैसा इनकी इच्छा हो, सङ्कल्प है, सङ्कल्पशील प्राणी को बनाना नहीं चाहती बेटा! वह दोंनो ने अपने उस आसन को त्याग दिया और कन्या को सुन्दर मानो देखो, उस देवी को सुन्दर आर्शीवाद दे करके राजलक्ष्मी को ऋषि पत्नी को ऋषि पत्नी ने दोनो ने आर्शीवाद दे करके बेटा! वहाँ से प्रस्थान कर दिया। वह तो अपने आङ्गन में जा पंहुचे, परन्तु माता कौशल्या का यही कर्म चलता रहा, भगवान राम जैसे पवित्र आत्मा बेटा! राज मिल रहा है, तो अति प्रसन्न नहीं है, राष्ट्र वन प्राप्त हो रहा है, तो मानो देखो, हर्ष उनके द्वारा शोक भी नही है, ऐसे महापुरूष बेटा! देखो, त्याग और तपस्या से जन्म लिया करते हैं।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं बेटा! वाक उच्चारण

करता हुआ कहा चला आया हूँ, वाक यह प्रारम्भ हो रहा था मुनिवरों! देखो, महर्षि शाण्डिल्य आश्रम में बेटा! जब यह प्रश्न किया गया क्या महाराज मानवीय जीवन है क्या? तो बेटा! वाक आया तो देखो, एक मानव माता के गर्भ को ही वह बालक अपना ही मानो देखो, क्षेत्र स्वीकार कर रहा था, वही बालक माता के गर्भ से पृथक हो गया, धिराज बन गया, उसका कितना व्यापक कुटुम्ब बन गया है, उसके विचारों से बना है, वही बालक वही ब्रह्मचारी बेटा! राष्ट्र को त्याग करके यदि सन्यासी बन जाता है। योगी बन जाता है, प्राण और मन की गति को जानने वाला बनता है। बेटा! वह एक राष्ट्र के विषय में नही विचारता, वह संसार के विषय में विचारने लगता है, वह बेटा! उस महान प्रभु के जगत को एक अपना कुटुम्ब स्वीकार कर लेता है। बेटा! वह जो उसका नवीन कुटुम्ब बन जाता है, मानो वह कुटुम्ब ही बेटा! उस मानव के अन्तरात्मा को सुन्दर बनाता है, यह स्वीकार करता है क्या मैं ब्रह्मा के गर्भ में हूँ, यह सर्व जगत ब्रह्म के गर्भ में है, और मानो देखो, ब्रह्म उन प्रत्येक हृदयों में रमण कर रहा है, इसीलिए संसार में द्वितीय भाव है ही नहीं, बेटा! यह वाक एक ब्रह्मचारी विचारता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं बेटा! अपने वाक्यों को विलम्ब देना नहीं चाहता हूँ, अधिक वाक उच्चारण करने नहीं आया हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि मानव का जीवन कितना व्यापक बन जाता है, इसीलिए व्यापकवाद का नाम बेटा! धर्म कहा जाता है। और बेटा! जब मानव के मस्तिष्क में सङ्कीर्णवाद होता है, सङ्कीर्णता में बेटा! अपराध होता है, और सङ्कीर्णता में बेटा! बुद्धि का माध्यम सूक्ष्म हो जाता है जितना बुद्धि का माध्यम सूक्ष्म होता है, उतनी घृणा होती है, उतनी बेटा! पाप वासना भी प्रबल हो जाती है, उतना बेटा! आवागमन के चक्रों में चला जाता है। यह है बेटा! आज का हमारा वाक्, आज मैं बेटा! कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह क्या हम अपने जीवन को व्यापक बनाएं, विशाल बनाएं,

क्योंकि वही हमारा धर्म कहलाया जाता है। अपने धर्म की परम्परा को जानने का प्रयास करें। वेदों का ज्ञान हमारा बेटा! हृदय ग्राही ज्ञान है, ईश्वरीय ज्ञान कहा जाता है। उसमें रूढ़ि नहीं होती, और मुनिवरों! देखो, उसमें सङ्कीर्णवाद भी नहीं होता, इसीलिए जहाँ रूढ़ि न हो सङ्कीर्णवाद न हो उसी व्यापकता का नाम धर्म कहा जाता है। बेटा! धर्म को अपनाने का प्रयास करो, धर्म ही मानव का जीवन है, धर्म ही मानव का प्राण है, धर्म ही मानव का अन्न है, धर्म ही मानव की इन्द्रियाँ हैं, धर्म ही बेटा! मानव का शरीर माना गया है। आज हमें बेटा! बिना धर्म के मानव का जीवन न होने के तुल्य कहलाया गया है। विचारना यह कि धर्म किसे कहते हैं, व्यापकता से जो विचार विनिमय करता है, स्वतन्त्र विचारो, आज का हमारा वाक अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ, आज के इन वाक्यों का अभिप्राय यह क्या हम परमपिता परमात्मा की उपासना करने वाले बनें, और मुनिवरों! देखो, अपने विचारों को इस प्रकार व्यापक बनाएं, हम माता के गर्भ की भान्ति अपने विचारों को वहीं सङ्कीर्ण न बनाते रहें। मानो देखो, व्यापकता से विचारें, एक सूक्ष्म कुटुम्ब नहीं बनाना चाहिए, हमारा राष्ट्र का राष्ट्र कुटुम्ब होता है, और परमात्मा की जो सर्वत्र सृष्टि होती है, बेटा! यही मुनिवरों! देखो, उसका कुटुम्ब कहलाया गया है। यह आज का वाक अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। कल मुझे समय मिलेगा, तो बेटा! मैं शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। आज का वाक अब हमारा समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। आर्य समाज रानी तालाब, फिरोजपुर पंजाब।

23 १५ ०८ १९७० प्रातः आत्मा को जानें

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, इस प्रातःकाल की पुनीत बेला में उस महान स्मरणीय चैतन्य देव की प्रतिभा का, हम वर्णन करने आ पंहुचे हैं। मेरे प्यारे! ऋषिवर! परमात्मा की प्रतिभा में मानव अपने अन्तःकरण को पवित्र बनाता चला जाता है

प्रातःकाल में एक ऐसा सुन्दर काल, मानव जीवन के लिए आता है, जिसमें बेटा! मानव को सविता प्रदान की जाती है, जिस प्रातः काल की अमृतबेला में, परमात्मा अपनी सत्ता को प्रदान करता है, एक प्रकार का वितरण हो रहा है उस वितरण को पान करने वाले बेटा! देवता कहलाते हैं।

वेद का प्रकाश

आओ, हम आज प्रातःकाल की अमृत बेला में, उस अमृत को पान करते चले जाएं, जिस अमृत का पान करने के पश्चात, मानव अमरावती को प्राप्त हो जाता है। आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज का हमारा वातावरण वायुमण्डल, वायु की प्रतिभा, आज हमें क्या पुकार रही है, इसीलिए हम परमात्मा का चिन्तन करने वालें बनें, क्योंकि वे परमपिता परमात्मा जो चैतन्य है, मानो जिसकी चेतना से बेटा! यह जगत चेतनित हो रहा है। जिस चेतना के कारण मानव का शरीर चेतना में परणित रहता है, आज हम उस महान अपने प्यारे देव की महिमा का गुणगान गाते चले जाएं, आज का हमारा, प्रातः स्मरणीय, वेद का पुनीत पाठ, हमें क्या आज्ञा देता चला जा रहा था, आज हमें उनके ऊपर विचार विनिमय भी करना है, वेदज्ञ प्रकाशाः ऋषि कहते हैं कि वेद ही मानव का प्रकाश कहा जाता है वेद ही बेटा! जगत का प्रकाशक स्वरूप, क्योंकि मैंने कई काल में प्रगट करते हुए कहा है, क्या वह वेदों का ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान होने के नाते बेटा! वह प्रसंशनीय है, और उसकी आराधना और उसको अपने जीवन में लाना ही हमारा कर्तव्य कहलाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! प्रातःकाल की अमृतबेला में, जब सूर्य उदय होता है, तो अपने महानता को ले करके, जब वह अग्रणीय होता है, तो बेटा! यह जगत पवित्र बनता चला जाता है, अहा! जब यह जगत पवित्र बन जाता है, तो मानव अपने में सुखद अनुभव करने लगता है, उसके मनों में विचार में बेटा! एक ही लक्ष्य होता है, कि मैं आनन्दित हो गया हूँ। परन्तु आनन्दित होने का अभिप्राय यह, कि प्रातःकाल की जो अमृतबेला है, इसमें बेटा! मानव जब रात्रि के गर्भ में आता

है, माँ रात्रि की गोद में आता है, उस समय बेटा! यह मानव थकित हुआ होता है, अहा! प्रातःकाल से सांय काल तक कर्तव्य करता हुआ, यह कितना थकित हो जाता है। बेटा! जब वह प्रातःकाल आता है सूर्य का उदय होता है। मानो उस प्रकाश के द्वारा, बेटा! अपने जीवन को महान बनाने लगता है और मुनिवरों! देखो, उसे सविता प्रदान की जाती है, जो प्रसाद प्रातःकाल में ही वितरण होता रहता है आज वह बेटा! मानव के द्वारा प्रसाद रूप में वितरण हो रहा है और वह कौन कर रहा है? सविता है। आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मानव जब प्रातः काल में, अपने आसन को त्यागता है, तो वह नवीन हो जाता है, मानो वह ऐसा प्रतीत होता है, जैसा तूने, इससे पूर्व कोई कार्य नहीं किया था, उसके जीवन में, एक महान ज्योति का सञ्चार होने लगता है, जिस ज्योति को पान करने के पश्चात बेटा! मानवीय जीवन में एक महानता का उज्ज्वल दिग्दर्शन होना प्रारम्भ होने लगता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं मानो प्रातःकाल की स्मरणीय अग्नियों का, तुम्हें प्रसारण करा रहा हूँ। हे प्रातःकाल की अग्नि! तू हमारे जीवन को तपाने वाली है मानव जीवन को उज्ज्वल बनाने वाली है, जैसे यह जगत, प्रातःकाल में ही तेज से तपा करता है। मानव जगत भी तपता है। इसी प्रकार आज हम देखो, अपने में तपस्या में स्वीकार करें, क्योंकि हमारा जो जीवन है, वह मानो आत्मा के कारण उस चेतना से चेतनित रहता है। आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं आत्मा के सम्बन्ध में, अपना विचार देने वाला हूँ, क्या आत्मा क्या है? आज के वेदपाठ में भी वर्णन आ रहा था, आत्म ब्रह्म प्रहा कृतप्प्रव्हे अस्ति सुप्रजाः क्योंकि वह आत्मा मानो एक महान चेतना कहलाती है, जिस चेतना के कारण, मानव का शरीर क्रियाशील हो रहा है, वह जो क्रिया है, वह अन्तरात्मा की है, ब्रह्म की है, क्योंकि जैसे बाह्य ब्रह्माण्ड को, जगत को बेटा! ब्रह्म की चेतना अहा! वह वैश्वानर वैश्वानर जो अस्सुतम् अग्नि है, वैश्वानर जो आत्मा है, वही संसार को चेतना दे रही है बेटा! वह चाहे उसमें सूर्य मण्डल हो, चन्द्र

मण्डल हो और ध्रुव मण्डल हो, आरुणि हो, बृहस्पति हो, ध्रुव हो कोई भी लोक लोकान्तर हो परन्तु वह देखो, उस चेतना में चेतनित हो रहा है।

पुनर्जन्म का कारण

आज बेटा! मैं किसी वाक्यों को विलम्ब नहीं देने जा रहा हूँ वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह क्या आज हम विचार विनिमय करने वाले बनें, कि आत्मा ही हमारा जीवन है, आत्मा के कारण ही, हमें मानो यह शरीर आत्मा के जानने के लिए प्राप्त हुआ है, यह शरीर वैसे प्राप्त नहीं होता, इस मानव का उद्देश्य होता है, बेटा! जगत में आने का, वह कारण केवल आत्मा को शोधन करना है, आत्मा को पवित्र बनाना है, आत्मा की चेतना को जानना है। इसीलिए बेटा! मानव जगत में आते हैं, मानवीय शरीर हमें प्राप्त होता है।

नेत्रों का देवता

बेटा! एक वार्ता मुझे स्मरण आती चली जा रही है, आत्मा के सम्बन्ध में, मेरे प्यारे! यहाँ नाना प्रकार के विचार विनिमय देते हुए, आचार्यों ने कहा है कि आत्म ब्रह्म लोकं प्रव्हा यह आत्मा की चेतना, मानव को चेतनित बनाती रहती है। बेटा! एक समय महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज राजा जनक के द्वार पर जा पंहुचे, राजा जनक ने ऋषि का बड़ा स्वागत किया, और स्वागत करने के पश्चात, नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराया। पान कराने के पश्चात राजा ऋषि के चरणों में ओत प्रोत हो गएं, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे राजन! क्या इच्छा है, राजा ने कहा प्रभु! मैं कुछ प्रश्न करने वाला हूँ। उन्होंने कहा तुम प्रश्न करो। क्या प्रश्न है तुम्हारा? उन्होंने कहा प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ क्या यह जो हमारे नेत्र हैं, यह किसके प्रकाश से प्रकाशित हुआ करते हैं, बेटा! जब यह वाक राजा ने ऋषि से कहा तो ऋषि बोले क्या हे राजन्! इसको तो प्रत्येक बालिका, प्रत्येक प्यारा पुत्र ये जानता है, क्या आत्मा का जो देवता है, वह सूर्य कहलाया गया है। अहा! यह आत्मा ही सूर्य का प्रतीक माना गया है, उसी के प्रकाश

से यह प्रकाशित होने लगता है, उसी का प्रकाश एक महानता में परणित होता रहता है। उसी के प्रकाश में प्रातःकाल में, मेरी पुत्रियाँ, मेरी प्यारी माताएं, अपने पुत्रों! को जागरूक कर देती है, सूर्य उदय हो गया, हे पुत्र! जागरूक हो जाओ, नेत्रों का देवता उदय हो गया है, और नेत्रों के देवता के दर्शन करो। तो मुनिवरों! वह हमारे नेत्रों का जो देवता है, वह सूर्य कहलाया जाता है, उसी के प्रकाश से बेटा! हम प्रकाशमान रहते हैं, इसीलिए आज हम उस प्रकाश के लिए ललाहित रहें, जिस प्रकाश के लिए बेटा! आत्मवत ब्रह्मे नेत्रों की ज्योति बेटा! जागरूक हो जाती है। अहा! बेटा! यह सूर्य ही है, जो नाना प्रकार की किरणों के द्वारा मानव के जीवन का शोधन करता है, बेटा! इसी सूर्य की किरण में जो मानव के शरीर में नाना प्रकार की धातुओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। उनका उदय हो जाता है, मानव एक महान ज्योतिमय बन जाता है। वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों में बेटा! यह नाना प्रकार की उज्ज्वलता देता है, मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय बेटा! जब महर्षि कुक्कुट मुनि महाराज ने राजा रावण के पुत्र नारायन्तक से यह कहा कि महाराज! क्या तुम सूर्य के सम्बन्ध मे कुछ जानते हो, चन्द्रमा की यात्रा तो करते हो, परन्तु सूर्य के सम्बन्ध में क्या जानते हो, उस समय महाराजा नारायन्तक ने कहा था वैज्ञानिकों, ने क्या हम सूर्य के सम्बन्ध में केवल इतना जानते है। क्या वह प्रकाशक है, हमारा प्रकाशक है, मानो वह प्रकाश का देने वाला है, नेत्रो का देवता है, वह हमारे जीवन में एक महानता की ज्योति प्रदान करता है, ऋषि ने कहा हे राजन! और क्या जानते हो? नारयान्तक ने कहा कि मैं इससे आगे और अधिक नहीं जानता, परन्तु ऋषि का कथन है, कथनात्मक शब्द है, क्या यह वही किरण है जो मुनिवरों! देखो, जिसका शोधन कर देती हैं अहा! जैसे इसी परमात्मा की सृष्टि में बेटा! विषैले प्राणी भी रहते हैं, और अमृतमय प्राणी भी रहते हैं, सबका देवता बेटा! यह सूर्य कहलाता है, सूर्य नेत्रों का प्रकाशक है, मानो इसी के प्रकाश से अहा! देखो, विषधर भी अपने प्रकाश को ग्रहण करते हैं

बेटा! विषधरों का इसका विभाजन कर देते हैं, नाना प्रकार की किरणें है, सूर्य की एक एक किरण बेटा! बड़ी लाभप्रद मानी गई है, मैंने बहुत पूर्व काल में अपने विचारो को व्यक्त करते हुए कहा था, क्या सूर्य की एक मानो वैष्णव नाम की किरण कहलाती है, वैष्णव नाम की किरण का जो प्रवाह होता है, प्रति पदन होता है, मानो जब बेटा! वह पृथ्वी में उस किरण का प्रभाव जाता है। तो बेटा! देखो, जो सूक्ष्म परमाणु हैं, खनिज में उनकी ज्योति जाती है, बेटा! वह सूक्ष्म परमाणु हैं, उनको एकत्रित करके उनका पात बनाया जाता है, उस पात को तपाया जाता है, तपा करके बेटा! उसको स्वच्छ बना दिया जाता है, बेटा! स्वर्ण रूपी धातु का जन्म हो जाता है। यही वैष्णव नाम की किरण है, बेटा! जो गो नाम का जो पशु है, गो नाम के पशु के रीढ़ के विभाग के साथ में बेटा! एक सूर्य नाम की नाड़ी होती है, उस नाड़ी से विशेष का सम्बन्ध होता है, मुनिवरों! देखो, इसीलिए गो का दुग्ध पान करना देवताओं के लिए बेटा! श्रेष्ठतम माना गया है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! क्योंकि उसमे स्वर्ण की मात्रा होती है स्वर्ण को पान करना मेरी पुत्रियाँ स्वर्ण से अपने श्रृङ्गार से विभूषित किया करती है। माता का जो हृदय होता है, उसमें विद्युत का सञ्चार अधिक रहना चाहिए। आचार्यों ने कहा, वेद का सिद्धान्त कहता है, माताओं के मानो जो हृदय है, उस हृदय में विद्युत का प्रभाव अधिक रहना चाहिए, क्योंकि जितना हृदय गतिशील होगा, उतना हृदय में विद्युत होगी, उतना ही मेरी प्यारी माता का जो जरायुज है, वह गर्भ में बेटा! चेतना और एक महान विद्युत का प्रवाह अधिक रहेगा। इसीलिए बेटा! स्वर्ण के आभूषणों के आभूषणों की माताएं पुत्रियाँ अपने कण्ठ में धारण किया करती है। इसीलिए बेटा! मैं इन वाक्यों को अधिक महत्व नही देना चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह है, क्या सूर्य की नाना प्रकार की किरणे, इस जगत में आती हैं, प्रातःकाल में आती है, वह किरण कोई किरण तो बेटा! स्वर्ण बनाती है, कोई किरण देखो, खाद्य पदार्थों को उत्पन्न करती है, कोई मानव के जीवन को उज्ज्वल

बनाती चली जाती है, नेत्रों का प्रकाशक बन करके अहा! मुनिवरों! देखो, मन को भी विभूषित करनेवाली है। आज हमें उन वाक्यों को विचार विनिमय करना है, जिन वाक्यों के लिए बेटा! आचार्यों ने अपना सुन्दर विचार और अपना मन्तव्य दिया है।

आओ, मुनिवरों! राजा ने यह कहा ऋषि ने कि भगवन! यदि यह सूर्य न हो तो हम किसके प्रकाश से प्रकाश मान होते हैं, उस समय राजा ने कहा राजा से ऋषि ने कहा हे राजन्! तुम्हे यह प्रतीत है, जब सूर्य नहीं होता, सांय काल को जब सूर्य का निधन हो जाता है, उस समय चन्द्रमा अपना प्रकाश ले करके आ जाता है। बेटा! हमारे नेत्रों का जो देवता है, उस समय बेटा! चन्द्रमा कहलाता है, वह जो चन्द्रमा है, वह भी हमारे नेत्रों का देवता है। बेटा! वह मानो अमृत की ज्योति प्रदान करने वाला है, नाना प्रकार की किरणों से आभूषित होते हुए वह चन्द्रमा अपने महान किरणों को ले करके जब जगत में आते हैं, तो बेटा! एक महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। कृषक करने वाला, वैश्य जन यह कह रहा है, मेरी कृषि बड़ी सुन्दर उपजाऊ हो रही है।

हे मेरी प्यारी माता! तू चन्द्रमा की उपासक बन, चन्द्रमा की महान क्रान्ति को ग्रहण कर अहा! मुनिवरों! कैसे मुझे वह काल, वह समय, वह स्नेह, वह माधुर्यपन स्मरण आता रहता है। जिस समय बेटा! देखो, जब जाबाल ने, महर्षि प्रांगत ऋषि महाराज से यह प्रश्न किया था क्या महाराज मेरा गर्भाशय कैसे उज्ज्वल बनेगा? वह अपने गर्भ से ऐसे प्यारे पुत्र को जन्म देना चाहती हूँ जिससे मानो वह अमृतमय बन जाए उस समय उन्होंने कहा कि चन्द्रमा की नाना प्रकार की कान्तियों को ग्रहण करने वाली बनों मुनिवरों! देखो, माता जाबाला ने सूर्य असुतप्रव्हा असुतम मानो पूर्णिमा के दिवस अब देखो, नाना प्रकार की कान्तियों का ग्रहण करना, यह बहुत अनिवार्य होता है, ऐसा कहा जाता है, आयुर्वेद के सिद्धान्त के अनुसार क्या माता की रसना के निचले विभाग में एक स्वान नाम की नाड़ी होती है, स्वान नाम की नाड़ी का सम्बन्ध बेटा!

चन्द्रमा से होता है, और वह चन्द्रमा का सम्बन्ध जो नाड़ियों से होता है, वह उस नाड़ी को अमृत प्रदान करता है, उस नाड़ी का सम्बन्ध मेरी प्यारी माता की लोरियों से होता है, और लोरियों में वह अमृत रस में मिश्रण हो जाता है। मानो उन रसों का तन्मय हो जाता है, माता की पञ्चम नाम की नाड़ी बेटा! रमण करती हुई माता की नाभि के द्वारा उसका सम्बन्ध होता है, और नाभि से वह जो माता के गर्भ में जो जरायुज रहने वाला है, बेटा! माता की नाभि से उसकी नाभि का सम्बन्ध होता है।

इसीलिए बेटा! माता के गर्भ में भी यह चन्द्रमा अमृत को प्रदान करने वाला है बेटा! इसीलिए आज हम प्रातःकाल की पवित्र बेला में चन्द्र विज्ञान को जानने का प्रयास करें, मानो यही तक नहीं है, चन्द्रमा अपनी कान्ति से बेटा! नाना प्रकार के खाद्य और खनिज प्रदान करता है, एक कान्ति है जिसको हम अभेद नाम की कान्ति कहा करते हैं, बेटा! उस कान्ति का जब खनिज पर खाद्य पर अप्रेत होता है, क्योंकि अमृत जितना भी है, रस जितना भी है, शिक्षा प्रदान का तो बेटा! देखो, गोत्रीय कुल में ये उत्पन्न होने वाले थे नाना प्रकार की शिक्षा प्रदान करके उन्होंने एक ही वाक कहा था क्या चन्द्रमा को अपने नेत्रों का प्रकाशक स्वीकार कर लेना चाहिए, राजा ने कहा क्या हे भगवन! मैं यह जानना चाहता हूँ जब मानो यह सूर्य नहीं होता चन्द्र भी नहीं होता तो हम किसके प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं, उस समय बेटा! ऋषि ने कहा, हे राजन! मानो कभी यह सूर्य चन्द्र नहीं होते तो हम तारामण्डलों के प्रकाश से प्रकाशमान होने लगते हैं, मानो तारा मण्डल अपने अपने आङ्गन में भ्रमण कर रहे हैं, नाना प्रकार के तारा मण्डल हैं, उनकी कान्ति आती रहती है, उनका प्रकाश आता रहता है। वह हमारे नेत्रों के देवता बने रहते है। ऐसा आचार्यों ने कहा है बेटा! विज्ञानवेत्ताओं ने कहा है ऋषि याज्ञवल्क्य ने कहा हे राजन्! जैसा यह हमारा पृथ्वी मण्डल है, ऐसे ऐसे तीस लाख पृथ्वियाँ सूर्य मण्डल में समाहित हो जाती है। हे राजन्! और जैसा यह सूर्य मण्डल है, ऐसे ऐसे एक सहस्त्र मण्डल एक सहस्त्र सूर्य

देखो, बृहस्पति मण्डल में समाहित हो जाते हैं, और जैसा बृहस्पति मण्डल है, ऐसे ऐसे एक सहस्र बृहस्पति आरुणि मण्डल में समाहित हो जाते हैं, और जैसा आरुणि मण्डल है, ऐसे ऐसे एक सहस्र मण्डल मानो ध्रुव मण्डल में समाहित हो जाते हैं, और जैसा ध्रुव मण्डल है ऐसे ऐसे एक सहस्र ध्रुव जेठाय नक्षत्र में समाहित हो जाते हैं। बेटा! मैं प्रभु के इस विज्ञान में जाना नहीं चाहता, वह तो एक विशाल विज्ञान है, मेरे प्यारे! प्रभु का आज बेटा! मैं उस महान अपने प्यारे प्रभु के विज्ञान को वर्णन करने लगूं तो बेटा! भयंकर वन है, वहाँ कोई मार्ग प्राप्त नहीं होता बेटा! यह तो प्रभु! का विज्ञान रूपी वन है, इसमें जाने के पश्चात मानव नेति नेति का प्रतिपादन करने लगता है, बेटा! आज मैं अपने निश्चय पूर्वक, गौरव के सहित कहा करता हूँ वह जो मेरा प्यारा प्रभु है, वह चैतन्य है, वह कितना वैज्ञानिक है बेटा! वह कितना महान है उसने बेटा! एक एक जो रचना की, रचनाकार है, बेटा! मानव के शरीर में एक ब्रह्मरन्ध्र बनाया है, प्रभु ने ब्रह्मरन्ध्र में सब नाड़ियों का समूह होता है, बेटा! बहतर करोड़ बहतर लाख दस हजार दौ सौ नाड़ियों का समूह माना गया है। जो ब्रह्मरन्ध्र में जिन नाड़ियों से बेटा! हम देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों की विवेचना करने वाले बन जाते हैं। आज एक वैज्ञानिक है, भौतिक विज्ञानवेत्ता मानो देखो, चन्द्रमा के जाने का यान बनाता है, अरे, प्रभु का विज्ञान कितना विशाल है, ब्रह्मरन्ध्र का यदि मन्थन किया जाएं, ब्रह्मरन्ध्र में यदि काई नाड़ी है, सूक्ष्म वाहक नाड़ियाँ हैं, उनका सम्बन्ध भी लोक लोकान्तरों से होता है। इसीलिए बेटा! देखो, मानव शरीर में बेटा! वैज्ञानिक बन करके वह नाना प्रकार करके लोकों की कल्पना करता है, उनका सम्बन्ध यदि लोक लोकान्तरों की प्रतिभा मानव के ब्रह्मरन्ध्र में मस्तिष्क में नहीं होती, तो बेटा! यह लोक लोकान्तरों के सम्बन्ध में यह विचार विनिमय आ भी नही पाता था। यह बेटा! सार्वभौम उस मेरे प्यारे! प्रभु का विज्ञान है, और ऐसे सूक्ष्म जहाँ जहाँ नाड़ियों का समूह हो ऐसे विचित्र यन्त्र को, ऐसे विचित्र शरीर को कहां प्रभु रचते है, माता के

गर्भाशय में अरे, कैसा वैज्ञानिक है, मेरा प्यारा प्रभु मेरी प्यारी माता! वह प्रभु तेरे गर्भस्थल में तेरे पुत्र का निर्माण कर रहा है, पुत्री का निर्माण कर रहा है परन्तु माता को ज्ञान नहीं होता, क्या कौन रचना कर रहा है, मेरी प्यारी माता के वह कितना निकट रहता है, कितना सम्बन्धित रहता है, उसकी रचना में मानो उसकी प्रतिभा में बेटा! वह कितना सहकारितव रहने वाला है। इसीलिए मेरे प्यारे! प्रभु! प्रभु ही इस मानव शरीर को रचाते हैं, नाना प्रकार की नस नाड़ियों के समूह को रचाने वाला वह मेरा प्यारा प्रभु कहलाया जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इस वाक को विलम्ब नहीं देने जा रहा हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह नाना प्रकार के लोक लोकानतरों को जानने वाले बनें, कल्पना करें, परमात्मा की सृष्टि में बेटा! तीन प्रकार के सौर मण्डल कहलायें गएं हैं। एक सौर मण्डल का अधिपति सूर्य कहलाता है। द्वितीय सौरमण्डल का अधिपति बेटा! देखो, बृहस्पति कहलाया जाता है, और चतुर्थ सौरमण्डल का अधिपति ध्रुव कहलाया गया है, ऐसे ऐसे परमात्मा की सृष्टि में बेटा! नाना सौरमण्डल कहलायें गयें हैं। मानो बेटा! देखो, इन तीन प्रकार की प्रगतियों में यह ब्रह्माण्ड रमण कर रहा है, मुझे बेटा! आज स्मरण आ रहा है, संसार की रचना को बेटा! आज देखो, संसार की रचना को कितना समय हो गया। मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! आज संसार की रचना को बेटा! देखो, **एक अरब सतानवें करोड़ उन्नतीस लाख पांच सौ सतरवां वर्ष** प्रारम्भ हो रहा है। जब प्रभु ने यह जगत रचाया था, मुनिवरों! इतने समय से बहुत से तारामण्डलों का प्रकाश चलता हुआ बेटा! अब तक इस पृथ्वी मण्डल तक नहीं आ पंहुचा, ऐसा प्रभु का विज्ञान है, ऐसा मेरे प्यारे! प्रभु का जगत माना गया है। जिसमें मानव आता है, विचार विनिमय करने के लिए यहाँ नाना प्रकार के यहाँ नाना प्रकार के ऐश्वर्य के लिए मानव नहीं आता, यहाँ अनुसन्धान करने के लिए आता है, बेटा! आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इस वाक को अधिक विलम्ब न देता चला जाऊं वाक उच्चारण

करने का हमारा अभिप्रायः हमारा क्या है, क्या हम अपनी मानवीयता प्रतिभा को विचार विनिमय करने का प्रयास करें। राजा ने कहा भगवन्! यह तो मैंने श्रवण कर लिया, क्या मानव चन्द्रमा नहीं होता, तो तारा मण्डलों के प्रकाश से प्रकाश मान हो जाते हैं। परन्तु जब यह तारा मण्डल भी नहीं होते, तब किसके प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं? उस समय बेटा! ऋषि ने कहा हे राजन्! मानो जब सूर्य, चन्द्र और तारामण्डल नहीं होते, तो हम शब्द के प्रकाश से प्रकाशमान रहते हैं, मानो शब्द हमारे ज्योतियों का ज्योति कहलाया जाता है। बेटा! शब्द मानव के मुखारबिन्द से उच्चारण किया जाता है, बेटा! एक क्षण समय में वह सर्वत्र पृथ्वी की परिक्रमा करने लगता है। सर्वत्र पृथ्वी की परिक्रमा कर लेता है, वह जो शब्द है, वह हमारा प्रकाशक कहलाया गया है, बेटा! वह शब्द ही मानो अन्तरिक्ष में लय हो जाता है।

देखो, हमारे आचार्यों ने ऐसा माना है कि शब्द का कदापि विनाश नहीं होता, इसीलिए आज हमें शब्दों को विचारना है, शब्दों के ऊपर देखो, अनुसन्धानवेत्ता बनना है, अनुसन्धान करना है बेटा! आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम शब्दावलियों को विचार विनिमय करने वाले बनें शब्द ही मानव का प्रकाशक कहलाया गया है। शब्द ही अन्धकार से प्रकाश में ले जाने वाला है, बेटा! शब्द को किसी भी मानव के लिए कहा है, हे मानव! तू शब्द को यथार्थ उच्चारण कर। क्योंकि तेरे शब्द में ज्योति होती है, तेरे शब्द में तेरी प्रतिभा होती है, और जितना तेरा मानव जीवन तपा हुआ होता है, उतना ही बेटा! शब्द में भी महान उत्पति होती है।

मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! यहाँ आचार्यों का सिद्धान्त मुझे स्मरण है, एक समय बेटा! देखो, राजा रावण ने प्रातः काल में महर्षि प्रात जी महाराज के द्वारा ब्रह्मा के द्वारा जब अध्ययन किया था, तो वाणी से सबसे प्रथम अध्ययन किया था बेटा! वाणी शब्दों का अध्ययन करने वाला उस शब्द की गति इतनी होती है, क्या एक योगी यह चाहता है, शब्दो का संशोधन करता हुआ अहा! शब्दो

पर अनुसन्धान करने वाला एक योगी यह चाहता है कि शब्द की अग्नि से ये अमुक मानव भस्म हो जाए तो वह भस्म हो जाता है। परन्तु देखो, यह मानव की वाणी में शक्ति मानी गई है। आचार्यों ने कहा है, वेद का ऋषि कहता है कि शब्द ही तो अग्नि है इस पिण्ड में शब्द ही तो अग्नि है। इसीलिए देखो, इस अग्नि के ऊपर अनुसन्धान करना चाहिए, वाणी का आज मेरी प्यारी माता जब वाणी से जब यथार्थ वाक उच्चारण करती है तो बेटा! यह महानता की ज्योति जाग्रत हो जाती है। मेरे मानव बेटा! ऋषिजन मुझे स्मरण आता है, बेटा! देखो, महर्षि भारद्वाज ने, अनुसनधान किया और दौ सौ वर्ष तक सत्य का पालन करके निश्चय किया, गौरव के सहित उन्होंने यह कहा है क्य मानव के सत्य वाक उच्चारण करना शब्द का विचार करके उच्चारण करना चाहिए, क्योंकि शब्द में एक महान अग्नि होती है, पवित्र अग्नि होती है जिसको उच्चारण करने से देखो, अग्नि प्रदीप्त हो जाती है मुनिवरों! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! त्रेता के काल में शब्द ही था, द्वापर के काल में शब्द ही था, जो बेटा! महाभारत जैसे संग्राम को करा गया था देखो, शब्द था महारानी द्रोपदी ने कहा था, दुर्योधन को की अन्ध की सन्तान तो अन्धी होती है। वही वाक वह शब्द था, बेटा! वह देखो, भयंकर परिणाम हुआ इस शब्द का, संग्राम हो गया। बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है बेटा! एक एक शब्द में ही मानो देखो, अग्नि की अग्नि प्रदीप्त कर दी है मानो राष्ट्र के राष्ट्र भ्रष्ट हो गय हैं बेटा! ऋषियों की परम्परा भी नष्ट हो गई है शब्दों के कारण, आज हमें शब्दों को यथार्थ उच्चारण करना है, शब्दों के ऊपर अनुसन्धान करना है, शब्द को विचारना है कि शब्द का प्रतीक क्या है? शब्द की ज्योति क्या है, इसके ऊपर हमें बारम्बार अनुसन्धान करना है, जो बेटा! देखो, अन्तरिक्ष में में लय हो जाने वाला शब्द है, उसी के ऊपर हमें विचार विनिमय करना है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! शब्द की ज्योति इतनी महान होती है, ऋषि ने प्रमाण देते हुए कहा हे राजन्! जैसे एक मानव मानव अन्धकार में चला जाता है आगे

वह कह रहा मैं अन्धकार में हूँ अरे, है, कोई मार्ग चेताने वाला, उस समय मानो जो मार्ग में स्थिर है, वह अपने शब्द से कह रहा है आ जाओ, मैं मार्ग में स्थिर हूँ। मुनिवरों! देखो, उसी शब्द से प्रकाश से, उसी शब्द के तारतम्य से बेटा! वह उस मार्ग को प्राप्त कर लेता है, जिस मार्ग से विचलित हो गया था। उस मार्ग से वह दूरी हो गया था। इसीलिए बेटा! मार्ग चेताने वाला कौन होता है? मार्ग चेताने वाला चैतन्य होता है। मार्ग चेताने वाला बेटा! गुरु शिष्य की परम्परो भी बेटा! मार्ग में लाने वाली होती है। इसीलिए आज हमें विचार विनिमय करना है, क्या शब्द को हमें शोध करके उच्चारण करना है शब्द की अपनी अखण्ड ज्योति होती है, शब्द के कारण बेटा! राष्ट्रों के विभाजन हो जाते हैं। शब्दों के कारण राष्ट्रों में संग्राम हो जाते हैं। मेरी प्यारी माता मानो पुत्र हीन हो जाती है शब्दों के कारण मुनिवरों! शब्दों के कारण राष्ट्र अपनी प्रतिभा से हीन हो जाता है शब्दों के कारण बेटा! देखो, मेरी प्यारी माताओं के श्रृंगारों को भ्रष्ट कर दिया जाता है। आज इसीलिए शब्द का यथार्थ उच्चारण करना चाहिए, शब्द में शक्ति होनी चाहिए, शब्द में परमात्मा की प्रतिभा होनी चाहिए, वही शब्द है जिसका सम्बन्ध बेटा! अन्तरिक्ष से होता है, तो ऋषि ने कहा है क्या अन्तरिक्ष में शब्द सदेव रहने वाला है, मानो उसका विनाश किसी काल में नहीं होता मैने देखो, लघु अक्रत मस्तिष्क में चला जाता है, शब्द जो विद्युत के अङ्ग संग रहने वाला है, इसीलिए बेटा! शब्द ऐसे रमण करता है, जैसे विद्युत अपने आङ्गन में रमण करने वाली है। यह है बेटा! आज का वाक ऋषि ने कहा राजा ने कहा ऋषि से कि भगवन! यह शब्द तो मैंने जान लिया है, परन्तु शब्द भी न हो तब हम किसके प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं, तो बेटा! ऋषि ने क्या कहा तुम्हे प्रतीत होगा, ऋषि ने कहा हे राजन्! जब यह सूर्य, चन्द्रमा, तारा मण्डल, और शब्द नहीं होता तो आत्मा के प्रकाश से प्रकाशमान हो जाते है। इसीलिए हमें आत्मा को उज्ज्वल बनाना है, आत्मा को जानना है, इसीलिए एक चेतना को जानना है। हे राजन्! तुम्हे यह प्रतीत है, क्या जब मानव

का निधन होता है, उस समय मानो इन्द्रियाँ मन में समाहित हो जाती हैं, और मन प्राण में समाहित हो जाता है, और प्राण तेज में समाहित हो जाता है, और वह तेजोमयी लिंग आत्मा है, वह जब इस शरीर से निगल जाता है। उस समय बेटा! मानव के नेत्र भी हैं, परन्तु सूर्य भी, अरे, मानव क्यों नही प्रकाशमान हो जाता। मुनिवरों! उस समय चन्द्रमा भी है, नेत्र भी हैं, अरे, मानव क्यों नही प्रकाशमान हो जाते, उस समय वाक भी है, शब्द भी है, अन्तरिक्ष भी है, परन्तु क्यों नहीं शब्दायमान हो जाते। मेरे प्यारे! ऋषिवर! तारामण्डल भी उसी प्रकार के सौर मण्डल भी है मानव दृष्टिपात नहीं कर पाता क्यों नहीं कर पाता, क्योंकि मानव के द्वारा आत्म चेतना न रही बेटा! आत्मा के न रहने के कारण बेटा! तेज के न रहने के कारण मानव निष्क्रिया बन जाता है, निष्प्राण बन जाता है, निश्तेज बन जाता है। बेटा! देखो, शब्द भी वैसे ही रह जाता है, इसीलिए आज का बेटा! हमारा वाक कह रहा है कि मानव तू आत्मा कों जानने का प्रयास कर। आत्मा तेरे हृदय में विराजमान है, हृदय रूपी गुफां में विराजमान है, तू उस आत्मा को जान। आत्मा को कैसे जाना जाएगा, आत्म चिन्तन करने पर, आत्म चिन्तन कैसे होता है। जब मुनिवरों! देखो, मानव के द्वारा श्रद्धा होती है, जागरूक वाली श्रद्धा होती है, उस श्रद्धा के कारण बेटा! आत्म ज्योति ही मानव आत्मा को उज्ज्वल बनाने वाला है। तो बेटा! आज का हमारा वाक क्या कहा रहा है, यदि आत्मा इस शरीर में है, तो बेटा! वाक भी अपना कार्य करता है, चन्द्रमा तारा मण्डल भी अपना कार्य करते हैं, चन्द्रमा भी सूर्य भी एक दूसरे के सहकारिता बनते रहते हैं। जब आत्मा इसके द्वारा नहीं होती तो हे मानव! तेरा निधन हो जाता है, तेरी प्रतिभा अपने के द्वारा न रहती केवल शव रह जाता है, अग्नि के मुख में चला जाता है, अग्नि उसको निगल जाती है, परमाणु बना देती है, वह परमाणु अपनी अपनी प्रतिष्ठा में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इसीलिए हे मानव! तू आत्मा को जानने का प्रयास कर, आज कोई मानव यह कह रहा है, क्या मृत्यु मानो देखो, मृत्यु कदापि किसी

पदार्थ की नहीं होती। आत्म चेतना की मृत्यु नहीं होती, परमाणुवाद की मृत्यु नहीं होती, मानो देखो, अपने अपने कारण में सब प्रतिष्ठित रहते हैं। इसीलिए मेरे प्यारे! ऋषिवर! हमे आत्मा को जानना है। आत्म चेतना को जानने से हमारा जीवन एक महानता की ज्योति में ज्योतिवान हो जाता है। हम उसी के कारण अपने को सौभाग्यशाली स्वीकार करते हैं, आज का बेटा! हमारा यह वाक क्या कहा रहा है, हम परमात्मा का चिन्तन करने वाले बने, परमात्मा की प्रतिभा को जानने वाले बनें बेटा! मैं आज कोई अधिक वाक प्रगट करने आया हूँ वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा यह कि हम आत्मा को जानने वाले बनें, आत्म चेतना को जाने बिना बेटा! हमारा कल्याण नहीं होगा। आत्म चेतना मुनिवरों! जब ऊँची बनती है, जब प्रत्येक इन्द्रियं पर मानव संयम करता है, संयमी जो पुरूष होता है, वह आत्म चेतना को जान सकता है, बेटा! संयमी पुरूष कौन होता है, जो बेटा! अपनी इन्द्रियों पर संयम करता है, विचारार्थ बनता है, प्रत्येक इन्द्रिय के प्रति बेटा! जैसे रसना है, **रसना का आहार और व्यवहार पवित्र होने पर आत्मा को सबसे प्रथम जानकारी ही चयन की गई है**। इसीलिए मानव को आहार व्यवहार अपने मानवीय जीवन को उत्तम बनाना है, आज का यह वाक बेटा! अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्यों का अभिप्राय यह कि हमे आत्म चेतना को जानना है। प्रातः काल की, प्रातः अग्नि को हमे जानना है। वह प्रातः काल की जो पुनीत अग्नि है, वही मानो आत्म चेतना है, उस आत्म चेतना को जाने बिना मानव की प्रतिभा मानव का तेज कदापि भी उज्ज्वल नहीं बनता, यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करूंगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो! वाक तो बहुत ही सुन्दर लगा परन्तु समय बड़ा सूक्ष्म।

पूज्यपाद गुरुदेव : हास्य............ बेटा! कल

समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे।

पूज्य महानन्द जीः अच्छा भगवन्!।

पूज्यपाद गुरुदेव : तो मुनिवरों! आज का अब हमारा यह समाप्त होने जा रहा है, अब शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगें, आज का वाक अब हमारा समाप्त आज के वाक वाक्यों का अभिप्राय क्या हमारे नेत्रों का देवता सूर्य, चन्द्रमा, तारामण्डल शब्द और आत्म चेतना को जाने बिना इनका सबका निधन हो जाता है। इसीलिए आत्मा को जानना हमारा सबसे मुख्य कर्तव्य है, यही आत्म मानव का शरीर हमे आत्म चेतना के लिए प्राप्त होता है, इसको हमें जानना है, परमात्मा का चिन्तन करना बहुत अनिवार्य है प्रातःकाल की अग्नि को जानना जो सविता है, वही आत्म ज्योति कहलाती है, यह है बेटा! आज का वाक्, अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएं कल प्रगट करूंगा। अब वेदो का पाठ ओ३म् ब्रह्म गा ता मानं भद्राणि गा ताः। ओ३म् देवं भा गा मनो आ भा तनु गायन्ता मा गाताः। ओ३म् भू वर्णश्वरी आ भां त्वा मनु वेतु ग्राहणं मा व्यापकं मनो सर्वं भागाः यम सर्वाम्। आनन्द मङ्गलम भवति।

24 १५ ०८ १९७० रात्रि १६ कलाओं का वर्णन

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हे प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया, हमारे यहाँ नित्यप्रति उस वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस प्रवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा ओत प्रोत रहती है, क्योंकि परमपिता परमात्मा महान है, अथवा विज्ञान में वह महानता में परणित रहने वाला है। उसका बेटा! किसी भी काल में अभाव नहीं होता, वह सदैव प्रचलित रहता है, क्योंकि उसके विज्ञान में सङ्कीर्णता नहीं होती, उसके विज्ञान में रूढि नहीं होती, वह रूढ़ि से पृथक होता है। इसीलिए परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान एक महानता में सदैव परणित रहता है, जिसको हम सदैव विचार विनिमय करते हुए, हमारे यहाँ ऋषि मुनियों का विचार विनिमय परम्परा से ही प्रारम्भिक

रहता है, और विचार विनिमय होते रहते हैं कि हम अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास करें। जब हम परमपिता परमात्मा के ऊपर कल्पना करने लगते हैं कि परमात्मा है, अथवा नहीं है, परमात्मा क्या वस्तु है? आत्मा है, अथवा नहीं है।

बेटा! हमारे ऋषि मुनि इन विवादों में नहीं जाना चाहते वह तो वेद का उपदेश है, ईश्वरीय जो वाणी है, उसका प्रसारण करना है और उसके ऊपर सूक्ष्म विचार विनिमय करना है, परन्तु जहाँ सूक्ष्म विचार होता है, वहाँ रूढ़ि नहीं होती, क्योंकि स्थूल में रूढ़ि हुआ करती है। बेटा! परमात्मा का ज्ञान और विज्ञान सूक्ष्मवत माना गया है, जब हम यह विचारने लगते हैं कि हमारा वास्तव वैदिक प्रसारण एक मानवीयता से सुगठित है, मनन करने से उसका सम्बन्ध रहता है, तो मुनिवरों! वही हमारे यहाँ विचार प्रचलित रहता है, उन विचारों में एक माधुर्य पन होता है। और माधुर्य पन ही बेटा! समाज को ऊँचे मार्ग पर लाता है, और अपनेपन को भी ऊँचा बनाता है। जब बेटा! वाणी में, ज्ञान में, मधुरपन नहीं होता आत्मिकता नहीं होती, क्योंकि आत्मिकता उस वाक में होती है, जो मानव उद्गम गाता है। उद्गार से गाता है, उसका जो उद्गार है, हृदय से उसकी उत्पति हुआ करती है। जब वह उद्गार बेटा! हृदय से उद्गम् रूपों से उद्गाता बनता है, तो बेटा! देखो, उसका जो शब्द रूपी यज्ञ है, शब्द रूपी प्रसारण है, वह एक महान और पवित्रता में परणित होता चला जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इन वाक्यों को बेटा! विलम्ब देना नहीं चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय हमारा क्या है कि हम परमपिता परमात्मा की उपासना करने वाले बनें और चिन्तन करने वाले बनें। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से चिन्तन किया जाता है, परम्परा से प्रतिभा का वर्णन आता रहता है बेटा! मुझे स्मरण आता रहता है मेरी प्यारी पवित्र माताओं का जीवन बेटा! माता जाबाला जब बेटा! वह अपने पुत्र सत्यकाम को जब बारह वर्ष का ब्रह्मचारी हो गया उस समय माता ने कहा हे ब्रह्मचारी! अब तुम सुयोग्य हो और हमारी जो

परम्परा है मेरे जो पिता थे पड़पिता थे महाबाबा थे परन्तु उनमें कोई भी ऐसा नहीं था जो ब्रह्मवेत्ता न हो, इसीलिए मेरी आकांक्षा है, मेरी प्रबल इच्छा है, हे ब्रह्मचारी! जाओं तुम ब्रह्मवेत्ता बनने चले जाओ। उस समय बेटा! वह द्वितीय दिवस हुआ विराजमान होने वाले सत्यकाम ने अपनी माता से कहा, हे मातेश्वरी! मैं आचार्य कुल में तो जा रहा हूँ, परन्तु मेरा गोत्र क्या है? जब आचार्य मेरे से यह प्रश्न करेंगे, तो तुम्हारा गोत्र क्या है? तो मैं क्या उत्तर दे सकूंगा, इसीलिए मुझे निर्णय कराईए कि मैं गोत्र के साथ मैं जाना चाहता हूँ। जिससे आचार्य मुझे स्वीकार कर ले, मुनिवरों! माता जाबाला ने कहा क्योंकि माता जाबाला सत्य वक्तव्य उच्चारण करने वाली थी, सत्य और यथार्थता उसका आभूषण रहता था, माता जाबाला ने कहा हे बालक्! हे ब्रह्मचारी! मैंने नाना पुरूषों की सेवाएं की है। मैं नहीं जानती कि बालक तेरा गोत्र क्या है, तो बेटा! अब यह वाक मुनिवरों! देखो, सत्यकाम ने श्रवण किया, श्रवण करने के पश्चात मानो ब्रह्मचारी ने वहाँ से प्रस्थान कर लिया, भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, महर्षि गौतम आश्रम में प्रविष्ट हो गएं। महाराजा गौतम ने उनका बड़ा सुन्दर स्वागत किया आओ, ब्रह्मचारी क्योंकि एक ब्रह्मचारी जब गुरु के कुल में जाता है तो बेटा! देखो, उसकी प्रतिष्ठा भी उसी प्रकार हुआ करती है मेरे प्यारे! ऋषिवर! वह सब ब्रह्मचारी अपने अपने उस अपने अपने गृह को उन्होंने प्रस्थान किया, सांयकाल हो गया आचार्य गौतम ने कहा अरे, ब्रह्मचारी! तुम कौन हो तुम्हारा नामों और गोत्र क्या है? उस समय मुनिवरों! देखो, सत्यकाम ने कहा हे भगवन! मेरा नाम जाबाला सत्यकाम है, मानो जाबाला मेरी माता मैं उसका पुत्र सत्यकाम हूँ, मेरा जो गोत्र है, मेरी माता ने यह कहा था मैं तेरे गोत्र को नहीं जानती कि तुम्हारा गोत्र क्या है? मेरे प्यारे! ऋषिवर! उस ब्रह्मचारी की सत्यवाणी को स्वीकार करने वाला मानो देखो, आचार्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! तुम तो ब्राह्मण हो, क्योंकि ब्राह्मण ही सत्य व्यक्तव्य उच्चारण करने वाला होता है। उसे मान अपमान नहीं होता, सङ्कीर्णता नहीं होती, जो सत्यवादी होता है,

वही ब्राह्मण कहलाया गया है। हे ब्रह्मचारी! तुम ब्राह्मण हो।

आओ, मेरे कुल में आ जाओ मैं तुम्हे शिक्षा प्रदान करूंगा, बेटा! आचार्य गौतम ने उसको ब्राह्मण की संज्ञा प्रदान कर दी, मानो ब्राह्मण उसका अप्राहद हो गया। उस समय द्वितीय काल हुआ, रात्रि काल में विश्राम करना ही था, अगला दिवस आया, तृतीय दिवस आया, एक समय मुनिवरों! जब तृतीय दिवस आया तो आचार्य कोई वाक प्रगट नहीं कर रहा था, अब आचार्य तीन रात्रि के इस विचार में था, क्या इस ब्रह्मचारी को तूने ब्राह्मण तो उच्चारण कर दिया है, परन्तु ब्राह्मण है, अथवा नहीं है, इसके ऊपर भी तो विचार विनिमय होना चाहिए। मुनिवरों! देखो, यह वाक जब उन्होंने श्रवण किया, श्रवण करने के पश्चात विचार विनिमय अहा! अपने शब्दों से मन्थन किया श्रवण किया, और विचार विनिमय करके अन्त में यह निर्णय हुआ, क्या इसकी परीक्षा आगे ली जा सकेगी। ब्रह्मचारी तृतीय दिवस उनके समीप आया चरणों में ओत प्रोत हो करके बोले हे प्रभु! आप ने मुझे कोई सेवा नहीं दी है, क्योंकि मैं भी तो आपका ही ब्रह्मचारी हूँ, आपका ही शिष्य हूँ, आपके द्वारा मानो ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करने आया हूँ। हे प्रभु! मुझे कोई सेवा दीजिए, उस समय उन्होंने कहा हे सत्यकाम! मेरी आज्ञा है, जाओं मेरे आश्रम में चार सौ गऊएं है, इन्हे ले जाओ, और जब तक यह एक सहस्र नहीं हो जांए, तब तक मेरे आश्रम में प्रविष्ट नही होना। बेटा! यह आज्ञा उन्होंने प्रदान कर दी, आज्ञा पाते ही उसी समय सत्यकाम ने बेटा! चार सौ गऊओं को ले करके भयंकर वन में प्रस्थान किया। भ्रमण करते हुए बेटा! नित्य कर्म करते रहते थे, नित्यप्रति बेटा! सांय काल होता प्रातः काल होते ही बेटा! वह गऊँ स्थिर होती, मानो देखो, वह सन्ध्या मार्जन इत्यादि देखो, यज्ञ कर्म करने के लिए तत्पर होता था, यह कर्म उसका नित्यप्रति था मुनिवरों! उसके पश्चात जब समय व्यतीत हो गया, भयंकर वन में दूरी चले गएं, कुछ काल के पश्चात बेटा! एक समय देखो, प्रातःकाल में, सांयकाल को ब्रह्मचारी बेटा! देखो,

स्नान करके और सन्ध्या मार्जन और तर्पण करने के पश्चात अग्नि होत्र करने वाला था, मुनिवरों! देखो, मानो गऊओं में से एक गऊ के बछड़े ने कहा अहा! मुनिवरों! देखो, वृख ने कहा हे सत्यकाम! हे आचार्य ब्रहे! अप्रतम् आचार्य पुत्रा हे ब्रह्मचारी! हम एक सहस्त्र हो गएं हैं, क्या अब अपने गृह को गुरु के कुल को कोई स्थान होना चाहिए बेटा! ब्रह्मचारी ने उस वार्ता को स्वीकार कर लिया।

ब्रह्मचारी से उस वृख ने कहा हे बालक! हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान कराता हूँ। आज मेरे से तुम चार कलाओं का ज्ञान स्मरण कर लो, उन्होंने बेटा! देखो, प्राचीदिक्, दक्षिणीदिक, प्रतीचीदिक और उदीचीदिक बेटा! इन चार कलाओं का ज्ञान कराया, उन्होने कहा यह चार कलाएं हैं। तुम इन चार कलाओं के ऊपर विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दो बेटा! सत्यकाम ने अग्नि होत्र के पश्चात रात्रि की गोद में चला गया, निन्द्रा की गोद में चला गया, कहा जाता था क्योंकि जिज्ञासु को बेटा! निन्द्रा नही आती जिज्ञासु तो अपनी आत्मा जिज्ञास में रमण करता रहता है। वह बेटा! देखो, निन्द्रा की गोद में जाने ही वाला था, परन्तु मन्थन करना प्रारम्भ कर दिया, क्या प्राचीदिक तो पूर्व दशा को कहा जाता है, और प्रतीचीदिक मानो देखो, दक्षिणदिक दक्षिण को अहा! प्रतीचिदिक पश्चिम दिशा को कहा जाता है। दक्षिणाय दक्षिण को और उत्तर को कहा जाता है, इसके चार वितरण कहलाए गएं हैं। देखो, एषणाय है त्रिती है गौरानी है इत्यादि नाना प्रकार का उन्होंने विश्लेषण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कहा सबसे प्रथम मानो देखो, इस वृख ने कहा है क्या सबसे प्रथम कला का नाम मानो देखो, प्राचीदिक माना गया है, इससे सूर्य उदय होता है, सूर्य प्रातःकाल में उदय होने वाला मानो देखो, पूर्व दशा के प्रकाश आता है, इसी प्रकाश को जब मैं अपने में ग्रहण करता हूँ, इसी प्रकाश को मैं नेत्रों का देवता बनाता हूँ, तो मेरे नेत्र आभाशाली बन जाते हैं, प्रकाशमय बन जाते हैं, आनन्दवत को प्राप्त होने लगते हैं। उसके पश्चात उन्होंने विचारा क्या प्रतीचीदिक मानो देखो, जिसको हम पश्चिम

दिशा कहा जाता है, अहा! उससे अन्न का प्रादुर्भाव होता है, अन्न को पान करते हैं, तो इन्द्रियों में शक्ति आती है, प्रबलता आती है, मानो देखो, यह अप्रत कला कहलाई जाती हैं। इसके पश्चात उन्होंने देखो, दक्षिण से अप्रात होता है, दक्षिणाय में सूर्य भी उदय होता है, मुनिवरों! देखो, कही उत्तरायण में होता है, कहीं दक्षिणायण में होता है, और मानव के दो ही मार्ग है, संसार में मानो उत्तरायण और दक्षिणायण मुनिवरों! दक्षिण आता और मुनिवरों! उत्तरायण जो माना गया है। आज मुझे इन मार्गो का इन चारों कलाओं का ज्ञान मानो इनका जो सम्बन्ध है, वह इन चारों कलाओं के ऊपर मन्थन क्या मैं इन सूक्ष्म परिचय दूंगा, उच्चारण करने का अभिप्राय यह बेटा! रात्रि समय मन्थन मानो देखो, उसी विचार विनिमय करते ही अब प्रातःकाल के पश्चात अब बेटा! देखो, द्वितीय आसन को बेटा! प्रस्थान कर दिया। गऊओं को ले करके जब उन्होंने प्रस्थान किया आगे चल करके वह सांयकाल हो गया सांय काल होते ही बेटा! उन्होने बेटा! वह गऊँ स्थिर हो गई।

गऊँ विराजमान हो गई ब्रह्मचारी ने स्नान किया, स्नान करने के पश्चात बेटा! सन्ध्या की उपासना की और मार्जन और तर्पण करने के पश्चात अग्नि होत्र करने लगा जब प्रथम आहुति प्रदान करने लगे, कहा जाता है, उस समय बेटा! देखो, अग्नि देवता का जन्म हो गया अग्नि देवता ने कहा अरे, ब्रह्मचारी! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान कराएं देता हूँ, उन्होंने कहा भगवन! बहुत सुन्दर उन्होंने कहा पृथ्वी कला अन्तरिक्ष कला और द्यौ कला और समुद्र कला इन चारों कलाओं का ज्ञान तुम्हे होना चाहिए, उन्होंने बेटा! देखो, वर्णन करते हुए कहा सबसे प्रथम पृथ्वी कला है, जो इन चारों कलाओं में और द्वितीय कला का नाम अन्तरिक्ष है, और तृतीय कला का नाम समुद्र माना गया है, और चतुर्थ कला का नाम हमारे यहां द्यौ माना गया है। इन चारों कलाओं के ऊपर मानो विचार विनिमय करने का प्रयास करो, उस समय बेटा! देखो, ब्रह्मचारी देखो, रात्रि की गोद में जाने के पश्चात रात्रि की गोद में जा

करके विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दिया, प्रारम्भ करते हुए उन्होंने विचारा कि मुझे आचार्य ने अग्नि देवता ने मानो चारों कलाओं का ज्ञान कराया है। सबसे प्रथम पृथ्वी कला है, अहा! यह जो पृथ्वी है अहा! इस पृथ्वी से नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ उत्पन्न होता है, जितना भी खनिज है, उसका सम्बन्ध मानो पृथ्वी से है, पृथ्वी के गर्भ से उत्पन्न हुआ करता है, और खाद्य भी उसी के द्वार से उत्पन्न होता है, खाद्य और खनिज पदार्थों की उत्पति कहां से होती है मुनिवरों! मानो पृथ्वी कला से होती है। इस पृथ्वी के गर्भ में क्या नहीं है, बेटा! यह तो माता वसुन्धरा है, मानो यह अपने में सबको बसाने वाली है, बेटा! यह वसुन्धरा कैसी महान है, कैसी पवित्र है, मानो यह बेटा! सबका लालन पालन करने वाली है। अहा! इसके गर्भ में बेटा! कहीं स्वर्ण की धातु उत्पन्न होती है, कहीं नाना प्रकार के रत्न उत्पन्न हुआ करते हैं, इसके गर्भ में बेटा! सुन्दर सुन्दर आभा उत्पन्न होती रहती है, जिससे बेटा! राष्ट्र का कल्याण होता है। राष्ट्र भी मानो द्रव्य भी इसी से उत्पन्न हुआ करता है।

पृथ्वी कला

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम पृथ्वी कला पर अनुसन्धान करते रहे इस पृथ्वी से नाना प्रकार के खनिजों का जन्म होता है, नाना औषधियों का जन्म होता है, जिससे बेटा! मानव के जीवन में एक सुन्दर आभा का जन्म होना प्रारम्भ हो जाता है। हे माँ वसुन्धरा! तू वास्तव में हमारा कल्याण करने वाली है, कल्याण में ही आनन्द में ही तू अपने में धारण करने वाली है, तू हमें आनन्द प्रदान करने वाली है, इसीलिए बेटा! ब्रह्मचारी सत्यकाम ने पृथ्वी के ऊपर अनुसन्धान करना प्रारम्भ कर दिया। उसके पश्चात अन्तरिक्ष कला बेटा! देखो, अन्तरिक्ष किसे कहा जाता है, जहाँ बेटा! शब्दों की ओत प्रोतता हो जाती है, नाना प्रकार के परमाणु उसी में रमण कर जाते है। बेटा! अन्तरिक्ष कहते हैं जिसमें बेटा! सूक्ष्म परमाणु भ्रमण करते रहते हैं वह सूक्ष्म परमाणुओं का जो भण्डार है वह अन्तरिक्ष कहलाया गया है वह अन्तरिक्ष बेटा! देखो,

सूक्ष्मतम को अपने में अपनाने वाला है वह सब वस्तुओं को अपनाता हुआ अपने में ग्रहण कर लेता है, अपने में शोषण कर लेता है, अपने में ही बेटा! सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर लेता है। बेटा! मानो वह अन्तरिक्ष कला आज मानो देखो, पृथ्वी का और अन्तरिक्ष का एक महान सम्बन्ध होता है, उसके पश्चात मुनिवरों! देखो, द्यौ कहा जाता है बेटा! द्यौ कहते हैं, जो मानो देखो, जिसमें बेटा! प्रहा तुक होता है मानो देखो, द्यौ कहते हैं लोंको को जिसमें लोक लोकान्तरों की आभा विराजमान रहती है, उसका द्यौ कहा जाता है, क्योंकि प्राण उसमें रमण करने वाला है। एक दूसरा लोक लोकान्तर बेटा! एक दूसरे से मिलान करता रहता है, मानो उनका मिलान नहीं हो पाता, मिलान करना तो चाहते हैं, परन्तु हो नही पाता वह क्यों नहीं होता द्यौ के कारण वह जो द्यौ कला है, वह लोक लोकान्तरों को बेटा! अपने अपने आङ्गन में भ्रमण कराती रहती है, अपने अपने आङ्गन में बेटा! भ्रमण करती रहती है, नाना प्रकार लोक लोकान्तरों की मैं आज चर्चा नहीं करने आया हूँ, केवल वाक उच्चारण करने का अभ्रिपायः यह है, क्या उसको हमारे यहाँ द्यौ कहा जाता है। जिसमें बेटा! लोक लोकान्तरों की आभा विराजमान होती है। वह तेजो से युक्त रहने वाली है। इसी में बेटा! एक महानता की ज्योति उद्यत होती रहती है, उसी से मुनिवरों! देखो, द्यौ की आभा, लोक लोकान्तरों में प्रदीप्त रहने वाली है। मुझे स्मरण आता रहता है, बेटा! एक समय महर्षि भारद्वाज मुनि से कहा था, सोमकेतु जी ने क्या महाराज! यह द्यौ क्या है? क्या द्यौ उसे कहा जाता है जो लोक लोकान्तरों को स्थिर किए हुए है, मानो पृथ्वी के आङ्गन में भ्रमण कराए रहती है। उसी को द्यौ कहा जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! देखो, द्यौ कला, पृथ्वी कला, अन्तरिक्ष कला, द्यौ कला और समुद्र कला, कहा जाता है मानो समुद्र क्या है? परमपिता परमात्मा ने बेटा! जब इस पृथ्वी का रचा, यह पृथ्वी जब जल के द्वारा से उत्पन्न हुई, तो बेटा! देखो, इसकी मेखला बना दी गई। जैसे यज्ञशाला में यज्ञवेत्ता, ब्रह्मवेत्ता, ब्राह्मणवेत्ता यह

यज्ञशाला के यह मेखला बनाता है, जल सिंचन करता है, यज्ञमान के द्वारा इसी प्रकार पृथ्वी के आङ्गन में यह एक प्रकार की मेखला है। समुद्र रूपी जो मेखला है, बेटा! जो पृथ्वी से विष उगला जाता है, उसे समुद्र अपने में शोषण कर लेता है, अपने में ग्रहण कर लेता है, इसीलिए बेटा! देखो, हमारे यहाँ समुद्र कला को विशेष माना गया है। पवित्रवत माना गया है, क्योंकि वह विष को अपने में शोषण करने वाला है। मानव को जीवन प्रदान करने वाला है। बेटा! इसको हमारे यहाँ समुद्र कला कहा जाता है, इसमें नाना प्रकार की सृष्टि होती है, नाना प्रकार के प्राणी इसमें बेटा! रमण करते रहते है, विशाल से विशाल बेटा! जलवत रहने वाला है। इसी से सुन्दर सुन्दर मानो पर्जन्य होता है पर्जन्य से बेटा! सुन्दर वृष्टि होती है उसी से मेघों का प्रादुर्भाव उत्पन्न होता है। यह मानव के बेटा! जीवन को सिंचन करने वाली है इसीलिए से बेटा! आज का हमारा वाक्, यह क्या कह रहा है बेटा! आज हम विचार विनिमय करने वाले बनें बेटा! पृथ्वी कला अन्तरिक्ष कला और द्यौ कला और समुद्र कला यह चारों कलाओं के ऊपर मानव को विचार विनिमय करना चाहिए। इसके पश्चात मैं बेटा! इसका सूक्ष्म परिचय दे रहा हूँ, विस्तार प्रगट करने नहीं आया हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह क्या महाराज सत्यकाम बेटा! विचार विनिमय करते रहे वही प्रातः काल हो गया प्रातः काल होते ही बेटा! गऊँओं को ले करके बेटा! उन्होंने वहाँ से प्रस्थान कर दिया गुरु के आसन को जाने के लिए प्रस्थान कर लिया भ्रमण करते हुए बेटा! वहीं सांयकाल हो गया सांयकाल होते ही मुनिवरों! उन्होंने बेटा! स्नान किया मार्जन किया तर्पण किया सन्ध्या और उपासना करने के पश्चात बेटा! देखो, वह उसमें आहुति प्रदान करने लगे जब प्रथम आहुति प्रदान करने लगे तो कहा जाता है मुनिवरों! देखो, उस समय वायु देवता का अप्रतम् आदित्य देवता का जन्म हो गया और आदित्य ने कहा हे ब्रह्मचारी! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान कराएं देता हूँ। उन्होंने कहा भगवन! कृपा कीजिए उन्होंने कहा सूर्य कला चन्द्र कला, अग्नि

कला और और विद्युत कला इन चारों कलाओं के ऊपर अब तुम्हारा अनुसन्धान होना चाहिए। इन चारों कलाओं के ऊपर विचार विनिमय करना प्रारम्भ कर दो उस समय बेटा! देखो, देवता तो अन्तर्ध्यान हो गएं और ब्रह्मचारी सत्यकाम बेटा! रात्रि की गोद में बेटा! पुनः चला गया उन्होंने विचारा क्या सबसे प्रथम अहा! देवता ने मुझे सूर्य कला का वर्णन कराया है और चन्द्र कला और जहाँ अग्नि कला आती है अग्नि वही पनपती है अग्नि के स्थान में तो प्रव्हा माना गया है जिसको बेटा! वायु कहा जाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! ब्रह्मचारी सत्यकाम ने प्रारम्भ कर दिया क्या आज मैं सूर्य कला को जानना चाहता हूँ, सूर्य में नाना प्रकार की किरणों का जन्म होता है, जब प्रातःकाल में सूर्य उदय होता है, तो सहत्राणि किरणें बेटा! मानो देखो, इन्द्र बन करके आता है। इन्द्र जब सहस्र भगों वाला बन करके आता है, भग नाम बेटा! किरणों को कहा जाता है, नाना प्रकार की किरणों को ले करके वह संसार में आता है, संसार का प्रकाशक बनता हुआ नाना प्रकार की वनस्पतियों को प्रकाश में जीवन प्रदान करता हुआ मानो देखो, लोक लोकान्तरों को प्रकाशमान बनाता चला जाता है। यहाँ तब विषधर जो प्राणी होते हैं, उन को विष भी प्रदान करते हैं, और उनके विष को अपनी किरणों को अपने में शोषण भी कर लेते हैं, बेटा! देखो, यह जो सूर्य कला है। वह महान कला कहलाई जाती है, नाना प्रकार की किरणों का सम्बन्ध बेटा! पृथ्वी से होता है, कही बेटा! वायु से होता है, चन्द्र लोको से होता है। शनि लोको से होता है, मङ्गल लोकों से होता है, नाना प्रकार के बुध लोकों से भी इसका विशेष सम्बन्ध रहता है। परन्तु मैं आज बेटा! अधिक चर्चा करना नहीं चाहता हूँ, संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय ये, सत्यकाम ने बेटा! सूर्य के ऊपर जो सूर्य कला है और यह हमारे जीवन का प्रकाशक है। आत्मा का और नेत्रों का जो समन्वय हो जाता है, और नेत्रों का समन्वय सूर्य की किरणों से हो जाता है, उस समय बेटा! नेत्रों का देवता सूर्य ही तो होता है।

इसीलिए आज हमें सूर्य को अपना देववत स्वीकार

करके अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहिए, उसके पश्चात उन्होंने विचारा चन्द्र कला मानो चन्द्रमा नाना प्रकार की आभा को ले करके संसार में आता है, कलाओं से परिपक्व होता हुआ पूर्णिमा के दिवस बेटा! संसार को अमृत प्रदान करता चला जाता है, उस अमृत को पान करने वाला अद्भुत प्राणी मानो देखो, अद्भुत बन जाता है। महान बन जाता है, अमृतमयी बन जाता है, इसीलिए बेटा! चन्द्रमा की पवित्र कान्ति और चन्द्रमा को देवता स्वीकार करते हुए, मानो वह अमृत प्रदान करता है, अमृत में उसका एक आभा अपने मानव जीवन में बेटा! उसका हूत करना चाहिए। हमारे यहाँ बेटा! जिसको ईंगला, पिंगला, सुषुम्णा कहते हैं, हमारे यहाँ आचार्यों ने बेटा! जब मानो त्रिवेणी के स्थान में जहाँ तीनों नाड़ियों का जहाँ मिलान होता है, यहां से मानो चन्द्रमा स्वर्णकेतु नाम की नाड़ी से उसका विशेष सम्बन्ध होता है, बेटा! उस नाड़ी को जानना ईंगला, पिंगला, सुषुम्णा को जानना उसी से बेटा! देखो, रस पान करता रहता है। आचार्य योगी बन जाता है। पवित्रवत को प्राप्त हो जाता है। क्योंकि उसके अन्दर सिंचन किया जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं योगाभ्यास में नहीं जाना चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह क्या सूर्य चन्द्र और विद्युत जिसको बेटा! देखो, विद्युत कहा जाता है, बेटा! विद्युत कला है, जो मुनिवरों! देखो, जिस लोक लोकान्तरों से जिनका उपराम होता है, जल से भी उसका उपराम होता है, मानो देखो, जहाँ जिस भी लोक में जाओगे, वहीं तुम्हें विद्युत का प्रभाव प्राप्त होगा, बेटा! विद्युत वह कला है, जिसको वैज्ञानिक जन जान करके नाना प्रकार के यन्त्रों में परणित हो जाते हैं। मुनिवरों! देखो, यहाँ चौरासी प्रकार की आभा होती हैं बेटा! विद्युत की देखो, चौरासी प्रकार की जो आभा होती हैं, उन आभाओं में एक दूसरी आभा में जब वैज्ञानिक जानना प्रारम्भ कर देता है। तो बेटा! वह अप्रतम् जब मुनिवरों! चौरासी प्रकार आभा को जो वैज्ञानिक जान लेता है, वह बेटा! अकृतम ब्रह्म लोकाम् प्रव्हा अस्ति अजतम् नामा

स्थिर भागा लोकाः ऐसा आचार्य ने कहा है, क्या वह सहस्त्र लोकों के विज्ञान का वेत्ता बन जाता है, आज हमें उस महान विद्युत का जानना है, जो विद्युत हमारे सहयोगी कार्य कर रही है, बेटा! राष्ट्र को प्रकाशमान बनाती है। मानो देखो, जल को गतिशील बनाती है, अग्नि को प्रदीप्त करने वाली है, मुनिवरों! सूर्य की किरणों का प्रादुर्भाव करने वाली है, चन्द्रमा में कान्ति देने वाली है, नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों को जो क्रियाशील बनाती है, उसी का नाम हमारें यहाँ बेटा! विद्युत कहा गया है। आज हमें विद्युत को जानना है।

विद्युत के पश्चात मुनिवरों! देखो, अग्नि कला आती है, अग्नि कला उसे कहते हैं, जो बेटा! देखो, तेजोमयी संसार में रमण करने वाली है, जो तेजोमयी उसका प्रकाश रहने वाला है इसीलिए बेटा! हमें अग्नि कला को जानना चाहिए चिन्तन करते हुए ब्रह्मचारी सत्यकाम को बेटा! वही प्रातःकाल हो गया प्रातःकाल होते ही उन्होंने बेटा! वहाँ से गऊँओं को ले करके गुरु आश्रम को प्रस्थान कर दिया, भ्रमण करते हुए बेटा! जब वही सांय काल हो गया था, सांयकाल को गऊँ स्थिर हो गई। ब्रह्मचारी ने स्नान किया मार्जन किया तर्पण किया सन्ध्या उपासना करने के पश्चात जब अग्नि होत्र करने लगे प्रथम आहुति दी तो कहा जाता है कि वायु देवता का जन्म हो गया वायु देवता ने कहा अरे, सत्यकाम! मैं तुम्हे चार कलाओं का ज्ञान करा देता हूँ। आज चार कलाओं का ज्ञान मेरे से श्रवण करो, उन्होंने कहा मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला इन चारों कलाओं को जानने का तुम प्रयास करो, आज तुम महान जिज्ञासु बन जाओगे।

तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! उन्होंने चारों कलाओं के उपदेश को पान कर लिया, रात्रि काल में जब रात्रि की गोद में चला गया, जाने के पश्चात ब्रह्मचारी ने चिन्तन करना प्रारम्भ कर दिया, सबसे प्रथम मन कला मुनिवरों! देखो, मन ही पाप पुण्य को दृष्टिपात करने वाला है, यह मन ही एक ऐसा सूत्र है, जिसको जान करके मुनिवरों! देखो, मानो इस मानव प्राण की आभा को जान जाता है,

आज हमें मानसिक मनन करना है। क्योंकि मन कला एक ऐसी कला है, जो आत्मा का हूत कहलाया गया है, आज देखो, यह मन का जो प्रादुर्भाव होता है, यह अन्न के द्वारा होता है, इसीलिए अन्न हमारा श्रेष्ठ होना चाहिए बेटा! अन्न से ही मन का जन्म होता है। इसीलिए मन को बेटा! देखो, प्रव्हा देखो, इस पृथ्वी का प्रतीक माना गया है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हम मन कला के ऊपर अनुसन्धान करते रहें, मन ऐसा तीव्र गति से रमण करने वाला है, जैसे बेटा! एक महानता की ज्योति में रमण करने वाला हो, मन की प्रतिभा बेटा! देखो, चार कला इसके आधीन रहने वाली है, मन के चार कला कौन सी हैं बेटा! देखो, प्राचीदिक्, और उदीचीदिक्, प्रतीचीदिक्, और दक्षिणीदिक यह चार कलांए बेटा! मन से जिनका विशेष सम्बन्ध होता है, मन इन दिशाओं में रमण करने वाला है, क्योंकि यह जो दिशाएं हैं, उनमे मन रमण करने वाला क्योंकि दिशाओं से मन का सम्बन्ध रहता है, जैसे दिशाओं में वायु रमण करता है, विद्युत रमण करता है, इसी प्रकार मन भी बेटा! देखो, तीव्र गति से रमण करने वाला है, चञ्चलवत कहलाता है, अहा! यह मन इतना गतिवान है, क्या यह मुनिवरों! देखो, मानव को कृत करता रहता है और सुयोग्य भी बना देता है मेरे प्यारे! ऋषिवर! जहाँ मन कला है, मन कला के पश्चात बेटा! देखो, चक्षु कला, चक्षु कला हमारे यहाँ चक्षु नेत्रों का कहा जाता है। बेटा! नेत्रों को जानना चाहिए, आज नेत्र ही हमारे बेटा! पाप पुण्य का निर्णय कराते हैं नेत्रों से बेटा! शुद्ध अशुद्ध को मानव दृष्टिपात करता है इसीलिए मानव को विचारना है कि हमे नेत्रों को पवित्र बनाना है, नेत्रों से कुदृष्टिपान नहीं करना है, नेत्रों से सुविचारों को लाना है, अहा! नेत्रों से बेटा! दृष्टिपात करता है, अमुक प्राणी बहुत सुन्दर है, बहुत स्वभाव का पवित्र है, अमुक प्राणी बहुत ही उत्तम है। अमुक प्राणी दृष्टा में सदैव परणित होता रहता है, बेटा! यह विचार मानव के मस्तिष्क में बारम्बार आते रहते हैं, नेत्रों के कारण आते हैं, इसीलिए चक्षु कला को हमें पवित्र बनाना है, चक्षु कला श्रोत्र कला बेटा! श्रोंत्रो का

सम्बन्ध बेटा! इन मन की आभा इन पृथ्वियों में और मानो देखो, दिशाओं में परणित रहती है। इसी प्रकार हमारे जो श्रोत्र है, इनका सम्बन्ध इन दिशाओं से रहने वाला है, आज हम दिशाओं में मानो चक्षुओं को अप्रतम् श्रोत्रों को रमण कराते रहें। श्रोत्र ही हमारे बेटा! श्रोत्र इन्द्रियाँ जो हैं, इनका सम्बन्ध दिशाओं से होता है, पृथ्वीवत से होता है ऊर्ध्वा ध्रुवा से होता रहता है, इसीलिए मानव को इन श्रोत्रों को भी जानना चाहिए, इनके ऊपर अनुसन्धान करना है, इसके पश्चात मुनिवरों! देखो, घ्राण कला घ्राण से मन्द सुगन्ध का बोध होता है। मन्द सुगन्ध पृथ्वी से इसका सम्बन्ध रहता है, जितने पार्थिव तत्त्व हैं, उनका सम्बन्ध बेटा! घ्राण से होता है इसीलिए वैज्ञानिक पार्थिव तत्त्वों से सम्बन्धित होता है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं जा रहा हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह जो बेटा! षोडश कला कहलाई जाती हैं। उनको मानव को जानना है, इन षोडश कलाओं को जानना है, हमारें यहाँ बेटा! इन षोडश कलाओं को जानने वाले भगवान कृष्ण कहलाए जाते थे, बारह कलाओं के ज्ञाता भगवान राम थे, परन्तु उन कलाओं को जानना हमारे लिए बहुत अनिवार्य है, इन कलाओं को जानना बेटा! इन कलाओं को भगवान कृष्ण अच्छी प्रकार जानते थे, अनुसन्धान करते रहते थे, एक समय कहा जाता है। भगवान कृष्ण जब इन कलाओं पर अनुसन्धान कर रहे थे, एक समय बेटा! उन्हें एक माह हो गया, निन्द्रा को पान किए, परन्तु इन पर विचार विनिमय चल रहा था, यह कलाएं क्या हैं? उनकी प्रतिभा क्या है? उनका मानो सम्बन्ध क्या है? इस प्रकार का विचार विनिमय बेटा! उनके प्रायः मस्तिष्क में होता रहता था।

तो आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं आज इन षोडश कलाओं का वर्णन करने चला हूँ, क्योंकि मैंने इनका पूर्ण परिचय नहीं केवल संक्षिप्त परिचय देने आया आज मैंने इनका संक्षिप्त परिचय दिया है बेटा! विचार विनिमय करते हुए सत्यकाम को प्रातःकाल हो गया, प्रातःकाल होते ही

बेटा! गऊँओ को ले करके वह गुरु आश्रम के लिए प्रस्थान किया, भ्रमण करते हुए मुनिवरों! देखो, वह आचार्य गौतम कुल में प्रविष्ट हो गएं। महाराजा गौतम ने अहा! सत्यकाम को दृष्टिपात करते ही गऊँ स्थिर हो गई, सत्यकाम ने बेटा! उनके चरणों को स्पर्श किया, सत्यकाम से कहा हे ब्रह्मचारी! तुम्हारा मस्तिष्क तुम्हारा हृदय और तुम्हारी जो नेत्रों की आभा है, और तुम्हारे जो मुखारबिन्द की आभा है, वह मुझे निर्णय करा रही है, कि तुम ब्रह्मवेत्ता बन गएं हो, तुम महान बन गएं हो, उन्होंने कहा भगवन! यह तो आपकी अनुपम कृपा है। परन्तु आचार्य तो गुरुजन तो मेरे आप ही हैं आपकी आभा मेरे मस्तिष्क में ओत प्रोत हो रही है। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज हमें विचार विनिमय करना है, क्या हमारे यहाँ गुरु शिष्य की जो महान परम्परा है, वह बड़ी विचित्र मानी गई है, महानता में सदैव परणित रही है। इसीलिए हमें आज गुरु शिष्य प्रणाली को ऊँचा बनाने में तत्पर रहना चाहिए। जिससे बेटा! हमारा राष्ट्रीय हमारी मानवता हमारे में मानवता की प्रतिभा ओत प्रोत हो, और ज्ञान और विज्ञान में हम पारंगत होते रहें, जिससे बेटा! हमारा ज्ञान और विज्ञान पराकाष्ठा पर जाता हुआ हम अपने में सुशील, सुयोग्य और आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता में हमारी गति होनी चाहिए। यह है बेटा! आज का हमारा वाक आज मैं कोई बेटा! विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया, आज तुम्हे इन षोडश कलाओं का सूक्ष्म सूक्ष्म परिचय देने आया, उन षोडश कलाओं को जानना है, प्रत्येक मानव जो उनकी क्रियात्मक इन कलाओं को जान लेता है। वह बेटा! भगवान कृष्ण की भान्ति षोडश कलाओं का वेत्ता बन जाता है। अहा! वह ब्रह्मवेत्ता बन जाता है, इन षोडश कलाओं में अपने अन्तरात्मा को जब रमण करा देता है, वह ब्रह्म के षोडश पाद कहलायें गयें हैं। इसीलिए षोडश पादों को जानना है, जान करके हमें षोडश ब्रह्मवेत्ता बनना है। आत्मवेत्ता बनना है। यह है बेटा! आज का हमारा वाक आज का हमारा यह वाक क्या कहा रहा है, हम परमपिता परमात्मा की उपासना करते हुए, उस महान श्रोत्रीय देव की महिमा का गुणगान गाते

हुए, हम षोडश कलाओं को जानने वाले बनें। बेटा! षोडश कलाएं देखो, जैसे हमारे यहाँ प्रतीचीदिक और दक्षिणीदिक्, प्राचीदिक्, और उदीचीदिक बेटा! देखो, पृथ्वी कला, समुद्र कला, अन्तरिक्ष कला, द्यौ कला, सूर्य कला, चन्द्र कला, मुनिवरों! देखो, विद्युत कला, अग्नि कला, मन कला, चक्षु कला, श्रोत्र कला और घ्राण कला यह षोडश कला कहलाती है। बेटा! आज मैं इन कलाओं के ऊपर अनुसन्धान होना चाहिए, आज का वाक यह बेटा! हमारा समाप्त होने जा रहा है, हमारे आचार्यों ने ऋषि मुनियों ने कदापि बेटा! यह नहीं विचारा की परमात्मा क्या है? आत्मा क्या है? केवल जो वेद में ज्ञान होता है, ईश्वरीय उसके ऊपर चिन्तन करना उस आभा को अपने में धारण करना क्रियात्मक अपने जीवन को बनाना बेटा! यह उनका सबसे परम कर्तव्य रहा है, इसीलिए प्रत्येक मानव प्रत्येक वेद कन्या, प्रत्येक ऋषि मण्डल को अपनी अपनी आभा को जानना चाहिए। जिससे बेटा! हम इस संसार सागर से पार हो जाएं। यह आज का वाक्, अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। अब मुझे समय मिलेगा तो बेटा! शेष चर्चाएं बेटा! कल प्रगट करूंगा।

पूज्य महानन्द जीः धन्य हो।

पूज्यपाद गुरूदेवः आज का बेटा! यह हमारा वाक अब समाप्त अब वेदों का पाठ होगा। ओ३म् ब्रह्म गाता मनु व्यापकं रयीणाम्। ओ३म् सर्वं रुद्रा मा गता रेवकं मा जनिता रथं आभ्यां देवाः। ओ३म् तनु मया गायन्ता ऋषि आपाञ्चरी गायन्ता मानाहाम्। ओ३म् देवं मया सर्वं रुद्राणि गायन्ताः मा गताः।

25 २२ ०४ १९७१ स्वार्थवाद को त्याग

जीते रहो! देखो, मुनिवरों! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे, ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ जो पाठय क्रम है, वह परम्परागतों से ही, पवित्र माना गया है, हमने बेटा! पूर्व काल में पठन पाठन के सम्बन्ध में नाना प्रकार का विचार दिया आज हम उन विचारों में

टिप्पणी करने नहीं जा रहे हैं। केवल वाक यह कि हम आज उस महान देव की प्रतिभा को जानने का प्रयास करें जो सदैव याज्ञिक है, जिस प्रकार मानव को अपने में मननशील होना है, इस वेद की परिचर्या को अपने में धारण करना है, उसी के आधार पर बेटा! हम जैसों का यह उज्ज्वल कर्म है, अथवा ऊँचा जो प्रयास है वह सदैव मानवीयतव में सुगठित रहता है मेरे प्यारे! महानन्द जी! ने नाना प्रकार की वार्त्ताएं प्रगट की। आज हम बेटा! उन वार्त्ताओं में अधिक नही जाना चाहते। केवल वाक यह कि आज हम उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाते चले जा रहे थे जो महिमावादी है जिसकी महिमा बेटा! प्रकृति के कण कण में ओत प्रोत हो रही है। बेटा! जब हम दृष्टिपात करते है कि यह जो चेतना है, जितनी रचना है, उस रचना को मूल कोई कारण है, परन्तु उसको कोई रचाने वाला है, तो बेटा! जब हम प्रकृतिवाद पर जाते हैं, उसके स्वभाव की चेतना को चेतनित करने लगते है, और भी बेटा! नाना प्रकार के विषय हमारे समीप आते हैं, तो हम बेटा! उस समय यही कहा करते हैं, क्या यह जो रचना हमें दृष्टिपात आती है, प्रकृति में जो स्वभाव में, अनुपमता जो चेतना है, उस चेतना का मूल ही देखो, वह परमपिता परमात्मा माना जाता है। आज बेटा! हम, जब चेतना के ऊपर दृष्टिपात करने लगते हैं, तो केवल बेटा! एक ब्रह्मचेतना ही हमें दृष्टिपात आने लगती है, क्या यह जो जगत है, यह सदैव शून्यता में प्रतीत हो रहा है आज हम उस महान, मनस्तव को जानने का प्रयास करते चले जाएं जो बेटा! मानो उस चेतना में विराजमान है, जो उस को चेतनित बना रहा है, वायु को क्रियाशील बना रहा है, आपो को बेटा! देखो, मानो अमृत में रमण करा रहा है आज जो द्यौ लोकों में नानाप्रकार की धारा परणित हो रही है, नाना प्रकार के लोक लोकानतरों में जो एक अमूल्य धारा है, उन सब का मौलिक क्या है बेटा! वह सब मानव की अनूभूतियों में दृष्टिपात आता है। जब मानव बेटा! दृष्टिपात करता है, आज मैं किसका दिग्दर्शन कर रहा है, आज मैं अग्नि के समीप विराजमान हूं, अग्नि में वह चेतना

कहां से आती है, उसका सखा कहां रहता है? तो विचार आता है कि यह तो ब्रह्म का ही स्वरूप माना गया है, ब्रह्म का ही शरीर माना गया है ब्रह्म ही तो इसमें बेटा! इसको क्रियाबद्ध कर रहा है, तो उस समय बेटा! प्रभु का भान होता है प्रभु का दिग्दर्शन मानो समीप आने लगता है, जब हम वायु के समीप जाते हैं, वायु का विश्लेषण करने लगते हैं, क्या यह जो वायु है, मानो इसमें जो प्रवाह रमण कर रहा है, नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके, जब यह रमण करने लगती है, किन्हीं किन्हीं आचार्यों ने तो बेटा! वायु को ही ब्रह्म माना है। परन्तु उसका उत्तर देने वाले ब्रह्मवेत्ताओं ने यह कहा है कि वास्तव में यही ब्रह्म नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म तो मानो इससे भी दूरी है, केवल ब्रह्म इसके द्वारा नियन्त्रण में, इसका प्रवाह कर रहा है, इसको नियन्त्रण में लाने वाला नियन्त्रण में नियुक्त करने वाला, वह मेरा प्यारा प्रभु है। तो इससे यह प्रतीत होता है, क्या वह मानो नाना प्रकार का यह जो बेटा! जल अमृत है, वह स्वयं अमृत का अमृत होने के नाते बेटा! आपों को भी अमृत बनाता चला जाता है।

मेरे प्यारे! ऋषिवर! अहा! इसी प्रकार बेटा! माता वसुन्धरा के गर्भ में, नाना प्रकार की वनस्पतियों का जन्म होता है, नाना प्रकार की आभा इसके समीप आती रहती हैं, तो इससे यह प्रतीत होता है कि वह जो मेरा प्यारा प्रभु है, देखो, जो नियम में नियन्त्रण में लाने वाला है, तो बेटा! देखो, उसकी रचना कितनी विचित्र है, एक ही रचना नहीं, बेटा! मानव की रचना पर जब विचार विनिमय किया जाता है, मानो बेटा! एक मानव शरीर को लिए हुए होता है, परन्तु उसमें तो मानव भी उच्चारण करता है, जहाँ प्रभु ने निश्चित यन्त्र को निर्धारित कर दिया, मानव को यह ज्ञान नहीं होता कौन सा यन्त्र कहां विराजमान है? सूचना विभाग कहां हैं, मानो देखो, कौन से इन्द्रियों में, हम कितनी तरंगो को धारण करते हैं। चक्षुओं में कितनी मानो देखो, रूप की तरंगो को दृष्टिपात कर सकते है। घ्राण इन्द्रियों में कितने परमाणुओं को हम ला सकते हैं, बेटा! देखो, कौन सी इन्द्रिय में कौन सा रस्सवादन, कितना रस्वादन, इसकी

कोई सीमा है, मानो उसमें जल और पृथ्वी के दोनों तत्त्व प्रधान माने जाते है। बेटा! मेरे प्यारे! प्रभु ने, शरीर को रचा, परन्तु जो आज जो इस रचना को लिए हुए होता है उसको कोई ज्ञान नहीं, क्या तू कैसी रचना को, अपने साथ ले रहा है, कैसी रचना है शब्दों की धाराओं का जन्म कहां होता है, शब्द का आकार क्या है वाणी में कितने परमाणु जाते है। बेटा! मानव को यह ज्ञान नहीं होता, कैसा वह मेरा प्यारा प्रभु है। उसमें बेटा! मानव की आयु का निर्धारित कर दिया, मानो देखो, आयु अहा! भोग प्रव्हा अस्ति देखो, भोगवाद में ला दिया, ये कैसी विचित्रता मेरे प्रभु की है आज जब बेटा! मैं अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाने लगता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होने लगता है, हे प्रभु! तू कितना विचित्र है, हे प्रभु! तू कितना महान है, आज हम देखो, तेरी देवी सम्पदा का हमे तो यह प्रतीत नहीं होता, अन्त में हमारी वाणी तो भगवन! आपके गुणगान गाने में असमर्थ हो जाती है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! आज मैं अपने प्यारे देव की महिमा का गुणगान गाने चला हूँ, मेरे प्यारे! महानन्द जी! भी दो शब्दों की विवेचना प्रगट करेंगे क्योंकि यह सदैव ज्ञानी बने रहते हैं, सदैव उत्कृष्ट इच्छा रहती है कि मैं भी कुछ वाक उच्चारण करूं तो आज बेटा! मेरे प्यारे! महानन्द जी! कुछ विचार प्रगट करेंगे। आज मैं तो केवल यही वाक प्रगट करने लगा हूँ, क्या आज हम अपने प्यारे प्रभु का गुणगान गाते रहें, जो इतना महिमावादी है, उस प्रभु के हम कितने ऋणी रहते हैं, आज हमें उस ऋण को विचार लेना चाहिए। प्रभु के हम सदैव ऋणी बने रहते है। ऋण ही उसका हमारे ऊपर प्रबल होता चला जाता है, बेटा! कैसा ऋण है? प्रभु ही मानो चेतना देता है, मानव को, नाना प्रकार के पदार्थों के द्वारा मानव जीवन को निगलने वाला होता है। इसी प्रकार हम उस अपने प्यारे प्रभु की महिमा का गुणगान गाते हुए अहा! उस देव की महिमा का गुणगान गाते हुए संसार सागर से बेटा! पार होने का प्रयास करें, जिस प्रकार बेटा! इसी प्रकार बेटा! जितना हम प्रभु के निकट जाएंगे, उतना तेज आता रहेगा,

उतना पाण्डितव आता रहेगा जितना पाण्डितव में विवेक होगा उतना ही पाण्डितव आता रहेगा और जितना पाण्डितव आता रहेगा उतना ही बेटा! देखो, स्नेहवत्त आता रहता है। हमारे ऋषि मुनियों ने कहा है एक समय बेटा! महर्षि भानवुक ऋषि महाराज से प्रश्न किया, भानवुक ऋषि महाराज से कहा हे प्रभु! देखो, मानव ऋणी कैसे बन जाता है, ऋणी की क्या व्याख्या है? उस समय बेटा! ऋषि ने कहा, क्या सबसे प्रथम मानो पदार्थों की जानकारी होना, शास्त्रों का ज्ञान होना, ज्ञान होगा, तो हम पाण्डितव बनते चले जाते हैं, पाण्डितव हमारे यहाँ आ जाता है, और जब पाण्डितव में विवेक आ जाता है, उस समय पाण्डितव को त्याग करके बेटा! वह जान लेता है कि प्रभु की सृष्टि में, तो कोई भी प्रबल नहीं है, प्रभु तो सबका पिता है। जगत पिता है, वह पूर्ण है, सर्वज्ञ है, मानो हमारी रक्षा उसकी लोरियों में अपने जीवन को पान करते हैं, क्योंकि उस महान ज्ञानी को, जब विवेक होता है, तो बेटा! उस मानव की प्रवृत्ति बाल्य जैसी हो जाती है, जैसे बालपन होता है, बालपन में न मान होता है, न अपमान होता है, न स्वार्थ होता है न घृणा होती है न रूढिवाद होत है। इस प्रकार का भाव जब बन जाता है, उसके पश्चात मानव बाल्यपन को त्याग करके मुनिवरों! देखो, जब जब अपने में प्रभु को दृष्टिपात करता हैं, और प्रभु में को अपने में दृष्टिपात करता है तो बेटा! वह मौन कहलाता है। मेरे प्यारे! ऋषिवर! वही तो मुनि कहलाता है। आज हमें बेटा! मुनि बनने की अहा! प्रबल इच्छा होनी चाहिए, हमारे यहाँ, नाना प्रकार के मुनि होते हैं, नाना ऋषि हुए परन्तु मुनि किसे कहा जाता है, ऋषि उसे कहा जाता है? जो बेटा! अपने शरीर का विधिवत मन्थन कर लेता है और मन्थन करने के पश्चात जो बेटा! तथ्य होता है उस तथ्य का भी बेटा! मन्थन करके ब्रह्म में निष्ठा हो जाती है, ब्रह्म में ही वह सर्वत्र जगत को दृष्टिपात करता है वह बेटा! ऋषि कहलाता है। क्योंकि ऋषि उस तत्त्व को जानता है, जिस तत्त्व से बेटा! उसे परम आनन्द की प्राप्ति होती है।

आओ, मेरे प्यारे! ऋषिवर! मैं इन वाक्यों को

अधिक गम्भीरता में नहीं ले जाना चाहता हूँ, यह तो बेटा! ज्ञान का वन है मैं इसमे जितना चला जाता हूँ उतना ही सूक्ष्म प्रतीत होने लगता है परन्तु जब यह दृष्टिपात आता है कि प्रभु के राष्ट्र में बेटा! अपने को ही उच्चारण करने लगे कि मैंने तो जितना जाना है, वही पर्याप्त है, ऐसा नहीं क्योंकि प्रभु जब अनन्त है, उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनन्त माना गया है। जब परमपिता परमात्मा अनन्त है, तो उसका ज्ञान विज्ञान भी अनन्त है, मानो बेटा! उसके ज्ञान विज्ञान की सीमा कोई निर्धारित नहीं कर सकता, उसको कोई अधिकार ही नहीं है, सीमा निर्धारित करने का। मेरे प्यारे! ऋषिवर! मुझे स्मरण है बेटा! एक समय मानसुख ऋषि महाराज ने महर्षि भारद्वाज से यह कहा क्या महाराज जितना मैंने जाना है उतना ही ब्रह्म है उतना ही ज्ञान है उस समय भारद्वाज ने कहा क्या मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के श्वांस में कितने परमाणु वायु के जाते हैं कितने अग्नि के जाते हैं कितने पृथ्वी के जाते हैं कितने मानो अन्तरिक्ष के जाते हैं यह पञ्च महाभौतिक परमाणु एक श्वांस के साथ में कितने जाते है। तो ऋषि इनका उत्तर नहीं दे सका तो भारद्वाज ने कहा जब तुम इसका उत्तर नहीं दे सके तो तुमने जाना ही क्या प्रभु को अरे, प्रभु तो अनन्तता में विचरण करने वाला है अनन्त है क्योंकि प्रभु के विषय में ऋषि मुनि अन्त में नेति नेति ही उच्चारण करते हैं। तो मेरे प्यारे! ऋषिवर! अब मैं बेटा! कुछ सूक्ष्म अपने प्यारे प्रभु के आङ्गन में बेटा! विभोर होता चला जा रहा था, अब मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है, आज जैसा मैं प्रभु के आङ्गन में ही विराजमान हूँ, जैसे माता का प्रिय बालक क्षुधा से पीड़ीत हुआ बालक, माता की लोंरियों का पान करता है, अपने आनन्द को प्राप्त होता रहता है, जैसा बेटा! आज हमें उस अपने प्यारे प्रभु के गान गाते में ऐसा आनन्द प्रतीत हो रहा है, क्या आज हम अपने प्यारे प्रभु की कितनी महिमा वर्णन कर सकते हैं। आज हम उसका कितना गुणगान गा सकते हैं, मानो उसका जो गुण है, उसकी जो महिमा है, विचित्रता में अनन्तता में परणित होने वाली है, यह है बेटा! आज का वाक्, अब मैं अपने

प्यारे पुत्र वाक प्रगट करूंगा क्या वह अपने कुछ विचार प्रगट कर सकें। मानो वह अपने शान्ति प्रिय अपने वाक्यों को देते हुए और अपने महान उद्गम् विचारों से हमें भी कुछ जानकारी दें।

पूज्य महानन्द जीः .... माणं गताः सर्वे विप्रजा गतं विश्वा इदम् मा ना। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा भद्र समाज! ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी आत्मा के विषय में अपना विचार व्यक्त कर रहे थे, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव की कितनी अनुपम कृपा है, क्या उस महान परमात्मा के अनन्त उपदेशों को शान्त करके, हमें एक अमूल्य समय प्रदान किया, जिससे आज हम उस महान पवित्र वाणी का और महान अमोघ वाणी को धारण करते हुए, हम अपने जीवन को कितना महान और पवित्र बना सकते हैं। जहाँ आज मैं अपने दो वाक्यों की विवेचना करने लगूं, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो आज परमात्मा के विषय में उपासना के विषय में और नित्य प्रति आत्मा परमात्मा दोंनो का शब्दों का ज्ञान से भरें हुए शब्दों का सदैव प्रतिपादन होता रहता है। आज इन्होंने ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण अपने शब्दों की विवेचना प्रगट की, आज मैं उन वाक्यों को तो उच्चारण करने नही जा रहा हूँ, आज हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के समीप इस प्रकार हैं, जैसे सूर्य के प्रकाश में रात्रि लुप्त हो जाती है। रात्रि उसके गर्भ में परणित हो जाती है, इसी प्रकार आज के हमारे जो शब्द हैं मानो जो उनके द्वारा हमने जिन शब्दों का अध्ययन किया है, जिस यौगिकता का अध्ययन किया है, मानो आज हम उनके द्वारा उनकी विवेचना प्रारम्भ करने लगते हैं। तो बेटा! देखो, रात्रि का जिससे हमारे समीप आने लगता है, आज मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं जा रहा हूँ, केवल आज मैं यह उच्चारण करने आया हूँ, आज का जो वायुमण्डल है, आज का जो राष्ट्रवाद है, मानो देखो, आज का जो मानववाद है, उसके हृदय में एक दूसरे के प्रति घृणा आती चली जा रही है। मानो इस प्रकार की घृणा है, जिस प्रकार मानो देखो, जैसे वायु अग्नि के परमाणुओं को ले करके अहा! उष्णता को ले करके संसार

को अग्नि में परणित कर देती है। उसी प्रकार आज के मानव के हृदय में जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ, एक स्थान में मानो देखो, इतनी प्रबल घृणा है, एक स्थान में इतना ही महान घृणा का आया हुआ है, अरे, मानव आज मैं कोई वाक प्रगट करने नहीं आया हूँ, केवल यही वाक प्रगट करने आया हूँ कि आज इस घृणा को त्यागते चले जाओ, यह जो घृणा मस्तिष्क में आ जाती है, मस्तिष्क के तन्तु नष्ट हो जाते है, यह जो मानो आयुर्वेद का सिद्धान्त है। आयुर्वेद के विषय में आज कोई विवेचना देने नहीं आ पंहुचे हैं, केवल वाक उच्चारण करना यह है, क्या आज हमें विचारना है, क्या आज हम कौन सी महान धारा को अपनाते हुए इस संसार से पार हो सकते हैं। उस मानो गृह को और वायुमण्डल को किस प्रकार हम परिवर्तित कर सकते हैं, इस सबके महत्वपूर्ण एक विचार आज भी मानव के समीप है, अन्यथा आज वह मैंने तो बहुत पूर्व काल में कहा है, क्या शान्ति देखो, अपने में ही शान्त हो चुकी है, अपने में ही देखो, मानव मानव का भक्षण करने के लए तत्पर होता चला जा रहा है। यह मानव का स्वार्थवाद नही तो क्या है? आज जब मैं समुद्र के तट की याचना करने लगता हूँ, तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वत्रों में मानो हमारे यहाँ ऋषि मुनियों के चरणों को मानो स्पर्श किया है, मानो का देखो, रक्त की पुनीत धारा इस प्रकार रमण करती चली जा रही है, जिस प्रकार मानो देखो, गंगा में जल रमण करने वाला है, आज जब मैं इस स्वार्थवाद की भावना को मानव के समीप दृष्टिपात करता हूँ, तो महापुरूषों के शब्द भी नष्ट हो जाते हैं। क्रान्तिकारियों के शब्द भी मानो देखो, लुप्त हो जाते हैं। विचार आता है मानो देखो, जिसको मोहम्मद कहा जाता है, उनका जीवन मुझे भली भान्ति स्मरण है, उनके मानने वालों का जीवन स्मरण आता है, उनमें कितनी स्वार्थ की मात्रा आ गई है, वह जो स्वार्थ की मात्रा है, वही तो मानो देखो, आज देखो, केवल स्वार्थ के वशीभूत हो करके मानव, मानव का भक्षण करना चाहता है। उसका मूल कारण केवल स्वार्थ है, और कुछ नहीं धर्म और मानवता को नष्ट करने

वाला है, आज बेटा! प्राण की मानो देखो, ज्ञान को देखो, अपनाते चले जाएं देखो, परमपिता परमात्मा की अनन्तधारा को नहीं अपानाया जाएगा, जब तक देखो, स्वार्थ का विनाश का सूक्ष्म नहीं हो सकेगी, जब विधाता मानो देखो, प्राणो का पिपासी बन जाता है। मानो वह केवल स्वार्थ है, जब अपनी अन्तरात्मा से प्रश्न करता है, मानो देखो, वह क्या कर रहा है उसका अन्तरात्मा उसको बारम्बार धिक्कारता रहता है उसे बारम्बार सोचना होता है यह कार्य परन्तु वह जो स्वार्थवाद की मात्रा है वह जो स्वार्थवाद है, उस स्वार्थवाद में अग्नि मानो देखो, अग्रणीय बनाता हुआ, द्रव्य की लोलुपता में, चलता चला जा रहा है मानो देखो, विनाशता को अपनाता चला जा रहा है, मैं इसका विरोधी नहीं संसार में अर्थ नहीं होना चाहिए, क्योंकि धर्म के पश्चात अर्थ आता है जब अर्थ और धर्म दोनों को सामान्यतव मान लिया जाता है, जो अर्थ मानव के लिए स्वर्ग देने वाला है, और उस काल में जब मानो अर्थ को धर्म से दूरी कर दिया जाता है वही अर्थ मानो देखो, मानव को नरक में ले जाने वाला होता है, नारकिक बना देता है। आज मैं यह वाक उच्चारण करने आया हूँ मानो देखो, जब यौगिकता में मानो अपनी मान मर्यादा अपनी निष्ठा पर भी विचार विनिमय करते चले जाओ। हमारा कर्तव्य क्या है, क्या इस मानो स्वार्थवाद में द्रव्य की लोलुपता में मानो पदों की लोलुपता में, एक मानव दूसरे मानव को नष्ट कर रहा है, नष्ट भ्रष्ट करने के लिए अपने विचारों का इस प्रकार नष्ट कर रहा है जैसे मानो प्रातः काल में सूर्य रात्रि की आभा को नष्ट कर देता है आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विवेचना देना नहीं चाहता हूँ, वाक उच्चारण करने का अभिप्राय यह, क्या किस काल तक मानो मानव के विचारों को दमन किया जा सकता है, अरे, मानव के विचार मानो अस्त्रों शस्त्रों से दमन नहीं होते, मानव के विचार तो मानो ज्ञान और विज्ञान से दमन हुआ करते हैं। मानव का विचार यदि उसी विचार में मानव का प्राण अन्त हो गया तो वही विचार मानव के अन्तरिक्ष में रमण करने लगते हैं। अन्तरिक्ष में वही देखो, रक्त के भरे

हुए परमाणुओं का उदय हो जाता है, इन्हीं परमाणुओं के उदय होने पर, मानो देखो, उनके विचारों को दमन नहीं किया जा सकता। कौन दमन कर सकता है? मानो देखो, उनके विचार सदैव एक मानो देखो, एक सुन्दर महान देखो, अन्तरिक्ष में आ जाते हैं इसी प्रकार आज मैं अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ, वाक उच्चारण करना यह है कि आज हे मानव! तू मानव के विचारों को जानने का प्रयास कर, आज मैं कोई अधिक चर्चा प्रगट करने नहीं आए हैं मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी अभी परमात्मा के विषय में कितनी सुन्दर विवेचना की है, मैं भी सदैव परमात्मा की इस महिमा का सदैव गुणगान मेरा कितना ऊँचा सौभाग्य है मैं सदैव उनका पान करता रहता हूँ ज्ञान और विज्ञानमयी जगत में चला जाता हूँ, जब ऐसा मुझे प्रतीत होने लगता है तो आज हम इस विचारधारा को अपनाते हुए चले, सदैव प्रयत्नशील होते चले जाएं, जब मानव के पास से रूढ़ि चली जाती है, मानव रूढ़ि के चले जाने पर मानव मननशील बन जाता है हे मानव! तू अपने हृदय से रूढ़िवाद को त्यागने का प्रयास कर। आज जब तू अनुसन्धान की वेदी पर पंहुच जाएगा जब अनुसन्धान करने लगेगा उस समय तुम्हें यह प्रतीत होगा क्या मानव का जो आधार है वह क्या है? मानव का जो जनजीवन है, वह क्या है? मानव की जो एक महान धारा है उसका जो मानो एक विषय है उसकी एक धारा है वह क्या है? उसके ऊपर मानव को विचार विनिमय करना है। आज हमें यह विचारना है, क्या देखो, योग से संसार शून्य हो गया है, जब हम यौगिक प्रक्रियाओं में चले जाते हैं, सूक्ष्म और कारण शरीरों पर विचारने लगते हैं हमें यह प्रतीत होने लगता है क्या वास्तव में हम यौगिक क्षेत्र में चले गएं हैं, और वह जो यौगिक क्षेत्र है, उसमें आयु का प्रकाश रहता है, और यह मानो यह जगत अन्धकार में रहता है क्योंकि परमात्मा के राष्ट्र में अन्धकार नाम की कोई वस्तु होती ही नहीं, इसीलिए मानव साधारण प्राणी, केवल आयु के सम्बन्ध में, घृणा के सम्बन्ध में, रूढ़िवाद के सम्बन्ध में, विचार विनिमय करते रहते हैं। आज मैं जब विचारने

लगता हूँ मानो देखो, मोहमम्द के विचारों में कितनी रूढ़ि थी, इसी प्रकार और भी नाना पुरूषों में नाना प्रकार की रूढ़ि आती है, उन्हीं रूढ़ियों का परिणाम यह होता हैं इन रूढ़ियों का परिणाम यह होता है क्योंकि उस रूढ़ि में दर्शन लुप्त हो जाता है, और जिस रूढ़ि में दर्शन लुप्त हो जाता है, दर्शन नहीं रहता समीप, तो उस समय देखो, वह समाज मानो देखो, समाज के विचारों का परिवर्तन हो जाता है, वह विचार वही आ जाते है, जहाँ मानो उसे दर्शन प्राप्त होता है, जहाँ दर्शन उसे आज्ञा देता है ऐसा हमारे यहाँ प्रायः माना गया है, आज मुझे जब मैं इस संसार को इस समाज को, इस प्रकार दृष्टिपात करता हूँ, तो मेरा तो हृदय गद गद होने लगता है, क्या मानो मोहम्मद के विचारों में, दर्शन नहीं था, दर्शन न रहने के कारण मानो एक राष्ट्रवाद में, बुद्धि का नाना प्रकार का आक्रमण देने के पश्चात उसके पश्चात मानव को सुगठित करना, क्योंकि यदि बुद्धि होती, महानता होती, तो मुनिवरों! देखो, यह मुझे प्रतीत है यह मुझे अनुभव है, इस जगत का क्या वह मानव देखो, इस प्रकार की धाराओं में मानव रमण नहीं कर सकता। क्योंकि एकता में बुद्धि से जब मानव कार्य करता है तो उस एकता में परिवर्तन आ जाता है, उसी लिए मोहम्मद के मानने वालों में, परिवर्तन नहीं आया। परन्तु देखो, जब बुद्धि से कार्य करने लगेंगे, तो पुनः परिवर्तन आ जाएगा बुद्धि में एक महान क्रान्ति का दिग्दर्शन होने लगेगा, उस दिग्दर्शन का परिणाम यह क्या जहाँ बुद्धि को बुद्धि का अन्न प्राप्त होगा, वह वहीं अपना कार्य ले जाने के पश्चात मानो वह दर्शन का दिग्दर्शन करने वाली बन जाएगी।

इसी प्रकार मुझे स्मरण आता रहता है तो हे मानव! आज तू देखो, दर्शन को जानने का प्रयास करो, आज जो मानव दर्शन के ऊपर अपने जीवन को ले जाता है, दर्शन क्या है? दर्शन ही वह है जहाँ मानो देखो, बुद्धि का विषय आत्मा को विषय तन्मय हो जाता है, इसी प्रकार आज मैं इन विचारों को अधिक नहीं देना चाहता हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व तृतीय काल में अन्न के विषय में

विवेचना देते चले जा रहे थे। आज मैं यह उच्चारण करने चला हूँ कि अन्न की कितनी विशेषता है, आज के मानव ने अन्न को तो त्याग दिया है, परन्तु दूसरों के गर्भ को ग्रहण करना प्रारम्भ करना कर दिया है। मानो देखो, इसका क्या बनेगा, अरे, मानव! तुम्हारी बुद्धि दार्शनिक कैसे बन सकती है। जब मैं यह दृष्टिपात करता हूँ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब सांझे अन्न की मीमांसा की, मानो मन की मीमांसा की, तो मानो देखो, मन तो केवल अन्न से ही उत्पन्न हुआ करता है, देखो, जहाँ मैंने बहुत पूर्व काल में कहा था आज भी मैं उस वाक को पुनरूक्ति कर देता हूँ। महात्मा नानक ने एक वाक कहा था क्या संसार में मानो देखो, रक्त के बिन्दु से वस्त्र से वह शान्त नहीं होता, तो अन्तःकरण में जब रक्त का बिन्दु लग जाता है, मानो देखो, वह कैसे शान्त होगा। मानो देखो, वह तो जन्म जन्मान्तरों में भी मानो देखो, वह तो शान्त होने वाला नहीं, आज हमें विचारना है। हे मानव! उस संसारिक समाज के विषय में आधुनिक काल जगत में एक वार्ता प्रगट कर रहा हूँ, हे मानव! आज बहुत सा मानव इस प्रकार की कल्पना करता है, मानव मानो देखो, इस प्रकार का परमाणुवाद जब मानव के विचारों मे आ जाता है, परमाणुवाद को विचारना है, कि इन परमाणुओं से हमारे मन की स्थिरता हो सकती है। परन्तु आज हम दूसरों के गर्भ को ग्रहण करके आनन्दित होते है। अपने रसना को आनन्दित करने लगते है। अरे, क्या मानव तेरी यही मानवता है, आज जब तू इसके ऊपर विचार करेगा, क्या जब मानव तू दूसरों को नष्ट करके मानो दूसरों के पशुओं के रक्त को पान करने वाले मानो तेरी पशु ही प्रवृत्ति बनती चली जाएगी, क्योंकि पशु प्रवृत्ति उस काल में बनती है, जब पशु के देखो, शरीर का अन्न बना करके जब तुम अपने में ग्रहण कर लेते हो। अन्न उसको बना लेते हो, वह तुम्हारा अन्न नहीं है, वह मानो किसी और का ही अन्न है, वह अन्न मानो देखो, तेरा नहीं मनुष्य का अन्न नहीं हैं। इसीलिए मानव को यह विचारना है, क्या हमें मानो दूसरे के रक्त को पान नहीं करना है। उससे अपने मन की प्रवृत्ति को नहीं बनाना है,

अरे, देखो, जिस समय मानो देखो, मानव का और प्राणी का हनन किया जाता है, पशु का हनन किया जाता है। उस समय देखो, अन्तरात्मा इस शरीर से जाता है, उस समय मानो देखो, जो परमाणु, परमाणु में वेदना होती है। मानो देखो, जो उसमें महान एक ऐसी वेदना होती है, अरे, मानव जब तू उस शव को पान करता है अरे, तेरी बुद्धि भी तो उसी प्रकार की बनती चली जाएगी आज तू पशु बुद्धि को लाना चाहता है। परन्तु यहाँ महापुरूषों ने अन्न के विषय में नाना प्रकार की विवेचना की है, आज मानव यह कहता है क्या यहाँ देखो, अन्न की देखो, सूक्ष्मता है, परन्तु मैं यह कहा करता हूँ अरे, प्रकृति तो माँ है माँ के द्वारा जैसी तुम कल्पना ले करके जाओगे, माँ तो वैसा ही भोजन प्रदान करती रहती है। यह तो प्रभु! का नियम है, क्या जब मानव अन्न को शान्त कर देता है। अन्न को पान नहीं करता, वह दूसरे के माँस को भक्षण करने लगता है, वह माँ प्रकृति उसको वैसा ही देने लेती है। उतना ही मानो अन्न सूक्ष्म हो जाता है, उतनी ही वनस्पति सूक्ष्म हो जाती है, इसीलिए आज मानव को विचारना है अरे, मानव जब आज तुम इस संसार में किसी को मृत्यु से मानो जीवित नहीं बना सकते, तो तुम्हे किसी को नष्ट करने का भी अधिकार नहीं है। तो इसीलिए आज विचारना है क्या इस अनाधिकार चेष्टा को पूर्ण किया जाता है। आज तो केवल रसना के स्वादन के लिए रसना को आनन्दित बनाने के लिए अरे, रसना को जितना तुम आनन्दित करना चाहते हो। यही रसना जब वृद्धपन आता है। यही रसना मानो तुम्हारी मृत्यु का मूल कारण बन जाती है। आज हमें विचारना है कि इस रसना को मानो देखो, अधिक इस संसार में ललाहित मत करो, नाना प्रकार के रस्सवादन मत करो, जितना तुम्हारी रसना स्वादन पान करने ललेगी, उतना ही तुम्हारी उपस्थ इन्द्रिय में देखो, जैसा देवर्षि नारद ने कहा था देवर्षि नारद ने कहा क्या महाराज अश्वन्ति देव प्रहे मानो रसना इन्द्रियं और उपस्थ इन्द्रियां के विषय रह जाएंगे और विषय सब शान्त हो जाएंगे इसीलिए आज तुम्हे और भी इन्द्रियों को विचारना है, नेत्रों को विचारना

है, घ्राण को विचारना है, और देखो, श्रोत्रों को विचारना है शब्द कहां से आते हैं, कैसे आते हैं, ज्योति किस प्रकार आती है, उसका सम्बन्ध किस देवता से है, जो इस प्रकार का विचार विनिमय करने लगोगे। उस समय तुम्हें प्रतीत होगा, क्या वास्तव में हमारा जीवन क्या है? आज तुम केवल आज तुम्हें केवल यह संसार स्मरण आने लगता है, मानो देखो, दूसरे के रक्त को पान करने से कैसी अद्भुतता होने लगती है, क्या आज मानवे दखो दूसरे के रक्त का पिपासी हो जाता है। मानो, मानव स्वार्थ में परणित हो जाता है, इसीलिए आज प्रभु ने तुम्हे जीवन दिया है, क्या दूसरे प्राणी की रक्षा करते रहो, दूसरे प्राणियों की भी तुम रक्षा करते रहोगे, इस मानो संसार सागर से पार होते चले जाओगे। आज मुझे कोई विशेष चर्चा प्रगट करनी नहीं है, केवल यही वाक प्रगट करना है क्या आज मेरी प्यारी माताएं यह कहा करती है। समावुति प्रव्हे असुतम हे मेरी प्यारी माता! आज तू अपने श्रृङ्गार में परणित हो गई है, मानो जिस श्रृङ्गार में तेरी मनो प्रवृत्ति का ह्रास हो गया है। आज जब तू माता मल्दालसा और भी नाना प्रकार माताओं पर विचार विनिमय होता है। माता गार्गी के विषय में विचारने लगते हैं, देखो, यहाँ मैत्रये और कात्यानी के विषय में विचारा जाता है। तो ऐसा प्रतीत होता है, हे माता! आज तूने अपने कण्ठ से हृदय के भूषण को तो त्याग दिया है। त्वचा के भूषण को अपना करके तू संसार में दर्शनों की चर्चा प्रगट करना तेरे लिए असम्भव हो गया है इसीलिए आज मैं अधिक चर्चा प्रगट करना नहीं चाहता हूँ, त्वचा को भी सजाना चाहिए, परन्तु देखो, मन और हृदय को भी तो सजाना चाहिए। जब तू मन और हृदय को नहीं सजाया जाएगा यह जो त्वचा का सजाना है, यह तेरे लिए मृत्यु का मूल कारण बनता चला जाएगा।

आओ, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव मैं आज कुछ चर्चाएं प्रगट कर रहा हूँ, मैं देखो, जो अपने अनुभव श्रवण प्रहा गति मानो देखो, मैं चर्चा प्रगट करने मैं किसी किसी स्थान में चला आता हूँ, और वह क्या अपने अपने कण्ठ को नाना प्रकार की विद्या के आभूषणों से सजातीय बनाना

चाहिए, मानो देखो, कामधेनु के रूपों में परणित होना चाहिए, जहाँ देखो, स्वर्ण से हम श्रृङ्गार करते हैं, मैं स्वर्ण का विरोधी नहीं हूँ। मैं नाना प्रकार के आभूषणों का विरोधी नहीं, विरोधी केवल इसका क्या कण्ठ में विद्या न रहने का महान विरोधी कहलाता हूँ। क्योंकि संसार में सबसे महान विरोध उसका ही होता है, जिसके कण्ठ में मधुरपन नहीं होता, जिसके कण्ठ में विद्या नहीं होती, केवल मानो उसने तो नाना प्रकार के अशुद्ध वार्त्ताए, और बाहरीय मानो कण्ठ को नाना प्रकार के आभूषणों से सजातीय बनाया जाता है। त्वचा से सजातीय बनाते हैं, मानो देखो, यह सजाना यह राष्ट्र, समाज और गृह को ऊँचा नहीं बनाता, यह केवल मृत्यु का मूल कारण बनता चला जाता है। इसीलिए आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से मैं आग्रह कर रहा हूँ, क्या यह जो समाज है, मानो देखो, यह रसना में इतना अशुद्ध बन गया है। आजका इसमें वातावरण को गृहों को मानो अशुद्ध बना दिया है, आज जिस गृह में विराजमान हो जाओं, उसी गृह में अशुद्ध अशुद्ध परमाणु मानव के समीप आते हैं, मूल कारण है उसी प्रकार का अन्न रह गया, उसी प्रकार धारा रह गई, अहा! इसको विचारने से आज के समाज मे मानो देखो, राष्ट्र में भी मानो देखो, चरित्र के ऊपर विचार विनिमय करना शान्त कर दिया है। राष्ट्रवाद की जब चर्चा आती है, मानो देखो, समाज के चरित्र की जब चर्चा आती है, तो कहते हैं इससे द्रव्य प्राप्त होता है। अरे, आज हे राजन्! क्या तू देखो, द्रव्य के लिए देखो, प्रजा के ऊपर शासक नहीं बना है, प्रजा के लिए शासक तू उसी काल, जब तब प्रजा के चरित्र को ऊँचा बनाने की भावना तेरे हृदय में होगी, जब मानव जब द्रव्य की लोलुपता तेरे हृदय में आ जाएगी, तो वह राष्ट्र राष्ट्र नहीं रहता, वह राष्ट्र केवल मानो देखो, द्रव्य के आङ्गन में ही रमण करता हुआ, स्वार्थवाद में आता हुआ अपनी मानवीयता को नष्ट करता चला जाता है। इसीलिए आज जब मैं इन विचारों को प्रगट करता हूँ, आज मानो एक राजा यह उच्चारण करें, क्या प्रजा के मानो उत्तेजित वस्तुओं को पान करा करके राष्ट्र को मैं स्थिर कर

सकूं, या राष्ट्र को महान बना सकूं, यह उस मानव उस शासक यह अशुद्ध कल्पना है। मानो देखो, द्रव्य राजा के लिए अनिवार्य नहीं है, द्रव्य राजा के लिए अनिवार्य नहीं राजा के लिए चरित्र और मानवता अनिवार्य होती है। क्योंकि जो वस्तु अनिवार्य होती है, उनके ऊपर भी मानव का विचार होना चाहिए, मैं इन विचारों को इसीलिए दे रहा हूँ, मैं प्रायः समाज यह वार्ता न स्वीकार करें, परन्तु मेरी वार्ता वायुमण्डल में भ्रमण करती रहेंगी, वायुमण्डल में मेरी वार्ताओं का भी लाभ होता है, परन्तु आज मैं केवल इन वार्त्ताओं को इसीलिए प्रगट कर रहा हूँ। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अवगत करा हूँ, क्या समाज का, राष्ट्र का जो निर्माण हुआ था, वह समाज को नियन्त्रण में, अनुशासन में, चरित्र में, लाने के लिए आज के राष्ट्र में मानो देखो, उसका द्वितीय भाग हो रहा है। आज का राष्ट्र उससे द्वितीय रूप में चला गया है, आज के राष्ट्र में द्रव्य चाहिए, समाज का चरित्र कहीं चला जाओ, अनुशासन कही चला जाओ, परन्तु राष्ट्र में एक मानो देखो, उज्ज्वलता होनी चाहिए। द्रव्यता होनी चाहिए, मानव को देखो, नैतिकता कहीं चली जाओ, दुराचार में मानव परणित होता हुआ, उसको दुराचारी उच्चारण नहीं किया जाता, इसीलिए आज का मानव मानो, कुछ समय के पश्चात देखो, इस महान संसार में एक एक आङ्गन में भयंकर एक एक मानव देखो, रक्त का पिपासी बनता चला जाएगा, ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है, ऐसा दृष्टिपात आता चला जा रहा है।

मानो देखो, जो एक प्रकार की धारणा राष्ट्र में आ जाती है क्या मानव का चरित्र रहे न रहे, परन्तु द्रव्य होना चाहिए अरे, द्रव्य अनिवार्य नहीं होता, द्रव्य तो केवल धर्म की रक्षा करने के लिए होता है। द्रव्य तो धर्म को ऊँचा बनाने के लिए होता है, स्वर्ग में ले जाने के लिए होता है अरे, जब धर्म जब मानो देखो, द्रव्य का दुरूपयोग करने लगोगे, वही द्रव्य मानो देखो, तुम्हे मानो देखो, नरक में ले जाने वाला बन जाएगा, और मानव को और मानव को नारकिक बना देता है। अप्रिय वस्तुओं का पान करने वाला प्राणी नारकिक ही कहलाता है, इसीलिए मैं कोई अधिक

चर्चा आज प्रगट करने नहीं आया हूँ, वाक उच्चारण करना केवल यह कि आज मेरे हृदय में कुछ पिपासाएं थी, और वह पिपासा क्या थी, मानव में स्वार्थवाद नहीं रहना चाहिए, चरित्रवाद आना चाहिए, मानवता आनी चाहिए, मानो देखो, प्राणी की रक्षा करने वाला हो, मानो मानव, मानव की रक्षा करने वाला हो, मादक वसतुओं का पान करने से राष्ट्र का चरित्र नष्ट हो जाता है। नैतिकता चली जाती है, इसीलिए देखो, भगवान मनु ने कहा है, क्या संसार में राष्ट्र का निर्माण प्रजा को अनुशासन में और कर्तव्यवाद में लाने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है। राजा चुना जाता है, धिराज बनता है, परन्तु जहाँ देखो, कर्तव्यवाद नहीं लाया जाता अकर्तव्यवाद लाने के लिए ही पदार्थों को लाने की प्रेरणा इसीलिए दी जाती है, क्या यहाँ योजनाएं बनाई जाती है, समाज वास्तव में नष्ट हो जाता है। छात्र बल नष्ट हो जाता है, छात्र बल में प्रवृत्ति नहीं रहती, बुद्धिमान समाज लुप्त हो जाता है। कर्तव्यवाद समाज मानो समाप्त हो जाता है। इसीलिए मानो देखो, समाज नारकिक क्षेत्र बन जाता है, यह आज का वाक मैं इसीलिए उच्चारण कर रहा हूँ, क्या आज मुझे यह वाक प्रगट करना है, मानव को उन पदार्थों को पान करना है, जो वास्तव में हमारे अधिकार के हैं, और जो अनिधकार चेष्टा मानव का पाप का मूल बन जाता है। अधिकार चेष्टा नहीं होनी चाहिए, जब मानव अनाधिकार चेष्टा करता है, दूसरे के गर्भ को ग्रहण करने लगता है, दूसरे के माँस को आहार में ही देखो, अपने में स्वीकार करता है। उससे मानो देखो, एक अपने आहार को स्वीकार करता है, वह कोई महानता नहीं है। यह कोई बुद्धिमता नहीं है, यह उस का मानव को देखो, आन्तरिक प्रवृत्तियों का हनन होने जा रहा है, यह है, आज का वाक्, आज मैं इन वाक्यों को अधिक समय देना नहीं चाहता हूँ। मेरे पूज्यपाद गुरूदेव ने केवल सूक्ष्म समय दिया आज मैं केवल वाक प्रगट करने आया हूँ, क्या हमें स्वार्थवादी नहीं बनना चाहिए, मानो मानव, मानव की रक्षा होनी चाहिए। आज समुद्रों के तट पर देखो, महर्षि भारद्वाज, महर्षि रेवती ऋषि, महर्षि

शाण्डिल्य जी भ्रमण करते हुए उन्हीं समुद्रो के तटों पर देखो, रक्त की धारा रमण कर रही है, मुझे आश्चर्य आ रहा है, मैं इन वाक्यों को पुनरूक्ति देना नहीं चाहता, यह तो समाज में प्रायः होता रहता है। जहाँ मानो र्स्वाथवाद है, वहीं मानो देखो, रक्तपात होता रहता है। इसीलिए स्वार्थवाद जितना सूक्ष्म हो होना चाहिए, कर्तव्यवाद लाना चाहिए, राष्ट्र की परम्परा में यह होना चाहिए, यह आज का वाक समाप्त करने जा रहा हूँ। मैं आज अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद गुरूदेवः मुनिवरों! आज मेरे पूज्य ऋषि ने और महानन्द जी ने अपना सुन्दर विचार दिया, परन्तु उन विचारों पर टिप्पणी तो कल ही कर सकेंगे, आज कोई टिप्पणी तो है नहीं, यह हमें विचार करना है क्या इन्होंने जितना स्पष्ट विचार दिया है, वह विचार एक महान माने जातें हैं। आज मैं उन विचारों को पुनः देना नहीं चाहता हूँ, परन्तु उन विचारों को प्रत्येक मानव को स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि यह सार्वभौम विचार हैं, ऋषियों का जो विचार होता है वह सार्वभौम होता है। महान विचार होता है, उस महान विचार को क्योंकि मेरे प्यारे! ऋषि सदैव यह चाहते हैं कि समाज में दार्शनिकता होनी चाहिए, ऋषिपन होना चाहिए, मुनिवरों! तो ऐसा मानव का बनना ही चाहिए। ऐसा मेरे प्यारे! महानन्द जी! के विचारों का एक महान जो मौलिक और गूढ़ शब्द थे उनका अन्त में मानो यही व्यक्तय माना जाता है, इसको हमें सदैव करना है, यदि आज महानन्द जी के शब्दों में बड़ा महानता प्रतीत हो रही है, रहा यह समुद्रो के तट पर रक्तपात यह तो बेटा! समाज का नियम है, प्रकृति का नियम है, क्या जो बनता है, वह समाप्त होता रहता है, आज देखो, इसी प्रकार की विवेचना प्रायः जगत में चलती रहती है। आज मानव को अपने कर्तव्यवाद को लाना चाहिए। स्वार्थवाद को त्यागना चाहिए, प्रभु को स्मरण करना चाहिए क्योंकि प्रभु महिमावादी है, प्रभु अनन्त है, जिस प्रकार प्रभु अनन्त है, इसी प्रकार प्रभु की विद्या भी अनन्त है, वेद विद्या भी

अनन्त है, आज का यह वाक समाप्त, अब वेदो का पाठ होगा, इसके पश्चात वार्ता समाप्त हो जाएगी।

हो गई।